श्री भगवतीसूत्रसार–संग्रह

(राष्ट्रीय भाषा)

भाग पहला

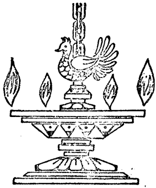

मूल लेखक :

स्व. पूज्यपाद, शासनदीपक,

मुनिराज श्री विद्याविजयजी महाराज

P. P. Ac. Gunratansuriji M.S. Jin Gun Aaradhak Trust

आ. श्री कैलाससागर सूरि ज्ञान मंदिर
श्री महावीर जैन आराधना केन्द्र, कोबा
ना. क्र.

P. P. Ac. Gunratansuriji M.S. Jin Gun Aaradhak Trust

शासनपति भगवते श्री महावीर स्वामिने नमः
जैनाचार्य, स्व. श्री विजयधर्मसूरि गुरुदेवाय नमः

श्री भगवतीसूत्रसार-संग्रह

(राष्ट्रीय भाषा)

भाग पहला : शतक १-५

मूल लेखक :
स्व. पूज्यपाद, शासनदीपक,
मुनिराज श्री विद्याविजयजी महाराज

संपादक तथा विवेचक :
न्याय, व्याकरण, काव्यतीर्थ :
पू. पंन्यास श्री पूर्णानन्दविजयजी महाराज
(कुमारश्रमण)

P. P. Ac. Gunratansuriji M.S. Jin Gun Aaradhak Trust

प्रकाशक :—

जगजीवनदास कस्तूरचंद शाह,
C/o श्री विद्याविजयजी स्मारक ग्रन्थमाला,
पो. साठंबा (साबरकांठा : वाया धनसुरा ए. पी. पी. वाय.)

गुजराती में दो आवृत्ति

आवृत्ति प्रथमा (राष्ट्रीय भाषा हिन्दी में)

मूल्य १०—०० रुपये

सं. २०३४
सन. १९७८
वीर सं. २५०४
धर्म सं. ५६

मुद्रक........

साईनाथ प्रिंटिंग प्रेस,
कपूर कॉटेज, ११ वां रस्ता,
सांताक्रुझ (पूर्व), मुंबई—५५.

P. P. Ac. Gunratansuriji M.S. Jin Gun Aaradhak Trust

समर्पण

अनंत संसार में
परिभ्रमण करते हुए
मुझे भी सुअवसर प्राप्त हुआ,
और मैं आपके चरणो में दीक्षित तथा
शिक्षित बन पाया उन असंख्य उपकारक
चिरस्मृतिवश बनकर मेरेसे कुछ सुधारा
हुआ कुछ बढ़ाया हुआ आपके लिखे
हुए इस ग्रन्थ को आपके ही कर-
कमलो में अर्पित कर मैं कृतकृत्य
बन रहा हूँ।

भवदीय चरणकिंकर,
पं· पूर्णानन्द विजय (कुमारश्रमण)
२०३४ पौषी पूर्णिमा

P. P. Ac. Gunratansuriji M.S. Jin Gun Aaradhak Trust

"जैन वाणी स्तुती"

जीयाज्जियात् सदा जीयात् जैनी वाणी जगत्त्रये ।
संसारतापदग्धानां, जीवानां सौख्यदायिनी ॥ १ ॥

महाधीरा च गभीरा, त्रिलोकीद्रव्यसाधिका ।
वाणी तीर्थकृतां मान्या, देवदानवमानवैः ॥ २ ॥

अर्हद्वक्त्रप्रसूता या कर्मौघदाहन क्षमा ।
मोहक्रोधशमे मुख्या, मोक्षमार्गविधायिका ॥ ३ ॥

मन्मतिज्ञानलाभार्थे, भाषानुवादगुम्फिता ।
व्याख्याप्रज्ञप्तिः पूज्या सा पूर्णानन्द ददातु मे ॥ ४ ॥

जैनी वाणी प्रथयतु सुखं मादृशेभ्यो जनेभ्यः,
'पूर्णानन्दा' जिनवरमुखे शोभमाना सदैव ।
पापासक्तैर्विनयरहितैः क्रोधमायासुबद्धैः,
सेव्या पूज्यानहि भवति या दुर्जनैः सा सतीव ॥ ५ ॥

पं. पूर्णानन्दविजय (कुमारश्रमण)

P. P. Ac. Gunratansuriji M.S. Jin Gun Aaradhak Trust

※ द्रव्य सहायक ※

रकम

३००० शाह मिश्रीमलजी अचलदासजी, मुलुंड.

३००० श्री जैन श्वेतांबर मूर्तिपूजक संघ पेढी, पार्ले (इस्ट).

१००० पू. आचार्य श्रीविजयलब्धिसूरिजी के उपदेश से श्री चिंतामणि पार्श्वनाथ पेढी गुलालवाडी.

५०० एम. खीमराज कंपनी, मुडगिरि (मैसुर स्टेट)

५०० शाह भीखमचंदजी वालचंदजी, मझगाम

१००० फूलचंद फतेचंद, मिरझा स्ट्रीट, पारसी गली,

१००० मांगीलालजी धनराजजी, गोरेगाम·

१००० मोहनलालजी हमीरमलजी, करांचीवाले, पूना.

P. P. Ac. Gunratansuriji M.S. Jin Gun Aaradhak Trust

श्री विजयधर्मसूरि-गुरुवन्दना

ख्याता ये वसुधातले यतिगुणैः सत्संयमाराधकाः,
विद्वद्वृन्दसुपूजितांघ्रिकमलाः काश्यांपुरी सर्वदा।
कृत्वाऽहर्निशमुद्यमं 'जिनवृषं' येऽस्थापयन् सर्वत-,
स्ते पूज्या गुरुवर्य्यधर्मविजयाः कुर्वन्तु नो मंगलम् ॥ १ ॥

ये जैनागमवारिधिपारगमिनश्चारित्ररत्नाकराः,
ये कारुण्यसुधा प्रपूर्णहृदया लोकोपकारोद्यताः।
सद्विद्याः सकला मुदा प्रतिदिनं येऽध्यापयन् सेवकां-
स्ते पूज्या गुरुसूरिधर्मविजया जीयासुरुर्वीतले ॥ २ ॥

वाराणसी विबुधसेवितपादपद्माः
सज्ज्ञानदानपरितोषित शिष्यसंघाः।
यज्जीवितं सततमेव परोपकृत्यै,
तत्सूरिधर्मविजयांघ्रियुगं नमामः ॥ ३ ॥

संस्थाप्य काश्यां शुभज्ञानशाला-
मध्यापयन् शिष्यगणान् सुविद्याः।
परोपकाराय यदीय जीवितं
तद्धर्मपादाब्जयुगं स्मरामः ॥ ४ ॥

— पं. पूर्णानन्दविजय (कुमारश्रमण)

P. P. Ac. Gunratansuriji M.S. Jin Gun Aaradhak Trust

प्रस्तुत ग्रन्थ के मूल लेखक :

शासनदीपक, स्व. मुनिराज

१००८ श्री विद्याविजयजी महाराज

"स्वर्ग वि. सं. २०११ मागसर कृष्णा १२ प्रातःकाल"

जगत्पूज्य, शास्त्रविशारद, जैनाचार्य, स्व. श्री

श्री विजयधर्मसूरीश्वरजी

A. M, A. S. B, H, M, A, S, I. H. M, G. O. S.

जन्म सं. १९२४	दीक्षा सं. १९४३	स्वर्ग गमन सं. १९७८
महुवा	भावनगर	शिवपुरी (म. प्र.)

P. P. Ac. Gunratansuriji M.S. Jin Gun Aaradhak Trust

शासनदीपक श्री विद्याविजय गुरु वन्दना

आबाल्यं ब्रह्मचर्यं जिनवचनबलात् पालयन्तस्त्रिधाये,
निष्णाता आगमाब्धौ जनिमृतिभयदं मोहशत्रुं जयन्तः।
त्यक्त्वा स्वार्थं परार्थे सुविमलहृदये धर्मध्यानं दधाना,
जीयासुस्तेहि विद्याविजयगुरुवराः भूतले ज्ञानपूर्णाः ॥१॥

यद्वाचामृतपानलुब्धमनसः प्राज्ञाः सदोपासते,
ये भव्यान् प्रतिबोधयन्ति वचनैः सद्धर्मतत्त्वं मुदा।
तत्त्वातत्त्वविचारणैकपटवो विद्याब्धिपारं गताः,
ते विद्याविजया जयन्तु भुवने चारित्ररत्नाकराः ॥ २ ॥

येऽजस्रं परित्यज्य स्वार्थमखिलं लोकोपकारोद्यताः,
येषां नो हृदये सदा स्वपरता येषां कुटुम्बं जगत्।
हेयादेय समस्त वस्तु निवहं ये बोधयन्तो जनान्,
तद्विद्याविजयांघ्रिपद्मयुगलं ध्यायामि मे मानसे ॥ ३ ॥

पं. पूर्णानन्द विजय (कुमारश्रमण)

P. P. Ac. Gunratansuriji M.S.
Jin Gun Aaradhak Trust

P. P. Ac. Gunratansuriji M.S. Jin Gun Aaradhak Trust

श्रीमान् सेठजी श्री मिश्रीमलजी अचलदासजी
मुलुंड वम्बई.

उपधान के समय तपस्वीओं की भक्ति करते हुए

P. P. Ac. Gunratansuriji M.S. Jin Gun Aaradhak Trust

सेठ मिश्रीमलजी

राजस्थान–मारवाड़ जंक्शन खीमाड़ा गांव में जन्मे हुए सेठ मिश्रीमलजी अर्थोपार्जन के लिये मुलंड बम्बई आये और पुरुषार्थबल से थोड़े समय में ही अच्छी माया प्राप्त की, परंतु माया तो केवल माया ही होने से उसका सदुपयोग ही श्रेष्ठ और पवित्र मार्ग है, जभीतो २०२३ की साल में खीमाड़ा गांव में पूज्य. जिनेन्द्रसूरीश्वरजी म. तथा, पूज्यपंन्यासजी श्री पूर्णानन्द विजयी (कुमार श्रमण) आदि के चातुर्मास दरम्यान पंन्यासजी के एक ही व्याख्यान से उपधानतप करवाने का निर्णय सेठजीने किया और विक्रम स. २०२४ कार्तिकवदि १ गुरुवार ता. १८–१०–६९ शुभदिन में आनन्द मंगल पूर्वक ३००, ३५० भावुको को उपधान में प्रवेश करवाकर अरिहंतो के धर्म की अच्छी आराधना की तथा तपस्वीओं को भी आराधना करवाने का चान्स दियाः और मागसर सुदि २ का मालारोपण महोत्सव अट्ठाई महोत्सव तथा अष्टोतरी शांति स्नात्र के साथ सम्पन्न हुआ.

शेठजी दिल के दिलावर, प्रसन्नचित्त, और शक्ति के अनुसार धर्मध्यान की भावना वालो थे, तब उनके धर्म पत्नी बड़ी उदार, दया दान आदि सत्कार्यो के उपरान्त सामायिक प्रतिक्रमण तथा छोटी–बड़ी तपश्चर्या में अभिरुचि रखने वाली है।

अपने गांव में आयंबीलशाला, पाठशाला, उपरान्त, संघयात्रा स्वामी वात्सल्य आदि सत्कार्यों में शेठ शेठाणी ने अच्छा लाभ लिया है इसी प्रकार इस भगवती सूत्र (हिन्दी) के छपवाने में बड़ी उदारता दिखलाई है इसके लिये धन्यवाद.

लि. प्रकाशक

P. P. Ac. Gunratansuriji M.S. Jin Gun Aaradhak Trust

❊ प्रकाशकीय निवेदन ❊

परमपूज्य, पंन्यासजी श्री पूर्णानन्द विजयजी (कुमार श्रमण) तथा उनके शिष्य मुनिराज श्री देवविजयजी के वरद हस्तों से संस्थापित "श्री विद्याविजयजी स्मारक ग्रन्थमाला" नाम की संस्था हमारे साठंबा के संघ के लिये गौरव लेने जैसी बात है।

प्रभावशाली मुखमंडल, हास्ययुक्त मुखाकृति, विरल, तथा धवल केशराशि से सुशोभित मस्तक, महावीरस्वामी की पूर्ण अहिंसा के सूचक, शुद्ध तथा पवित्र खादी के वस्त्रों से आवृत्त शरीर, मन्द तथा विनम्र चाल, शांत तथापि सामाजिक वैषम्य से व्यथित होकर प्रलयकारी तूफान तथा प्रतिवादी के लिये अजेय व्यक्तित्व धारण करनेवाले, शासनदीपक, अद्वितीय वक्ता, पूज्यपाद, मुनिराज श्री विद्याविजयजी महाराज स्वर्गस्थ होनेपर भी जैन समाजरूपी आकाश में शुक्र के तारे के माफिक चमक रहे हैं।

" आँखों में हो तेज, तेज में हो सत्य, सत्य में ऋजुता।
वाणी में हो ओज, ओज में विनय, विनय में मृदुता॥

पूज्य गुरुदेव की आँखें तेजस्वी थी, तेज में भी सत्यता का मिश्रण और सत्य भी सरलता से ओतप्रोत था। उनकी वाणी ओजस्विनी थी, ओज में विनय था और उसमें भी मृदुता (कोमलता) थी।

उनकी शासन तथा समाज की सेवा, अहिंसा-सत्य-संयम तथा तपोधर्म का प्रचार सर्वथा निराला और प्रभावशाली था।

P. P. Ac. Gunratansuriji M.S. Jin Gun Aaradhak Trust

पूज्य गुरुदेव साठंबा की भूमि पर जन्मे, बाल्यकाल यहाँ ही पूर्ण किया और अपने मौसाल दहेगाम (अमदावाद) पधारे और एक दिन पूर्ण संयमी अच्छे शिक्षित और अद्वितीय वक्ता बनकर अपने गुरुदेव, गुरुभ्राता तथा शिष्यों के साथ साठंबा पधारे और जैन जैनेतर उनके व्याख्यान से खूब प्रभावित हुए ।

ऐसे गुरुदेव की स्मृति हमारे संघ को कायम रहे, ऐसे पवित्र ख्यालातों से हमने इस संस्था की स्थापना की, फंड तथा प्रचार बिना की इस संस्था का उद्देश केवल सम्यग्ज्ञान का प्रचार होने से, पूज्य गुरुदेव के हाथ से अति संक्षेप में लिखा गया तथा उनके विद्वान शिष्य, न्यायव्याकरण–काव्यतीर्थ, पंन्यासजी श्री पूर्णानन्द विजयजी (कुमारश्रमण) की कलम से विस्तृत बना हुआ यह भगवतीसूत्र सारसंग्रह राष्ट्रीय भाषा में प्रकाशित करने का सौभाग्य हमे प्राप्त हुआ है ।

प्रस्तुत ग्रंथ की गुजराती भाषा में दो आवृत्तिएँ प्रकाशित हो चुकी है यही इसकी उपादेयता है ।

पूज्य पंन्यासजी महाराज भगवती सूत्र के अधिकारी हैं, चातुर्मासिक व्याख्यानों में भगवतीसूत्र का प्रसाद बहुत से संघो को प्राप्त हुआ है, अतः उनके हाथों से सम्पादित, विवेचित तथा परिवर्द्धित बनकर प्रकाशित होते हुए इस ग्रंथ के बारे में हमको कुछ भी नहीं करना है । वाचकों के लिये प्रत्यक्ष यह ग्रंथ ही हमारी संस्था की तथा हमारे संघ की शोभा बढ़ाने में पूर्ण समर्थ है ।

पूज्य गुरुदेव का जीवन पं. अमृतलाल ताराचंद दोसी

P. P. Ac. Gunratansuriji M.S. Jin Gun Aaradhak Trust

(व्याकरणतीर्थ) ने लिख दिया है, अतः हम उनके आभारी हैं।

द्वादशांगी में सर्वश्रेष्ठ उपादेय भगवतीसूत्र जैसे गहन ग्रंथ के विवेचन कराने में स्व. श्री मनसुखलाल ताराचंद महेता आद्य प्रेरक तथा हर प्रसंग में पूर्ण सहायक रहे हैं।

हिन्दी भाषांतर में छपवाने के लिए छोटी सादडी (मेवाड) निवासी, दर्शनज्ञानचारित्रोपासक, श्रेष्ठिवर्य्य श्री चन्दनमलजी नागोरी प्रेरक रहे हैं, आज ये दोनों श्राद्धरत्न अपने सामने नहीं है, इसका हमको पूर्ण खेद है। द्रव्य सहायक भाग्यशालीओं का सहयोग ही हमको उत्साहित करनेवाला है। अतः उन उन भाग्यशालीओं को हमारा धन्यवाद है और भविष्य में भी ऐसी उदारता के प्रार्थी हैं।

प्रेस के मालिक श्रीमान् तीवारीजीने यह काम अपना समझकर बड़ी शीघ्रता से पूर्ण किया है, अतः वें भी धन्यवाद के पात्र हैं।

अन्त में पूज्य, पंन्यासजी म. के ऋण को स्मृति में लाकर शासनदेव से यही प्रार्थना है कि उनकी कलम से और भी साहित्य सेवा होती रहे, जिससे हमें प्रकाशित करने का सौभाग्य मिले।

मंगलप्रार्थी निवेदक,
श्री जगजीवनदास कस्तूरचंद शाह,
C/o श्री विद्याविजयजी स्मारक ग्रन्थमाला,
मु. : साठंबा (साबरकांठा)
वाया : धनसुरा,
A. P. Ry.

P. P. Ac. Gunratansuriji M.S. Jin Gun Aaradhak Trust

※ संपादकीय निवेदन ※

मेरी कलम से सम्पादित, संशोधित तथा परिवर्द्धित होकर 'भगवतीसूत्र सारसंग्रह' नामका आगमिक ग्रंथ गुजराती भाषामें दो आवृत्तिओं से प्रकाशित होने के पश्चात् आज वही ग्रंथ राष्ट्रीय भाषा में प्रकाशित होने जा रहा है, यह मेरे लिये परम सौभाग्य की घटना है, व परमपूज्य गुरुदेव का असीम उपकार है।

परमोपकारी, विद्याव्यासंगी, शत्रुवत्सल, अहिंसा तथा संयम के पालक तथा प्रचारक, सिन्ध, उत्तर प्रदेश, मध्य प्रदेश, बंगाल, विहार, गुजरात, सौराष्ट्र, मेवाड़, कच्छ, खानदेश, विदर्भ देश, महाराष्ट्र आदि देशों में लगभग ७० हजार माइलों का पादविहार कर अपनी अद्वितीय व्याख्याशक्ति से सैकडों, हजारों कुटुंबो को मांसाहार, शराबपान, जुगार, परस्त्रीगमन, वेश्यागमन आदि दूषणों से बचानेवाले, निडर वक्ता तथा लेखक, पूज्य गुरुदेव १००८ श्री शासनदीपक, स्व. मुनिराज श्री विद्याविजयजी महाराजने अपने स्वाध्याय हेतु भगवतीसूत्र जैसे अर्थ गंभीर आगमीय सूत्रपर संक्षेप से तथापि सारभूत विवेचन लगभग ३५-३६ वर्षों के पहिले लिखा था।

पूज्य गुरुदेव के स्वर्गवास होने के पश्चात् लगभग १६-१७ वर्षों तक उनकी नोट बुकें मेरे पास पड़ी रही, परंतु द्रव्य-क्षेत्र-काल तथा भाव की अनुकूलता न होने से लिखा हुआ अमूल्य

P. P. Ac. Gunratansuriji M.S. Jin Gun Aaradhak Trust

साहित्य संस्कार के अभाव में जैसा था वैसा ही मेरे पास पडा रहा। तथापि अर्थगंभीर इस विवेचन को परिमार्जित तथा संस्कारित बनाकर प्रश्नोत्तरों को विशद तथा सरल भाषा में आलेखित कर सुंदरतम स्वाध्याय जैन समाज को भेट देने का मेरा विचार था और पूना गोडीजी टेंपल ट्रस्ट के ट्रस्टीओं की प्रेरणा भी प्राप्त हुई, और लेखन कार्य का प्रारंभ हुआ, शासनदेव तथा गुरुदेव की परोक्ष सहायता प्राप्त हुई और गुजराती भाषा में प्रथम आवृत्ति प्रकाशित हुई, पुनः दूसरी आवृत्ति भी तैयार हो रही है, तथा आज राष्ट्रीय भाषा में अनुवादित कराकर वाचको के करकमल में रखते हुए मुझे अतीव आनंद हो रहा है।

इस पद्धति से भगवतीसूत्र के प्रश्नोत्तरो का विवेचनपूर्ण यह ग्रंथ संभव है कि सर्वप्रथम है, यद्यपि हिंदी तथा गुजराती में इस सूत्र ऊपर बहुतसी पुस्तकें प्रकट हुई है, तथापि कुछ तो मांगलिक श्लोको में, कुछ मूल के भाषांतर में ही सम्पन्न होने पाई है। जबकि यह ग्रंथ प्रश्नोत्तरो से प्रारंभ हुआ है तथा मैंने मेरी मति के अनुसार प्रायः उन प्रश्नोत्तरों को विस्तार से लिखा है। जिसको सामान्य बुद्धि रखनेवाले गृहस्थ भी आसानी से पढ़ सके, समझ सके और उत्तमोत्तम स्वाध्याय का लाभ प्राप्त कर सकें।

उत्कृष्टतम साहित्य

जिसको पढ़कर, समझकर, देखकर, लिखकर व सुनकर इन्सान के जन्म जातीय काम-क्रोध-लोभ-मद-माया आदि वैकारिक दूषणों का शमन हो, दिल तथा दिमाग में सात्त्विकता आवे, तथा जीवन में शांति-समाधि तथा सरलता के साथ निर्विकारिता आवे

P. P. Ac. Gunratansuriji M.S. Jin Gun Aaradhak Trust

उसीको उत्कृष्टतम साहित्य कहते हैं।

"सहितस्यभाव साहित्य" इस व्युत्पत्ति से जो साहित्य आश्रवमार्ग का त्याग करवाकर संवर मार्ग की तरफ प्रस्थान करावें, वही साहित्य, साहित्य है। अनादिकाल से अपन सब आश्रव तत्त्व को लेकर एक दूसरे से पृथक् हुए है, आपस में झगड़े भी है और वैर-विरोध की रस्सी से जकड़ भी गये है. तथापि आश्रवमार्ग को छोडने के लिए अपन तैयार नहीं है, इसीसे मालूम होता है कि, संसार में "जीव, अजीव, केवल ज्ञान, केवल ज्ञानी तथा जम्बूद्वीप की लम्बाई चौडाई की चर्चा सरल है, अति सरल है, परंतु जीवन में से पाप भावों को, इन्द्रियों की परवशता को तथा मानसिक वक्रताको छोड़ना अति दुःसाध्य है"।

ऐसी स्थिति में संत समागम तथा सत्साहित्य का पठन-पाठन-मनन तथा निदिध्यासन ही अपने अंतरंग रोगोंको, पापोंको नाबुद कराकर संवर धर्म के प्रति प्रस्थान कराने में समर्थ बनता है।

भगवतीसूत्र (व्याख्या प्रज्ञप्ति)

इसप्रकार के सत्साहित्य में यह प्रस्तुत ग्रंथ अत्युत्तम आगमीय (शास्त्रीय) साहित्य है, जिसमे हेय (त्यागने योग्य) उपादेय (स्वीकारने योग्य) तथा ज्ञेय (जानने लायक) तत्त्वोकी भरमार है। खूब याद रखना है कि "किसी भी तत्त्व की वितंडावाद-विवादपूर्वक की चर्चा किसी का भी कल्याण नही करा सकती"। किन्तु,

" हेयं हानोचित सर्वं. कर्तव्यं करणोचितम् ।
श्लाघ्यं श्लाघोचितं वस्तु, श्रोतव्यं श्रवणोचितम् ॥

अठारह पापस्थानक, पांचे इंद्रियों की चंचलता, मन की वक्रता और विषयवासना की आसक्ति तीनों काल में अवश्यमेव त्याग करने योग्य है। समिति-गुप्ति धर्म, मन तथा इंद्रियों की स्वस्थता तथा श्रावकधर्म ही जीवन में स्वीकारने योग्य हैं।

महाव्रतों के गुणगान, अरिहंतो की प्रशंसा, मुनिराजों की जीवनी तथा अहिंसा-संयम और तपोधर्म ही प्रशंसनीय है। जब जैनीवाणी तथा मुनिराजों के व्याख्यान सुनने योग्य है। उपर्युक्त चारों बातों का यथायोग्य वर्णन-तलस्पर्शी व्याख्याए, हेतु, उदाहरण आदि का सर्वांगीण संग्रह भगवती सूत्र के सिवाय और किसी भी ग्रंथ में नहीं है। इसीलिये संसारभर के संपूर्ण साहित्य में तीर्थंकरमुखप्रकाशिता द्वादशांगी सर्वश्रेष्ठ है और उसमें भी विवाहपण्णत्ति (व्याख्या प्रज्ञप्ति) अर्थात् यह भगवती सूत्र सर्वोपरि है।

उत्पन्न केवल ज्ञान के मालिक, तीर्थंकर देव श्री महावीर स्वामीने इन तत्त्वों का प्रकाशन किया और ४८ लब्धिओं के स्वामी, सर्वथा अप्रमत्त संयमधारी, चार ज्ञान के मालिक गणधर भगवंत श्री गौतम स्वामी तथा सुधर्मा स्वामीने समयमात्र का भी प्रमाद किये विना अपने कानों से प्रत्यक्ष तीर्थंकरों की देशना सुनी है, तथा महावीर स्वामी के पाट पर विराजमान सुधर्मा स्वामीने अपने मुख्य शिष्य श्री जंबूस्वामीजी को सुनाया है।

P. P. Ac. Gunratansuriji M.S. Jin Gun Aaradhak Trust

टीकाकार :—

इस सूत्रपर पूज्यपाद, अभयदेव सूरीश्वरजी महाराज की टीका अत्यंत विशद, स्पष्ट तथा विषयस्पर्शिनी होने से सर्व ग्राह्य है।

मूलसूत्र तथा टीकापर, पंडितराज श्री बेचरदासभाई दोसी का परिश्रम सर्वग्राह्य तथा सर्वांगी सुंदर है, इतना जबरदस्त परिश्रम पंडितजी को छोड़कर दूसरों के लिये लगभग अशक्य है।

पंडितराजों के सर्जनहार (सर्जक)

जैन समाज के इन सब महापंडितों को आमूलचूल तैयार करने में, अर्थात् ' रामः रामौ रामाः " से लेकर वैयाकरण, नैयायिक, आगमिक, साहित्यिक आदि महापंडितो को तैयार करने में शास्त्र-विशारद, जैनाचार्य, नवयुग प्रवर्तक १००८ श्री विजयधर्म-सूरीश्वरजी महाराज की मानसिकी, वाचिकी तथा कायिकी वृत्ति तथा प्रवृत्ति ही मूख्य कारण है।

भारत देश का जुगजूना जमाना जब अस्ताचल पर था, तब संसारभर में पाश्चात्य देश के पंडित, विद्वान तथा स्कोलरों का उदयकाल था, जभी तो ' अमुक बात को, इतिहास को, तत्त्व को पाश्चात्य देश के स्कोलर क्या कहते है " इन बातों को सुनने पढ़ने और उसपर चर्चा करने के लिये सब लालायित रहते थे, उस समय में ही जैनशासन, जैनवाङ्मय की सेवा करने का अभूतपूर्व संकल्प व पुरुषार्थ को विजयधर्म सूरीश्वरजी (मेरे दादा गुरु) ने स्वीकार किया, जिसमें बनारस (काशी) में स्थापित जैन संस्कृत पाठशाला प्रधान थी। देश–समाज तथा धार्मिक जीवन के उत्थान में सुयोग्य

P. P. Ac. Gunratansuriji M.S. Jin Gun Aaradhak Trust

और व्युत्पन्न पंडितो का, तथा सर्व ग्राह्य सुसाहित्य का सर्जन ही श्रेष्ठ है और मुख्य कारण है " ।

ये दोनों भगीरथ कार्य करने में पूज्यपाद श्री विजयधर्मसूरीश्वरजी का पुण्यपवित्र शरीर, उपरांत मन तथा आत्मा की त्रिपुटी कार्यरत बनकर थोड़े ही समय में जैन समाज को अच्छे नामांकित पंडितो की भेट देकर आचार्य श्री हमेशा के लिये अमर बन गये ।

जिस समाज के पास सुयोग्य पंडित तथा सुवाच्य साहित्य नही है, वह समाज चाहे कितनी ही श्रीमंत होगी, तो भी आपनी आध्यात्मिक उन्नति करने में असमर्थ है " अतः विजयधर्मसूरिजीने रुढिचुस्तों की परवाह किये बिना जो कार्य किये है, वें सर्वथा अभूतपूर्व इसलिये है कि आज भी उन अधुरे कार्यो को पूर्ण करनेवाला एक भी नही है । उन सब पंडितो में बेचरदास दोसी एक है ।

जैन शासन, जैनागम तथा जैन समाज की अपूर्व सेवा करनेवाले विजयधर्मसूरीश्वरजी महाराज को जैन समाज का कोई भी सम्यक्त्वधारी भूल नही सकता, उनके दिग्गज विद्वान साधु-शिष्यों में, मेरे गुरुदेव, शासनदीपक, स्व. मुनिराज श्री विद्याविजयजी म. एक थे, जिनकी बुद्धि प्रतिभा, वाक्चातुरी, ज्ञान, गांभीर्य, औदार्य, शौर्य, संयम पवित्रता तथा शियलसम्पन्नता आदि के गुणों के गीत गुणग्राही जीवात्माओंने पेटभर गाये हैं ।

गुरुदेव श्री विद्याविजयजी म. सामाजिक जीवन के प्रश्नोत्तरों

P. P. Ac. Gunratansuriji M.S. Jin Gun Aaradhak Trust

को हल करने में जितने रसिक थे, इससे भी ज्यादा आगम ज्ञान में पूर्ण मस्त थे, जभी तो उनकी जीभ ऊपर मोती की तरह आगमीय सूक्त भी चमकते रहते थे। शुद्ध, सात्त्विक तथा खुली हुई पुस्तक के समान उनका निर्मल जीवन था, अडंबर विना की क्रियाएँ उनको हमेशा पसंद थी और सक्रिय बनकर उसमें भाग लेते थे, यही कारण है कि भगवतीसूत्र जैसे गहन विषय पर अपनी कलम चला सके है।

संपादक

राजस्थान पाली जिलान्तर्गत सादडी शहेर के ओसवाल जाति में बाफना गोत्रीय श्री नेमीचंदजी के यहाँ मेरा जन्म हुआ, बाल्यकाल से सर्वथा अबुध मैं करांची जाकर विक्रम सं. १९९४ मागसर सुदि १० के दिन पुज्य गुरुदेव के चरणों में दीक्षा ली, तबसे मेरा बाह्य तथा अभ्यन्तर जीवन का प्रारंभ हुआ। "नमो अरिहंताणं" से लेकर न्याय व्याकरण तथा काव्यतीर्थ की परीक्षा में तथा अभ्यास में प्रत्यक्ष और परोक्ष रूप से गुरुदेव का पूर्ण सहकार मेरे लिये चिरस्मरणीय है। जैन वाङ्मय (शास्त्री) ज्ञान भी हुआ और उनकी हयाती में ही शिवपुरी के चतुर्विध संघ के समक्ष भगवती सूत्र का चातुर्मासिक व्याख्यान मेरे लिये मंगल आशीर्वादात्मक बन पाया। तत्पश्चात् भोपाल, दहेगाम, महुधा, सादडी, बाली तथा पूना के विशाल संघो में भगवतीसूत्र के प्रवचन अबाध होते रहे है।

ऐसी स्थिति में मेरे अंतर्हृदय में भी भगवतीसूत्र के योगोद्वहन करने की भावना उत्कट थी और बम्बई में विजयवल्लभ चोक (पायधुनी) के नमिनाथ मंदिर के उपाश्रय में परमपूज्य विजय

P. P. Ac. Gunratansuriji M.S. Jin Gun Aaradhak Trust

प्रेमसूरीश्वरजी महाराज तथा विजय सुबोध सूरीश्वरजी महाराज (उस समय पंन्यास थे) के चरणों में मेरे योगोद्वहन हुए और विक्रम सं. २०२८ मास मगसर सुदि ५ बुधवार, ता. २४-११-७१ के मंगल समय पर मुझे पंन्यास पद से विभूषित किया गया था। देर से भी परिपूर्ण हुए योगोद्वहन से मुझे अपूर्व आनंद था, द्रव्य और भाव से मेरे जैसे प्रमादी को योगोद्वहन कराकर पू. आचार्य ने मेरे ऊपर महान उपकार किया है, जो मेरे लिये अमिट है। कालग्रहणादि में मेरे प्राणसम, लघुबंधु मुनिराज श्री अरुण विजयजी म. तथा बाह्यतप के आराधक मुनिराज श्री शान्तिचन्द्र विजयजी म. का सहकार मुझे अखिरी श्वास तक भी स्मृति में रहेगा।

प्रस्तुत आगमीय ग्रंथ पर कुछ भी लिखने के पूर्व मेरे मानसिक जीवन में निम्नलिखित संकल्प थें :–

(१) अनधिकार चेष्टा न होने पावे उसके लिये में पूर्ण जागृत था, अत: एक विषय को स्पष्ट करने के समय दूसरे आगमों को भी मुझे देखने पडे थे, केवल उनका उद्धरण बहुत से स्थानों में न दे सका उसका मुझे रंज है।

(२) अर्थ गंभीर विषयो पर कुछ भी लिखने का प्रयास केवल मेरे मतिज्ञान की ताजगी, श्रुतज्ञान की स्फूरणा और स्वाध्याय तप का पोषण बना रहे, उसके साथ साथ मेरे बाह्य तथा आन्तर दूषणों का शमन हो, इंद्रियों का दमन हो, मिथ्यात्व की ग्रंथीओं से मोचन हो, कामक्रोधादि का शोषण हो इत्यादि कारणों से यह मेरा

P. P. Ac. Gunratansuriji M.S.	Jin Gun Aaradhak Trust

प्रयास है, अतः विवेचन में वही भाव मैंने उतारे है जिसका मेरे जीवन में भरमार है।

(३) एक भी बात चर्चा में उतरने न पावे इसका ख्याल मैंने पूरा रखा है, तथापि मेरी इस उड्डयन में शास्त्रीय दोषादि रहने पाये हो, तो वाचक वर्ग से मेरा नम्र निवेदन है कि मुझपर अनुग्रह करके अवगत करें जिससे मेरे मतिज्ञान का विकास होगा और श्रुतज्ञान की त्रुटि मिटेगी। बेशक! भाषा दोष, वाक्य दोष तथा अनुवाद दोष के लिये मैं आदि से ही माफी मांग लेता हूँ और एकरार भी करता हूँ कि अनुवाद जिस ढंग से होना चाहिये था, वह नही होने पाया है और उसको सुधरवाने के प्रयास में भी मेरा प्रमाद जिम्मेदार है।

स्वर्ग में विराजमान सेठ चन्दनमलजी नागोरी (छोटी सादडी मेवाड़) का मैं अहेसान मानता हूँ कि मेरे पर वात्सल्य भाव से प्रेरित होकर मुझे ऐसी गहराई में उतारा है, अतः उनकी स्मृति को मैं कभी भी भूल नहीं सकता।

प्रस्तुत ग्रंथ में पांच शतक का समावेश किया गया है, आगे के ६ से ११ शतक तक गुजराती में दूसरा भाग प्रकाशित हो चूका है, तीसरे भाग के लिए मेरा प्रयत्न चालू है।

गुरुदेव की कृपा होगी तो दूसरे भाग का भी हिन्दी अनुवाद वाचकों के करकमल में रखने की इच्छा करूंगा।

द्रव्य सहायक सबके सब महानुभव यश के भागीदार है, मेरा उनको पुनः पुनः धर्मलाभ है।

P. P. Ac. Gunratansuriji M.S. Jin Gun Aaradhak Trust

साईनाथ टाइपोग्रॉफी (प्रिंटिंग प्रेस) प्रेस के मालिकों को मेरा धन्यवाद है, जिनकी सज्जनता से यह ग्रंथ इतना शीघ्र छपा है,

अन्त में शासनमाता पद्मावती देवी को मेरी हार्दिक प्रार्थना है कि मुझे कुछ न कुछ शुभ प्रवृत्ति में सहयोग देती रहें।

पं. पूर्णानन्द विजय (कुमार श्रमण)
C/o श्री चिंतामणी पार्श्वनाथ पेढी,
४१ महात्मा गांधी रोड,
पार्ले (इस्ट) वम्बई ४०० ०५७.

विक्रम सं. २०३४
पौष शुक्ला पूर्णिमा.
ता. २४-१-७८

P. P. Ac. Gunratansuriji M.S. Jin Gun Aaradhak Trust

※ प्रस्तावना ※

"श्री भगवतीसूत्र सारसंग्रह" के इस ग्रंथ में जगप्रसिद्ध, शास्त्रविशारद, जैनाचार्य, स्व. श्री विजयधर्मसूरीश्वरजी महाराज के सुप्रसिद्ध, प्रखर वक्ता, शिष्य, स्व. मुनिराज श्री विद्याविजयजी महाराजने भगवतीसूत्र के शतको पर जो विवेचन किया है, उसमें से पांच शतक इस ग्रंथ में दिये गये है। परंतु वह अति संक्षेप होने के कारण उसपर विस्तृत विवेचन उनके सुशिष्य, पंन्यासजी श्री पूर्णानंद विजयजी महाराज ने किया है, बाल-युवान तथा वृद्ध सब कोई सरलता से समझ सकें, इस दृष्टि से यह विस्तृत विवेचन किया गया है, जो वस्तुतः प्रशंसा के पात्र हैं। इसप्रकार सुवर्ण में सुगंध मिले ऐसा सुभ योग प्रस्तुत ग्रंथ में बना हुआ है। पू. पंन्यासजीने इसप्रकार का अपने गुरुदेव का अपूर्ण कार्य पुरा किया है जो गुरुभक्ति का सत्य प्रतिक है। पूज्य श्री विद्याविजयजी महाराज की विवेचन मूल में दिया है और विस्तृत विवेचन स्वस्तिक निशान से नीचे दिया है, क्योंकि मूल लेखन के नीचे विस्तृत व्याख्या हो तो वाचक वर्ग को समझने में सरलता पड़ती है।

महाराज श्री पूर्णानंद विजयजी के वितृत विवेचन को पढ़ने पर मालूम होता है कि उन्होंने सागर को एक छोटे गागर (मटका) में भर देने का भगीरथ कार्य किया है, ऐसा स्पष्ट मालूम होता है कि समझने में कठिण प्रसंगो को सरल और सहज में समझ सके वैसा स्तुत्य कार्य किया है, एतदर्थ वस्तुतः वें धन्यवाद के पात्र है।

P. P. Ac. Gunratansuriji M.S. Jin Gun Aaradhak Trust

अपने यहाँ ४५ आगम सूत्र हैं, जिसमें ११ अंग, १२ उपांग, ५ मूलसूत्र, ५ छेदसूत्र, १० प्रकीर्णक और २ चूलिका का समावेश है। प्रथम में अंगसूत्र १२ की संख्या में थें, परंतु कालवश बारवाँ अंग अभी उपलभ्य नही है, अतः ११ अंग ही विद्यमान है, यें सब भी पूर्ण रूप से नही मिलते है। इसमें से पांचवाँ अंग 'व्याख्याप्रज्ञप्ति' सूत्र के नाम पर से ही सूचित होता है कि यह पूरा सूत्र प्रश्नों तथा उत्तरो का विस्तृत ग्रंथ है। यद्यपि मूल नाम व्याख्या प्रज्ञप्ति होनेपर भी उसकी ज्यादा महत्ता होने से 'भगवतीसूत्र' नाम प्रसिद्ध हुआ है।

इस प्रस्तुत आगमीय सूत्र में, केवल ज्ञानी भगवंत महावीरस्वामी को गणधर श्री गौतम स्वामी के पूछे हुए प्रश्न का और भगवंत के दिये हुए जवाबों का समावेश है, तथापि इसमें मुख्य प्रश्नकार इंद्रभूति (गौतम स्वामी) अग्निभूति-वायुभूति-मंडित पुत्र-माकंदी पुत्र, रोहक, जयंती श्राविका के उपरांत अन्यतीर्थिक स्कंदक परिव्राजक आदि भी है, फिर भी गौतम तथा महावीर स्वामी के सवाल जवाब मुख्य है।

गौतम स्वामी के किये गये प्रश्नो में विषयों का तथा दलीलों का यद्यपि क्रम दिखने में आता नही है, जभी तो एक ही उद्देशे में भिन्न भिन्न विषयों के प्रश्न, अथवा एक ही प्रश्न बहुत बार दृष्टिगोचर होता है।

अपने संघ में इस सूत्र का माहात्म्य भी प्रचुरमात्रा में होने से, चातुर्मास के समय में पर्युषण के दिनों को छोड़कर भगवती-

P. P. Ac. Gunratansuriji M.S. Jin Gun Aaradhak Trust

सूत्र को बहुधा संघ समक्ष में वांचन होता है, केवलज्ञानी का एक एक वचन अमूल्य होता है, जिसको सुवर्ण के समान समझकर धनवान तथा श्रद्धालु जैन प्रश्न प्रश्नपर सुवर्ण महोर या चांदी का रुपया रखकर सूत्र को सूनते है।

यह सूत्र हाथी समान बहुत ही बड़ा है, जिसमें ४१ शतक (विभाग) है और प्रत्येक शतक के उद्देशे है, १०० से ज्यादा अध्ययन, १० हजार उद्देशे, ३६ हजार प्रश्न तथा दो लाख अठ्यासी हजार पद संख्या है। महावीर स्वामी के निर्वाण होने के पश्चात् सं. ९८० अथवा ९९३ वर्ष में श्री देवार्द्धि क्षमाश्रमण के आधिपत्य में आगमों को लिपिबद्ध करने का महाभारत जैसा कार्य करने में आया, उस समय जूदे जूदे आगमों की जो रचना हुई, उसके अनुसार यह भगवतीसूत्र है, इसीलिये वर्तमान समय में उद्देशक तथा पदों की संख्या पूर्ववत् देखने में नही आती है।

प्रत्येक धर्म ग्रंथ के दो विभाग है, एक विभाग उपदेश का तथा दूसरा सिद्धान्त का, उपदेश ग्रंथो में सामान्यरित्या इन्सान मात्र को वैराग्यादि भाव उत्पन्न होवे वही बाते चर्ची गई है, जो समझने में सरल होती हैं, उत्तराध्यनादि सूत्र का समावेश उपदेश ग्रंथो में होता है।

ज्ञान के सागरसम इस भगवतीसूत्र में यद्यपि गणितानुयोग की प्रधानता है, तो भी द्रव्यानुयोग–चरितानुयोग तथा कथानुयोग के पाठमौक्तिक भी पूर्ण रूप से दिखाई दे रहे है, इसप्रकार इस सूत्र में उपदेश तथा सिद्धांत का संयोग होने से ही यह सूत्र ज्यादां उपादेय, श्रद्धेय तथा पूज्य बना है।

P. P. Ac. Gunratansuriji M.S. Jin Gun Aaradhak Trust

असंवृत्त अणगार तथा संवृत्त अणगार का कथन विस्तृत विवेचन में बहुत ही समझने जैसा है । अनादिकाल से परिभ्रमण करते अपने जीवन में अनंत भव पूर्ण होने पर भी उसका अंत क्यों नही आता है ? भवभ्रमण बंद क्यों नही होता है ? ऐसे विचार प्रत्येक इन्सान को आये बिना नही रहते परंतु इसका कारण देते हुए पू. पंन्यासजीने कहा है कि :– "आश्रवो भव-हेतुःस्यात् संवरो मोक्षकारणम् " आश्रव और संवर नाम के दों तत्त्वो से ही जीवात्मा संसार के साथ बंधाता है और मुक्त होता है । आत्मा के साथ कर्मो का बंधन अनादिकाल से होने के कारण में आश्रव काम करता है, तथा संवर शब्द सम् पूर्वक वृधातु से बना हुआ है ।

जिसका अर्थ रोकना होता है, अर्थात् कर्म बंधन रूके उसको सेवर कहते है । जिस क्रियाओं से, अनुष्ठानों से इन्द्रियें तथा मन की वासना कंट्रोल में आवे, तथा समितिगुप्तिधर्म के प्रति आत्मा का प्रस्थान होवे उसे सेवर करते है । जहाँ संयम है वहाँ संवर है । जहाँ संवर है वहाँपर आश्रव मार्ग बंद होने के कारण कर्मों का बंधन भी नही है और जहाँपर कर्मों का बंध न होने पाता है वहाँपर जूने कर्मो की निर्जरा होने में देर नही लगती है । तथा जहाँपर निर्जरा है वहाँपर मोक्ष है जहाँ अव्याबाध तथा अनंत सुख है । जैन धर्म में पुरुपार्थ की प्रधानता होने से कर्मबंधन होने देना या नही ? अथवा मुक्त होना है ? इस विषय में इन्सान मात्र स्वतंत्र है । अर्थात् पृथक पृथक् जीवराशिओं में भटकना या उस मार्ग को बंद करना यह इन्सान के हाथ की बात है ।

P. P. Ac. Gunratansuriji M.S. Jin Gun Aaradhak Trust

लेश्या का स्वरूप और समझदारी भी इस ग्रन्थ में दी है, आत्मा के साथ कर्मों का जो छिपकना है वह लेश्या है। थर्मोमिटर के जरिये जैसे शरीर की उष्णता का ख्याल आता है, उसी प्रकार जिस समय जैसी लेश्याएँ आती है, उसीअनुसार मानसिक अध्यवसायों का भी ख्याल आ जाता है. लेश्या छ प्रकार की है :- कृष्ण लेश्या, नील लेश्या, कापोत लेश्या, तेजो लेश्या, पद्म लेश्या तथा शुक्ल लेश्या । इन्सान की क्रूरातिक्रूर वृत्ति को कृष्ण लेश्या कहते है, और जिस जिस प्रकार से वे अध्यवसाय मन्द पडे, दब जाय, कम हो जाय तथा सात्त्विक वृत्ति बढ़ती जाय वैसे वैसे इन्सान की इन्सानियत, सज्जन की सज्जनता तथा धार्मिक की धार्मिकता के विकास के साथ लेश्याएँ भी उत्तरोत्तर शुभ बन जाती है । कृष्ण लेश्या की अपेक्षा जिसकी वृत्ति में थोडा शुभत्व आवें उसे नील लेश्या उससे भी ज्यादा शुभत्व आवे उसे नील लेश्या । इसप्रकार आगे आगे समझना ।

सांख्य दर्शन की परिभाषा में कहे तो सीमातीत तामसी वृत्ति को कृष्ण लेश्या, थोडी कम तामसिकता को नील लेश्या, जब राजसी वृत्ति को कापोत तथा तेजो लेश्या और सात्त्विकता में पद्म लेश्या तथा शुक्ल लेश्या होती है ।

दूसरे शतक में मुख्यतया जीवों की भिन्नजातिओं की बाते आती है, तथा देव और नरकगति का विस्तृत विवेचन है । देवों के मुख्य चार भेद है :- वैमानिक-विमानों में रहनेवाले । भवनपति-भवनों में रहनेवाले । वाणव्यंतर-पर्वत-गुफा तथा जंगलों में रहने-

P. P. Ac. Gunratansuriji M.S. Jin Gun Aaradhak Trust

वाले और ज्योतिष्क देवो में सूर्य-चंद्र-ग्रह-नक्षत्र तथा ताराओंका समावेश है।

तीसरे शतक में चमरेन्द्र तथा शक्रेन्द्र के बीच युद्ध का वर्णन आता है। शक्र (वैमानिक इन्द्र) की अपने से ज्यादा ऋद्धि-समृद्धि तथा सत्ता को देखकर चमरेन्द्रने ईर्ष्यावश बनकर युद्ध किया, इन्द्राणीओंपर कुदृष्टि की और अपने वश में करने का प्रयत्न किया। भगवान महावीर स्वामी की अपार करुणता से चमरेन्द्र बच गया। यें सब बाते पढनेपर विचार आता है कि :– देवगति प्राप्त देव तथा असुर भी विषयवासना के वश होकर युद्ध करते है। इसमें शान्ति, समता आदि देखने में भी नही आती है। देवों के लिये प्रत्याख्यान या तपोधर्म की शक्यता नही है, इस दृष्टि से देवों की अपेक्षा से मानव जन्म उच्च तथा श्रेष्ठ माना गया है "न मानुष्यात् श्रेष्ठतरं हि किञ्चित्" मानव से बढ़कर दूसरी एक भी जीवयोनि श्रेष्ठ नही है। जरा गंभीरता से विचारे तो समझना सरल होगा कि, इन्सान को मृत्यु के बाद मुक्ति, अथवा उसकी शक्यता न हो तो पुनः मनुष्य जन्म प्राप्त करने का लक्ष्य रखना चाहिये। मृत्यु के बाद देवलोक में जाने की इच्छा रखना यह तो उच्चस्थान से गिरकर नीचे स्थान में जाने जैसा और मानव जन्म के अपमानतुल्य है। तप–संयम आदि के अनुष्ठानों के पीछे ऐसी उच्चतम दृष्टि और भावना बनानी चाहिये। इस दृष्टि से मानवयोनि प्राप्त करने के बाद भी अपन राग–द्वेष तथा विषय कषाओं में मग्न रहे तो अपने से ज्यादा मूर्ख किसको कहना? यह एक जटिल प्रश्न है।

इन्सान को वेदना--आघात तथा व्यथा क्यों भुगतनी पडती है ? इसकी चर्चा बहुत ही सुंदर प्रकार से तीसरे शतक के सातवें उद्देशे में पू. पं. श्री पूर्णानंन्द विजयजीने करते हुए स्पष्ट कहा है कि " क्रियाजन्य कर्म तथा कर्म जन्य वेदना होती है " मुनिवेष को धारण करने के बाद भी प्रमादवश होकर मुनिराज भी उपयोग-शून्य बनकर खाने पीने में, गमनागमन करने में, सोने--उठने तथा बैठने में यदि भूल करेंगे तो निर्णयात्मक रूप से भगवतीसूत्र साक्षी देता है कि, कर्मबंधन तथा संसारचक्र की वृद्धि होगी ।

" चरित्रयोग का स्पष्टीकरण " शीर्षक में विस्तृत विवरण करते हुए पू. मुनिराजश्रीने अनासक्त भाव से जीवन जीनेपर भार डालते हुए कहा कि :-"जीवन में से पुद्गलों का त्याग नही करना है परंतु उनके प्रति रही हुई दुराचार अथवा अति उपयोग की भावना छोडनी है । श्रीमंताई तथा सत्ता छोडने की नही है परंतु साध्य भावना का त्यागकर उनके प्रति साधन भावना पैदा करनीं है — जनक राजा के पास वैभव का पार नही थी फिर भी वें 'विदही' कहलाये, इसका कारण यही है कि, जैसे कमल जल के मध्य में रहा रहा हुआ भी सर्वथा अलिप्त रहता है, उसी प्रकार संसार में रहते हुऐ भी अलिप्तभाव बना रहे, तो वही एक उच्चकोटी की साधना है, गृहस्थ भी इस साधना की अलिप्त भाव से कर सकता है ।

इन्द्रलोक की तीन सभाओं का वर्णन करते बताया है कि, देवलोक में देवों के समान देवीयें भी सभासद पद सुशोभित करती

है। और वहाँ पर देवीयों का भी देवों के तुल्य बहुमान करने में आता है। इसकी चर्चा करते हुए पू. पंन्यासजीने सत्य ही कहा है कि 'मातृस्वरूपा स्त्री को नीच गिनने का प्रयोजन क्या है ? क्या वें पुरुषों से बुद्धिबल में कमजोर है ? इत्यादि कल्पनाओं में पुरुषजात की स्त्रीओं के प्रति जबरदस्ती के सिवाय दूसरा क्या कारण हो सकता है ? क्योंकि स्त्री और पुरुष के मध्य में मूलभूत तफावत कुछ भी नही है उसमें रहा हुआ स्त्रीत्व या पुरुषत्व तो केवल देहदृष्टि से है परंतु आत्मदृष्टि से तो स्त्रीकी आत्मा और पुरुष की आत्मा एक सी है।

श्री भगवतीसूत्र सारसंग्रह की प्रस्तावना लिखने का मुझे रतिमात्र भी अधिकार नहीं है। यह बात मैं अच्छी तरह से समझता हूं। फिरभी इस अनधिकार चेष्टा करने का संक्षेप से खुलासा कर देता हूं, आज से पच्चीस वर्ष पहले ई. स. १९५० में श्री जैन श्वेतांबर एज्युकेशन बोर्ड की 'आगम विभाग' की परीक्षा मे मैं बैठा था, और उत्तीर्ण भी हुआ था, उस समय इसके अभ्यासक्रममें भगवतीसूत्रसार, उत्तराध्ययनसूत्र तथा कल्पसूत्र इस प्रकार यें तीन ग्रन्थ थे. 'भगवतीसार' यह पुस्तक तो भगवतीसूत्र का छायानुवादही था। अतः इसके बल पर इस भगवतीसूत्र सारसंग्रह की प्रस्तावना लिखना 'सूंठ के टूकडे पर गांधी (कीराणे के व्यापारी) बनने जैसी बालिशता है, तथापि सत्यार्थ यह है कि, मैं जब आठ वर्ष की उम्र का था उस समय में सबसे प्रथम ही मैं शास्त्रविशारद, जैनाचार्य, स्व. श्रीविजयधर्मसूरीश्वरजी महाराज जिन्होंने संसार के पौर्वात्य तथा पाश्चात्य विद्वानो में ज्ञान की गंगा खडीकर अनेक श्रेष्ठ

P. P. Ac. Gunratansuriji M.S. Jin Gun Aaradhak Trust

कोटि के साधु भगवंत तथा पंडित रत्नों की भेट जैन समाज को दी है। उन आचार्य पुंगव के तथा उनके संघाडे के मुनिराजों के परिचय में मैं आया। सन १९१५ में उन आचार्यदेवने अमरेली में चातुर्मास पूर्ण किया था, उसके बाद उनके शिष्यरत्न, आ. श्रीविजयेन्द्रसूरिजी, तथा श्रीविद्याविजयजी के साथ मेरा संपर्क सतत रहा है।

पच्चीस वर्ष के पहले पूज्य, विद्याविजयजी महाराज को वंदन करने हेतु शिवपुरी गया था, उस समय उनके प्रशान्त शिष्य पू. पं. श्री पूर्णानन्दविजयजी महाराज से मेरा परिचय हुआ, वे उस समय न्याय-व्याकरण-काव्यतीर्थ की परीक्षा के लिये तैयारी कर रहे थे, उसके बाद तो दिन प्रतिदिन हमारा संबंध बढ़ता गया, तथा संपर्क भी चालु रहा है। प्रस्तुत ग्रन्थ की प्रस्तावना लिखने के लिये प्रेम-भावसे उन्होने मुझे आज्ञा की जिसका उल्लंघन नही करने के कारण यह प्रस्तावना लिखने की अनधिकार चेष्टा मेरे से हो गयी है। संभव है कि इसमें कुछ शास्त्रविरुद्ध या अन्य कोई दोष रहा हो तो वाचको की मैं क्षमा चाहता हूँ और वें भी बड़ा दिल रखकर मुझे क्षमा करे. यही मेरी नम्र विनंती है।

स्व. मनसुखलाल ताराचंद महेता
(गुजराती परसे हिन्दी अनुवाद से)

P. P. Ac. Gunratansuriji M.S. Jin Gun Aaradhak Trust

प्रस्तुत ग्रन्थ के मूल लेखक

शासनदीपक, मुनिराज की जीवनी

गुजरात प्रान्त, सावरकांठा जिल्ला, बायड तालुका के अन्तर्गत साठंबा नाम का गाम है। इसी गाम में पूज्य गुरुदेव का जन्म हुआ था। नाम बेचरदास था, उनके पिताजी साठंबा राज्य के कर्मचारी होते हुए भी प्रामाणिक, न्यायपूर्ण, दयालु, सत्यभाषी और नम्र स्वभाव के होने से राज्य की तमाम जातिओं में वे सन्मानित थें। ठाकोरसाहेब का प्रेम अच्छी तरह से संपादित किया हुआ होनेसे बेचरदास का बाल्य व पठनकाल माता पिता के प्यार में पूर्ण हुआ था, परंतु अनित्य संसार में सबों की स्थिति नश्वर होने से एक दिन माता पिता का वियोग भी बेचरदास के भाग्य में आया और उनको दहेगाम में अपने मामा मामी के यहां पर रहना पड़ा।

पूर्वभव की संयमी आत्मा ही वर्तमानभव में संयमी जीवन पसंद करता है "इस न्याय से कौटुम्बिक जीवनमें कुछ खटपट होनेसे बेचरदास का आंतरमन कुछ निराला मार्ग ढूंढने के चक्र में था। उसी समय में उसने सुना कि 'विजयधर्मसूरीश्वरजी महाराजने बनारस काशी में संस्कृत विद्यालय का प्रारंभ किया है। तब बेचारदास दों प्रतिज्ञाओं को कर दहेगाव की भूमि को अंतिम अंजलि देकर विदाय होता है।

(१) या तो बड़ा भारी श्रीमंत बनकर दहेगाम का पानी लूंगा

(२) या जब्बर विद्वान-वक्ता बनकर साधुत्व स्वीकार करने के पश्चात् इस भूमि का पानी लूंगा ?'

P. P. Ac. Gunratansuriji M.S.		Jin Gun Aaradhak Trust

लगनी थी, पढ़ने का आंतर उत्साह था, देहगाम में ली हुई प्रतिज्ञा प्रशिक्षण स्मृतिपट पर थी, गुरुदेव का वात्सल्य था, सहपाठिओं से स्पर्धा थी, जभी तो गुरुचरण की सेवा के परम॰ पुजारी बेचरदास को व्याकरण, काव्य, न्याय आदि का अभ्यास करने मे देर न लगी।

परंतु कोरे व्याकरण व सर्वथा निरस दर्शन शास्त्री की जटिलता से उनका मन तृप्त न हुआ, क्योंकि यें विषय तो केवल वाद-विवाद को जन्म देनेवाले है, जबकि इस संसार को 'संवाद' से मतलब है, अतः बेचरदासने गुरु सेवा के माध्यम से 'वक्तृत्व' का अभ्यास व विकास खूब अच्छी तरह से किया और दिन-प्रतिदिन सफलता की तरफ आगे वढते गये!

कलकत्ता शहेर में विजयधर्मसूरीश्वरजी के चरणो में दीक्षित हुए और 'मुसिराज श्री विद्याविजयजी' के नाम से प्रसिद्ध हुए।

चढ़ती जुवानी के ये युवामुनि गुरुसेवा के पूरे हिमायती थे, शासन के रंग में रंगे हुए थे, तथा मुनिता समितिगुप्तिधार्मिकता, वाक्संयमिता, ब्रह्मचारिता के साथ भावदयापूर्ण मानस के जरिये उनका व्यक्तित्व भी अजेय, निरभिमान तथा कोमल होने से उनकी वक्तृत्व कला पूर्णिमा के चाँद के माफिक पूर्ण रूप से विकसित हुई।

यद्यपि विजयधर्मसूरीश्वरजी के चरणो में भिन्न भिन्न शक्तिओं के धारक अनेक मुनिराज थे तो भी यह समुदाय जिस गाम व शहेर में जाता वहाँ की ऑखें सबसे पहले विद्यावियजी ढूंढने में

P. P. Ac. Gunratansuriji M.S. Jin Gun Aaradhak Trust

स्थिर होती थी, उनोका भाषण सुनने के लिए जनता तत्पर रहती थी।

पू. गुरुदेव का व्याख्यान कोरा व्याख्यान, वाचालता या जनरंजन नही था, किन्तु मानव जीवन में से असत्य, हिंसा, दुराचार तथा भोगलालसा मिटे और सत्य-अहिंसा-सदाचार तथा तपोधर्म का प्रादुर्भाव होवे यही गुरुजी के जीवन का मूल मंत्र था, जभी तो हजारो मानवों को शराब पान, मांस भोजन, परस्त्री गमन, वेश्यागमन व जुगार आदि से मुक्ति दिला सके थे।

कच्छभद्रेश्वर के मेले में आई हुई विशाल जनता में व्याख्यान के अवसर पर विद्याविजयजी महाराजने दूसरे मुनिओ को भी थोडा बोलो को कहा, तब एक मुनिजीने व्याख्यान का प्रारंभ किया और जनता में से अवाज उठी की 'हजारों की संख्या में हम सब दूर दूर से विद्याविजयजी महाराज को सुनने के लिये आये है' यह थी उनकी व्याख्यातृ शक्ति। उसके पहले दिन भीत्तराग भगवान के मंदिर की भमती में किसी मनचलो जुवान ने एक युवति की असभ्य मश्करी की, यह बात जब विद्याविजयजीने सुनी तब तो उनका पुण्यप्रकोप सात आसमान तक चढ गया तथा व्याख्यान के समयपर उनकी जीभपर माता सरस्वती देवी भी विराजमान होकर वीररस में पुकार उठी थी कि ऐसे नरपशु के मस्तक पर यदि वह युवती दो जूते लगा देती तो वह धर्म्य तथ न्यायमार्ग था तब हजारों की संख्या में तालीओं की गडगडाहट से सभा मंडप गूंज उठा था।

अपने गुरुजी के अन्तिम श्वासतक उनकी सेवा में तत्प-

P. P. Ac. Gunratansuriji M.S. Jin Gun Aaradhak Trust

रहकर अपना बाह्य तथा आभ्यन्तर जीवन उस प्रकार से बनाया था, जिससे सामाजिक आंधी तूफान में, विरोध विचार रखने वालों के बीच में भी पूज्य श्री विद्याविजयजी म. हसमुख रहे है यही कारण है कि उनके जीवन में हताशा, विह्वलता, भयग्रस्तता, प्रमादिता तथा सामनेवाला का प्रतिकार या प्रतिशोध करने का भाव किसी को कभी देखने में नही आया। जभी तो सिन्ध जैसे देश में जाकर अपनी सत्प्रवृत्तिओ के माध्यम से अहिंसा प्रचारादि जो कुछ भी किया है उसीसे गोरी सल्तन के गवरनरों से लेकर सब कोई उनको सुनने के वास्ते अपना भाग्य समझते थे। कच्छ प्रदेश में देवाधिदेव भगवान महावीर स्वामी का जन्म जयंती महोत्सव जो मांडवी में माधव महाराज की अध्यक्षता में सम्पन्न किया वह कच्छ देश के लिये सर्वथा अद्वितीय था, यह सब प्रसंगोचित बाते गुरुजीकी लिखी हुई 'मारी सिन्ध यात्रा', 'मारी कच्छ यात्रा' नाम की पुस्तकें पढने से ही मालूम हो सकती है। सौराष्ट्र की भूमिपर पधारते ही अपवाद को छोडकर सबके सब छोटे बडे राजाओने गुरुजी का स्वागत तथा उनके व्याख्यान सूने थे.

सूरीसम्राट नाम का हिन्दी-गुजराती तथा अंग्रेजी में लिखा गया पुस्तक उनके ऐतिहासिक ज्ञान का परिचायक है। जैनत्व, जैन ज्ञान तथा अहिंसा धर्म का प्रचार भारत के कोणे कोणे में हो यही गुरुजी का मूलमंत्र था। कभी कभी विरोधीओं का हस्तक्षेप भी कारणरूप बनता था परंतु ये सब विरोध उनके लिये निष्फल थे।

अपनी अध्यक्षता में चलती हुई शिवपुरी पाठशाला में एक पाश्चात्य स्कोलर गुरुजी के पास कुछ जैनधर्म की चर्चा करने के

P. P. Ac. Gunratansuriji M.S. Jin Gun Aaradhak Trust

लिये आया था, वह जैन फिलोसी का नामांकित स्कोलर था। उस समय ग्वालियर नरेश 'माधवराव की अध्यक्षता में उसका भाषण रखा गया था, टाऊन हॉल पूर्णरूप से भर चुका था. उनके भाषण के पश्चात गुरुजी को भी पांच मिनिट के लिये ही बोलने का अवसर मिला, भाषण स्टेजपर आये हुए गुरुजी का विराट सभाने तालीओं से स्वागत किया और गुरुजीने 'भारत के साधुओं का पतन कैसे हुआ ? इस विषय पर बोलने का प्रारंभ किया, प्रसंग प्रसंगपर जनता की तालीओं से चमत्कृत हुए राजाजी को पांच मिनिठ के बदले ५५ मिनिट कब हुई उसका भी पता न चलने पाया। विषय का प्रतिपादन करते हुए गुरुजीने कहा कि पवित्रतम साधु संस्था का अध:पतन जो आज दखने में आ रहा है उसमें ज्यादा हिस्सा श्रीमंतो का तथा राजाओं का रहा है। क्योंकि श्रीमंताई तथा राज्यसत्ता इन दोनों तत्त्वों में वह शराब का नशा भरा है जिससे उनको स्वार्थान्धता को लेकर देश के सर्व नाश को अपन प्रत्यक्ष देख रहे है, इन दोनों का गठबंधन ही एक ऐसी शरारत है जिससे सदाचार-अहिंसा आदि को एक भी समस्या का हल होने नही पाता है।

"यतिने काञ्चनंताम्बुलंदत्त्वा...' इन वैदिक तथा जैन सूत्रों को ठुकराकर जैन तथा वैदिक समाजने साधुओं को बेसुमार द्रव्य दिया, रहने को अच्छे बंगले दिये। खानपान में बढिया से बढिया माल मसाला दिया, उसको पचाने के लिये भांग, गांजा, चरस, तमाखु आदि मादक पदार्थ भी दिये, श्रीमंतोने तथ राजाओने साधु को पास बैठाकर ये सब दिया, पिलाया...और

देश के आध्मात्मिक उत्थान में मौलिक कारण रूप साधु संस्था कमजोर हुई, अधःपतित बनी, तथा उनके इसारेपर नृत्य करने लगी....मुझे याद है कि ७५ मिनिट के तक धारावाही व्याख्यान में सैंकडोवार तालिओं के आवाज से गूंजा हुआ टाउन हॉल ग्वालीयर नरेश को नूतन ज्ञान देने में पूर्ण समर्थ बना था, जभी तो सभा समाप्ति के बाद माधव महाराजने पूज्य गुरुजी को अपनी भुजाओं में समेटते हुए कहा कि जिन्दगी में प्रथम बार ही मुझे सच्चाई का ज्ञान प्राप्त हुआ है और चरणस्पर्श करते हुए राजा अपने स्थानपर चले गये तथा गुरुजी अपने आश्रम में आये।

अभूतपूर्व ज्ञान के खजाने के मालिक पूज्य गुरुजी का पार्थिव शरीर शिवपुरी की भूमि में विलीन हुआ और यशशरीर अभी भी चक्कर लगा रहा है।

जय गुरुदेव।

२०३४ — पं. अमृतलाल ताराचंद दोशी
माह सुदि १. — (व्याकरणतीर्थ)

P. P. Ac. Gunratansuriji M.S. Jin Gun Aaradhak Trust

वि ष या नु क्र म णि का

विषय	शतक	उद्देशक	पृष्ठ
परिचय			१–५
प्रश्नोत्थान			६–८
मोक्षतत्त्व	१	१	९–१७
जीव के चोवीश भेद	,,	,,	१८–१९
आत्मारंभादि	,,	,,	२०–२१
ज्ञानादि के भेद	,,	,,	२२–२३
असंवृत संवृत अणगार	,,	,,	२३–२४
असंयतभाव	,,	,,	
कर्मभोग	,,	२	
नैरयिकों के भेद	,,	,,	
लेश्या स्वरूप	,,	३	
संसार संस्थानकाल	,,	,,	
कांक्षा मोहनीय	,,	,,	३३–३४
अस्तित्व–नास्तित्व	,,	,,	३५–३६
कांक्षा मोहनीय के हेतु	,,	,,	३७–३८
अवधिमनः पर्यवज्ञान	,,	,,	३९
दर्शन	,,	,,	४०
चारित्र	,,	,,	४०–४१
समाचारी	,,	,,	४१–४२
कर्म प्रकृति	,,	४	४३–५४
प्रदेश और अनुभाग का अर्थ	,,	,,	५४–५६
पुद्गल–छद्मस्थ	,,	,,	५७
अवधिज्ञान के भेद	,,	,,	५७–५८
नरका वास	,,	५	५९–६०
पृथ्वी कायिकादि के आवास	,,	,,	६०

P. P. Ac. Gunratansuriji M.S. Jin Gun Aaradhak Trust

विषय	शतक	उद्देशक	पृष्ठ
दशस्थान	,,	,,	६०-६१
लेश्यादि	,,	,,	६२-६५
मनुष्यों के संबन्ध में	,,	,,	६५
वाण-व्यन्तरादि संबंधी	१	५	६६
सूर्य का दिखना	,,	६	६७-६८
पहले कौन और बाद में कौन ?	,,	,,	६९-७०
लोक स्थिति	,,	,,	७१-७२
सूक्ष्म स्नेहकाय	,,	,,	७३-७४
नैरयिकों की उत्पत्ति	,,	७	७५-७६
गर्भ विचार	,,	,,	७७-८९
बालादि की आयु	,,	८	९०
एकान्त बाल, पंडित और बाल-पंडित	,,	,,	९०-९१
क्रिया-विचार	,,	,,	९२-९४
वीर्य-विचार	,,	,,	९५-९८
गुरुत्वादि विचार	,,	९	९९-१०७
जीव और आयुष्य	,,	,,	१०८
कालास्यवेषि पुत्र	,,	,,	१०८-११३
परमाणु स्वभाव	,,	१०	११४-११५
भाषा विचार	,,	,,	११६-११७
क्रिया	,,	,,	११७-११९
पृथ्वीकायाकादि के श्वासोच्छ्वास-	२	१	१२०
वायुकाय के श्वासोच्छ्वास	,,	,,	१२१-१२२
प्रासुक भोजी अणगार का क्या ?	,,	,,	१२२-१२३
स्कंदक तापस	,,	,,	१२३-१२७
१ लोक संबंधी	,,	,,	१२७
२ जीव संबंधी	,,	,,	१२८

P. P. Ac. Gunratansuriji M.S. Jin Gun Aaradhak Trust

विषय	शतक	उद्देशक	पृष्ठ
३ सिद्धि संबंधी	,,	,,	,,
४ सिद्ध संबंधी	,,	,,	१२८–१२९
५ जीव संबंधी	,,	,,	१२९
बाल मरण १२ प्रकार से हैं	,,	,,	१२९–१३०
पंडित मरण	,,	,,	१३०–१३९
नरक भूमि संबंधी	२	२	१४०–१४३
समुद्घात	,,	२	१४३
इन्द्रियाँ	,,	४	१४४
देव और वेद	,,	५	
उदक गर्भ विचार	,,	,,	१५३–१५५
पार्श्वनाथ के शिष्यवृन्द	,,	,,	१५५–१६३
गरम पानी के कुण्ड	,,	६	१६४–१६५
चार प्रकार की भाषा	,,	,,	१६५–१६९
देव	,,	७	१७०–१७२
चमर की सभा	,,	८	१७३
समय क्षेत्र	,,	९	१७४
पांच द्रव्य	,,	,,	१७४–१७८
धर्मास्ति कायादि संबंधी कुछ विशेष	,,	१०	१७९–१९१
भगवतीसूत्र की जयकुंजर हाथी से तुलना	३	१	१९३–१९६
मनुष्य जीवन की सार्थकता	,,	,,	१९६–१९७
देव निर्मित समवसरण	,,	,,	१९७–२०१
देवेन्द्र संबधी प्रश्न	,,	,,	२०२–२०६
ईशानेन्द्र की उत्पत्ति	,,	,,	२०७
तामली तापस और प्राणामादीक्षा	,,	,,	२०८–२१९
शक्र और ईशान की तुलना	,,	,,	
असुर कुमारों की गति	,,	२	२२०–२२१

P. P. Ac. Gunratansuriji M.S. Jin Gun Aaradhak Trust

विषय	शतक	उद्देशक	पृष्ठ
पूरण तपस्वी	,,	,,	२२१–२२२
चमर और इन्द्र	,,	,,	२२२–२२६
क्रिया के भेद	,,	३	२२७–२२९
अनादिकाल से किये गये कर्मों की विचित्रता	,,	,,	२२९–२३०
क्रियाओं की विशद व्याख्या	,,	,,	२३१–२३३
भावाधिकरण	३	३	२३३
१०८ प्रकार के आश्रव का कोष्टक	,,	,,	२३४–२३७
अजीवाधिकरण के भेद	,,	,,	२३७
निक्षेपाधिकरण के चार भेद	,,	,,	२३८
संयोजनाधिकरण के दो भेद	,,	,,	२३९
निसर्गाधिकरण के तीन भेद	,,	,,	२३९–२४०
कर्म पहले या वेदना पहले	,,	,,	२४१–२४४
कर्मों का अबाधाकाल	,,	,,	२४४–२६८
जीवात्मा की एजनादि क्रिया	,,	,,	
अनंतानुबंधी कषाय	,,	,,	
मोक्ष में जाने की दो श्रेणि	,,	,,	
कर्मों की दुर्भेद्य ग्रन्थि	,,	,,	
मानसिक विचित्रता	,,	,,	
भावितात्मा अनगार की शक्ति	,,	४	२६९–२७०
अहिंसा संयम और तप का स्पष्टीकरण	,,	४	२७०–२७२
पुद्‌गलों की शक्ति	,,	,,	२७७–२७८
नपुंसकों का वर्णन	३	४	२७९–२८०
संसारवर्ती आत्माओं के दो विभाग	,,	,,	२८१
स्त्रीवेद का कारण	,,	,,	२८२–२८३
मेघ के आकार	,,	,,	२८३–२८४

P. P. Ac. Gunratansuriji M.S. Jin Gun Aaradhak Trust

विषय	शतक	उद्देशक	पृष्ठ
लेश्या परत्व के प्रति प्रश्नोत्तर	,,	,,	२८५–२८६
लेश्याओं का स्वभाव	,,	,,	२८७–२८८
आगम में लेश्याओं का स्वभाव	,,	,,	२८८–२८९
मानव जीवन की सार्थकता	,,	,,	२८९–२९२
जैन शासन की अद्वितीयता	३	४	२९२–२९४
२ चतुर्विंशति जिन स्तवन	,,	,,	२९५
३ गुरु वंदन	,,	,,	,,
४ प्रतिक्रमण	,,	,,	२९६–२९७
५ कायोत्सर्ग	,,	,,	२९७
भावितात्मा अनगार का विकुर्वण	,,	५	३००–३०१
मंत्रादि प्रयोग मायावी को	,,	,,	३०१–३०२
गाँव–नगर का विकुर्वण	,,	६	३०३–३०४
चमर के आत्मरक्षक देव	,,	,,	३०४–३०५
शक्र के लोकपाल	,,	७	३०६–३०७
सोम लोकपाल की आज्ञा में नवों ग्रह	,,	,,	३०७–३०८
यम का वर्णण	,,	,,	३०८
१५ परमाधामी देव	,,	,,	३०८–३०९
वरुण का वर्णन	,,	,,	३०९–३१०
वरुण का आधिपत्य	,,	,,	३१०–३१२
कुबेर का वर्णन	,,	,,	३१२
आधिपत्य भुगतने वाले देव	३	८	३१३–३१४
इन्द्रियों के विषय	,,	,,	३१४
पांच इन्द्रियों की विशद व्याख्या	,,	,,	३१४–३१७
चारित्र योग का स्पष्टीकरण	,,	,,	३१८–३२०
पुद्गलों का चमत्कार	,,	,,	३२०–३२२
इन्द्रलोक की तीन सभा	,,	,,	३२३–३२५

P. P. Ac. Gunratansuriji M.S. Jin Gun Aaradhak Trust

विषय	शतक	उद्देशक	पृष्ठ
मातृस्वरूपा स्त्री का अपमान पाप है	,,	,,	३२५–३२७
माता के तीन गुण	,,	,,	३२७–३३२
ईशानेन्द्र का परिवार	४	१–८	३३३
इन्दलोक का वर्णन	४	९	३३३
इन्द्र की अगाध शक्ति	,,	,,	३३४–३३५
नैरयिक नरक में जाते हैं	,,	,,	३३६–३३७
भवान्तर किसलिये ?	,,	,,	३३७–३४१
नरक गति के कारण	,,	,,	३४२–३४३
ऋजुसूत्र का भाषा व्यवहार	,,	,,	३४३–३४५
छठ्ठे गुणठाण में भी चार—ज्ञान	,,	,,	३४६
लेश्या विचार	४	१०	३४९
लेश्याओं के परिणमन के लिए स्पष्टीकरण	,,	,,	३४९–३५४
चंपा नगरी	५		३५६–३६०
सूर्य विचार	,,	१	३६१–३६४
वायु विचार	,,	,,	३६४–३६५
ओदनादि काय	,,	,,	३६६–३६७
परिग्रह पाप किसलिए ?	,,	,,	३६७–३७०
गृहस्थाश्रमी	,,	२	३७१–३७२
रेशमी वस्त्र त्याज्य	,,	,,	३७२–३७३
लवणसमुद्रका विष्कंभ	,,	,,	३७४
अरिहंतो का प्रभाव	,,	,,	३७४–३७६
जीवों का आयुष्य	,,	३	३७७–३८३
शब्द	,,	४	३८४
हास्य मोहनीय कर्म की तीव्रता	,,	,,	३८४–३८८
हंसना अच्छा है या बुरा ?	,,	,,	३८८–३८९
केवली को निंद होती हैं ?	,,	,,	३९०–३९१

P. P. Ac. Gunratansuriji M.S. Jin Gun Aaradhak Trust

विषय	शतक	उद्देशक	पृष्ठ
भगवान का गर्भापहरण	,,	,,	३९२–३९५
अति मुक्तक	,,	,,	३९६–३९७
देव के मौन प्रश्नोत्तर	,,	,,	३९८–३९९
गुरु-शिष्य संबंध	५	४	३९९–४०१
देवों की भाषा और छद्मस्थ का ज्ञान			४०२–४१४
वैमानिकों का ज्ञान	,,	५	४१५–४१७
कर्म, वेदना और कुलकर	,,	,,	४१८–४२१
चक्रवर्ती कब हुए ?	,,	,,	४२२
वासुदेव प्रतिवासुदेव कब हुए	,,	,,	४२२–४२३
नक्षत्रों की योनि	,,	,,	४२६–४३५
अल्प तथा दीर्घायुष्य कारण	,,	६	४३६–४४६
अल्पायुष्यता यानी ?	,,	,,	४४६–४५३
क्रिया	,,	,,	४५४–४५६
भाव अग्नि	,,	,,	४५६–४५७
पांच क्रियाओं की फरसना	,,	,,	४५८–४६५
आधा कर्मादि	,,	,,	४६६–४६९
आचार्य पद की योग्यता	,,	,,	४६९–४७२
मृषावाद के प्रकार	,,	,,	४७२
मृषावाद का स्वरूप इस प्रकार है	,,	,,	४७२–४७३
आत्मा के सद्भूत विशेषण	,,	,,	४७४–४७८
परमाणु पुद्गल	,,	७	४७९–४८५
जीवों का आरंभ परिग्रह	,,	,,	४८५–४८६
नारक-देव भी क्या पाप बांध सकते हैं ?	,,	,,	४८६–४८९
पांच हेतुएं	,,	,,	४८९–४९१
जीवों के चार प्रकार है	५	७	४९१–४९४
पुद्गल	,,	८	४९५–४९६

P. P. Ac. Gunratansuriji M.S. Jin Gun Aaradhak Trust

विषय	शतक	उद्देशक	पृष्ठ
जीवों की क्षयवृद्धि और अवस्थितता	,,	८	४९७–५०१
क्षयोपशमिक ज्ञान चार प्रकार का है	,,	,,	५०१–५०४
द्रव्य में स्थित अनंत पर्याय	,,	,,	५०४–५१०
निगोदकाय	५	८	५११–५१४
उद्योत और अंधकार	,,	९	५१५
समयादिनुं ज्ञान तेमज) रात्रि दिवस अनंत के) नियत परिमाण)	,,	,,	५१६–५१८
भगवान महावीर स्वामी की सविशेषण स्तुति	,,	१०	५१९–५३१

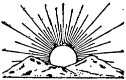

ग्रन्थविवेचक :

पंन्यासजी श्री पूर्णानन्दविजयजी

(कुमारश्रमण)

P. P. Ac. Gunratansuriji M.S. Jin Gun Aaradhak Trust

नमोत्थुणं समणस्स भगवओ महावीरस्स
नमो नमः श्री प्रभुधर्मसूरये
ॐ ह्री अर्हं नमः

सूत्र परिचय

णमो अरहंताणं ।
णमो सिद्धाणं ।
णमो आयरियाणं ।
णमो उवज्झायाणं ।
णमो सव्वसाहूणं ।
णमो बंभीए लिवीए ।
णमो सुअस्स ।

टीकाकार के मंगलाचरण के पश्चात् सूत्रकार, पंचमगणधर श्री सुधर्मास्वामीने भगवतीसूत्र के प्रारंभ में पंचपरमेष्ठी भगवंतो को नमस्कार रुप मंगलाचरण किया है । उसका भावार्थ यह है :

"मैं अरिहंतो, सिद्धो, आचार्यों, उपाध्यायों तथा सर्व साधु भगवंतो को द्रव्य और भाव से नमस्कार करता हूँ ।"

P. P. Ac. Gunratansuriji M.S. Jin Gun Aaradhak Trust

प्रथम पद में अरहंत, अरुहंत तथा अरिहंत ये तीनों शब्द व्याकरणसूत्र से सिद्ध होते हैं।

(१) अरहंत अर्थात जो जन्म से ही इन्द्रो, असुरों तथा नरपतिओं से पूज्य है, और निश्चय से सम्पूर्ण कर्मो को नाशकर जो सिद्धिपद प्राप्त करेंगे अथवा 'सर्वं जानातीति सर्वज्ञ' इस व्युत्पत्ति से तीनों लोक तथा तीनों काल के किसी भी पदार्थ के यथार्थ स्वरूप को जानने में जिसके ज्ञान में किसी भी प्रकार का अंतराय नहीं है वे अरहंत कहलाते हैं।

(२) अरुहंत अर्थात् जिनका कर्मबीज सर्वथा क्षय हो जाने से संसार में पुनः जिनका जन्मधारण नहीं होता है वे अरुहंत हैं।

(३) अरिहंत अर्थात् सर्वथा दुर्जेय भावशत्रुओं को जिन्होंने जीत लिया है और उसके पश्चात् केवल ज्ञान प्राप्त महापुरुष ही अरिहंत देव कहलाते है।

साकार अरिहंत देवों को नमस्कार करने का कारण बतलाते हुए टीकाकार कहते है कि; अनन्त दुःखों से परिपूर्ण संसार में भयभीत बने हुए जीवात्माओं को अनंत सुखों का स्थान रूप सिद्धि प्राप्ति का मार्ग बतलानेवाले होने से अरिहंत अरुहंत तथा अरहंत नमस्कार–वन्दन करने योग्य है।

सम्पूर्ण कर्मो का समूल नाशकर जो सिद्ध शिला में विराजमान है तथा अनन्तज्ञानादि चतुष्टय के स्वामी बने हुए होने से सब जीवों का 'नामाकृतिद्रव्यभावै'....., द्वारा अनुपम उपकार करनेवाले होने से निराकार सिद्ध भगवंत नमस्कार के योग्य है।

P. P. Ac. Gunratansuriji M.S. Jin Gun Aaradhak Trust

आगमों के सूत्रार्थज्ञाता, दिव्यसंपत्तिधारक, गच्छनायक ऐसे आचार्य भगवंत स्वयं ज्ञानाचार दर्शनाचार चारित्राचार तपाचार तथा वीर्याचार नाम के पांचो आचारों को पालन करनेवाले तथा संघ के पास पालन करानेवाले है, अतः संघ के ऊपर उनका महान उपकार होने से आचार्य भगवंत सदैव स्मरणीय तथा वन्दनीय है।

जो शिष्यों को सम्यग्ज्ञान देनेवाले है जिनके पास से इन्सान मात्र को जैनत्व का भान होता है और जैनशासन में स्थिर बनता है पत्थर जैसे प्राणी को नरम बनाने की क्षमता रखनेवाले उपाध्याय भगवंत अवश्यमेव आराधनीय है।

जो निर्वाणपद की प्राप्ति के लिये अपने मन-वचन तथा काया को समाधिमय बनाते है। सम्पूर्ण जीवों पर समतायोग धारण करनेवाले है वे भावमुनि कहलाते हैं! ऐसे अढीद्वीप में स्थित पंचमहाव्रतधारी सब वन्दनीय हैं।

यहाँपर सर्व शब्द से अढीद्वीप में रहनेवाले जैन शासन की आराधना में समाहित बने हुए, सामायकादि विशेषणयुक्त, प्रमत्तादिक, पुलकादिक, जिनकल्पिक, स्थविर कल्पिक, प्रतिमाधारी आदि सर्व मुनिराज जो भरत क्षेत्र में, मारवाड में, गुजरात सौराष्ट्र में, महाराष्ट्र तथा पंजाब में, ऐरावत तथा महाविदेह क्षेत्र में जहाँ कहीं भी विचरते हो उन सबों को भाववन्दना है। सर्व शब्द का यह विशाल अर्थ जो भगवतीसूत्र को मान्य है। सारांश, 'अपने ही गच्छ में, संघाडे में स्थित साधु साध्वी वन्दनीय है' यह टूंका अर्थ

P. P. Ac. Gunratansuriji M.S. Jin Gun Aaradhak Trust

भगवतीसूत्र को मान्य नहीं है परन्तु प्रत्येक आचार्यों के पास, उपाध्यायों के पास '(जावंत केविसाहू ......) रहे हुए सब मुनि वन्दनीय है, मोक्ष मार्ग के सहायक प्रेरक मुनिराज अवश्यमेव शरण के योग्य है।

इसप्रकार परमेष्ठीओं को किया हुआ वन्दन ही सर्वश्रेष्ठ भावमंगल है, पापनाशक है तथा सब मंगलों में परममंगल है, इसीलिये पंचपरमेष्ठी नमस्कार जैनशासन की सार है।

ब्राह्मी लिपि यद्यपि द्रव्यश्रुत है, तथापि भावश्रुत को प्राप्त करने में समर्थ साधन होने से द्रव्यश्रुत भी वन्दनीय है! क्योंकि द्रव्यक्रिया को करते करते ही भावक्रिया प्राप्त होती है। अतः द्रव्य-क्रिया, द्रव्यपूजा आदि के विधानों का बहुमान करना ही सर्वश्रेष्ठ मार्ग है। द्रव्यवेषधारक मुनि को देखकर जैसे अपने को जैनत्व का भान होता है, उसीप्रकार अत्यंत उपकारी द्रव्यश्रुत भी वन्दनीय है।

इसप्रकार पूरे सूत्र के लिये मंगलाचरण करने के पश्चात् अब भगवतीसूत्र के प्रथमशतक की शुरुआत में द्वादशांगी रुप श्रुतज्ञान को नमस्कार करते हैं, क्योंकि श्रुतज्ञान अर्हत् प्रवचन रुप होने से मांगलिक है।

समवसरण में विराजमान तीर्थंकर परमात्मा भी "नमो तिथ्थस्स" कहकर तीर्थ को (श्रुतको) नमस्कार कर देशना देते है। तो फिर अपने लिये तो श्रुतज्ञान वन्दनीय बने इसमें कौनसा आश्चर्य है? तारयतीति तीर्थम्: "जो संसारसमुद्र से तारने में

P. P. Ac. Gunratansuriji M.S. Jin Gun Aaradhak Trust

समर्थ है वह तीर्थ हैं अतः श्रुतज्ञान ही तीर्थस्थानीय होने से वंदनीय है। इसीलिये कहा जाता है, 'ज्ञान ने वंदो ज्ञानीन निंदो, ज्ञानीए शिव सुख चाखियुं रे......।'

भगवतीसूत्र के प्रथम शतक में दस उद्देश है। उनका प्ररूपण कहाँ पर हुआ? इनका विषय क्या है? इसका कथन निम्नलिखित गाथा में है।

"रायगिह चलणदुक्खे कंखपओसे य पगइ पुढवीओ।
जावंते नेरइए वाले गुरुए च चलणाओ ।।

अर्थात् राजगृही नगरी में, १ चलन, २ दुख, ३ काक्षांप्रदोष, ४ प्रकृति, ५ पृथ्वी, ६ यावत्, ७ नैरयिक, ८ बाल, ९ गुरुक और १० चलनादि। इसप्रकार दस विषयों का अर्थ प्रकाशित है।

P. P. Ac. Gunratansuriji M.S. Jin Gun Aaradhak Trust

प्रश्नोत्थान

भगवतीसूत्र के पहिले सूत्र में मंगलाचरण, दूसरे में अभि-धेय-कथनीय वस्तु का नामोल्लेख करने के पश्चात् तीसरे सूत्र में भगवान ने कहाँ पर देशना दी? श्री गौतम स्वामी के प्रश्नों के उत्तर दिये? उसका कथन है फिर गौतम स्वामी ने सविनय प्रश्न पूछे है वह बताया गया है, इससे ज्ञात होता है कि–

राजगृही नगरी के बाहर, उत्तर-पूर्व अर्थात् ईशान कोण स्थित गुणशील चैत्य में समवसरण की रचना हुई तथा भगवान उसमें विराजमान होकर इन्द्रभूति गौतम के प्रश्नों का उत्तर दिया है मूलसूत्र में उस समय राजगृही नगरी में श्रेणिक नाम का राजा राज्य करता था। उसकी रानी का नाम चिल्लणादेवी था। "सेणिय राया चिल्लणादेवी"। *

---

* अनंतज्ञान के स्वामी देवाधिदेव भगवान महावीर स्वामी को केवल ज्ञान होने के वाद, तीसरे भव में उपार्जित तीर्थंकर नामकर्म का उदय होता है, अद्वितीय अतिशयों की महासंपत्ति से परिपूर्ण भगवान समवसरण में विराजमान होकर भूत भविष्य तथा वर्तमान काल से संबंधित मर्त्यलोक, अधोलोक तथा उर्ध्वलोक में रहे हुए नवतत्त्वसंबंधी किसी समय पूछे गये तथा किसी समय नहीं पूछे गये तत्त्वों का व्याकरण–स्पष्टीकरण करते हैं। चार ज्ञान के स्वामी तथा भगवंत चरणों के अनन्य भक्त श्री गौतम स्वामी आदि अपने ज्ञान की वृद्धि के लिये पर्षदा में भव्यजीवों के कल्याण हेतु प्रश्न करते है।

गणधर भगवान सुधर्मा स्वामी जो, देवाधिदेव महावीर स्वामी के शासन की पाटपरंपरा के आद्य महापुरुष हैं, १४ पूर्व के ज्ञाता तथा रचयिता

P. P. Ac. Gunratansuriji M.S. Jin Gun Aaradhak Trust

प्रश्नकार गौतम स्वामी का परिचय इस प्रकार दिया गया है, जो भगवान महावीर स्वामी के बडे शिष्य, गौतम गोत्रवाले, सात हाथ का उंचा शरीर, समचतुरस्र संस्थानवाले, वज्रऋषभनाराच-संघयण के मालिक, उग्र तपस्वी, उदार घोर ब्रह्मचारी, चतुर्दश पूर्वो-के ज्ञाता और चार ज्ञान के स्वामी थे।

श्री गौतम स्वामी भगवान को प्रश्न करते हैं, तब उनके दिल के भावों का तथा विनय का वर्णन सूत्र में इस प्रकार किया है:–

श्रद्धापूर्वक गौतम स्वामी अपने स्थान से खडे होकर,

होने से, भगवान महावीर स्वामी ने जो भी दिव्य उपदेश दिया उसको अप्रमत्त होकर कर्णगोचर किया और वैराग्य से परिपूर्ण अपने मुख्य शिष्य जम्बूस्वामी को सुनाया, इसलिये ये चारों महापुरुष अत्यन्त पूजनीय, श्रद्धेय, ध्येय होने से जिनवाणी का एक भी अक्षर पूज्यतम है क्योंकि अनन्त पर्यायों से पूर्ण दृश्यमान तथा अदृश्यमान पदार्थो का व्याकरण–स्पष्टीकरण केवली भगवान के बिना दूसरा कोई भी पंडित नहीं कर सकता है।

जो एक भी पदार्थ को सम्यक् प्रकार से जान नहीं सकता वह इस अनन्त पदार्थो को कैसे जानेगा ? क्योंकि इस संसार में अनंतानंत जीव है, अनन्तानंत पुद्‌ग है, स्कन्ध है, असंख्यात द्वीप है, असंख्यात समुद्र है और एक एक द्रव्य में अनंत अनंत पर्याय है, इन सबका सम्यग् ज्ञान केवल ज्ञान होने के पश्चात् ही हो सकता है। अतः गौतमस्वामी, दूसरे गणधर, परिव्राजक तथा विशिष्ट ज्ञानिओं के पूछे हुए प्रश्नों के जवाब द्वादशांगी में सर्वश्रेष्ठ, देव देवेन्द्रों से पूज्य, श्री भगवतीसूत्र में गूंथे हुए होने से ज्ञानसागर समान यह ग्रन्थ सबों के लिये पूज्य है, वन्दनीय है, इस भगवतीसूत्र में द्रव्यानुयोग, गणितानुयोग, चरितानुयोग तथा कथानुयोग के पाठमौक्तिक पूर्ण मात्रा में विद्यमान है।

P. P. Ac. Gunratansuriji M.S. Jin Gun Aaradhak Trust

भगवान महावीर स्वामी के नजदीक आते है, भगवान को तीन प्रदक्षिणा देते है, वन्दन करते है, नमते है बहुत नजदीक नहीं, बहुत दूर नहीं विनयपूर्वक अपने ललाट पर हाथ जोडकर प्रश्न पूछते हैं !

इसमें बहुत शतक है। एक एक शतक में अमुक–अमुक उद्देशे हैं और प्रत्येक उद्देशे में बहुत से प्रश्न है।

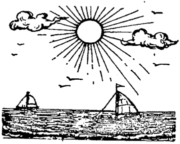

शतक पहिला   उद्देशक-१

मोक्षतत्त्व

प्रथम शतक के प्रारंभ में ये मुख्य बातें हैं ! अब उसके प्रथम उद्देश के प्रारंभ में अभिधेय के अनुसार 'चलन' संबंधी प्रश्नोत्तर का प्रारंभ होता है ।

इस उद्देश के प्रारंभ में दो प्रश्नोत्तरों में मोक्षतत्त्व का निरुपण करने में आया है यद्यपि स्पष्टरूप से इसमें मोक्षतत्त्व नहीं दिखता है तो भी उसका रहस्य मोक्षतत्त्व की तरफ ले जाता है ।

वर्तमानकाल में जो क्रिया हो रही है उसमें भूतकाल का प्रयोग कर 'क्रिया' हो गई, ऐसा कह सकते हैं क्या ? यह इस प्रश्न का उद्देश है । इस संबंध में नौ प्रश्न हैं ।

१ चलते हुए को 'चला' कह सकते हैं ?
२ उदीर्यमाण को 'उदी रित' कह सकते हैं ?
३ वेदन होनेवालों को 'वेदित कह' सकते हैं ?
४ पड रहे को 'पडा' कह सकते हैं ?
५ छेदन होनेवालों को 'छिन्न' कह सकते हैं ।
६ भेदन होनेवालों को 'भिन्न' कह सकते हैं ?
७ जलते हुए को 'जला' कह सकते हैं ?
८ मरते हुए को 'मरा' कह सकते है ?
९ निर्जरते हुए को 'निजीर्ण' कह सकते हैं ?

P. P. Ac. Gunratansuriji M.S.   Jin Gun Aaradhak Trust

इन नौ प्रश्नों का जवाब भगवान महावीर स्वामीने 'हाँ' में दिया हुआ है। अर्थात् चलते हुए को 'चला' तथा उदीर्यमाण को 'उदरित' कह सकते हैं।

भगवान महावीर स्वामी का सिद्धान्त (जैनशासन) अनेकान्तवाद पूर्ण है। पदार्थमात्र में पृथक्-पृथक् अनेक दृष्टि विद्यमान होने से पदार्थमात्र अनन्तपर्यात्मक है। उस दृष्टिसे ऊपर का वाक्यप्रयोग सत्य है। अतः चलता हुआ 'चला' उदीर्यमाण 'उदीरित' कहते है। यह वाक्यप्रयोग निश्चय दृष्टिसे सत्यपूर्ण है। जब व्यवहारनय से प्रारंभ किया हुआ कार्य जबतक पूरा नहीं होता है, तबतक उसको 'चला' आदि नहीं कहा जाता है।

भगवान महावीर स्वामी के भगिनी पुत्र जमाली के सिद्धान्त का इसमें प्रतिवाद निहीत है। क्योंकि, उसका सिद्धान्त एक ही दृष्टि को लेकर निश्चित था। जब दूसरी दृष्टि से पदार्थ का निर्णय करने में उसकी क्षमता नहीं थी। जभी तो भगवान के सिद्धान्त से पृथक् उसने अपना सिद्धान्त चलाया था।

एक समय रोगग्रस्त बने हुए जमाली ने अपने शिष्यों को पथारी (संथारा) करने के लिये कहा! थोडी देर में शिष्यों से पूछा– 'क्यों पथारी हो गई?' यद्यपि उससमय पथारी की जा रही थी। फिर भी निश्चयनय का आश्रय लेकर शिष्यों ने कहा की, 'हाँ पथारी हो गई है!' जमाली वहाँपर जाता है और पाथरने की क्रिया अभी चालू है। फिर भी भूतकाल के प्रयोग से क्षुण्ण बना हुआ जमाली महावीर के वचनों में अश्रद्धालु बनता है और अपना पंथ अलग जमाता है।

P. P. Ac. Gunratansuriji M.S. Jin Gun Aaradhak Trust

बुद्धि में जब वैपरित्य आता है। तब चाहे कितनी ही सादी बात हो, तो भी समझने में नहीं आती है, जमाली जैसे बहुश्रुत को भी समझने में न आया कि : 'कपडे का एक किनारा जल रहा हो तो भी कह सकते हैं की कपडा जल गया' कपडा बुनने का प्रारंभ हो गया है। फिर भी बुनकर (कपडा बुननेवाला) कहता है की कपडा कितना सुंदर बन रहा है। यद्यपि यहाँपर कपडा (वस्त्र) पूरा जल नहीं गया है। और वस्त्र अभी पूर्णरूप से तैयार नहीं हुआ है। तथापि, निश्चय दृष्टि को ख्याल में रखकर पूरा संसार इसीप्रकार से भाषा व्यवहार करता ही है। व्यवहारनय की बात अलग है। ज्वरग्रस्त इन्सान को अच्छा मिष्ठान्न भी बुरा लगता है। उसीप्रकार मिथ्यात्वग्रस्त इन्सान को भी सीधी-सादी बात दिमाग में समझ नहीं आती है। ※ २

※ २ पदार्थमात्र का सही निर्णय करने में दो दृष्टिओं का उपयोग करना आवश्यक है। क्योंकि पदार्थ का स्वभावही तथाप्रकार का होने से ज्ञाता का अभिप्राय किसी समय निश्चयनय से पदार्थ का निश्चय करने का होता है तो दूसरे समय उसी पदार्थ का निश्चय व्यवहारनय से किया जाता है, इसलिये जनपदों में किया जानेवाला भाषाव्यवहार प्रायः असत्य नहीं होता है। साड़ी का एक कोना ही जल रहा है। फिर भी संसारभर का शिक्षित या अशिक्षित एक ही आवाज से कहता है कि, "साड़ी जल गई" अथवा 'आपने मेरी साड़ी जला दी' भोजन बनाने की अभी शुरुवात ही हुई हैं। फिर भी रसोईघर में से धर्मपत्नी की आवाज आती है कि, 'भोजन तैयार हो गया है; जीमकर पधारना!'

इसप्रकार का, अथवा इसके जैसा दूसरी पद्धति के भाषाव्यवहार को अपन अर्थात् तार्किक, वितंडावादी, जल्प-छल-हेत्वाभास जाति तथा निग्रह-

P. P. Ac. Gunratansuriji M.S. Jin Gun Aaradhak Trust

बाह्यदृष्टि से इस प्रश्नोत्तर में यद्यपि जमाली के मत का निराकरण किया गया है। तो भी तात्त्विक दृष्टि से मोक्षतत्व भी इसमें समाहित है। टीकाकार श्री अभयदेवसूरिजी भी इसप्रकार कहते हैं कि–

चारों पुरुषार्थ में 'मोक्ष' नाम का पुरुपार्थ ही मुख्य है, और इस मोक्ष के साधन सम्यग्दर्शनादि है। मोक्ष के विपक्ष-विरुद्धपक्ष का क्षय होने से मोक्ष की प्राप्ति होती है। कर्मों का

स्थान से मोक्ष की कल्पना करनेवाले सब के सब सत्य मानते हैं और सत्य मानकर उसप्रकार से व्यवहार भी करते है ! मूल बात यहहै कि किसी भी उत्पाद्य कार्य के लिये निमित्तकारणों का एकत्र होना तथा उस कार्य का उपादान कारण भी यथयोग्य तैयार हो तो कार्य के प्रारंभ काल में ही प्रत्येक इन्सान को विश्वास हो जाता है कि 'कार्य हो गया' अतः क्रियमाण को 'कृत' दह्यमान को 'दग्ध' आदि भाषा से बोला जाता है और इसप्रकार के भाषा व्यवहार को निश्चयनय से सत्य माना जाता है ! जब इसी बात को व्यवहार नय दूसरे प्रकार से कहता है की, कार्य की पूर्णता को प्राप्त किया हुआ घड़ा जब पानी भरने के काम मे आये। बुनकर का तैयार हुआ कपडा दरजी को देने में काम आये और उसके द्वारा वनाई हुई कमीज-टोपी कुरता इन्सान के पहिनने के काम में आये तब काम हुआ ऐसा व्यवहारनय मानता है।

इसप्रकार उत्पाद्यकार्य मे दोनों दृष्टिएं सत्यस्वरुप से सन्निहित है। परंतु स्थूल बुद्धि का मालिक, तथा पूर्वग्रह से ग्रस्त जीवात्मा को ध्यान में न आवे तो पदार्थो के स्वरुप का तथा उनको देखने की अलौकिक दृष्टि का दोष नहीं है।

P. P. Ac. Gunratansuriji M.S. Jin Gun Aaradhak Trust

बन्ध ही विपक्ष है। इसबात का ख्याल रखकर ही कर्मो के क्षय निमित्त 'चलमाणे चलिये' इत्यादि पद कहे हैं-अर्थात् भगवतीसूत्र के आदि का सूत्र कर्मक्षय का सूचक है, इसीलिए उसको आदि में रखा है। 'चलमाणे' इसमें चलत्—स्थिति के क्षय होनेपर उदय में आता अर्थात् विपाकरूप (फल का देना) परिणाम के लिये अभिमुख हुआ कर्म, 'चलितम्' अर्थात् उदय में आया। इसप्रकार का व्यपदेश होता है। कर्म मुद्गलों के भी अनन्त-स्कन्ध, अनन्त दश, अनन्तप्रदेश हैं। इससे वे कर्म अनुक्रमे-प्रतिसमये उदय में आते रहते है उसमें जो प्रारंभ का चलते हुए कर्मो को 'चलें' इसप्रकार कहा जाता है।

इस दृष्टि से इस प्रश्नोत्तर में 'मोक्षतत्त्व' रहा हुआ है। * ३

---

* ३ मिथ्या दर्शन।विरति प्रमादकषाय योगाः बन्ध हेतवः।

ऊपर के पांचों कारण, अथवा उसमें से एक-एक कारण भी नूतन कर्मो का बन्धन करानेवाला होता है।

मिथ्यादर्शन का क्षयोपशम, अथवा उपशम करने की शक्ति (करण लब्धि) जबतक आत्मा को प्राप्त नहीं होती है, तबतक जीवात्मा को आत्म-दर्शन का लाभ मिलता नहीं है। ऐसी स्थिति मे अविरति, (पापस्थानको के त्याग का अभाव) प्रमाद, कषाय, (अनंतानुबंधी क्रोध-मान-माया-लोभ का उदय अथवा उदीरणा) योग (मन-वचन-काया की वक्रता) की विद्यमानता अवश्यंभाविनी है! जिसके कारण प्रतिसमय कर्मबंधन होता रहता है।

मानसिक जीवन में सुसंस्कारों की मजबुताई जब नहीं होती है, तब बाह्यजीवन सभ्य होनेपर भी आन्तरिक जीवन में कृष्ण—नील तथा कापोत

P. P. Ac. Gunratansuriji M.S. Jin Gun Aaradhak Trust

लेश्या का जोर कम नहीं होता है। ऐसी स्थिति में जूदे जूदे निमित्तों को लेकर आत्मा का वैषयिक—काषायिक, यौगिक आदि वैकारिक भाव भी बढता है। तब कर्मो का प्रवाह भी अविच्छिन्न चालू रहता है। उसीप्रकार जूने कर्म भी अपनी स्थिति (मर्यादा) के क्षय होने पर उदयावलिका में प्रविष्ट होते हुए प्रथम समय से ही चलने अर्थात आत्मप्रदेशों से अलग होने लगते है। तब चलायमान कर्मो को निश्चयनय की भाषा में 'चला' कह सकते है।

उदीरणा का अर्थ इस प्रकार है—बंधे हुए कर्म भविष्य के लंबे काल में जो उदय आनेवाले है। उन कर्म दलिकों को सद्ध्यान, स्वाध्याय तथा सात्विक तपश्चर्या रूप आत्मा के शुद्ध अध्यवसायों से खींचकर उदयावलिका में प्रवेश करवाना। उसको जैनशासन में उदीरणा कही जाती है, जो आत्मा की विशेष शक्ति है।

सत्यार्थ यह है कि, जैसे एक इन्सान अशुभ तथा अशुद्ध विचारधाराओं को लेकर प्रति समय कर्म दलिको को उपार्जन करता रहता है। जब दूसरा इन्सान सम्यग् दर्शन की शुद्धि द्वारा, अष्ट प्रवचन माता के पालन द्वारा, तथा राग-द्वेष-कषाय-विकथा आदि प्रमाद से दूर रहता हुआ, और मन-वचन तथा काया से प्रतिक्षण परमात्मा के ध्यान में लीन बनकर वह भाग्यशाली अपनी शुभ तथा शुद्ध प्रक्रिया के माध्यम से जूने कर्मो का क्षय करता रहता है। आत्मा से असंयमित मानसिक बल कर्मो के उपार्जन में कारण बनता है। जब ज्ञान-दर्शन चारित्र सम्पन्न आत्मा से संयमित मन कर्मो के नाश का कारण बनता है।

बंधे हुए कर्मो का उदय दो प्रकार से होता है :—

(१) अमुक समय की मर्यादा लिए हुए कर्म अपना समय पूरा होने पर अपने आप उदय में आते है।

(२) वैराग्यपूर्ण जीवन जीनेवाला, ईश्वर के ध्यान में तथा उनकी

P. P. Ac. Gunratansuriji M.S. Jin Gun Aaradhak Trust

आज्ञा में मस्त बननेवाला भाग्यशाली आत्मा अपने सद्ध्यान द्वारा उदीरणा करण से मर्यादा पहले ही बहुत से अनिकाचित कर्मों को उदय में लाकर– अर्थात् कर्मो के फल को भुगते विना ही अपने आत्मप्रदेश से उनको निर्जरित करता है। इन दोनों प्रकार से वेदे-मुगतें जानेवाले कर्मो को 'वेदाया'' (वेदित) कहने में निश्चय दृष्टि से हरकत नहीं है।

दूध तथा शक्कर के समान आत्मा के साथ मिश्रित हुए कर्म अपने आप या उदीरणा के द्वारा आत्मप्रदेशों से छूटे पडे अर्थात् छुट जाने का जब से प्रारंभ करे तब 'कर्म छुटे' ऐसा कह सकते हैं।

दीर्घकाल पर्यन्त की मर्यादावाले कर्मो को 'अप्रवर्तना' नामकरण से कम मर्यादा में लाने को 'छिन्न' कहते हैं। अर्थात छेदन क्रिया के प्रारंभ से ही कर्मो का छेद हुआ कहते है।

अप्रमत्त अवस्था को लेकर आत्मा मे एक अजोड शक्ति आती है। जिससे दीर्घकालीन कर्मो को अल्पकालीन तथा अशुभ कर्मो मे रसकी तीव्रता को पश्चाताप 'प्रायश्चित' तथा आलोचना के माध्यम से तीव्र फल देने वाले कर्मो को भी 'अपवर्तना' करण से मन्द रसवाले किये जाते हैं।

तात्पर्य यह है कि–शुभ तथा शुद्ध भाव में स्थित आत्मा प्रतिसमय शुभ कर्मों को तो बांधता ही है। साथ साथ उत्पन्न हुई शुभ भावना से पहिले के बांधे हुए अशुभ कर्मों को भी मन्दरस वाले कर देता है। और भावना की गति यदि ज्यादा बढ़ जावे तो कर्मों को समूल नाश करता है। उसके विपरित हिंसा, झूठ, प्रपंच, दुराचार, परिग्रह आदि अशुभ भाव मे रात दिन मस्त बनकर जीवात्मा प्रतिसमय अशुभ कर्मों का संग्रह करता रहता है। उसके साथ ही पहिले के बांधे हुए शुभ कर्मों को भी अशुभ बनाता है।

'जलता हुआ जला' अर्थात अग्नि से जले हुए काष्ठ, अपने काष्ठत्व को छोड़कर जैसे भस्मस्वरुप बनते है, उसीप्रकार शुभ तथा शुद्ध ध्यान रूपी आग

P. P. Ac. Gunratansuriji M.S. Jin Gun Aaradhak Trust

से जले हुए कर्म रूप काष्ठ भी जलकर समाप्त होते है।

'मरता हुआ मरा' अर्थात आवीचिक मृत्यु से यह जीवात्मा अपने जन्म के प्रथम समय से ही आयुष्य कर्म के दलिको को भुगत रहा है। और बराबर ७० वर्ष की आयु मे कर्म का आखिरी अंश भुगतकर मृत्यु पाता है। व्यवहार दृष्टि से भले ही अपन कहे कि यह इन्सान ७० मे वर्ष मे मरा, परन्तु इस आयुष्य कर्म के दलिक (प्रदेश संख्या) एक ही साथ ७० वें वर्ष मे नही भुगते जाते है। परन्तु गर्भ मे आने के साथ ही प्रतिसमय आयुष्य कर्म का भुगतान चालू हो जाता है। और ७० वें वर्ष मे अन्तिम प्रदेश का भुगतान होते ही इन्सान अपने जीवन की लीला समाप्त करता है। इस प्रकार बांधा हुआ आयुष्य कर्म प्रति समय क्षय हो रहा है।

परवशता के कारण इच्छा बिना भूख-तरस सहने पड़े, ब्रह्मचर्य पालने की इच्छा न होते हुए भी संयोगवशात् पालना पडे, इत्यादि बिना इच्छा की परेशानियां भुगतनी पड़, इसकारण से भी कर्मों का क्षय होता है। उसे अकामनिर्जरा कहते हैं।

जब गुरुसेवा, धर्मश्रवण, ज्ञान, विरति तथा प्रत्याख्यान आदि धार्मिक कृत्यों को श्रद्धापूर्वक करता हुआ इन्सान परवश या दरिद्र होने पर भी भूख-प्यास आदि परेशानियां समतापूर्वक सहन करता है। अकृत्यों को जानबूझकर छोड़ता है, तथा अपने आत्मधर्म में स्थिर होकर पूर्वभवीय पाप तथा अन्तराय को जानबूझकर भुगतता है। उसको सकाम निर्जरा कहते हैं। तथा श्रीमंताई होनेपर भी भोग्य तथा उपभोग्य पदार्थों को संयमित तथा मर्यादित करता है और जीवन में प्रतिसमय बंधाते हुए निरर्थक पापों को रोकता है। वह श्रीमंत भी सकाम निर्जरा का स्वामी बनता है।

उपर्युक्त नवे पदों मे भिन्न-भिन्न व्यंजन तथा स्वर होने पर भी वे समानार्थ है ? या भिन्नार्थ ? इसके उत्तर में भगवान ने कहा है कि :-

१ चलता हुआ चला।
२ उदीर्यमान हुआ उदीर्ण हुआ।

३ वेदन होता हुआ वेदित हुआ।

४ पड़ता हुआ पड़ा।

उत्पाद नाम के पदार्थ को कहनेवाले ऊपर के चारों पद समानार्थ है। और वह उत्पाद पर्याय केवल ज्ञान ही है। क्योंकि अनन्त संसार मे भटकते हुए जीवात्मा को केवल ज्ञान नाम का पदार्थ प्राप्त नहीं हुआ है, अतः कर्मों के नाश होने पर केवल ज्ञान तथा मोक्ष प्राप्ति ये दो फल प्राप्त होते है। कर्मों के नाश मे ये चारों पद समानार्थ इस प्रकार है। अपनी स्थिति (मर्यादा) के क्षय होने पर कर्म अपने स्थान से चलते है, अर्थात् उदय मे आते है। उदय मे आनेवाले कर्मों का वेदन (अनुभव) होता है। और भुगते हुए कर्म आत्मप्रदेशों से सर्वथा छूटे पड़ते है।

जब पीछे के पांच पद भिन्नार्थ इस तरह है। 'छेदाता हुआ छिन्न' इस पद में स्थिति बंध की विचारणा है। क्योंकि सयोगी केवली अपने अंतकाल मे योग निरोध करने की इच्छा से वेदनीय, नाम तथा गोत्र कर्म की दीर्घस्थिति को अपवर्तनाकरण से अन्तर्मूहूर्त की कर लेता है। 'भेदाता हुआ भिन्न' इसमें रसबंध की विचारणा है। जिस समय स्थिति घात होता है, उसी समय रस घात भी होता है। 'जलता हुआ जला' इसमें प्रदेश बंध की विचारणा है। और 'मरतुं मरायु' इसमें आयुष्य कर्म की विचारणा है। जब आखिरी पद में सब कर्मों की निर्जरा की विचारणा है।

इस प्रकार पांचों पदों मे भिन्न-भिन्न अर्थ होने से इन्हें भिन्नार्थ कहा जाता है।

भ. सू.-२

P. P. Ac. Gunratansuriji M.S. Jin Gun Aaradhak Trust

मोक्षतत्त्व का निरुपण करने के पश्चात् तीसरे प्रश्न से जीवों के संबंध में वर्णन किया गया है। जीवों के २४ भेद इस प्रकार से है।

१	नैरयिक	१	मनुष्य
१०	असुरकुमारादि	१	व्यन्तर
५	पृथ्वीकायादि	१	ज्योतिष्क
३	व्दीन्द्रियादि	१	वैज्ञानिक
१	पंचेन्द्रिय तिर्यंच	२४	

इसप्रकार जीवों के २४ भेद होने से, प्रत्येक भेद को लेकर प्रश्नोत्तर दिये हुए है। जैसे कि, नैरयिक-नरक में रहनेवाले जीवों की स्थिति (आयुष्य मर्यादा) कितने काल की? श्वास का काल कितना? वे क्या आहारार्थी हैं। कितने प्रकार के पुद्गल वे आहार में लेते है? वे कितने प्रकार के पुद्गलों का चयन करते हैं? उदीरणा कितनों की करते हैं? आदि अनेक प्रश्नोत्तर नैरयिक संबंधी है। ॐ ४

ॐ ४ सूक्ष्म निगोद से लेकर इन्द्रपद तक के अनंतानंत जीवों का २४ दंडक में समावेश किया है। 'दण्डचतेजीवोऽस्मिन्ननेन वा इति दण्डकः"

इसमें भी सर्वप्रथम नरक स्थानीय नारक जीवों को लेकर प्रश्न और जवाब है। ये और इसके जैसे दूसरे प्रश्नोत्तरों से निष्कर्ष निकलता है कि, नरकादि भूमिएँ है। तथा उसमें जानेवाले, अपनी आयुष्य मर्यादातक वहाँ पर रहनेवाले जीव भी अनादिकाल से है और अनंतकाल तक रहेंगे। तथा किसी भी क्षेत्र से चारों गतिओं मे जानेवाले, और चारों गतिओं में से निकल

P. P. Ac. Gunratansuriji M.S. Jin Gun Aaradhak Trust

कर फिर से रखड़पट्टी करनेवाले जीव भी है। किसी भी काल में संसार का सर्वथा नाश जैन शासन को मान्य नहीं है। तथा उसका कोई उत्पादक है। ऐसी मान्यता भी जैन धर्म की नहीं है।

नरक शब्द का अर्थ टीकाकार इसप्रकार से करते है 'चला गया है' इष्टफल देनेवाला कर्म जिस स्थान से वह नरक भूमि कहलाती है, तथा उसमें उत्पन्न होनेवाले जीव नारक-नैरयिक कहे जाते है।

असंख्यात जीवों के साथ वैर-झेर-पापकर्म-चौर्यकर्म-मैथुनकर्म तथा रौद्र ध्यानपूर्वक की हुई हिंसा आदि निकृष्टतम पापकर्मों को भुगतने के लिये यह स्थान है। ऐसे पापकर्मी आत्मा को सुख-शान्ति-समाधि कैसे मिले? नारक जीव नरकभूमि में कितने कालतक रहते है ? उसका जवाब—

उत्कृष्ट स्थिति			जघन्य स्थिति	
१	सागरोपम	प्रथम नरक भूमि	१०	हजार वर्ष
३	,,	दूसरी नरक भूमि	१	सागरोपम
७	,,	तीसरी नरक भूमि	३	,,
१०	,,	चौथी नरक भूमि	७	,,
१७	,,	पांचवी नरक भूमि	१०	,,
२२	,,	छठवी नरक भूमि	१७	,,
३३	,,	सातवी नरक भूमि	२२	,,

इतनी लंबी आयुष्य मर्यादा को भुगतनेवाले इन नारकजीवों को एक समय भी सुख नहीं मिलता है। अपने किये हुए पापों से अत्यन्त दुःखी होने के कारण उनकी श्वास सतत चलती रहती है। निश्वास छोड़ते रहते है। अतितीव्र क्षुधावेदनीय कर्म के कारण नारकजीव जो प्रति समय आहार लेते है, वह अनाभोगिक आहार कहा जाता है और इच्छापूर्वक 'मै आहार करूं" वह आहार अन्तर्मुहुर्त में लिया जाता है। वह अभोगिक आहार है।

P. P. Ac. Gunratansuriji M.S. Jin Gun Aaradhak Trust

इसीप्रकार असुरकुमार–नागकुमार–पृथ्वीकायिकादि संबंधी प्रश्नोत्तर है। जिसमें स्थिति-श्वास-आहार-आहार का समय आदि बात हैं। द्वीन्द्रियादि-मनुष्यादि वर्णन तथा व्यंतरादि के धर्म संबंधी प्रश्नोत्तर है। उसके बाद 'आत्मरंभादि' का निरुपण किया है।

आत्मरंभादि

आत्मारंभ का अर्थ है 'जीवों की आश्रय द्वार में प्रवृत्ति! उसमें आत्मा को जो प्रारंभ (जीव का उपघात-उपद्रव करना) अथवा आत्मा के जरिये स्वयं आरंभ करे वह आत्मारंभ कहलाता है और दूसरे को अथवा दूसरे के जरिये जो आरंभ किया जाता है। वह परारंभ कहा जाता है। यहाँपर जीव आत्मारंभ है? परारंभ है। तदुभयारंभ है? या अनारंभ है? इस विषय में बहुत ही सुंदर विचार किया गया है। उसके बाद नैरयिको के आत्मारंभादि भेद बताये गये हैं। ※ ५

इन सब वातों का सविस्तृत वर्णन प्रज्ञापना सूत्र में है और वहीं से जानने के लिए टीकाकार की सलाह है।

नारक जीवों कि तरह असुरकुमार-नागकुमार पृथ्वीकाधिक जीवों की आयुष्य मर्यादा, आहाराभिलाषा, आदि वातें प्रकरण ग्रन्थों से जान लेना।

※ ५ अनादिकाल से आश्रव तत्व की उपासना करनेवाले जीवात्मा के मानसिक वाचिक तथा कायिक व्यापार में संरंभ-समारंभ तथा आरंभ ये तीनों आश्रव विद्यमान रहते ही है।

मन म सदैव क्रोध–मान–माया तथा लोभ संबंधी काषायिक विचार बने रहे वह संरंभ है। मन की काषायिक भावनाओं से प्रेरित होकर दूसरे

P. P. Ac. Gunratansuriji M.S. Jin Gun Aaradhak Trust

जीवों के घात के लिये, तथा अपने खुद के अधःपतन या आत्महनन के लिये उस प्रकार की शस्त्र सामग्री तथा कुसंग-असदाचार आदि पोषक सामग्री एकत्र करनी, उसको समारंभ कहते है। और जीव हत्या कर लेने को आरंभ कहा जाता है। ये तीनों आश्रव कृत-कारित तथा अनुमोदित रुप ३X३ = ९ प्रकार का होता है। मन–वचन तथा कायारुप कारण से ९X३ = २७ और चारों कषायों को मिलाकर २७X४ = १०८ भाग से आश्रव तत्व जैन शासन को मान्य है। माला के १०८ मणकों का आशय यही है कि माला के एक एक मणके पर साधक को एक एक आश्रव स्मृति में रहे कि आश्रव सर्वदा, हेय तत्व ही है। कहा भी है, 'आश्रवो भवहेतुः स्यात्।'

परंतु 'वुद्धिः कर्मानुसारिणी' इस न्याय से दुर्बुद्धि के वशवर्ती आत्मा का अत्यन्त शक्त बना हुआ मानसिक व्यापार इस जीवात्मा को वलात्कार से आरंभादि कर्मों मे जोड देता है। अथवा दुर्भव्य या आनेवाले भव में नरक गति का अधिकारी आत्मा स्वयंमेव जानवूझकर आत्मारंभादि कार्यों में फंसता है। जभी तो "मैं भले ही भिखारी बनूं, परंतु तुझे तो सर्वप्रथम पायमाल करूंगा" इसप्रकार की हिंसकी और रौद्री भावना दिल में बनी रहती है। प्रश्न के उत्तर का सारांश यह है कि, मुक्तिगत जीवों को कर्म का व्यापार न होने से वे अनारंभी है। जब संसारवर्ती जीवात्मा जो अप्रमत्त है– अर्थात अपने आत्मिक विचारधाराओं में से राग-द्वेष-विषयवासना-राजकथा-देशकथा-भोजनकथा-स्त्रीकथा आदि पाप व्यापारों को जिन्होंने निकाल दिया है। अथवा उदय में आनेवाले उन भावों को अपनी मोक्षगामिनी पुरुषार्थ शक्ति से दबा दिया है। वे अनारंभी है और प्रमत्त होनेपर भी गुरुकुल वास मे स्थित होकर अपने अच्छे भावों से जो उपयोगपूर्वक रहते है। वे भी अनारंभी हैं।

जब संयमधारी होते हुए भी जिनके मन-वचन तथा काया, रसगारव, सातागारव और ऋद्धिगारव में आसक्त है। तथा अशुभ प्रवृत्ति-वृत्ति में आदर है। तब वे मुनिराज भी आत्मारंभी-परारंभी और तदुभयारंभी बनते

ज्ञानादि के भेद

अब ज्ञानादि संबंधी प्रश्नोत्तर भी विचारणीय है। ज्ञान-दर्शन (सम्यक्त्व) तथा चरित्र ये तीनों रत्न ऐहभविक-पारभविक-तदुभव भविक है। यह प्रश्न है। उसमें से ज्ञान तथा दर्शन ऐहभविक पारभविक तथा तदुभयभविक है। जब चारित्र को ऐहभविक कहा है। तप भी चारित्र की तरह ऐहभविक है। तीनों के अर्थ निम्नलिखित है।

ऐहभविक–जो ज्ञान इसी भव में साथ रहता है।

पारभविक–जो ज्ञान वर्तमान भव के बाद भी दूसरे भव में भी साथ आवे।

तदुभयभविक–भवान्तरों में जो साथ आता है। इसमें ज्ञान तथा दर्शन को तीनों प्रकार से बतलाने का कारण यह है कि ये दोनों ज्ञान-दर्शन इस भव में प्राप्त किये है। वे आगामी भवों में भी आत्मा के साथ जा सकते हैं। परंतु चारित्र आनेवाले भव

है। परंतु अनारंभी–अर्थात् आरंभविना के नहीं बनते हैं। द्रव्य संयम के स्वामी बनने पर भी जब तक साधक भावसंयम के प्रति प्रस्थान करने में सशक्त नहीं है। तबतक वह साधक संरंभ समारंभ तथा आरंभ का त्याग नहीं कर सकता है। सम्पूर्ण आरंभों को करानेवाली अविरति होती है। इसलिये एकेन्द्रीयादि जीवों से लेकर सब जीव तारतम्य को लेकर आरंभवाले ही होते है।

कृष्ण-नील तथा कापोत लेश्याके स्वामी जीवमात्र भाव संयमी नहीं होने के कारण आत्मारंभी, परारंभी तथा तदुभयारंभी होते हैं। परंतु अनारंभी नहीं होते हैं।

P. P. Ac. Gunratansuriji M.S. Jin Gun Aaradhak Trust

में सहचारि नहीं होता है। क्योंकि जो चारित्र इस चालू भव में स्वीकारा जाता है। उसी चरित्र से दुसरे भव में जीव चरित्रवान नहीं वनता है। कारण यह है कि चारित्र की प्रतिज्ञा यावज्जीव तक की है। दूसरी बात यह है कि, सर्वविरति या देशविरति चारित्रवंत की गति नियमा देवलोक की होती है। और वहाँपर चारित्र का प्रयोजन कुछ भी नहीं है। "सिद्धे नो विरत्ति" अर्थात् चारित्र क्रियारुप होने से और मोक्ष में शरीर का अभाव है। अतः अनुष्ठानरुप चारित्र वहाँ पर नहीं होता है। ※ ६

असंवृत संवृत अणगार

कर्मो के आने को-आश्रवद्वार को जो अणगार (संयमी) न रोके वह असंवृत क्षणगार कहा जाता है। उसके विपरीत जो मुनि आश्रव मार्ग का निरोध करे वह संवृत अणगार कहा जाता है। ये दोनों प्रकार के मुनि सिध्द होते हैं? बोध पाते है? संसार से मुक्त होते हैं? निर्वाणपद-प्राप्त कर सकते हैं? यह प्रश्न है! भगवान ने असंवृत-असंयत साधु के लिये निषेध फर्माया है, जब संवृत-संयमी साधु के लिए 'हाँ' कही है।

※ ६ इस भव में प्राप्त हुआ सम्यग् ज्ञान आनेवाले भव में साथ न जावे वह ऐहभविक कहा जाता है। भवान्तर में भी वह साथ जावे वह पारभविक है। तथा तीन-चार भवान्तरों में उसके संस्कार वने रहे वह उभयभविक है। इसी प्रकार सम्यग्दर्शन के लिये भी जानना। जब देशविरतिधारक या सर्व विरतिवारक देवलोकों मे जानेवाले होने से और वहाँ पर व्रत-नियम-पच्चक्खाण नहीं होते है। इसप्रकार अशरीरी सिद्धपरमात्मा को भी चारित्र तप नहीं होने से चारित्र ऐहभविक कहा जाता है।

आखिरी में असंयत जीव के लिये प्रश्नोत्तर है, असंयत अर्थात् असाधु अथवा संयमरहित–प्राणातिपातादि विरति रहित जीवात्मा यहाँ से जीवनलीला समाप्तकर 'देव' बनता है ? यह मुख्य प्रश्न है।

पर्षदा को संबोधित करते हुए भगवंत ने कहा कि, कितने देव होते हैं और कितने देव नहीं होते हैं। ऐसा क्यों ? जवाब में प्रभु ने कहा है कि, जो जीव गांव-नगर-आकर आदि में रहकर अकाम तृषा, अकाम क्षुधा, अकाम ब्रह्मचर्य, अकाम ठंडी-गरमी मच्छर आदि का उपद्रव सहन करते हैं। आत्मा को क्लेषित करते हैं। वे मरकर वाणव्यंतरादि देवलोक में उत्पन्न होते हैं। अर्थात् साधु नहीं होते हुए भी संयमरहीत-जीवन संपन्न करते हुए भी जो अकाम कष्टों को भुगतते हैं। तब वे वाणव्यंतर देवयोनि में जन्म ले सकते हैं। जहाँपर जघन्य से १० हजार और उत्कृष्ट से पल्योपम की आयुमर्यादा है। ※ ७

※ ७ सारांश यह है कि, आश्रव तथा संवर ये दोनों तत्त्व से जीवमात्र संसार के साथ बंधता है और संसार से मुक्त होता है। इसीलिये "आश्रवो भवहेतुः स्यात्, संवरो मोक्षकारणम्" यह सिद्धवचन ही भव्य पुरुषों मे जागृति लानेवाला है।

तूफानयुक्त घोड़े की उपमावाली स्पर्शेन्द्रिय, रसेन्द्रिय, घ्राणेन्द्रिय, चक्षुरिन्द्रिय तथा श्रोत्रेन्द्रिय ये पांचों इन्द्रिये यदि आत्मा से संयमित नहीं होती तो यह जीवात्मा इन्द्रियवश बनकर प्रतिसमय नये-नये पापों को उपार्जन करेगा। चारों कषाय-हिंसा-झूठ-चोरी-मैथुन तथा परिग्रह जो बड़े से बड़े पाप है, उनका त्याग नहीं कर सकेगा। तथा जिसके ऊपर सम्यग्ज्ञान तथा सम्यक्

P. P. Ac. Gunratansuriji M.S. Jin Gun Aaradhak Trust

चारित्र की छाया पड़ी नहीं है। वैसा मन-वचन तथा काया से भी वह जीवात्मा प्रतिसमय पाप भावनामें, पापी भाषामें तथा पाप व्यवहार में मस्त बना हुआ अगनित पाप ही उपार्जन करेगा। दूसरों को भी पापमार्ग में धकेलेगा तथा पाप करनेवालों को ही अच्छा मानेगा। यह सब आश्रव तत्त्व कहलाता है। जो संसारवृद्धि का कारण है। घरबार-पुत्रपरिवार का त्यागकर संयम स्वीकारा हुआ साधक यदि आश्रव मार्ग का त्याग नहीं करता है। तथा आर्य देश, आर्यखानदान में जन्म लेकर जो श्रीमंत-सत्ताधारी गृहस्थ महावीर स्वामी के शासन की मर्यादा में नहीं आते हैं। वे श्रीमंत सत्ताधारी भी भयंकर से भयंकर पापकर्मों को उपार्जनकर आनेवाले भवों में अत्यन्त दुःख देनेवाली असाता वेदनीय कर्म सत्ता को बांधते है, वृद्धि करते हैं। जिससे उनका संसार अत्यन्त दुःखप्रद बनने के उपरान्त प्रत्येक भव में भयंकर असाता, भूख, तरस दारिद्रय, माता-पिता का वियोग तथा विवाहित जीवन त्रासदायक बन जाता है।

जब गृहस्थाश्रमीओं के संसर्ग से दूर रहकर आत्मसाधना में मस्त रहनेवाला मुनि, तथा गृहस्थाश्रम में रहनेवाला गृहस्थ सम्यक्त्व को स्वीकार करे और अपनी परिस्थितिवश श्रावकधर्म का पालन करे। व्रत-नियम तथा पच्चक्खाण में श्रद्धा रखे तो गृहस्थ भी नूतन पापों के द्वार बंदकर पुराने पापों को भी धोता जाता है और भवांतर में साता वेदनीय का बंधनकर के भव-भवांतर में सुखी बनता है।

इस प्रकार भगवान महावीर स्वामी की अमृतमयी देशना को सुनकर गौतम स्वामी तथा पर्षदा संतोष पाती हुई पुनः पुनः देवाधिदेव भगवंत महावीर स्वामी को वन्दन नमनकर अपने अपने स्थान में जाती है।

॥ उद्देशा प्रथम समाप्त ॥

P. P. Ac. Gunratansuriji M.S. Jin Gun Aaradhak Trust

कर्मभोग

प्रथम उद्देश में चलनादि धर्मयुक्त कर्मो का निरुपण किया है। अब इस दूसरे उद्देश में 'दुःख का वर्णन करेंगे' इसप्रकार ग्रन्थ की आदि में अभिधेय की गाथा से हम जानते हैं। 'दुःख क्या है ?' दुःख यह कर्म का परिणाम है। सांसारिक सुख भी वस्तुतः दुःख ही है। अतएव दुःख शब्द से 'कर्म' का ग्रहणकर इस उद्देश में किये हुए कर्मो का भुगतानसंबंधी वर्णन किया गया है।

इस उद्देश के प्रारंभ में जीव स्वयंकृत कर्म को भुगतता है। स्वयंकृत आयुष्य को भुगतता है ? इन दो प्रश्नों का निराकरण करने के पश्चात् नैरयिक, असुरकुमारादि, पृथ्वीकायिक, द्वीन्द्रियादि, मनुष्य, देव, लेश्यावान् जीव, लेश्या, संसार, संस्थानकाल, अंतक्रिया उपताप, असंज्ञी आयुष्य, इतने विषयसंबंधी प्रश्नोत्तर है।

इसमें नैरयिकों का आहार-कर्म-वर्ण-लेश्या-वेदना-क्रिया उम्र संबंधी वर्णन है और लगभग ये बातें असुरकुमारादि के लिये भी हैं। उसमें जहाँ-जहाँ विशेषता है वे बतलाई जायगी।

इन सब प्रश्नोत्तरों में जो बातें खास ध्यान खींचनेवाली है वे यह है :–

P. P. Ac. Gunratansuriji M.S. Jin Gun Aaradhak Trust

नारकजीव दो प्रकार के बतलाये गये हैं–१ बड़े शरीरवाले, २ छोटे शरीरवाले। दूसरे प्रकार से दो भेद यह है–१ पूर्वोत्पन्नक (दुसरे नारक की अपेक्षा पहिले जन्मा हुआ) २ पश्चादुपपन्नक (पहिले जन्मे हुए नारकजीव की अपेक्षा पिछे से जन्मा हुआ) तीसरे प्रकार से दो भेद ये हैं–१ संज्ञीभूत, २ असंज्ञीभूत। चौथे प्रकार से नारकजीवों के तीन भेद हैं–१ सम्यग्दृष्टिनारक, २ मिथ्यादृष्टिनारक, ३ सम्यग मिथ्यादृष्टिनारक। जब पांचवे प्रकार से नारकजीव चार भेदवाले है।

१ समानवय तथा साथ में उत्पन्न हुए।

२ समान वय तथा आगे-पिछे जन्मे हुए

३ विषम आयु तथा साथ में जन्मे हुए।

४ विषम आयु और आगे-पिछे जन्मे हुए।

पृथक्-पृथक् दृष्टि से पडे हुए इन भेदों के कारण नारक जीवों के आहार-कर्म-वर्ण-लेश्या-वेदना-क्रिया और वय आदि में भेदों की न्यूनाधिकता हो यह स्वाभाविक है।

पृथ्वीकायिक जीव मायी-मिथ्यादृष्टि बताये गये है उनकी माया अनंतानुबंधी कषायवाली होती है। अतएव मिथ्या दृष्टिवाले होते हैं। दो इन्द्रियवाले, पांच इन्द्रियवाले जीवों की बात कहकर मनुष्य के भी–१ सम्यग्दृष्टि, २ मिथ्यादृष्टि और ३ मिश्रदृष्टि आदि से तीन भेद हैं। सम्यग्दृष्टि के तीन भेद हैं–१ संयत,

P. P. Ac. Gunratansuriji M.S. Jin Gun Aaradhak Trust

२ संयतासंयत, ३ असंयत। संयम (संयमी) के भी दो भेद हैं—
१ प्रमत्त संयम, २ अप्रमत्त संयम। ※ ८

※ ८ राजगृही नगरी में देवों के द्वारा स्थापित समवसरण में विराजमान भगवान महावीर स्वामी ने दूसरा उद्देशा इस प्रकार कहा है—जीवमात्र अपने ही किये हुए कर्मों को भुगतता है। इसमें इतना ज्यादा समझना है। कि 'सत्ता में पड़े हुए सब कर्मों का भुगतान नहीं होता है। परंतु स्थितिक्षय से जो उदय में आये हुए है उन्हीं का भुगतान होता है। परंतु जो अनुदित-अनुदीर्ण है उनका वेदन नहीं होता है। आयुष्य कर्म भी उदित हो वही भुगता जायगा। परंतु जिस आयुष्य कर्म का उदय अभी नहीं आया है। उसका वेदन नहीं होता है। कृष्ण महाराजा ने मिथ्यात्व के जोरपर प्रथम तीन नरक भूमिओं की आयु निकाचित और पिछली चार नरक भूमिओं का अनिकाचित आयु बांधा था। परंतु वह कर्म उदय में आने के पहिले ही सम्यक्त्व की शुभधाराएँ जैसे-जैसे बढ़ती गई वैसे-वैसे अनिकाचित आयुष्य कर्म को तोड़ देने में समर्थ बने और निकाचित कर्म का उदय आते ही तीसरी नरक भूमि में उत्पन्न हुए। अतः कहा जाता है कि उदित कर्म का वेदन होता है।

नारक जीव जो बड़े शरीरवाले है। उनका आहार ज्यादा होता है। व्यवहार में भी प्रायः स्थूल शरीरधारी इन्सान ज्यादा खाता है। श्वासोच्छ्वास भी ज्यादा लेता है।

जो पूर्वोत्पन्नक नारक है। उनके बहुत से कर्म निर्जरित हो जाने से अल्पकर्मवाले कहे जाते है और पिछे से उत्पन्न हुए नारक को अभी कर्मो का भुगतान ज्यादा होने से महाकर्मवाले कहलाते है।

इस प्रकार पूर्वोत्पन्नक नारक तद्भवीय कर्मों के भार से अतिशयमुक्त होने के कारण विशुद्धवर्णवाले, विशुद्धलेश्यावाले होने से उन जीवों का आहार वर्ण, लेश्या तथा श्वासोच्छ्वास समान नहीं होते है।

P. P. Ac. Gunratansuriji M.S. Jin Gun Aaradhak Trust

जो संज्ञीभूत नारक है अर्थात जिस नारक को सम्यग्दर्शन की प्राप्ति हुई है। अथवा जो नारक सम्यग्दर्शन को साथ लेकर जन्मा है। वे जीव नरक भूमि में क्षेत्रजन्य, परस्परोदित, तथा परमाधामी असुरों द्वारा दी गई वेदनाओं को भुगतते हैं। अपने ही किये हुए अशुभ कार्यो का यह भुगतान है। इसप्रकार स्मरण करते हुए वे विचारते है कि ' पूर्व के मनुष्यभव में मोहमाया वे वश में आकर जिनेंद्र प्रभु के बताये हुए धर्म का आचरण नहीं किया, पापों के द्वार बंद नहीं किये। मैथुन तथा परिग्रह में अत्यन्त आशक्त बनकर अनेक विध दुराचार मैंने किये। लिए हुए व्रत पाले नहीं। उनमें स्खलनताएँ होती गई और पापों की गठड़ी सिरपर लेकर यहाँ जन्मा हूँ। इसप्रकार की मानसिक वेदना संज्ञीभूत नारको को ज्यादा होती है। जब कि असंज्ञीभूत नारको को कम है।

असंयमित मन-वचन तथा काया की तमाम क्रियाओं में सांपरायिकता (कषायभाव) विद्यमान होने से नयें कर्मों का आगमन होता ही है। इस तरह से नारक जीवों को कितनी क्रियाएँ होती है ?

जवाब में भगवान ने कहा कि नारक जीव तीन प्रकार के होते हैं-१ सम्यग्दृष्टिनारक, २ मिश्रदृष्टि नारक, ३ मिथ्यादृष्टि नारक। इसमें से सम्यग्दृष्टिनारक को सारंभिकी-पारिग्राहिकी-माया प्रत्यायिकी तथा अप्रत्याख्यानी क्रीया होती है। दूसरे दोनों को मिथ्यादृष्टिप्रत्यया क्रिया भी होती है।

(१) आरंभिकी क्रिया-जिसमें पांचोंस्थावर, विकलेन्द्रिय तथा पंचेन्द्रिय जीवों का घात-हनन-पीडन-मारण हो।

(२) पारिग्राहिकी-धन-धान्य-पुत्रपरिवार आदि बाह्य तथा क्रोध लोभ, मोह, माया, रूप, आन्तर परिग्रह के वश में आकर मानसिक, वाचिक तथा कायिक ब्यापार में यह क्रिया लगती है।

(३) मायाप्रत्ययिकी-मन, वचन तथा काया में वक्रता, वंचकता, माया, धूर्तता, शठता आदि लाकर जो किया जाय।

P. P. Ac. Gunratansuriji M.S. Jin Gun Aaradhak Trust

(४) अप्रत्याख्यानी–१८ प्रकार के पापस्थानको के द्वार बंद न करने के कारण जो क्रिया लगे।

(५) मिथ्यादर्शन प्रत्यया–जैन-आगमो में, जैनत्व में, अरिहंतदेव में, पंचव्रतधारी गुरू में, धार्मिक अनुष्ठानों में, तथा अहिंसा संयम और तपोमूलक धर्म में शंका, संशय, अश्रद्धा रखने से जो क्रिया लगती है वह मिथ्या दर्शन प्रत्यया क्रिया कहलाती है। इससे जीवमात्र अपनी आत्मा की पहिचान में तथा शुद्धि में बेध्यान रहता है। परिणामस्वरुप आत्मा का सब प्रपंच संसारवर्धक ही बना रहता है।

असुरकुमार भवधारणीय शरीर की अपेक्षा जघन्य से अंगुल के असंख्येय भागे और उत्कृष्ट से सात हाथ शरीर के प्रमाणवाले होते है। जब उत्तर वैक्रिय शरीर की अपेक्षा जघन्य से अंगुल के संख्येयभागे और उत्कृष्ट से एक लाख योजनवाले होते हैं। इसमें जो बड़े शरीरवाले होते है वे मनोभक्षणलक्षण, आहार की अपेक्षा बहुत से पुद्गलो का आहार करते हैं। बारबार खाते है। निरंतर श्वास-निश्वास लेते है। यह बात चतुर्थभक्त (उपवास) प्रथम आहार करनेवाले तथा सात स्तोक पहिले श्वास लेनेवाले असुरकुमार की अपेक्षा से जानना! शेष बातें नैरयिक समान है। परंतु कर्म वर्ण तथा लेश्याएं नारकों से विपरित है। जैसे पूर्वोत्पन्नक असुरकुमार नारक जीवों को अनेकप्रकार से यातना आदि देते है। इत्यादिक कारणों को लेकर कनिष्ठ पापों को बांधनेवाले होने से अशुभकर्म, अशुभवर्ण और अशुभलेश्याएँ उनकी बढ़ती जाती है। संज्ञीभूत असुरकुमारों को पूर्वभव की चारित्र तथा दर्शन विराधना याद आने से उनको मानसिक पीड़ा ज्यादा होती है।

पृथ्वीकायिक जीव आहार-वर्ण और लेश्या से नारक तुल्य होते है। मात्र छोटे-बडे शरीर की अपेक्षा आहार में तफावत है। यद्यपि उनका शरीर अंगुल के असंख्यात भाग जितना ही होता है। तो भी कितनेही पृथ्वीकायिक जीव दूसरे पृथ्वीकायिक जीवों से संख्यात भागहीन, असंख्यात भागहीन,

P. P. Ac. Gunratansuriji M.S. Jin Gun Aaradhak Trust

लेश्या–स्वरुप

इसके बाद लेश्या का प्रकरण आता है। प्रज्ञापना सूत्र में 'लेश्या पद' इस विषय में अच्छा प्रकाश पडता है, यहाँ तो मात्र उनकी संख्या ही बतलाई है। लेश्या क्या चीज है? यदि संक्षेप में कहा जाय तो आत्मा के साथ कर्मपुद्गलों को चिपकानेवाली जो वस्तू उसीका नाम है लेश्या। ये मन वचन तथा काया के व्यापार का, अर्थात् योग के परिणाम रुप हैं। क्योंकि जहाँ पर योग का निरोध होता है वहाँपर लेश्या नही होती है। कृष्णलेश्या, नीललेश्या, कापोतलेया, तेजोलेश्या, पद्मलेश्या तथा शुक्ललेश्या भेद से छः प्रकार की लेश्या है।

संख्यात गुणवृद्धि तथा असंख्यात गुणवृद्धिवाले होनें से सभी के शरीर अपेक्षा कृत छोटे बडे होते है। अतः उनके आहार में भी अंतर होना स्वभाविक है।

' उन्मार्ग की देशना करनेवाला, सन्मार्ग का नाशक, अत्यन्त गूढ हृदयवाला, माया प्रपंच में मस्त बना हुआ, धूर्त तथा मायाशल्य, मिथ्यात्वशल्य निदानशल्य का स्वामी जीवात्मा, तीर्यचगति का आयुष्य बांधता है। बड़े शरीर वाला, देवकुरु आदि क्षेत्रों में उत्पन्न हुए युग लिये तीन दिन के बाद कवलाहार रुप आहार लेते हैं। तथा अल्प शरीरवाले समूर्च्छिम मनुष्योंको निरंतर आहार होता है।

क्षीण तथा उपशांत कषाय के स्वामी होने से वित्तराग संयमी क्रिया रहित होते है। तथा अप्रयत संयमी को कदाच शासन की रक्षा के लिए कुछ भी करना पड़े तो उनको माया प्रत्यया क्रिया होती है। जब प्रयत्तसंयमी को आरंभी तथा माया प्रत्यया क्रिया होती है।

P. P. Ac. Gunratansuriji M.S. Jin Gun Aaradhak Trust

संसार संस्थानकाल

अब संस्थानकाल संबंधी वर्णन है। संसार में कितनेही लोग ऐसा मानते है कि–अनादि संसार में जीवों की स्थिति एकही प्रकार की है परंतु सत्यार्थ मे वैसी नहीं है। यहॉपर संसार से चारगति लेने की है। नरक तिर्यंच मनुष्य तथा देव। इन गति मे जो संस्थान-अवस्थान अर्थात् स्थिर रहने, रुप क्रिया तथा उसका समय, उसका नाम है संस्थानकाल। इसकाल में शून्य-काल–अशून्यकाल तथा मिश्रकाल के तीन भेद है। इसमें नारक को तीनो प्रकारका काल है। तिर्यचों को दो प्रकार का, क्योंकि उसमें शून्यकाल नहीं है। तथा देवोंको तीनो प्रकार का काल है।

इसीप्रकार अंतक्रिया-उपपात तथा असंयती आयुष्यसंबंधी प्रश्नोत्तरों के पश्चात यह उद्देशा समाप्त होता है।

॥ दूसरा उद्देशा समाप्त ॥

P. P. Ac. Gunratansuriji M.S. Jin Gun Aaradhak Trust

कांक्षा मोहनीय

इस उद्देशक में अनेक विषय अति महत्व के हैं जैसे कांक्षा मोहनीय, अस्तित्व-नास्तित्व, कांक्षामोह बंधादि, नैरयिकादि और श्रमणों का कांक्षा मोह, ये इस उद्देशक के खास विषय है।

कांक्षा मोहनीय कर्म जीवकृत है ? यह प्रश्न है ।

ध्यान में रखना चाहिये कि कांक्षा मोहनीय यह भी एक प्रकार का कर्म है । जो किया जाता है, उसे कर्म कहते हैं । 'कांक्षा मोहनीय' भी जीव करता है । अतएव यह भी एक कर्म है । जो जीवमात्र को मोहित करता है, पागल बनाता है उसको मोहनीय कर्म कहते है जिसके दो भेद शास्त्रों में वर्णित है-एक चारित्र मोहनीय और दर्शन मोहनीय । 'कांक्षा' का अर्थ है:- भिन्न-भिन्न मतमतांतर की इच्छा करना । उनके मतों में श्रद्धा रखकर उसको भी ग्रहण करना ।

इस कांक्षा को मिथ्यात्व मोहनीय कहते हैं । एक मत-धर्म-दर्शन, ईश्वर आदि के ऊपर श्रद्धा न रखते हुए भिन्न-भिन्न मतों का अवलम्बन लेना ही मिथ्यात्व है ।

श्रद्धा तो जिनेश्वर देव तथा जैनधर्म में ही होनी चाहिये परंतु दर्शन मोहनीय कर्म के उदय में, यह 'कांक्षा मोहनीय' =

P. P. Ac. Gunratansuriji M.S. Jin Gun Aaradhak Trust

किया जाता है। अतएव वह कर्म है। इनके करने की क्रिया भिन्न भिन्न होती है। अतः विवरणकारने इसप्रकार के भेद बतलाये हैं।

१ अवयव से अवयव की क्रिया।

२ अवयव से पूरे की क्रिया।

३ पूरे से अवयव की क्रिया।

४ पूरे से पूरे की क्रिया। ※ ९

※ ९ इन चारों भेदों में से प्रस्तुत विषय में चतुर्थ भेद ही मान्य करना है। क्योंकि मोहनीय कर्म की उदयावस्था अथवा अज्ञानवश मोहनीय कर्म की उदीरणा करनेवाले जीवात्मा के संपूर्ण प्रदेश (आठ रुचक प्रदेश शिवाय) मोहनीय कर्म के नशे में पूर्ण रुप से बेभान होकर आठ कर्मों की अनंत वर्गणाओं को उपार्जन करते है। सारांश यह है कि आत्मा के सब प्रदेशों से आठों प्रकार के कर्म बांधे जाते हैं, आत्मा का अमुक प्रदेश अमुक कर्म को बांधता है। जब दूसरे अमुक प्रदेशों से दूसरे कर्म बंधाते है। यह मानने की भूल कदापि नहीं करनी चाहिये, क्योंकि जैन शासन में अमुक प्रदेश अमुक कर्म के लिए नियत नहीं है। परन्तु सब कर्म सब प्रदेशों से ही बांधे जाते।

आत्मा के एक प्रदेशपर ज्ञानावरणीय कर्म भी होता है, दर्शनावरणीय भी होता है, तथा अन्तराय कर्म भी होता है। इसप्रकार सब प्रदेशों में सब कर्म होते हैं। अतएव कहा जाता है कि, आत्मा के एक-एक प्रदेश पर अनंतानंत कर्मों की वर्गणा संलग्न है। जिस कारण से अनंतशक्ति का स्वामी यह आत्मा अपना मूल स्वरुप नहीं समझ सकता है। तथा अपनी सत्ता समझने में भी बेध्यान है। इसप्रकार का कांक्षा मोहनीय कर्म का उदयकाल (वेदनकाल) होने से। जीवमात्र को जिनेश्वर भगवान के वचनों के प्रति देश से अथवा पूर्णरुप से शंकाएं होती है। दूसरे दर्शनों को ग्रहण करने की इच्छा होती है। धार्मिक अनुष्ठानों के फल में भी संदेह रहता है। यह जैन शासन

अस्तित्व—नास्तित्व

उसके बाद अस्तित्व-नास्तित्व संबंधी प्रश्नोत्तर हैं। अस्तित्व अस्तित्व में परिणित होता है और नास्तित्व नास्तित्व में परिणित होता है। यह प्रश्न है। भगवान 'हाँ' में उत्तर देते हैं। बाद में ऐसा किससे होता है? जीव की क्रिया से या स्वभाव से? भगवान दोनों से परिणित होने का बताते हैं।

इस प्रसंगपर 'अस्तित्व', 'नास्तित्व' ये क्या हैं? इसका संक्षेप में हम विचार कर लें।

कहने में यह आया है कि, 'जो पदार्थ जिस रूप में होता है, वह पदार्थ उसी रुप में रहें, इसे अस्तित्व कहते हैं और अन्य स्वरुप होनेपर वह 'नास्तित्व' है। उदाहरणस्वरुप मनुष्य मनुष्य रुप में सर्वकाल में सत् है-विद्यमान है। अस्तित्व रुप में है। जब मनुष्य अश्वरुप में सर्वकाल में असत् है।

पुनश्च जो वस्तु असत् रुप में होती है। वह किसी काल में

है? या वह? 'इसप्रकार' जैनशासन की मान्यता के प्रति मति-बुद्धि में दुविधा की लहरें उठती है। वैसा होनेपर मति भ्रम नाम का दोष भी लगता है।

ऊपर के पांचों कारण कांक्षा मोहनीय कर्म के कारण हैं। इसलिये गुरुओं के समागम में आकर शंका आदि दोष दूर करने चाहिए तथा आत्मिक और मानसिक विचारणा में "जिनेश्वर देवोंने जो कहा है वही सत्य है" इस प्रकार की श्रद्धा को स्थिर करना चाहिए। जिससे आत्मदर्शन के लाभ के साथ अरिहंत देव की पहिचान भी सत्य स्वरुप में होगी।

P. P. Ac. Gunratansuriji M.S. Jin Gun Aaradhak Trust

सत्‌रूप से नहीं होती है। जैसे कि शशशृंग । इसी प्रकार जो सत्‌रुप है वह असत् रुप नहीं होती है। जैसे की अपट, यह अपट पणे में ही रहेगा, पट में नहीं। ※ १०

※ १० इसका सारांश यह है कि अमुक अपेक्षा से द्रव्य में अस्तित्व (विद्यमानता) और नास्तित्व (अविद्यमानता) के पर्यायों की विचारणा अनुभव सिद्ध है। अथवा तो द्रव्यमात्र का स्वभाव ही ऐसा है। जिससे उन पदार्थों में अमुक पर्यायों का अस्तित्व और पर्यायों का नास्तित्व अपेक्षा से स्वतः सिद्ध है। ज्ञाता खुद भी एक द्रव्य के अनंत पर्यायों को एक समय में जानने के लिए आग्रह नहीं करता है। अतः किसी भी पदार्थ के यथार्थ ज्ञान में अपेक्षादृष्टी-सापेक्षवाद ही सहायक बनता है।

घड़ा खरीदनेवाला आदमी दुकानदार के पास जाकर इसप्रकार कहता है मुझे अहमदाबाद की मिट्टी से मार्गशीर्ष माह में बनाया हुआ, लालरंग का घड़ा खरीदना है। तब खरीददार के मस्तिष्क में असंख्य गांवों के काले, पीले तथा सफेद रंग के पौष महिने से लेकर कार्तिक माह तक भिन्न-भिन्न द्रव्यों के बने हुए घड़े होते हैं, फिर भी खरीददार ज्ञाता अन्य सब की जानकारी की इच्छा नहीं करता है और अपनी इच्छित वस्तू ही मांगता है। तब हम यह मानते हैं कि एक घड़े में द्रव्यसंबंधी वस्तुओं में से मिट्टी द्रव्य विद्यमान है। और सुवर्ण, चांदी आदि द्रव्य की अविद्यमानता है। क्षेत्र से अहमदाबादी घड़ा है। जब की पाटण खंभात आदि क्षेत्रों की विद्यमानता नहीं है। काल से अगहन माह में बना है, अन्य माह में नहीं बना है, और भाव से लाल रंग का है क्योंकि दूसरे रंगो का अभाव प्रत्यक्ष दिखलाई देता है। इस प्रकार प्रत्येक पदार्थ (द्रव्य) में स्वद्रव्य-क्षेत्र-काल और भाव की अपेक्षासे अस्तित्व है। तथा परद्रव्यादि की अविद्यमानता है। यह भी वास्तव में सत्य है। सारांश यह है कि एक ही द्रव्य में अमुक पर्यायों का अस्तित्व है। जबकि अमुक पर्यायों का नास्तित्व भी स्वतः सिद्ध है।

P. P. Ac. Gunratansuriji M.S. Jin Gun Aaradhak Trust

कांक्षा मोहनीय के हेतु

इसके बाद के प्रश्नोत्तर में कांक्षा मोहनीय कर्म बांधने के हेतुओं का वर्णन है। उसका सार यह है कि कांक्षा, मोहनीय कर्म प्रमादरूप हेतु से और योगरूप निमित्त से बांधा जाता है। वह प्रमाद-मन-वचन-काया के व्यापार के योग से उत्पन्न होता है। वह योग वीर्य से उत्पन्न होता है और जीव में उत्थान, कर्म, बल, वीर्य और पराक्रम (पुरुषार्थ) की जरुरत है।

यहाँ विवरणकार ने प्रमाद और योग पर सुंदर विवेचन किया है।

कांक्षा मोहनीय कर्म बांधने का मुख्य कारण प्रमाद है। यह प्रमाद अर्थात् मिथ्यात्व, अविरती और कषाय। वास्तविक रूप से प्रमाद के आठ प्रकार हैं-१ अज्ञान, २ संशय, ३ मिथ्याज्ञान, ४ राग, ५ द्वेष, ६ मतिभ्रंश, ७ धर्म में अनादर, ८ योग और

इसीप्रकार अंगुली यह द्रव्य है। किन्तु ज्ञाता को अमुक कारणवश सीधी अंगुली से मतलब है। इसलिए अंगुली रूपी द्रव्य में सीधापन और वक्रता पर्यायों की विद्यमानता होने से कहा जाता है कि, 'यह अंगुली सीधी है अथवा यह अंगुली टेढ़ी है।'

जिस समय अंगुली सीधी होती है। तब 'सरलता' पर्याय का अस्तित्व और 'वक्रता' पर्याय का नास्तित्व हमको स्पष्ट दिखलाई देता है। इसी प्रकार जब अंगुली टेढ़ी होती है तब 'वक्रता' पर्याय का अस्तित्व और 'सरलता' पर्याय का नास्तित्व भी हेतु सिद्ध ही है। फिर इन दोनों पर्यायों में अंगुली द्रव्य तो एक ही है।

P. P. Ac. Gunratansuriji M.S. Jin Gun Aaradhak Trust

दुर्ध्यान । इसमें ऊपर के तीन का मिथ्यात्व, अविरती और कषाय का समावेश हो जाता है। इस प्रमाद का उत्पादक योग है। मन-वचन-काया का व्यापार है। इन तीन की क्रिया बिना मद्यादि प्रमाद की संभावना नहीं है। इस योग की उत्पत्ति वीर्य से बताई गई है। यह वीर्य क्या है ? लेश्यावाले जीव का मन-वचन-काया रुप आत्मप्रदेश का परिस्पंद रुप जो व्यापार है, उसका नाम वीर्य है। इस वीर्य का उत्पादक शरीर है। क्योंकि शरीर बिना वीर्य नहीं हो सकता और शरीर का उत्पादक जीव है। जीव के साथ कर्म भी कारण जरुर होते है; परंतु इन कर्म का कारण भी जीव है। जीव ही मुख्य बताया गया है। ※ ११

※ ११ अर्थ और काम के उपार्जन से धर्म तथा मोक्षपुरुषार्थ की आराधना के लिए उत्थान, कर्म, बल, वीर्य और पुरुषार्थ की अत्यन्त और अनिवार्य आवश्यकता है। यह जैन शासन को मान्य है।

"भाग्य से ही सब मिलता है। तथा मोक्ष भी भाग्य बिना नहीं मिलता" जैन धर्म की यह मान्यता नहीं है।

व्यवहार मार्ग में अर्थात् अर्थ तथा काम के उपार्जन में तथा भुगतने में और उस भोग से मिले क्षणिक आनन्द में भी केवल भाग्य के भरोसे कोई रहा नहीं, रहता नहीं और रहेगा भी नहीं। जीवमात्र दोनों वस्तुओं की प्राप्ति के लिए आलसी बनकर बैठा नहीं रहता है। बल्कि कुछ न कुछ प्रयत्न करने में लगा हुआ दिखाई देता है। संसार का व्यवहार भाग्य के भरोसे, ईश्वर के विश्वास पर या मंत्र-तंत्र तथा ज्योतिष के आधार पर नहीं चलता है। आत्मा स्वयं ही जब उन-उन वस्तुओं की प्राप्ति के लिए अनेक प्रयत्न (उत्थान) करती है। उनके लिए अमुक शारीरिकादि क्रियाएं भी करती है। थोड़ा शरीर का प्रयोग भी करती है तथा स्वयं की स्फूर्तिरुप पराक्रम भी

इसके बाद नैरयिकादि और श्रमण कांक्षा मोहनीय कर्म को भोगते हैं। इनके संबंध में प्रश्न हैं। उनके उत्तर भगवान 'हाँ' में स्वीकार करते हुए फरमाते हैं।

अवधिमनः पर्यवज्ञान

इस प्रश्नोत्तर के विवरण में अवधिज्ञान से मनः पर्यवज्ञान अलग (भिन्न) किसलिए है? वैसे ही दर्शन और चारित्रसंबंधी का विवरण भी खास समझने लायक है। उनका सार यह है कि, अवधिज्ञान से मनोद्रव्य भी उपलब्ध हो सकता है। फिर भी मनः पर्यायज्ञान अवधिज्ञान के भेदों में नहीं गिना जा सकता। क्योंकि इन दोनों (अवधि और मनः पर्यवज्ञान) का स्वभाव अलग-अलग है। अर्थात् मनः पर्यायज्ञान मात्र मनोद्रव्यों को ही ग्रहण करता है और इस ज्ञान में प्रथम दर्शन (सामान्य ज्ञान) नहीं होता है। जबकि अवधि ज्ञान में मन के अलावा दूसरे कितनेही द्रव्यों

करती है और अन्त में उन पदार्थों की प्राप्ति के लिए योग्य पुरुषार्थ भी करती है। तवही वस्तु की सिद्धि होती है। भाग्यवाद (नियतिवाद) का प्ररुपक गोशाला भी अपना भोजन, स्नान, विहार, उपदेश तथा दूसरों को अपने मत का अनुयायी बनाने के लिए उत्थान (क्रिया), बल (शारीरिक बल), वीर्य (आत्मा की स्फूर्ति) तथा मन, वचन, और काया से पुरुषार्थ करता ही था।

किसी प्रकार की वाद-विवाद-चर्चा अथवा सिद्धांत का अभिनिवेश जब तक मनुष्य मात्र के जीवन व्यवहार में प्रयोग करने योग्य नहीं बनता है, तबतक कपोलकल्पित सिद्धांतों से देश को, समाज को तथा व्यक्ति को आध्यात्मिक हानि के सिवाय अन्य कोई लाभ प्राप्त नहीं होता है।

P. P. Ac. Gunratansuriji M.S. Jin Gun Aaradhak Trust

का ग्राहकत्व है। कुछ मन के और दूसरे द्रव्यों को भी ग्रहण करता है और अवधिज्ञान में सब से पहला दर्शन होता है कोई ऐसा अवधिज्ञान नहीं है कि जो केवल मनोद्रव्यों को ही ग्रहण करता है।

दर्शन

'दर्शन' संबंधी विवेचन में 'दर्शन' के अलग-अलग अर्थ किये गये हैं।

'दर्शन' का एक अर्थ किया है 'सामान्य ज्ञान', इसके चक्षु-दर्शन और अचक्षुदर्शन इसप्रकार दो भेद बताये हैं। इसमें कारण रुप इन्द्रियों को प्राप्यकारि' और 'अप्राप्यकारि' रुप से वर्णन किया गया है।

'दर्शन' का दूसरा अर्थ 'सम्यक्त्व' भी है। इसके 'क्षायोपशमिक' और 'औपशमिक' दो भेद बताये गये हैं। उसके बाद उनपर शंका समाधान है।

चारित्र

इसप्रकार चारित्र के दो भेद हैं–'सामयिक' और 'छेदोपस्थापनीय' और उनपर शंका समाधान है।

साधु ऋजु जड और वक्र जड होने से दो भेद बताये गये हैं।

यदि पहले एकही प्रकार का चारित्र बताने में आये तो ऐसा बनना संभव है कि किसी ने चारित्र लिया, उसमें तनिक

P. P. Ac. Gunratansuriji M.S. Jin Gun Aaradhak Trust

मात्र दोष लग गया। जरा भूल हो गई अर्थात् उसने ऐसा समझ-लिया कि मेरा चारित्र नष्ट हो गया ऐसा समझकर वह घबरा कर आकुल व्याकुल हो जाता है, किन्तु दूसरी वार चारित्र लेना हो तो वह घबराता नहीं है और अपनी थोडी-सी भूल से यह नहीं समझता है कि, 'मैं चारित्र से भ्रष्ट हो गया।' इसीसे पहले और अन्तिम तीर्थंकर के साधु अनुक्रम से ऋजु जड और वक्र जड होने से उनके लिए पहला सामायिक और बाद में व्रत का आरोप कहा है। क्योंकि जो सामयिक थोडा अशुद्ध हो जाय तो भी व्रत में बाधा नहीं आती है। मतलब यह है कि इस संबंध में भूल रह जाय तो भी व्रत तो रहते ही हैं।

समाचारी

इसीप्रकार भिन्न-भिन्न समाचारियों-पद्धतियों को देखकर कितनेही भडक जाते हैं। उनके लिये भी इसी प्रकरण में विवरण-कार ने खुलासा किया है कि चाहे समाचारी भिन्न हो वे विरुद्ध नहीं कहलाती हैं। क्योंकि उनका आचरण करनेवाला उनका प्रवर्तक 'गीतार्थ' और 'अशठ' होता है। अर्थात् ऐसी समाचारी कि जिनके प्रवर्तक गीतार्थ हो, अशठ हो और जो समाचारी असावद्य-निष्पाप हो, वैसे ही जिनका किसी ने निषेध न किया हो और जो बहुमत हो ऐसी समाचारी पद्धति साध्य नहीं होती है।

P. P. Ac. Gunratansuriji M.S. Jin Gun Aaradhak Trust

किन्तु साधन हैं, और साधन के लिए विरोध करना यह तो अज्ञानता ही कहलाती है। ※ १२

※ १२ इस प्रश्नोत्तर में निर्ग्रन्थ शब्द के साथ श्रमण होने के कारण श्रमण का अर्थ जैन साधु ही समझना है।

त्याग और वैराग्य से दीक्षित साधु गुरुकुल-वास और स्वाध्याय बल में जो बेदरकार रहेंगे तो शंकाएँ उत्पन्न होंगी और बढ़ेगी और बढ़ती हुई शंकाएं साधक को फिर से मिथ्यात्व मोहनीय के प्रति आकर्षित कर लेंगी।

॥ उद्देशा तृतीय समाप्त ॥

P. P. Ac. Gunratansuriji M.S. Jin Gun Aaradhak Trust

कर्म प्रकृति

इस उद्देशक में मुख्य विषय कर्म प्रकृति संबंधी है। अर्थात् कर्म प्रकृति कितनी ? मोहनीय कर्म जब उदय में आया हुआ हो तब जीव परलोक गमन करता है या नही ? अगर करता है तो किस से ? इसी प्रकार पुद्‌गल की भूत-वर्तमान और भविष्य काल की विद्यमानता संबंधी वैसे ही छद्मस्थ मनुष्य सिद्ध बुद्ध-होता है या नहीं ? इनके संबंध में वर्णन है। उसका सार यह है :—

कर्म प्रकृति आठ हैं। उनका वर्णन प्रज्ञापना सूत्र में है। ✲ १३

✲ १३ कर्म कितने प्रकार के हैं ? उनका बंध कैसे होता है ? कौनसे कारणों से कर्म बांधा जाता है ? उनकी कितनी प्रकृतियाँ भुगती जाती है ? इत्यादि प्रश्न है। उत्तर में भगवानने फरमाया है कि तीव्र-तीव्रतर और तीव्रमय आत्मिक अध्यवसायों को लेकर बंधाते हुए कर्म आठ प्रकार के होते हैं। उनका स्वभाव इसप्रकार है—

(१) **ज्ञानावरणीय कर्म**—जीवमात्र तथा द्रव्यमात्र में विशेष तथा सामान्य समवाय संबंध से भाड़ुती स्वरुप में नहीं किन्तु स्थायी रुप में रहनेवाला स्वतः सिद्ध धर्म है। यह घड़ा सुवर्ण का है, यह मट्टी का है, यह अहमदाबाद का है, यह लालरंग का है, यह व्यक्ति विद्वान है, यह अतिशय ज्ञानी है। इसी अनुसार प्रत्येक पदार्थ का जाति, गुण, नाम आदि सहित जो ज्ञान प्राप्त होता हैं, उसे विशेषज्ञान कहते है।

P. P. Ac. Gunratansuriji M.S. Jin Gun Aaradhak Trust

पंडित-महापंडितों का मत-मतांतर रुप विषचक्र को तिलांजली दे त भी अनंत विचित्रता से परिपूर्ण यह संसार सबों के लिए प्रत्यक्ष है। जिस कितने ही जीव अत्यन्त अल्पज्ञानवाले, कितनेही स्पष्टज्ञानवाले, कितने मिथ्याज्ञानवाले, बुद्धिभ्रमवाले, पूर्वग्राहितज्ञानवाले और कितने यथार्थज्ञानवा होते हैं। जिनका हम सब प्रत्यक्षरुप से अनुभव कर रहे हैं।

आकाश में रहे हुए कम-ज्यादा बादलों के कारण सूर्य का प्रकाश जै मन्द-मन्दतर और मन्दतम बनता रहता है। वैसे आत्मा के सहज सिद्ध ज्ञा गुण को आच्छादित करनेवाला ज्ञानावरणीय कर्म है। आँख पर पट्टी बांधने से मनुष्य जैसे किसी को देख नहीं सकता है। वैसे इस कर्म के कारण ही आत्मा को विशेष ज्ञान होने में अवरोध उपस्थित होता है।

(२) **दर्शनावरणीय कर्म**—जिससे आत्मा को सामान्यज्ञान होता है जैसे की—यह घड़ा है, यह मनुष्य है, यह पशु है, ये सब जीव है। इसीप्रका नाम, जाती, गुण इत्यादि से रहित सामान्यज्ञान को जैन शासन में 'दर्शन कहते हैं। इस दर्शन को आवरण करनेवाला-रोकनेवाला कर्म दर्शनावरणीय कर्म कहा जाता है।

(३) **वेदनीय कर्म**—सुख-दुःख संगोग और वियोग आदि द्वन्द्वो के कारण मानसिक परिणामों में साता (सुख) असाता (दुःख-पीड़ा) क अनुभव करते हैं। वह वेदनीय कर्म है। यद्यपि उदय में आते हुए सब कर्मो का वेदन (भुगतना) तो होता ही है। तथापि कीचड़ में जैसे मेंढक, मच्छर मक्खी और सुगंधीकमल भी पैदा होते हैं। फिर भी "पंकेजायते इति पंकजः' इस उक्ति के अनुसार पंकज शब्द से कमल का ही ग्रहण किया जाता है। उसी प्रकार यहाँपर वेदनीय शब्द रुढ़ अर्थ में होने से सुख-दुःख भुगता जाता है वह वेदनीय शब्द का अर्थ यहाँ इष्ट है।

(४) **मोहनीय कर्म**--जिसकारण से सत्-असत्, सत्य अनत्य तथा विवेक में यह आत्मा बेभान हो जाती है। अर्थात् किसी भी मानसिक

वाचिक और कायिक प्रवृत्ति में सत्य-असत्य का जिस कारण से निर्णय नहीं होता है, उसे 'मोहनीय कर्म' कहते हैं।

(५) आयुष्य कर्म—पूर्व भव में किये गये कर्मों के कारण प्राप्त हुई नरक गति में से बाहर निकलने की इच्छा रखनेवाले जीवों को बाहर आने के लिए जो कर्म रोकता है, उसे आयुष्य कर्म कहते है।

जैसे कि जेल में बंद किया मनुष्य जेलर की आज्ञा के बिना जेल से मुक्त नहीं हो सकता है। वैसे ही इस बेड़ी रुप से जकड़ी हुई नरक गति की आत्मा तथा मनष्य आदि गतियों में भी भयंकर यातनाओंको भुगतता हुआ जीवात्मा बाहर नहीं आ सकता है अथवा एकभव में से दूसरे भव में जाने के लिए उदय में आये हुए कर्म को आयुष्यकर्म कहते हैं।

(६) नाम कर्म--शुभ या अशुभ योग से बांधे हुए कर्म सद्-गति, दुर्गति, अच्छी (उच्च) जाति या खराब (नीच) जाति सुंदर या कुरुप शरीर, बलवान् या निर्बल संघयण आदि शुभाशुभ पर्यायों को जो प्राप्त कराते हैं, उनको नामकर्म कहते हैं।

(७) गोत्र कर्म—यह आदमी नीच कुल का है। यह ऊँचे (उच्च) कुल का कुलीन है। यह आर्य है। यह अनार्य है। इसप्रकार के शब्दों से शरीरधारी आत्मा को संबोधित किया जाता है, पुकारा जाता है। उसे गोत्र कर्म कहते हैं।

(८) अंतराय कर्म—दान, लाभ, भोग, उपभोग और वीर्य (पराक्रम) लब्धियों के उपयोग करने की इच्छा रखनेवाले महत्वाकांक्षी जीवों को जिस कर्म के कारण अन्तराय विघ्न एवं बाधाएँ उपस्थित होती है। यह अन्तराय कर्म का कारण है।

अतः कर्म का नाम भी अन्तराय कर्म है।

इसप्रकार आठ कर्मो के नियत हुए स्वभाव के कारण अनंत शक्तियों का स्वामी यह जीवात्मा अपने मूल खजाने की अनंत शक्ती को प्राप्त नहीं कर सकता है। अब प्रश्न यह है कि उपरोक्त आठ कर्मों का इसप्रकार अनुक्रम किन कारणों से रखा है ?

उत्तर में इस प्रकार जानकारी दी जाती है कि–'गुण और गुणी' कथंचित् एकही होते हैं। इस न्याय से गुणी आत्मा का ज्ञान-दर्शन गुण होनेसे आत्मा और ज्ञान अपेक्षा से एकही हैं।

"यत्र यत्र ज्ञानं (चैतन्यं) तत्र तत्र जीवः। यत्र चैतन्यं नास्ति स जीवो न भवति परन्तु अजीवोऽस्ति यथा घट पटादि पौद्‌गलिक पदार्थाः।"

इस कथन के अनुसार जीव जब चेतना लक्षण से लक्षित होता है तब जीव को ज्ञान-दर्शन का अभाव होता है, इसप्रकार कैसे मान लिया जाय ?

अनादिकाल से परिभ्रमण करते हुए जीवात्मा को जो उच्च खानदान, आर्यजाति, आर्यसंस्कृति, पंचेन्द्रियपटुता और धार्मिक संस्कार वगैरह लब्धियाँ प्राप्त हुई हैं। उनका श्रेय सम्यग्ज्ञान को है।

इन दोनों में भी ज्ञान प्रधान है। जिनके प्रभाव से संपूर्ण शास्त्रों के विषय की विचार परंपरा की प्रवृत्ति सुलभ बनती है।

संपूर्ण कर्मों से मुक्त हुए केवली भगवान को भी सर्वप्रथम ज्ञानोपयोग ही होता है और दूसरे क्षण दर्शनोपयोग होता है। अतः जिन कर्मों के कारण से यह ज्ञानशक्ति आवृत्त होती है, उस ज्ञानावरणीय कर्म को सर्वप्रथम स्थान दिया गया है। ज्ञानोपयोग से च्युत हुआ जीव दर्शनोपयोग में स्थिर होता है। जिससे यह शक्ति आच्छादित होती है वह दर्शनावरणीय कर्म दूसरे नंबर में स्थान प्राप्त कर सकता है। इन दोनों कर्म का उदयकाल जब चालू होता है तब तारतम्य भाव से जीवात्मा को सुख दुःख रूप वेदना का अनुभव

P. P. Ac. Gunratansuriji M.S. Jin Gun Aaradhak Trust

होता है। जब ज्ञाना वरणीय कर्म का प्रबल रुपसे उदय होता है, तब 'अरेरे, मै सर्वथा अज्ञानी हूँ, मुझे किंचित्‌मात्र ज्ञान नहीं है।' यह जीवात्मा दूसरे ज्ञानी पुरुषों के देखकर इसप्रकार दुःख का ही अनुभव करता रहता है। जब प्रकृष्ट ज्ञानका उदय होता है तब जीवको सुख-शांति का अनुभव होता है।

वैसे ही दर्शनावरणीय कर्म के प्रबल रुप से उदय होने पर यह जीव जन्मसे अन्धता, बधिरता तथा आँख, कान, नाक और स्पर्शेन्द्रियों की कम-जोरी का अनुभव जब करता है तब वह अत्यन्त दुःखी होता है और उससे विपरीत पांचों इन्द्रियों की पटुता के कारण इस जीव को सुख की प्राप्ति भी स्पष्ट दिखाई देती है। इसलिए उपरोक्त दोनों कर्मों के पश्चात् इस वेदनीय कर्म को स्थान दिया गया है। अर्थात् इसे तीसरा स्थान दिया गया है।

जब इन्द्रियों को प्रिय पदार्थों की प्राप्ति होती है और जब उन्हें प्रिय पदार्थोकी अप्राप्ति होती है। तब संसारी जीवको राग द्वेषादि उत्पन्न हुए विना नहीं रहता है। जब राग द्वेष होता है तब मोहनीय कर्म की सत्ता अवश्यमेव होती ही हैं। उस कारण से इस कर्म को चौथे स्थान में रखा है।

मदिरापान जैसे कुत्सित व्यसनो को सेवन करने के कारण अत्यन्त पागल बने हुए जीव आरंभ, समारंभ तथा परिग्रह की वृद्धि और उनको भुगतने में ही संपूर्ण तौर से रसलोलुप बन जाते हैं। इससे उनको नरकादि गतियोंको प्राप्त् करने के लिए आयुष्यकर्म अनिवार्य रूपसे बांधना पड़ता है। इसलिए आयुष्यकर्म को पांचवा स्थान दिया है, और उसके बाद गति आदि नामकर्म भी आयुष्यकर्म के आधीन होनेसे नामकर्म को छठवां स्थान दिया है। नामकर्म के उदय में ही ऊंच-नीच गोत्रसे पुकारा जाता हुआ जीव गोत्रकर्म को वेंदता (भुगतता) होने से इस को सातवे स्थानपर रखना युक्तियुक्त है, और उसके पश्चात् अंतरायकर्म को स्थान देने का आशय यह है कि, उच्चकुल में जन्मलिये जीव को दानादि लब्धियाँ सुलभ होती हैं। जब कि नीच कुल में जन्म लिए जीव के लिए उन लब्धियों का प्रायः कर के अभाव होता है। इस कारण से इस कर्म को अन्तिम स्थान दिया है।

यह जीव आठ प्रकारके कर्म बंधन किस प्रकार करता हैं ? इस के उत्तर में भगवान ने फरमाया हैं कि जब ज्ञानावरणीय कर्म का उदयकाल चालू होता हैं तब दर्शनावरणीय कर्म का अनुभाव भी नियम से रहता हैं और इस के विपाक में दर्शन मोहनीय कर्म भी होता हैं। तब यह जीवात्मा आठ प्रकार का कर्म बांधता हैं।

अतत्त्वों को तत्त्व स्वरूप मानना और तत्त्वों को अतत्त्वस्वरूप मानना मिथ्यात्व ही हैं। अतः शास्त्रों का वचन हैं कि मोहनीय कर्म के उदयकाल में तथा उदीरणा काल में उत्तर कर्म अर्थात् नये कर्भ बंधते ही हैं। जैसे बीज तत्त्व का नाश न हुआ हो तो अंकुरादि की उत्पत्ति दिखलाई देती हैं। उसी प्रकार मिथ्यात्व की उपस्थिति में जीवात्मा को अविरति कषाय, प्रमाद और योग वक्रता होने से कर्मोंका अंकुर प्रति समय उत्पन्न होता ही रहता हैं। " जीवों का जैसा अध्यवसाय होता हैं वैसे ही पुद्गल उन-उनं कर्म रूप में परिणत होते हैं। और पुद्गलों के स्वभाव का जैसा उदय होता हैं। वैसी ही जीवात्मावों की परिणति होती रहती हैं।

ज्ञानावरणीय कर्म कितने स्थानों से बांधे जाते हैं ? इसके उत्तर में भगवान ने फरमाया हैं कि,-हे गौतम ! राग और द्वेष इन दो कारणों से कर्म बंधते हैं। (रागेण वा दोषेण वा) प्रीत्यात्मक राग और अप्रीत्यात्मक द्वेष यद्यपि क्रोध मान, माया, लोभ से अलग नहीं हैं। इसलिए इन चार कषायों में राग, द्वेष का समावेश किस विचित्र प्रकार से होता हैं। उस पर तनिक विवेचन कर लेते हैं। संग्रह नय की मान्यता इस प्रकार हैं कि, क्रोध किसी को प्रिय नहीं लगता हैं। इसकारण क्रोध अप्रीत्यात्मक हैं और दूसरों के गुण सहन नहीं होने के कारण मान कषाय भी अप्रीत्यात्मक होता हैं। इसलिए ये दोनों क्रोध और मान, कषाय द्वेष रूप ही हैं। आत्मा को प्रिय लगने से लोभ, कषाय और अन्य को ठगने निमित्त माया कषाय भी आत्मा को अभिलषित होने से लोभ और माया का समावेश राग में होता हैं।

इसी परिभाषा को व्यवहार नय इसप्रकार कहता है कि-माया, कषाय का प्रयोग परोपधात के लिए होता है, और वह द्वेष वृत्ति के अभाव में संभव नहीं है। इसलिए 'माया' का द्वेष में अन्तर्भाव होता है। क्रोध और मान तो अप्रीत्यात्मक होने से द्वेष ही है। जब कि लोभ, कषाय, न्याय-नीति का स्वीकारपूर्वक अर्थ की मूर्च्छा परोपघात बिना की होने से 'राग' में समाविष्ट हो जायेगी। इसप्रकार इस नय के मत से क्रोध, मान, माया द्वेष रूप में और लोभ राग रूप में है।

जब ऋजुसूत्रनय इसप्रकार कहता है कि 'क्रोध कषाय अप्रीत्यात्मक होने से परोपघाती है, इसलिए उसका समावेश द्वेष में होगा। किन्तु शेष जो मान, माया और लोभ हैं, उनके दो दो भेद होते हैं। जैसे कि-स्वयं के गुणों का बहुमान सबको प्रिय होने से अहंकार के उपयोग के समय में मान कषाय प्रीत्यात्मक होने से राग रूप बन जाता है। किन्तु मात्सर्य वगैरह के कारण अन्य के गुणों के प्रति द्वेष का उपयोग होने से मान कषाय अप्रीत्यात्मक भी बनता है।

दूसरों के द्रव्य को ग्रहण करने की चिन्ता के समय माया भी प्रीत्यात्मक होती है और दूसरों को ठगने के समय में आत्मा का परिणाम परोपघातकारक होने से अप्रीत्यात्मक बनने के कारण से माया द्वेष रूप में भी परिणत होती है।

क्षत्रिय आदि वीर जाति को लक्ष्य में रखकर लोभ कषाय के संबंध में विचार किया जाय तो वह इसप्रकार प्रीत्यात्मक भी बनेगा-जैसे क्षत्रियों की मान्यता है कि, 'वीरभोग्या वसुंधरा' यह वसुंधरा पृथ्वी वीरों के लिए है और दूसरे देशों का अपहरण हमारे लिए न्यायसंगत है। इस उक्ति को लक्ष्य में रखकर स्वार्थ साधिका प्रवृत्ति करना उनको प्रिय है। इसलिए प्रीत्यात्मक होने से लोभ का समावेश 'राग' में हो जायगा और शत्रुओं के देशों को स्वीकार करने के लिए अभियोग बन जाय तब लोभ अप्रीत्यात्मक

P. P. Ac. Gunratnasuriji M.S. Jin Gun Aaradhak Trust

होने से द्वेष के आकार को धारण कर लेगा। क्योंकि वह अभियोग-लड़ाई परोपघात होती है। इन कारणों से (पहलुओं से) उक्त तीन कषाय राग और द्वेष रूप बन सकता है।

जब पूर्वोक्त बात को शब्दनय इसप्रकार कहता है। क्रोध और लोभ का सामावेश मान और माया में ही हो जाता है। तो इसप्रकार मान और माया कषाय में दूसरों की हानी करनेवाला आत्मा का जो अध्यवसाय होता है, वह अप्रीत्यात्मक होने से क्रोध है और स्वगुणों का उत्कर्ष रूप परद्रव्य की मूर्च्छा आत्मा को प्रिय होने से लोभ हैं। लोक प्रसिद्ध लोभ भी दूसरों का उपघात करनेवाला होता है, तब, और मूर्च्छात्मिक रूप में होता है तब इस में परोपघात लोभ क्रोध कहलाता है और क्रोध द्वेष ही है। जब मुर्च्छा रूप लोभ का समावेश राग में होगा। इसप्रकार राग और द्वेष सहित ज्ञानावरणीयादि कर्म सतत बंधते है।

यद्यपि राग-द्वेष कर्मों का बंधन नहीं करते हैं। परंतु राग द्वेष के कारण आत्मा जब अपना स्वरूप भूल जाती है तब आत्मा स्वयं ही कर्मों का कर्ता बन जाती है।

जीवात्मा के प्रति-प्रदेश में चारों घाती कर्मो की जो रज चिपकी (संलग्न) हुई है। क्षीण घाती केवली को छोड़कर सब जीवों को वे कर्म भुगतने ही पड़ते है। जब आयुष्य कर्म, नाम कर्म, गोत्र कर्म, और वैदनीय कर्म ये चारों अघाति कर्म संसार के चरम समय तक केवली भगवंत को भी भुगतने पड़ते हैं।

राग, द्वेष, वश जीवात्मा द्वारा बांधे हुए अर्थात् कर्मरूप से परिणत हुए आत्मा के प्रदेशों के साथ एकाकार बने हुए, उत्तरोत्तर अधिक गाढ़तर एकाकार हुए, अबाधकाल को छोड़कर उत्तर समय में वेदन योग्य के निषिक्त हुए। अग्रे-अग्रे प्रदेश हानि और रसवृद्धि द्वारा स्थापित हुए, समान जातीय प्रकृतियो में संक्रमण हुए, कुछ विपाक अवस्था को प्राप्त हुए, विशेष विपाक

सन्मुखी बने हुए, फल देने के लिए तैयार हुए, सामग्रीवश उदय में आये हुए, जिसप्रकार कच्चे आम (केरी) पूर्व में थोडे पकते हैं, बाद में सामग्रीवश विशेष पकाने में आते हैं और पकाने के पश्चात् खानेवाले को तृप्ति और आनंद देते हैं। इसीप्रकार कर्म बंधन से बंधे हुए जीव भी मिथ्यात्व, मोह आदि के कारण बारंबार कर्मों का उपार्जन करते हैं।

यद्यपि जीवात्मा प्रतिसमय ज्ञान दर्शन का उपयोगवाला होता हुआ भी जब सामग्री वशात् राग और द्वेष की लेश्याएं बढ़ती हैं, तब कर्मों का बंधन होता है।

जिस समय कर्म बांधते हैं, उसीसमय में बंधाते हुए कर्म वर्गणा के पुद्गलों को ग्रहण करता हुआ यह जीव अनाभोगिक वीर्य (आत्मिक परिणाम) से ज्ञानावरणीय आदि कर्मों को अलग-अलग स्थापित करता है। जिसप्रकार हम आहार करते है, तभी उस खाये हुए आहार में से ही अमुक पुद्गल रक्त के लिए, मांस के लिए, हड्डियों के लिए, मज्जा के लिए और शुक्र धातु के लिए निर्णीत हो जाते हैं। खाये हुए सब आहार का रक्त नहीं बनता है। वैसे ही सब का शुक्र नहीं बनता है। किन्तु रक्त के योग्य पुद्गलों का रक्त बनता है और बाकी का खाया हुआ आहार जो रस रुप बना हुआ है, उनमें से विष्ठा, मूत्र, पसीना, नख, बाल तथा नाक, कान और आंख आदि के द्वारा मल बाहर निकल जाता है।

उसीप्रकार बंधे हुए कर्मों का फल देनेवाला स्वभाव भी (कर्म बांधने समय ही) निश्चित हो जाता है।

उसके बाद आत्मा का विशेष प्रकार से अर्थात् सम्यग्ज्ञान के प्रति द्वेष प्रद्वेष, ज्ञान और ज्ञानी की निंदा-तिरस्कार, गुरु का अपलाप, ज्ञान के उपकरणों की आशातना वगैरह कारणों से बंधे हुए कर्मों का उत्तरोत्तर परिणाम बढ़ता ही जाता है।

P. P. Ac. Gunratansuriji M.S. Jin Gun Aaradhak Trust

जब मोहनीय कर्म उदय में आया हुआ हो, तब जीव को वीर्यता से उपस्थान करना चाहिये। उपस्थान अर्थात् परलोक के प्रति गमन। यहाँ वीर्यता के ३ भेद बताये जाते हैं–बालवीर्यता पंडितवीर्यता और बाल पंडित वीर्यता। ऐसा समझना चाहिए कि इन तीन में से बालवीर्यता से उपस्थान होता है। इसीप्रकार अपक्रमण संबंधी विचार है। अपक्रमण इसे कहते हैं कि, उत्तमगुण स्थानक से हीनतर गुण स्थानक में जाना। मोहनीय कर्म जब उदय में आया हुआ होवे तब जीव अपक्रमण भी करता है। और वह बालवीर्यता से और कदाचित् बालपंडित वीर्यता से भी होता है। पंडितवीर्यता से नहीं होता है। बल्कि इस प्रकरण में उसपर भी विवेचन किया गया है कि, किये गये पापकर्म को भोगे (वेद्या)

इस प्रकार सामान्य और विशेष अध्यवसायों से बंधे हुए कर्मों के वेपाक (फल) की प्राप्ति के समय उदय में आये हुए, दूसरों द्वारा उदय में लाये हुए और स्व पर निमित्त को लेकर उदय में आते हैं।

कितने कर्म अमुक गति का आश्रय लेकर विशेष प्रकार से उदय में आते हैं। जैसे कि नरक गति के आश्रय से असात वेदणीय कर्म उदय में आते हैं। क्योंकि उन जीवों का असातकर्म (असातावेदनीय) जितना तीव्र होता है उतना तिर्यंचों का नहीं होता है। उत्कृष्ट स्थिति से बंधे हुए कर्मों में रस भी तीव्र होता है। जैसे अमुक भव के आश्रय से मिथ्यात्व की तीव्रता होती है।

मनुष्य और तिर्यंच अवतार में निद्रा नाम का दर्शनावरणीय कर्म विशेषप्रकार से उदय में आता है। यद्यपि देव और नारकों को भी दर्शनावरणीय कर्म सत्ता में तो होता ही है। किन्तु सुख में मस्त हुए देवों

P. P. Ac. Gunratansuriji M.S. Jin Gun Aaradhak Trust

बिना अनुभव किये नारक तिर्यंच मनुष्य और देव के जीव को मोक्ष प्राप्त नहीं होता है। यहाँ कर्म के दो भेद बताये गये हैं-प्रदेशकर्म तथा अनुभाग कर्म, इसमें प्रदश कर्म अवश्य भोगना पड़ता है और अनुभाग कर्म में कितना भोगा जाता है और कितना नहीं भोगा जाता है।

ऊपर बालवीर्यतादि के जो भेद बताये गये हैं। उनमें विवरणकर्ता ने वीर्य का अर्थ प्राणी किया है। अर्थात् प्राणीत्व का का मतलब वीर्यता। अब 'बाल' का अर्थ यह किया जाता है कि- 'बाल' उस जीव को कहते हैं, जिस जीव को सम्यक् अर्थ का बोध नहीं होता है और सद्बोध कारक विरति नहीं होती है। वह जीव बाल कहलाता है। 'बाल' अर्थात् मिथ्यादृष्टि जीव। जिस जीव

को तथा दुःख से घिरे हुए नारकों को निद्रा का उदय मनुष्य तथा तिर्यंचों की अपेक्षा कम होता है।

अब दूसरों की अपेक्षा से कर्म इसप्रकार उदय में आते हैं। जैसे- कोई मनुष्य हमपर पत्थर या लाठी फेंकता है अथवा तलवार या लाठी द्वारा हमपर हमला करता तब हमारे शरीर में असाता और क्रोध का उदय होता है।

अब कितने ही कर्म पुद्गलों के परिणाम से उदय में आते हैं। जैसे- भोजन करते समय अधिक मात्रा में खाया हुआ अन्न पचता नहीं है, जिससे अजीर्ण हो जाता है, उसके फलस्वरुप बुखार, वमन, खांसी होना तथा टट्टियाँ (झाडा) आदि होने से वेदनीय कर्म उदय में आता है।

किस कर्म का रसोदय किसप्रकार से होता है? इसके उत्तर में

P. P. Ac. Gunratansuriji M.S. Jin Gun Aaradhak Trust

ने सर्व पापों का त्याग कर दिया है। अर्थात् सर्व विरती होने से वह पंडित कहलाता है। इसीप्रकार अमुक अंश तक विरती होने से पंडित और अमुक अंश तक विरती न होने से बाल, इसलिए वह बाल पंडित अर्थात् देश विरतीवाला कहलाता है।

अब ऊपर जो प्रदेशकर्म और अनुभाग कर्म बताये गये हैं, उनका अर्थ यह है :–

प्रदेश और अनुभाग का अर्थ

प्रदेश अर्थात् कर्मों के आठ वर्गणात्मक पुद्गल जो आत्मा

भगवानने फरमाया है कि–ज्ञानावरणीय कर्म का रसोदथ दस प्रकार से होता है। अर्थात् इस कर्म का उदयकाल जब सुरू होता है तब दस प्रकार के फल भोगने पड़ते हैं। वे निम्नानुसार हैं :–

१	श्रोत्रावरण	श्रोत्रेन्द्रिय	—	ज्ञानावरणीय
२	चक्षुरावरण	चक्षुरिन्द्रिय	—	ज्ञानावरणीय
३	घ्राणावरण	घ्राणेन्द्रिय	—	ज्ञानावरणीय
४	रसनावरण	रसनेन्द्रिय	—	ज्ञानावरणीय
५	स्पर्शावरण	स्पर्शेन्द्रिय	—	ज्ञानावरणीय

यहाँ श्रोत्रावरण, चक्षुरावरण, घ्राणावरण, रसनावरण और स्पर्शावरण ये पांच द्रव्येन्द्रिय जानना और शेष को श्रोत्रेन्द्रिय ज्ञानावरणीय, चक्षुरिन्द्रिय ज्ञानावरणीय, घ्राणेन्द्रिय ज्ञानावरणीय, रसनेन्द्रिय ज्ञानावरणीय और स्पर्शेन्द्रिय ज्ञानावरणीय इन पांचों को भावेन्द्रिय जानना।

इसका कारण यह है कि, एकेन्द्रिय जीवों को जीभ, नाक, चक्षु और

P. P. Ac. Gunratansuriji M.S. Jin Gun Aaradhak Trust

के असंख्यात प्रदेशों में ओतप्रोत हुए हैं। वह प्रदेशकर्म कहलाता है और उन्हीं कर्म प्रदेशो का उदयकाल या उदीर्णाकाल दरम्यान अनुभव किया जाता है। उसको अनुभाग कर्म कहते है। इन दोनों में प्रदेश कर्मों का भोग निश्चित है। ऐसा कहा गया है कि इन कर्मों का प्रदेशात्मक भाग नहीं भोगा जाता है। तथापि कर्म प्रदेशों

कान ये चारों इन्द्रिय नहीं होने से द्रव्येन्द्रिय कर्मो का आवरण कर्म उदय में है। वैसे लब्धि और उपयोग रुप भावेन्द्रियों का भी आवरण प्रायः करके होता है। यद्यपि बकुल आदि वृक्षों में भावेन्द्रियों का अनुभव अस्पष्ट रुप से दिखलाई देता है। फिर भीं द्रव्योंद्रियों का अभाव होने से वे वनस्पतियाँ पंचेन्द्रिय की गणना में नहीं आती हैं। इसप्रकार दो इन्द्रिय जीवों के घ्राण, चक्षु और कान का अभाव होने से तद् विश्यक ड्ञान का भी आवरण स्पष्ट है।

तीन इन्द्रियवाले जीवों के चक्षु और कान तथा चतुरिन्द्रिय जीवों के कान का अभाव होने से तद् विषयक ज्ञान का भी आवरण है।

द्रव्येन्द्रियों की प्राप्ति होनेपर भी उन–उन इन्द्रियों का उस प्रकार का रोग प्राप्त होनेपर प्रायः करके तारतम्य संयोग से इन्द्रियावरणीय कर्म का आवरण आ जाता है। जैसे कि–कुष्ठ आदि चर्मरोग के कारण स्पर्शेन्द्रिय ज्ञानावरणीय प्रायः उदय में आ जाता है। इसीप्रकार सभी इन्द्रियों के विषयमें जान लेना चाहिए।

पंचेन्द्रिय होनेपर भी जन्मांध अथवा अमुक रोग होनेपर आया हुआ अंधत्व या बधिरत्व भी यह सूचित करता है कि उन–उन इंद्रियोंपर आवरण आ गया है।

इस प्रकार जैसे हम ज्ञानावरणीय कर्म का रसोदय जान सकते हैं वैसे दूसरे कर्मो का रसोदय प्रज्ञापना सूत्र के २३ वें पद से जान लेना चाहिए।

P. P. Ac. Gunratansuriji M.S. Jin Gun Aaradhak Trust

का नाश तो नियम से होता ही है। अनुभाग कर्म भोगा भी जाता है और नहीं भी भोगा जाता है।

आगे के पुद्गल के संबंध में कहे गये हुए पुद्गल भूतकाल में थे। वर्तमानकाल में हैं और भविष्यकाल में जरूर रहेंगे। यहाँ पुद्गल का अर्थ परमाणु किया गया है। ※ १४

※ १४ भगवान ने फरमाया है कि–हे गौतम। पुद्गल परमाणु तीनों काल में शाश्वत है, क्योंकि जो 'सत्' होता है, वह क्षेत्र और काल को लेकर तिरोभाव रूप में अर्थात् रूपान्तर अवस्था को प्राप्त कर सकता है परन्तु सर्वथा नाश अवस्था को प्राप्त नहीं करता है।

प्रलयकाल में जो संसार को सर्वथा नाश मानते हैं, उनको हित-शिक्षा देते हुए देवाधिदेव भगवान ने कहा कि—परमाणु भूतकाल में थे, वर्तमानकाल में हैं और भविष्यकाल में रहेंगे। बेशक सामग्रीवश उनका रूपान्तर होता रहता है। जैसे मिट्टी के पिंड से कुंभार द्वारा विशेष प्रयत्न करने से घड़ा बनता है और वापस टूटने पर टुकडों के रूपमें हो जाता है। समय बीतने पर मिट्टी के द्रव्य में परिणत हो जाता है। क्योंकि मिट्टी द्रव्य 'सत्' है। (चाहे जैसे) घोर प्रलय काल में भी रुपांतर होता हुआ वह 'सत्' सर्वथां नाश नहीं पाता है।

प्रज्वलित दीपक पदार्थ के सहवास से तामस पुद्गल (अंधकार के पुद्गल) भी प्रकाशित होकर सब को प्रकाश देते हैं, और बाद में प्रकाशित हुए पुद्गल अमुक प्रयत्न से दीपक के बुझनेपर अंधकार रुप में परिणत हो जाते हैं। जो सामस पुद्गल हैं, वे तेजस्वी बन जाते हैं, और जो अभी तेजस्वी दिखलाई देते हैं, वे तामस रूप में भी परिणत हो जाते हैं।

जब एक ही जातिके परमाणुओं का रूपान्तर होता है। तब हम को

P. P. Ac. Gunratansuriji M.S. Jin Gun Aaradhak Trust

पुद्गल छद्मस्थ

अब छद्मस्थ के संबंध में यह बात है कि छद्मस्थ मनुष्य केवल संयम से, केवल संवर से, केवल ब्रह्मचर्य से और केवल प्रवचन माता से सिद्ध-बुद्ध तथा सब दुःखो के नाश करनेवाले न तो हुए हैं और न होते हैं। क्योंकि सिद्ध, बुद्ध मुक्त तो वही हो सकते हैं, जो अंतकर हैं---अंतिम शरीरवाले हैं। वे उत्पन्न ज्ञान-दर्शनधर, अरिहंत जिन केवली होने के पश्चात् सिद्ध होते हैं और वे ही पूर्ण कहलाते हैं।

अवधि ज्ञान के भेद

यहाँ एक बात ध्यान में रखने की है-कि 'छद्मस्थ' का अर्थ

ऐसा भास होता है कि–मानो नये उद्भूत न होते हों। और तिरोभाव प्राप्त करते समय हमको ऐसा लगता है कि मानो नाश हो गये हो।

जैन दर्शन दीपक के प्रकाश की तरह अंधकार को भी पुद्गल द्रव्यरुप मानता है। गर्दभ के शृंग के जैसे वह अंधकार प्रकाश के अभाव रुप में नहीं है। किन्तु अंधकार में श्यामशीतत्त्वादि गुण होने से द्रव्य रुप में है। इसलिए संसार, द्रव्य, पुद्गल और परमाणु शाश्वत ही है। किसी काल में भी पृथ्वी, पानी, अग्नि, वायु वनस्पति तथा जीवों का नाश सर्वथा नहीं होता है।

इसप्रकार 'सत् कदापि असत्' नहीं होता है। वैसे 'असत्' भी 'सत् रूप में नहीं होता है। यह सनातन सत्य है।

गधे के शृंग का अभाव है, वैसे किसी काल में भी न तो उसके शृंग की विद्यमानता किसी ने देखी और न किसी ने अनुभव किया। उसीप्रकार जीव तथा पुद्गलों से रहित संसार नहीं है। और जीव तथा पुद्गल से खाली भी नहीं है।

P. P. Ac. Gunratansuriji M.S. Jin Gun Aaradhak Trust

'अवधिज्ञान' रहित जीव समझना है। 'यह नहीं समझना चाहिये कि' जो केवल ज्ञानरहित है, वह छद्मस्थ है। यह अवधि ज्ञान देवों और नैरयिकों को जन्म से ही होता है और मनुष्य तथा तिर्यंचों के प्रतिबंधक कर्म नाश होनेपर तथा ठंडा पड़नेपर होता है। इस वधि ज्ञान के छः भेद बताये गये हैं–

अनानुगमिक, आनुगमिक, हीयनामक, वर्धमानक, अनवस्थित और अवस्थित। ※ १५

※ १५ इसका सार इतना ही है कि–संयम, संवर, ब्रह्मचर्य और अष्ट प्रवचन माता की आचरणा केवल ज्ञान प्राप्त करने के लिए कारणभूत बन सकती है। किन्तु मोक्षगति नहीं दे सकती है। क्योंकि अनंत संसाररुपी कारावास में केवल ज्ञान प्राप्त होने के बाद ही मोक्ष प्राप्त करने के लिए जीव भाग्यशाली बनेगा और उसके लिए चरमावर्त की अन्तिम भूमिका में जीवात्मा को प्रवेश करने की आवश्यकता है। महावीर स्वामी भगवान ने भी तपश्चर्या, साधना और ध्यानरुपी अग्नि में कर्मों को भस्मीभूत करके केवल ज्ञान प्राप्त किया और तत्पश्चात् उन्हें मोक्ष प्राप्त हुआ।

॥ चतुर्थ उद्देशा समाप्त ॥

P. P. Ac. Gunratansuriji M.S. Jin Gun Aaradhak Trust

नरकावास

इस पांचवे उद्देश में पृथ्वीएं, पृथ्वीओं में निरयावास, असुरकुमारो के आवास, पृथ्वीकायिक आवास, पृथ्वी आदि जीवावासों में दस स्थान, अवगाहना, संस्थान, शरीरसंघयण, लेश्या, ज्ञान, असुरकुमारावासों के स्थिति-स्थान, पृथ्वीकायिको के स्थिति-स्थान-द्वीन्द्रियादि, पंचेन्द्रियतिर्यंच तथा मनुष्य के स्थानों से पूर्ण यह उद्देश है।

सार यह है कि, पृथ्वीएं सात है। रत्नप्रभा, शर्कराप्रभा, वालुकाप्रभा, पंकप्रभा, धूमप्रभा, तमःप्रभा, तमस्तमप्रभा.

रत्नप्रभा पृथ्वी के तीन कांड है। रत्नकांड, जलकांड और पंकवांड। रत्नकांड में नरकावासवाले स्थान को छोड़कर दूसरे स्थानों में इन्द्रनीलादि रत्न हैं; उन रत्नों की प्रभा (कान्ति) जहां जहां पर पड़ती है उसी का नाम रत्नप्रभा शेषपृथ्वीओं का भी नामानुसार अर्थ घटा लेना चाहिये।

इन सात पृथ्वीयों में नरकवास है। उनकी संख्या अलग अलग है। वे इसप्रकार :–

रत्नप्रभा में ३० लाख, वालुका प्रभा में १५ लाख, धूमप्रभा में ३ लाख, शर्कराप्रभा में २५ लाख, पंकप्रभा में १० लाख, तमः

P. P. Ac. Gunratansuriji M.S. Jin Gun Aaradhak Trust

प्रभा में ९९९९५ हजार और तमस्तमः प्रभा में ५, इसी प्रकार असुरकुमारों का आवास –

असुरकुमारों का ६४ लाख, नागकुमारों का ८४ लाख सुवर्णकुमारों का ७२ लाख, वायुकुमारों का ९६ लाख और द्वीप कुमार, दिक् कुमार, उदधिकुमार, विद्युत्कुमार, स्तनितकुमार और अग्निकुमार ये छः युगलक के ७६ लाख आवास हैं।

पृथ्वीकायिकादि के आवास

पृथ्वीकायिकों के असंख्येय लाख आवास कहे हैं और इसी प्रकार ज्योतिषिकों के भी असंख्येय लाख विमानावास है।

सौधर्मादि कल्पों में अनुक्रम से ३२ लाख, २८ लाख, १२ लाख, ८ लाख, ४ लाख, ५० हजार, ४० हजार, विमानावास हैं। सहस्रार देवलोक में ६ हजार आनत-प्राणत में ४ सौ, आरण-अच्युक में ३ सौ, १११ विमानावास अधरतन में, १०७ बिचले में (मध्यमें) और १० अपर में है। अनुत्तर विमान पांच ही है।

दशस्थान

पृथ्वी वगैरह जीवावास में दस प्रकार के स्थान कहने में आये हैं। स्थिति, अवगाहना, शरीन, संहनन, संस्थान, लेश्या, दृष्टि, ज्ञान, योग और उपयोग।

उपरोक्त स्थिति आदि के १० प्रकार के स्थान पृथ्वी आदि

आवास में कितने हैं। यह बताया गया है। संक्षेप में वे इस प्रकार हैं :–

एक–एक निरयावास में रहनेवाले नैरयिकों की उम्र कम से कम दस हजार वर्ष की है।

इन निरयावास में रहनेवाले नैरयिक क्रोधोपयुक्त, मानोयुक्त, मायोपयुक्तः और लोभोपयुक्त हैं क्या ?

इसके उत्तर में बहुत विस्तार से भेद बताये गये हैं, उस को देख लेना चाहिये।

इसके बाद अवगाहना स्थान बताये गये हैं। अर्थात् इन नैरयिकों की अवगाहना स्थान असंख्येय हैं। जितनी अवगाहना उतने कम से कम अंगुल के असंख्येय भाग। एक प्रदेशाधिक, दो प्रदेशाधिक इसप्रकार असंख्येय प्रदेशाधिक समझना चाहिये।

नैरयिकों के तीन शरीर बताये गये हैं–वैक्रिय, तैजस, और कार्मण।

नैरयिकों के संघयण नहीं होते हैं। उनके शरीर में हड्डियाँ, नसें और स्नायु नहीं होते है और शरीर–संघातरुप से जो पुद्गल परिणत होते हैं वे अनिष्ट, अकांत, अप्रिय, अशुभ आर अमनोज्ञ होते हैं।

नैरयिकों के शरीर के संस्थान के संबंध में कहा जाता है कि नैरयिकों के शरीर दो प्रकार के हैं–भवधारणीय और उत्तर वैक्रीय

P. P. Ac. Gunratansuriji M.S. Jin Gun Aaradhak Trust

भवधारणीय अर्थात् जीवन पर्यन्त रहनेवाला शरीर। भवधारणीय शरीर और उत्तर वैक्रिय शरीर दोनों हुंडक संस्थानवाले कहे हैं। ※ १६

लेश्यादि

रत्नप्रभादि सात पृथ्वियों में छः लेश्याओं में से कौन कौनसी लेश्याएं हैं? उनके उत्तर में कहा है कि पहली और दूसरी में कापोत लेश्या, तीसरी में कापोत और नील लेश्या। चौथी में नील लेश्या, पांचवीं में नील और कृष्ण लेश्या, छठवी में कृष्ण लेश्या और सातवी में परम कृष्ण लेश्या है।

इन रत्नप्रभादि पृथ्वियों में रहनेवाले नैरयिक सम्यग्दृष्टि, मिथ्यादृष्टि और सम्यग्मिथ्यादृष्टि, इसतरह से इनके तीन प्रकार

※ १६ नरकभूमियाँ उत्तरोत्तर एक दूसरे से निम्नस्तर की हैं, इस प्रकार संख्या में कुल सात ही हैं। जिस स्थलपर हम बैठे हैं वहाँ से एक लाख अस्सी हजार योजन मोटाईवाली (जाड़ाईवाली) पहली नरकभूमि है। नीचे की तथा ऊपर की ओर एक एक हजार योजन छोड़कर बाकी के १७८००० योजनावाली नरकभूमि में एक महल के माले के समान कुल १३ प्रस्तर माला हैं और उनमें ३० लाख नरकावास हैं। अर्थात् पहली नरकभूमि में उत्पन्न होने वाले नारकी जीवों के प्रायः करके ३० लाख स्थान (आवास) हैं। इन सात भूमिओ में प्रायः करके ८४ लाख आवास हैं।

जघन्य से पूर्व नारकजीवों की जो दस हजार वर्ष की आयुष्य मर्यादा है, वे १३ प्रस्तर में से पहले प्रस्तर को लक्ष्य में रखकर है। उनकी उम्र कम से कम १० हजार वर्ष की होती है। उनमें से किसी की उम्र १० हजार वर्ष से अधिक एक–दो–तीन उत्तरोत्तर असंख्य समय तक वृद्धि रुप में

P. P. Ac. Gunratansuriji M.S. Jin Gun Aaradhak Trust

हैं। तथा वे जीव ज्ञानी और अज्ञानी दो प्रकार के है। जो ज्ञानी होते हैं उनको तीन ज्ञान नियमपूर्वक होते हैं। और जो अज्ञानी होते हैं उनको तीन अज्ञान भजनापूर्वक होते हैं। नैरयिक जीव मनोयोगी, वचनयोगी और काययोगी, इसतरह तीन प्रकार के हैं। तथा वे जीव साकारोपयुक्त और अनाकारोपयुक्त भी है।

असुरकुमारादि के संहनन, संस्थान और लेश्या नारकों से भिन्न होती है। उनके शरीर संघयण बिना के होते हैं। परंतु उनके शरीर संघात रूप से वे ही पुद्गल परिणित होते हैं, जो इष्ट और सुंदर होते हैं।

उनका जो भवधारणीय स्थायी शरीर हैं वे समचोरस संस्थान रुप स्थित है, और जो शरीर उत्तरवैक्रिय रुप है। वे किसी एक संस्थान रुप में रहे हुए होते हैं। उनकी लेश्याएं चार होती हैं- कृष्ण, नील, कापोत और तेज लेश्या।

होती है। वे सब विशेष रुप से क्रोधोपयुक्त ही होते हैं। अर्थात् नारक जीवों की क्रोध संज्ञा अधिक होती है। पापकर्मी होनेसे नारकजीव अनिष्ट, अकांत, अप्रिय, अशुभ और अमनोज्ञ पुद्गलों के शरीर संघातवाले ही होते हैं। अर्थात् उन जीवों के शरीर इष्ट नहीं होते हैं, मनोहर नहीं होते है, प्रिय नहीं होते हैं, शुभ नहीं होते हैं और मनोज्ञ नहीं होते हैं।

सम्यक्दर्शनवाले जो जीव नरक में गये हैं, उनको मतिज्ञान, श्रुतज्ञान और अवधिज्ञान होता है। और संज्ञी अथवा असंज्ञी अवस्था में से मिथ्यात्व (सहित) लेकर जो नारक बने हैं, उनको मति अज्ञान, श्रुत अज्ञान और विभंग ज्ञान होता है।

P. P. Ac. Gunratansuriji M.S. Jin Gun Aaradhak Trust

पृथ्वीकायिका के तीन शरीर बताये गये हैं–औदारिक, तैजस और कार्मण।

पृथ्वीकायिकों के शरीर संघात रुप में सुंदर और भद्दे दोनों प्रकार के पुद्गल परिणत होते हैं। तथा वे हुंड संरथानवाले हैं, यह विशेषता है। उनको लेश्याएं भी चार हैं। वे निश्चयरुप से मिथ्यादृष्टि है। वे ज्ञानी नहीं हैं। किन्तु अज्ञानी हैं। दो अज्ञान ही होते हैं। वे केवल कामयोगी है। इसीप्रकार अप्कायिक जीवों के संबंध में भी जान लेना चाहिए।

वायुकादिक के चार शरीर बताये गये हैं—औदारिक, वैक्रिय, तैजस और कार्मण।

वनस्पतिकायिकों कों पृथ्वी कायिकों के समान जान लेना चाहिए। विकलेन्द्रिय दो इन्द्रिय, तीन इन्द्रिय, चौरिन्द्रिय (चतुरिन्द्रिय) की रिथति पृथ्वीकायिकों के समान जाननी चाहिए। विशेष यह है कि उनमें तेजोलेश्या नहीं होती है। वे सम्यग्दृष्टि और मिथ्यादृष्टिवाले होते हैं। वे ज्ञानी और अज्ञानी भी हैं।

जो ज्ञानी हैं, उनको दो ज्ञान होते हैं--मतिज्ञान और श्रुतज्ञान। जो अज्ञानी हैं उनको दो आज्ञन हैं--मति अज्ञान और श्रुत अज्ञान। वे वचनयोगी और कामयोगी होते हैं परन्तु मनोयोगी नहीं।

पंचेन्द्रिय तिर्यंचों की रिथति नारकसूत्रों (जीवों) के सदृश जानना चाहिए। विशेषता यह है कि इनके चार शरीर होते हैं--

औदारिक, वैक्रिय, तैजस और कार्मण। उनको छः संघयण होते है, और संस्थान तथा लेश्या भी छः होते है।

मनुष्यों की स्थितिमें

मनुष्यों के पांच शरीर होते है-औदारिक, वैक्रिय, आहारक तैजस और कार्मण, मनुष्यों के ये छः संघयण, ये छः संस्थान आर ये छः लेश्याएं होती है।

मनुष्यो के ज्ञान पांच होते है। आभिनिबोधक (मतिज्ञान) श्रुतज्ञान, अवधिज्ञान, मनः पर्यवज्ञान और केवलज्ञान। ※ १७

※ १७ पांच शरीर में से आखिर (अन्तिम) के दो शरीर सूक्ष्म होते हैं और जीवात्मा के साथ अनादिकाल से संबंधवाले हैं। लोहे के गोले में अग्नि जैसे प्रति अणु प्रवेश करती है, वैसे प्रति समय में किये जाते हुए कर्म भी आत्मा के प्रत्येक प्रदेश में चिपके हुए है। वे अनंतानंत कर्मों का समूह ही कार्मण शरीर कहा जाता हैं जो अत्यन्त सुक्ष्म और अदृश्य है। फिर भी उन में अनंत शक्ति रही हुई होने से जीवात्मा को एक भव में से दूसरे भव में परिभ्रमण कराता है। जिस समय पहले का भव छोड़कर यह जीव दूसरे भव को प्राप्त करने के लिए माता की कुक्षि में प्रवेश करता है। उसी समय शुक्र और रज को 'आहार पर्याप्ति' द्वारा आहार रुप में ग्रहण करता है और ओज शक्ति से ग्रहण किये गये आहार को तैजस शरीर द्वारा पचाता है, इसलिए ये दोनों शरीर सूक्ष्म और अनादिकालीन हैं।

जब औदारिक शरीर में हड्डियाँ, मांस, चरबी, मल, मूत्र तथा पसीना आदि होने के कारण वह भोग्य है। क्योंकि किये हुए कर्मो को भोगने के लिए शरीर धारण करना पडता है। यह शरीर उदार तत्त्वों से भरा हुआ है। इस कारण कभी यह क्षीण होता है और कभी बढ़ता है। तंदुरुस्त तथा

P. P. Ac. Gunratansuriji M.S. Jin Gun Aaradhak Trust

वाण व्यंतरादि संबंधी

भवनवासी और व्यंतरदेवो में समानता है। किन्तु ज्योतिष्कादि का वैसा नहीं है ! ज्योतिष्कादि के १० भेद हैं !

ज्योतिष्कों को एकही तेजो लेश्या होती है। उनको तीन ज्ञान और तीन अज्ञान होते हैं।

वैमानिकों को तेजोलेश्यादि तीन लेश्याएं होती हैं। और तीन ज्ञान और तीन अज्ञान होते हैं।

बीमार (रोगी) बनता है। कर्मों को बांधना भी जानता है और उन के मूल को जलाकर भस्म करना भी जानता है। इसलिए मोक्ष प्राप्ति के लिए यह औदारिक शरीर ही हमारे लिए उपयोगी हैं। वैक्रिय शरीर में हड्डियाँ तथा मांस नहीं होते है। वह पुण्यकर्मी देवतावों को पुण्यकर्म भोगने के लिए और पापकर्मी नारकों को पाप भोगने के लिए होता है। वैक्रिय शरीरधारी देवताओं के पास अनेक महान शक्तियाँ होती हैं, किन्तु सिर्फ मोक्ष प्राप्त कराने में समर्थ नहीं होती है।

आहारक शरीर औदारिक और वैक्रिय की अपेक्षा सूक्ष्म होता है, वह अप्रमत्त ऐसे उपयोगवंत संयमधारी चतुर्दश पूर्वधारी को ही होता हैं। संशय के निवारण के लिए वे इस शरीर को धारण करते हैं।

संघयण अर्थात् हड्डियों की रचना और संस्थान अर्थात् शरीर का आकार केवल ज्ञान की प्राप्ति के लिए वज्रऋषभनाराच संघयण की आवश्यकता होती है।

॥ पंचम उद्देशा समाप्त ॥

P. P. Ac. Gunratansuriji M.S. Jin Gun Aaradhak Trust

सूर्य का दिखना

इस उद्देशक में सूर्य का दिखलाई देना, सूर्य के प्रकाश क्षेत्र की और अस्त होने की लवाई, लोकान्त-अलोकान्त की स्पर्शना, जीवों द्वारा की जानी हुई क्रियाओं का विचार, लोक और अलोकादि में पहला कौन, वाद में कौन ? लोक स्थिति के प्रकार और सूक्ष्म अप्काय का विचार आता है।

इस प्रकारके भिन्न-भिन्न विषय संबंधी प्रश्न हैं। इसमें कितनी ही बातें बल्कि पूरे प्रकरण की विगत वैज्ञानिक है।

सारांश यह है कि-

जितनी दूर से उदय होता हुआ सूर्य दिखलाई देता है उतनी दूर से सूर्य अस्त होता हुआ भी दिखलाई देता है। कहा गया है कि-सूर्य सबसे अंदरके मंडल में ४७२६३ से कुछ अधिक योजन जितनी दूर से उदयावस्था में दिखाई देता है, उतनी ही दूर से अस्त होते समय भी दिखलाई देता है। इसी प्रकार उदय होता हुआ सूर्य जितने क्षेत्र में प्रकाश देता है, गर्मी पहुँचाता है। उतने ही क्षेत्र में अस्त होता हुआ सूर्य भी प्रकाश देता है। ऐसा कहा गया है कि सूर्य की गर्मी से प्रभावित छः दिशाएं हैं।

संसार में लोक और अलोक, इसप्रकार दो पदार्थ माने गये

P. P. Ac. Gunratansuriji M.S. Jin Gun Aaradhak Trust

हैं। यह लोक और अलोक, ये दोनों एक दूसरे से कितनी दूर– किस प्रकार रहे हुए हैं, इन संबंधी प्रश्नों से यह स्पष्ट होता है।

लोक का अंत इस अलोक के अंत को और अलोक का अंत इस लोक के अंत को स्पर्श करता है, और वह छःओंदिशा में स्पर्शित है। इस प्रकार द्वीप का छोर समुद्र के छोर को, समुद्र का छोर द्वीप के छोर को, पाणीका छोर, जहाज के छोर को और जहाज का छोर पानी के छोर को स्पर्श करता है।

यह विषय इन प्रश्नों की वृत्ति में सम्यकृतया समझाया गया है, इससे इसे अच्छी तरह ध्यानपूर्वक समझना चाहिए।

अब क्रियाके विचार में समझाया जाता है कि–जीवों द्वारा प्राणातिपातादि क्रिया की जाती है, वह क्रिया निर्व्याघात से छः दिशाको और व्याघातके सहारे से कदाचित् तीन–चार या पांच दिशा को स्पर्श करती है। जो क्रिया की जाती है वह कृत हैं और वह आत्मकृत है। वह न तो पर कृत है न तदुभयकृत है। वह क्रिया अनुक्रमपूर्वक कृत है, और जो कृत क्रिया की जाती है और की जायगी। वह सब अनुक्रमपूर्वक कृत है, किन्तु अनुक्रमके सिवाय कृत नहीं।

नैरयिकों के द्वारा भी क्रिया की जाती है। और वह नियमितरुपसे छः दिशाओं में की जाती है।

इन नैरयिकों के समान वैमानिक तक सब केवल ऐकेन्द्रिय को छोडकर। जीवों के संबंध में समझना है

इस प्रकार प्राणातिपात के समान मृषावाद वगैरह अठाहर पापस्थानक के विषय में चौवीस दंडक कहते है ※ १८

पहले कौन और बाद में कौन ?

श्री गौतम स्वामी को संबोधित करके इन सब प्रश्नोत्तरों के होने के बाद यहाँ भगवान महावीर देव का रोह नामक शिष्य प्रश्न करता है और भगवान इसका उत्तर देते हैं।

संसार में जो लोक और अलोक, जीव और अजीव, लोकान्त और अलोकान्त, इसप्रकार दोनो वस्तुएँ हैं। इन दोनो में पहला कौन और दूसरा कौन ? ये मुख्य प्रश्न है। भगवान् ने उत्तर देते हुए बताया है कि–

लोक और अलोक, जीव और अजीव, भव सिद्धिक और अभवसिद्धिक, संसार और मोक्ष, लोकांत और अलोकान्त, इन जुडे हुए शब्दों में एक दूसरे से पहले भी है और पीछे भी है।

※ १८ प्राणाति पातादिक क्रियांओं द्वारा बंधाते हुए कर्म आत्मकृत ही होते हैं। संसार में हम सव प्रत्यक्षरुप से देख सकते हैं कि अनंतानंत शरीर में रहा हुआ जीवात्मा भी एक दूसरे के आत्मा से सर्वथा भिन्न है। जीव अपने द्वारा किये हूए कर्मों को भुगतता है। यह अनुभव असत्य किस प्रकार हो सकता है ? 'सम्पूर्ण लोक में आत्मा एक ही है।' यह मत जिस किसी पंथ का हो। परन्तु व्यवहार में असत्य सावित (प्रमाणित) होता हुआ मत किसी को भी स्वीकार नहीं हो सकता है। इसलिए जो जीव हिंसा, झूठ, चोरी और मैथुन कर्म करेगा उसी जीव को उस का परिणाम फल भोगे विना मुक्ति नहीं है।

कारण यह है कि दोनों वस्तुएँ शाश्वत हैं, अनादि हैं। अर्थात् अमुक पहले और अमुक पीछे इसप्रकार कहना असंभव है। जिस प्रकार मुर्गी और अंडा इसमें पहले कौन और बाद में कौन? मुर्गी के बिना अंडा नहीं और अंडे के बिना मुर्गी नहीं। इसी प्रकार सब जानना चाहिये।

तथा अवकाशान्तर, वात, घनोदधि, पृथ्वी, द्वीप, सागर, क्षेत्र, नैरयिकादिजीव, अस्तिकाय, समय, कर्म, लेश्या दृष्टि, ज्ञान, दर्शन, संज्ञा, शरीर, योग, उपयोग, द्रव्यप्रदेश, पर्यवों, काम इत्यादि के लिए पहले और बाद (पीछे) का प्रश्न स्पष्ट हो जाता है। अर्थात् जो वस्तुएँ अनादि हैं। इसके लिए पहले और पीछे का क्रम कहा नहीं जा सकता है। ※ १९

※ १९ भगवान महावीर स्वामी का 'रोह' नाम का अणगार अंतेवासी था। वह परोपकारशील, भाव मार्दव का स्वामी, विनयवान, (विशेषेण नयति दूरी करोती रागादि शत्रून् सो विनयः) कषायो से मुक्त तथा शुद्धोपयोग से कषायो को कमजोर बनानेवाला, गुरुकुलवासी और आठ प्रकार के मद से रहित ऐसा 'रोह' नाम का अणगार एक समय में भगवान महावीर के चरणों में समुपस्थित हुआ, और अपने मन में रही हुई शंकाओं का समाधान किया। ये सभी बातें इन प्रश्नोंत्तर में अत्यन्त स्पष्ट हैं।

जिस समय भगवन महावीर स्वामी विचरते थे। तब जो दूसरे अेकान्त वादि दार्शनिक थे। उनके मत मतांतरो के कारण 'रोह' नाम के अणगार के मन में निम्नानुसार शंकाये थी।

(१) प्रत्यक्ष दिखलाई देता हुआ और तीन काल में अनुभव कराता हुआ यह लोक (संसार) क्षणस्थायी किस रीतिसे बन सकता है?

(२) "**ज्ञानादन्योऽर्थः परः**–ज्ञान से भिन्न पदार्थ भी जिसको

P. P. Ac. Gunratansuriji M.S. Jin Gun Aaradhak Trust

लोकस्थिति

रोह अणगार द्वारा इन प्रश्नोत्तर के बाद गौतमस्वामी के प्रश्न लोकस्थिति के संबंध में पुनः शुरू होते हैं।

गौतमस्वामी भगवान से पूछते हैं कि, लोकस्थिति कितने प्रकार की हैं ? उनके उत्तर में भगवान आठ प्रकार की बताते हुए कहते हैं । वह निम्नानुसार हैं–

हम सब प्रत्यक्ष देखते है । वे सब 'असत्' किस प्रकार हो सकते हैं? ज्ञाना द्वैतवादियों का यह कथन 'ज्ञानमेव तत्त्वम्' यह सत्य रुप किसप्रकार बनेगा ? इसलिए ज्ञान को छोड़कर पर पदार्थ भी सत्य रुप जो दिखलाई देते हैं । उनका अपलाप करना, यह न्यायसंगत नहीं है ।

(३) अन्यों द्वारा कृत शास्त्र और वचन सत्य है ? या प्रत्यक्ष दिखलाई देता हुआ संसार और व्यवहार सत्य स्वरुप हैं ।

(४) संसार आदि में नहीं था और बाद में ब्रह्मा ने रचा, यह बात श्रुति, युक्ति और अनुभूति के योग्य किस प्रकार बनेगी ।

(५) निराकार परमात्मा किन साधनो से संसार को बनाएगा और बनाने के बाद प्रलयकाल में नाश किस लिए करेगा ?

(६) क्या संसार अनादि निधन होगा ? क्या शाश्वत होगा ? पहले लोक होगा या पहले अलोक होगा ? इत्यादि अनेक शंकाओंके कारण विक्षब्ध मनका स्वामी रोहक अणगार भगवान के चरण कमलो में उपस्थित हुआ, और उसकी शंकाएँ भगवान ने निवारण कीं ।

यहाँ गुरुओं के पास शंकाओं का समाधान न होने के कारण मनुष्य एकान्तपक्षी बनकर अपनी हानी करेगा । इसलिए रोह के जैसे श्रद्धालु बनकर विशिष्ट गुरुओं की सेवामें समाधान प्राप्ति के लिए प्रयत्नशील रहना चाहिए । प्रश्न और जवाब सर्वथा स्पष्ट हैं ।

P. P. Ac. Gunratansuriji M.S. Jin Gun Aaradhak Trust

वायु आकाश के आश्रित है ।
उदधि (समुद्र) वायु के आश्रित है ।
पृथ्वी उदधि के आश्रित है ।
जीव (त्रस-स्थावर) पृथ्वी के आश्रित है ।
अजीव (जड पदार्थ) जीव के आश्रित है ।

अजीवों द्वारा जीव संग्रहीत हैं और जीवों द्वारा कर्म संग्रहीत हैं ।

यहाँ इस के संबंध में एक उदाहरण दिया जाता है कि चमडे की मशक पवन द्वारा फुलाई जाती है । बाद में उस मशक का मुख बांधकर बीच में दोरी बांधी जाय और उपर के भाग से हवा नीकालकर पानी भरा जाय, फिर बीचली दोरी खोलने पर भी पानी हवा के उपर स्थिर रहेगा । इसीप्रकार ऊपर लिखे अनुसार एक दुसरे से परस्पर संबंध जुडा हुआ है । ※ २०

※ २० लोक स्थिति (संसार मर्यादा) आठ प्रकार की वताई गई है । ईषत् प्राग्भारा पृथ्वी को छोड़कर बाकी की सात पृथ्वीयां, जीव, पुद्गल किसपर आश्रित है ? इस विषय का स्पष्टीकरण करते हुए भगवान ने फरमाया है कि पृथ्वी उदधि पर आश्रित है। उदधि वायुपर आश्रित है और वायु आकाशपर आश्रित है, और आकाश सर्व वस्तुओं का आधार होने से बिना आधार का है । जिस जमिनपर हम बैठे हुए हैं। वह १८०००० योजन मोटाईवाली पहिली पृथ्वी है । उसके खरभाग, पंकभाग और जल भाग, इस प्रकार तीन भागों में विभाजित है ।

उनमें १६००० हजार योजन मोटाईवाला खरभाग है। उसके नीचे ८४ हजार योजन मोटाईवाला पंकभाग है और उसके नीचे ८० हजार योजन

सूक्ष्म स्नेह काय

इस प्रकरण के उद्देशा के अंत में सूक्ष्म स्नेह काय एक प्रकार का पानी, इसके संबंध में प्रश्न हैं ? इसप्रकार का पानी माप-पूर्वक गिरता है क्या ? उत्तर में भगवान कहते है कि, हाँ गिरता हैं। ऊँचा गिरता है, नीचा गिरता है और तिरछा गिरता है। यह

जाड़ाईवाला जलभाग है। उसके नीचे घनोदधिवलय है। बादमें घनवात वलय है। बादमें घनवातवलय और उसके नीचे तनवात वलय है, और उसके बाद असंख्य करोड़ योजन मापवाला आकाश है। उसके पश्चात् दूसरी पृथ्वी है। उसके नीचे घनोदधि, घनवात, तनवात आकाश तक सात पृथ्वियों का यह क्रम शाश्वत है। जिसे अधोलोक कहते हैं। उसमें भवन-पति के देव और नारक जीव रहते हैं।

खरभाग के उपर तिरछा लोक है। जिसमें त्रस और स्थावर जीव रहते हैं।

अजीव (जड़पदार्थ) जीवाश्रित है। जैसे हमारा शरीर जो जड़ है वह जीव के आधारपर रहा हुआ है। इसके अनुसार जितने शरीर हैं वे सब जीवाधीन है और जीव कर्मो के आधारपर हैं। क्योंकि किसी काल में भी कर्म बिना जीव होता ही नहीं है। इससमय में भी नहीं और जबतक सिद्धशिला (ईषत्प्राग्भारा) को प्राप्त नहीं होता है। तब तक जीव बिना कर्म के नहीं रह सकेगा।

अनंत दुःखों से भरपूर इस भयंकर संसार में भटकते हुए जीवों को कर्मराजा ने अपने आधीन किया है और कर्मों ने जीव का संग्रह किया हैं।

इसप्रकार शाश्वती लोक स्थिति में यत्किंचित हेर-फेर (परिवर्तन) करने की शक्ति किसी में नहीं हैं। चक्रवर्ती, वासुदेव, बलदेव और तीर्थंकर भी लोकस्थिती के आधीन है।

P. P. Ac. Gunratansuriji M.S. Jin Gun Aaradhak Trust

सूक्ष्म अप्काय, स्थूल अप्काय (पानी) के समान परस्पर समायुक्त होकर नहीं रहता है। इसका शीघ्र ही नाश हो जाता है। ※२१

केवल ज्ञान के स्वामी भगवान महावीर स्वामी की यथार्थता निर्णीत हो जाने के बाद पृथ्वी शेषनाग के आधारपर स्थित है या कछुअ के आधार पर स्थित है। यह बालचेष्टित वाणी हमको किसप्रकार रंजन कर सकती है ? पृथ्वी के नीचे जो जल है वह द्रवरूप नहीं, बल्कि घनरूप है। इसलिए पृथ्वी के नीचे जो समुद्र है वह घनोदधि कहलाता है। जबकि ईषत्प्राग्भार आकाश के आधारपर स्थित है। जैसे जीव पृथ्वी के आधारपर रहते हैं वैसे पर्वत और विमान आकाश के आधारपर स्थिर हैं।

※ २१ सूक्ष्मस्नेहकाय (अप्काय) के रक्षा के लिए संयमधारियों को तथा पौषध और सामायिक व्रतवालों को काल के समय बाहर जाते आते सिर पर कम्बली रखने की आज्ञा है। क्योंकि यही संयम धर्म है अतः जीव मात्र की रक्षा करनी चाहिए।

वैसे ही काल के समय वार्निश किये हुए पात्र वगैरह भी बाहर खुले स्थान में नहीं रखने चाहिए। क्योंकि चिकनाहट के कारण जीव हत्या होना संभव है।

॥ छठवा उद्देशक समाप्त ॥

P. P. Ac. Gunratansuriji M.S. Jin Gun Aaradhak Trust

नैरयिकों की उत्पत्ति

इस उद्देशक के प्रारंभ में नारकी के जीवों की उत्पत्ति, आहार, उनका उद्वर्तन और बादमें विग्रह गति और देवच्यवन संबंधी थोडेसे प्रश्नोत्तर देकर गर्भ विचार के संबंध में लिखा जाता है। गर्भ विचार अत्यन्त विचारणीय विषय है और विज्ञान के साथ उसका मेल कितना है, यह उन विषय के विद्वानों को विचार करना चाहिए। सम्पूर्ण उद्देशक का सार यह है-

नारकी में पैदा होता हुआ जीव सब भाग द्वारा सब भागका आश्रय लेकर उत्पन्न होता है। वह सब भागों द्वारा एक भाग का आश्रय लेकर आहार करता है। अथवा सब भागों द्वारा सब भागों का आश्रय लेकर आहार करता है। इसीप्रकार इन जीवों के उद्वर्तमानके विषय में जानकारी प्राप्त : ी है।

तत् (उसके) पश्चात् जीवों की गति के संबंध में कहा जाता है कि-जीव या अनेक जीव कदाचित् विग्रहगति को प्राप्त होते हैं, और कदाचित् अविग्रह गतिको प्राप्त होते हैं। नैरयिकों के संबंध में कहा है कि-वे सब अविग्रह गति को प्राप्त हैं। अथवा बहुतसे अविग्रह गति को प्राप्त और एक आध विग्रह गति को प्राप्त अथवा अनेक अविग्रह गतिको प्राप्त और अनेक विग्रहगति को प्राप्त-इस

P. P. Ac. Gunratansuriji M.S. Jin Gun Aaradhak Trust

प्रकार तीन भांगे जीव और एकेन्द्रियको छोडकर सबके विषय में समझना चाहिए। ※ २२

※ २२ स्थूल बुद्धि के मालिक इसप्रकार कहते हैं कि–संसार का स्वरुप स्वप्न सदृश है और जीव पानी में उत्पन्न बुलबुले के जैसे हैं। दया के सागर महावीर स्वामी उनको उपदेश देते हुए कहते हैं कि–जागृत होने के पश्चात् स्वप्न के दृश्य चाहे भोगने में न आवे फिर भी संसार तो प्रत्यक्ष भोग्य हैं। जिसका प्रत्येक पदार्थ हमारे भोगने के लिए है और इस जीवात्मा को उनके भोगने में अपूर्व आनन्द आता है। इसप्रकार प्रत्यक्ष अनुभव किया जाता हुआ संसार स्वप्न के जैसे किसप्रकार बन सकता है। इसलिए संसार और संसारी तथा चार गति और चारों गतियों में खेलकूद के मैदान (आंगण) के गेंद के समान ये जीवात्मा भी शाश्वत ही है।

जैन शासन में एक भव में से दूसरे भव में जाने के लिए यह पद्धति है।

(१) विग्रह गतौ कर्मयोगः।

(२) अनुश्रेणि गतिः।

(३) अविग्रहा जीवस्य।

(४) विग्रहवतीच संसारिणः प्राक् चतुर्भ्यः।

(५) एक समयोऽविग्रहः।

(६) एकं द्वौ वाऽनाहारकः।

त्रिकालाबाधित इन जैन सूत्रों से पुनर्जन्म सिद्ध होता है।

एक शरीर को छोड़ने के पहले जीव मात्र को आगामी भव के लिए आयुष्यकर्म, गतिनामकर्म, तथा उस गति में ले जानेवाले आनुपूर्वी नामकर्म की उपार्जना अवश्यमेव करनी होती है। तत्पश्चात् ही हमारा यह वर्तमान शरीर जीवात्मा से छूट जाता है और जीवात्मा अपने किये हुए पाप और पुण्य सहित दूसरा अवतार धारण करता है।

P. P. Ac. Gunratansuriji M.S. Jin Gun Aaradhak Trust

गर्भ विचार

इसके बाद गर्भ विचार जो महत्त्वपूर्ण प्रकरण होने से उस पर मूलसूत्र के अनुसार सम्पूर्ण विवेचन किया जाता है। गर्भ में उत्पन्न होता हुआ जीव इन्द्रियों से युक्त तथा उसके बिना भी उत्पन्न होता है। यह अपेक्षाकृत वचन है। गर्भ में उत्पन्न हुए जीव के स्पर्श रसनादि द्रव्येन्द्रियाँ नहीं होती हैं अत: जीव इन्द्रियरहित हैं और भावेन्द्रियाँ होती है, इसलिए इन्द्रियवान भी कहा जाता है।

इसीप्रकार गर्भ में उत्पन्न हुए जीव शरीर रहित तथा शरीर वाले भी होते हैं। औदारिक, वैक्रिय तथा आहारक ये तीन

अनंत दुःखों से भरपूर इस संसार का समूल उच्छेद करनेवाले सिद्धात्मा को आनुपूर्वी नामकर्म बांधने की आवश्यकता नहीं होती है। उससे वे ऋजु (अविग्रह) गति से उसी समय सिद्धशिला में वास करते हैं। परन्तु नरक गति में जानेवाले जीव सकर्मक होते हैं। इसलिए अपने द्वारा (स्वयंकृत) किये गये पापकर्मों से विह्वल हुआ ऋजुगति से मोक्ष की तरफ चले न जाय उसके लिए आनुपूर्वी नामकर्म उसको नरक की तरफ ले जाता है।

गति का अधिकार होने से कपूर की गुटी के समान बड़ी ऋद्धिवाला महेश्वर देव अपना च्यवन और जिस स्थानपर उत्पन्न होना है। उस स्थान को अपने अवधि ज्ञान से जानकर अत्यन्त शर्मिन्दा होता हुआ आहार नहीं करता है। क्योंकि देवगति को छोड़कर मनुष्य स्त्री की कुक्षि में अवतार लेनेवाला यह देव अपने उत्पत्ति स्थान को इसप्रकार देखता हैं। " अत्यन्त मोहकर्मी पुरुष द्वारा घृणित रूप से संभोग की गई स्त्री का गर्भाशय अत्यन्त दुर्गन्धयुक्त है। इसलिए वह अप्रीतिकारक एवं बुरा है। मैथुन कर्म में

स्थूल शरीर नहीं होते है। उस अपेक्षा से वह शरीर बिना का होता हैं। और तैजस तथा कार्मण ये दोनों सूक्ष्म शरीर होते हैं। अत: जीव शरीर सम्पन्न भी उत्पन्न होता है।

गर्भ में उत्पन्न होते हुए ही जीवात्मा परस्पर एक दूसरे में मिश्रित माता का आर्तव और पिता का वीर्य जो कलुष और किल्विष है उसका आहार करता है।

गर्भ में रहा हुआ जीव माता द्वारा खाये गये अनेक प्रकारके रस विकारों के एक भाग के साथ में माता के आर्तव को खाता है। यह आहार इस जीव के चर्म, हड्डियाँ, मज्जा, केश, दाढी, रोएँ और नखरुप में परिणत होता है। इसीकारण इस गर्भ के जीव को विष्टा, मूत्र, श्लेष्मा नाक का मैल, वमन या पित्तादि नहीं होते हैं।

गर्भ में रहा हुआ जीव अपने सब प्रदेशों से आहार करता है

आसक्त बने हुए पुरुष और स्त्री का अत्यन्त घृणित, क्लिष्ठ और आँखो को किसी समय पसंद न आवे वैसा वीर्य और रज का भक्षण मुझे करना पड़ेगा जहाँ मल, मूत्र, चरबी और खून आदि दुर्गन्धयुक्त पदार्थों की भरमार है। जहाँ हवा, प्रकाश पलंग आदि सुखदायी पदार्थो का सर्वथा अभाव है। ऐसे स्थानपर नौ माह तक उल्टा शरीर करके रहना पड़ेगा" यह सब देखकर वह देव अरतिपरिषहकेवश बनकर इसप्रकार उदास होता हुआ अनुभव करता है कि मुझे इस दिव्य और सुगंधीयुक्त शरीर को छोड़ना पड़ेगा और दुर्गन्धियुक्त स्थान में नौ माह की सख्त कैद में रहना पड़ेगा। अमृत भोजन छोड़कर दुर्गन्धयुक्त पुद्गलों का आहार करना पड़ेगा। इसप्रकार लज्जा-शील बने हुए इस देव को आहार के प्रति अरुचि हो जाती है।

और आत्मा के द्वारा ही परिणत करता है। और श्वासोश्वास भी आत्मा के द्वारां ही लेता है।

गर्भ के जीव को आहार लेने में और उनका चय-अपचय करने में दो नाडियां काम करती है। इनमें से एक "मातृ जीवरस हरणी" नाम की नाडी है, उसका संबंध माता के जीव के साथ है और पुत्र के शरीर के साथ लगी हुई है। इसी से पुत्र का जीव आहार लेता है और परिणत भी करता है।

एक दूसरी भी नाडी है जो पुत्र के जीव के साथ लगी हुई है और माता के शरीर के साथ संबद्ध है। इससे पुत्र का जीव आहार का चय और अपचय करता है। यही कारण है कि पुत्र का जीव मुख द्वारा कोलीया कवल रूप आहार लेने में समर्थ नहीं है।

माता के अंग तीन हैं, मांस, शोणित (रक्त) और मगज (दिमाग)। पिता के अंग तीन हैं- हड्डियाँ, मज्जा और केश-दाढी रोएँ और नख।

ये माता-पिता के अंग संतान के शरीर में जीवन पर्यन्त रहनेवाले हैं। जितने समय तक शरीर कायम रहता है उतने समय तक वे रहते हैं। जब वह शरीर उत्तरोत्तर क्षीण होता जाता है। और अंत में जब नष्ट हो जाता है तब पहले माता, पिता के अंग भी नष्ट हो जाते हैं।

गर्भ में रहा हुआ जीव माता के दुःखी होनेपर दुःखी होता है और सुखी होनेपर सुखी होता है।

P. P. Ac. Gunratansuriji M.S. Jin Gun Aaradhak Trust

प्रसव के समय जो गर्भ सिर द्वारा या पैर द्वारा आता
वह बराबर आता है। जो टेढ़ा होकर बाहर आता है तो मर जा
है। कदाचित् जीतां हुआ आता है तो इस जीव के कर्म जो अशु
रीति से बद्ध, स्पृष्ट, निधत्त कृत, स्थापित, अभिनिविष्ट अभिसमन्
गत, समन्वागत, उदीर्ण होता हैं और उपशांत नहीं होता हो,
वह जीव कुरुप, दुर्वर्णवाला, दुर्गन्धवाला, खराब रसवाला, खर
स्पर्शवाला, अनिष्ट, अकांत, अप्रिय अमनोज्ञ, खराब स्वरवाला अ
अनादेय वचनवाला होता है। और कदाचित वह शुभ कर्मवा
जीव होता है तो सब शुभ होता है। परंतु प्रायः करके जीव उल्ट
होकर निकलता है, तो जिन्दा नहीं निकलता है।

गर्भ संबंधी इस प्रकार का वर्णन भगवती सूत्रके इस उद्दे
में है। (इस के संबंध में संक्षेप में वर्णन दूसेर शतक के पांच
उद्देशा में आता है।)

इसी प्रकार 'तंदुलवेआलिय पयन्ना' में भी इस के संबंध
में विस्तार पूर्वक वर्णनआता है। भगवती के संपादक तथ
अनुवादक ने भी इसका वर्णन किया है। उपयोगी होने से उसक
उल्लेख (वर्णन) यहाँ पर भी किया जाता है।

जीव गर्भ में २७७॥ दिवस अर्थात् नवमास। साढे सा
दिवस तक रहता है। इतनी स्थिति तो रहनी ही चाहिए। इसरे
कम या अधिक दिन रहे तो ऐसा समझना चाहिए कि जीव को को
अपघात हुआ है।

स्त्री की नाभि के नीचे फूल के नाल के समान सूरत वाली दे

P. P. Ac. Gunratansuriji M.S. Jin Gun Aaradhak Trust

नाडियाँ होती हैं। उसके नीचे अधो मुखवाली और फूल की डोंडी के समान योनि होती है। उसके नीचे आम कि मंजरी के समान सूरत वाली मांस की मंजरी होती है। वह मंजरी ऋतुके समय में फूट जाती है और उसमें से खून की बूंद टपकती है। (धीरे धीरे बाहर निकलती है)

टपकती हुई खून की उन बूंदों में से जितनी बूंदें पुरुष के वीर्य से मिश्रित हो वें डोंडी के समान योनी में प्रवेश कर जाती है, और उतनी बूंदें जीव की उत्पत्ति के योग्य बताई गई हैं।

बारह मुहूर्त के बाद वह योनि अर्थात् योनि में प्रविष्ट पूर्वोक्त प्रकार के खून की बूंदों में रही हुई जीव की उत्पत्ति की योग्यता नष्ट हो जाती है अन्यथा उसमें अधिक से अधिक दो से लेकर नौ लाख जीव उत्पन्न होते हैं।

पचपन वर्ष के बाद स्त्री की योनि म्लान हो जाती है। अर्थात् वह गर्भोत्पत्ति के लिए योग्य नहीं होती है। तथा पचहत्तर वर्ष के बाद पुरुष प्रायः करके निर्बीज हो जाते हैं। सौ वर्ष की आयुष्यवाले के लिए यह मर्यादा समझनी चाहिये। उससे अधिक आयुष्य-पूर्वकोटि तक जीवित रहनेवाले मनुष्यों के लिए यह नियम नहीं है। स्त्रियों की उसप्रकार की योनी जब उनकी आयुष्य आधी बाकी रहती है तब गर्भोत्पत्ति के अयोग्य हो जाती है और पुरुषों की आयुष्य का २० वां भाग बाकी रहता है, तब वह निर्बीज हो जाता है।

ऋतुकाल को प्राप्त हुई स्त्री की योनि में बारह मुहूर्त जितने समय में दो से नौ लाख जीव उत्पन्न होते हैं। तथा एक जीव के

P. P. Ac. Gunratansuriji M.S. Jin Gun Aaradhak Trust

अधिक से अधिक दो सौ से नौ सौ तक जनक (पिता) हो सकते हैं।

जीव गर्भवास में अधिक से अधिक बारह वर्ष तक रहता है। स्त्री की दायीं कुक्षि में हो तो पुत्र और बायीं में हो तो पुत्री उत्पन्न होती है। दायीं और बायीं दोनों के बीच में हो तो नपुंसक पैदा होता है।

तिर्यंच जीव अधिक से अधिक गर्भावास में आठ वर्ष तक रहता है।

जब माता-पिता का संयोग होता है। तब पहली वक्त जीव माता का खून और पिता का वीर्य दोनों से मिश्रित तथा जिसे देखकर घृणा हो ऐसे मलीन पदार्थ को खाता है। उसे खाकर वह गर्भ में उत्पन्न होता है। उसके बाद सात दिन में वह गर्भ कलल रुप धारण करता है। दूसरे सात दिन में वह गर्भ बुदबुदों के समान होता है। बाद में वह पेशी (मांस पिंड) स्वरुप बन जाता है बाद में वह कठिन पेशी के समान हो जाता है। पहले माह में गर्भ का वजन एक कर्ष से कम, एक पल के समान होता है। (सोलह मासों का एक कर्ष और चार कर्ष का एक पल होता है।) दूसरे माह में कठोर पेशी के समान हो जाता है। तीसरे मास में माता को दोहद उत्पन्न करता है। चौथे महीने में माता के अंगों को पुष्ट करता है। पांचवें महीने में उस पेशी में से पांच अंकुर फूटते है। दो पैरों के दो, दो हाथों के दो और सिर का एक, छठे मास में पित्त और शोणित की उत्पत्ति होती है। सातवें मास में सात सौ नसें, पांच सौ मांस पेशियां, मोटी नौ धमणियें, नाडियें और

दाढी तथा मांस के अतिरिक्त निन्यानवे लाख रोम कूपों की उत्पत्ति होती है। आठवें माह में वह पूर्ण अंगवाला बन जाता है।

इस गर्भ को फल के डीट (अग्रभाग) जैसी कमल के नाल के समान आकारवाली नाभि के ऊपर रसहरणी नाम की नाडी होती है और उस नाडी का माता की नाभि के साथ संबंध होता है। उससे गर्भ का जीव ओज को ग्रहण करता है और उससे ही जब तक जीवित रहता है तब तक उसकी वृद्धि होती है।

नौ मास समाप्त होने के बाद या नौ मास पूरे होने के पहले वह गर्भवती स्त्री चार प्रकार की जाति में से एक जाति के जीव को जन्म देती है। पुत्री स्वरूप हो तो पुत्री को, पुत्र स्वरूप हो तो पुत्र को, नपुंसक स्वरूप हो तो नपुंसक को और बिंब स्वरूप हो तो बिंब को जन्म देती है!

यदि वीर्य कम हो और ओज की अधिकता हो तो पुत्री उत्पन्न होती है, वीर्य अधिक हो और ओज कम हो तो पुत्र उत्पन्न होता है, वीर्य और ओज दोनों एक समान हो तो नपुंसक संतान उत्पन्न होती है, और जब स्त्री (ऋतुवती स्त्री) के ओज का संयोग होता है तब किसी भी प्रकार के आकार बिना मांस पिंड उत्पन्न होता है।

कोई महापापी जीव अधिक से अधिक चार वर्ष तक गर्भावास में रहता है।

P. P. Ac. Gunratansuriji M.S. Jin Gun Aaradhak Trust

इस शरीर में अनुक्रमानुसार अठारह पीठ करंडिका की संधियाँ होती हैं। चार पसलियों का करंड होता है। छः छः पसलियों का एक एक कडाह होता है। एक तरफ छः पसलियों और दूसरी तरफ छः। एक बेंत की काँख होती है। चार अंगुलियों की ग्रीवा होती है। वजन में जीभ चार पल की होती है! दो पल की आंखें होती है। चार पल का कपालवाला शिर होता है। बत्तीस दांत होते हैं। सात अंगुलियों की जीभ होती है। साडे तीन पल का हृदय होता है। पच्चीस पल का कलेजा होता है।

इस शरीर में दो अंत्र (आंतरडी) और पांच वाम होते हैं। इसप्रकार एक स्थूल अंत्र और दूसरा सूक्ष्म अंत्र। स्थूल अंत्र से निहार का परिणाम होता है और सूक्ष्म अंत्र से मूत्र का परिणाम होता है।

दो पार्श्व होते हैं। बायां और दायां। बायां सुख का परिणामवाला होता है और दायां दुख का परिणामवाला होता है।

इस शरीर में १०८ सांधे हैं। १७७ मर्म स्थान हैं। ३०० हड्डियों का समूह है। ९०० नाडियाँ हैं और ७०० नसें हैं। पांच सौ पेशियाँ हैं। नौ धमणियाँ बडी नाडियाँ हैं।

नाभि से निकली हुई एक सौ आठ नसें होती हैं। वे सिर तक पहुँची हुई होती हैं। उनको रसहरणी कहते हैं। जब तक वे नसें बराबर हैं तब तक आंख, कान, नाक और जीभ में सामर्थ्य बराबर रहता है।

P. P. Ac. Gunratansuriji M.S. Jin Gun Aaradhak Trust

नाभि से निकली हुई दूसरी भी एक सौ आठ नसें हैं। वे नीचे पैर के तले तक पहुँची हुई हैं, जब तक ये नसें बराबर हैं तब तक जांघ का सामर्थ्य ठीक है।

नाभि से निकली हुई दूसरी एक सौ साठ नसें होती हैं। वे तिरछी हुई हथेली तक पहुँची हुई होती हैं। जब तक ये नसें बराबर हैं तब तक हाथ का सामर्थ्य स्थिर रहता है।

नाभि से एक सौ साठ दूसरी नसें निकलती है, वे गुदा पर्यन्त पहुँची हुई होती हैं। जबतक वे बराबर हैं तबतक मूत्र और निहार संबंधी वायु ठीक प्रकार से प्रवर्तती है।

पच्चीस नसें श्लेष्म को धारण करनेवाली पच्चीस पित्त को और दस नसें वीर्य को धारण करनेवाली हैं।

पुरुष के कुल सातसौ नाडियाँ होती हैं। स्त्री के छः सौ सत्तर और नपुंसक के छः सौ अस्सी होती हैं।

इस शरीर में एक आढक (आठ सेर) रुधिर होता है। चार सेर चरबी, दो सेर मस्तिष्क, आठ सेर मूत्र, दो सेर विष्टा, आधा सेर पित्त, आधा सेर श्लेष्म और पांच सेर वीर्य होता है। इन सब धातुओं में जब विकार उत्पन्न होता है तब तक उनका वजन बढता है या कम होता है।

पुरुष के पांच कोठे और स्त्री के छः कोठे होते है। पुरुष के मल निकलने के नौ द्वार और स्त्री के बारह द्वार होते हैं।

पुरुष के पांच सौ, स्त्री के चार सौ सत्तर और नपुंसक के चार सौ अस्सी मांस पेशियां होती हैं।

मांस के पिंड के ऊपर जांघ है और उसके ऊपर कमर का पिछला भाग है। पीठ की अठारह हड्डीयाँ कमर की हड्डीयों से लपटी हुई है।

आंख में हड्डियां हैं। ग्रीवा में सोलह हड्डीयां हैं और पीठ में बारह पसलियाँ हैं। ※ २३

※ २३ जीवात्मा जब गर्भ में प्रवेश करता है, तब उसके न तो द्रव्येन्द्रिय (स्थूलेन्द्रिय) और न स्थूल शरीर होता है। क्योंकि जीव ने पूर्वभव को छोड़कर इस वर्तमान गर्भ को स्वीकार किया है। इसलिए उस भव का शरीर और इन्द्रियाँ उसी भव के अन्तिम समय तक साथ में रहती हैं। शरीर और इन्द्रिय पर्याप्ति द्वारा प्राप्त किया हुआ शरीर और इन्द्रियों की मर्यादा उस भव के अंतिम श्वास तक मर्यादित होती है। वर्तमान भव को स्वीकार करनेवाला यह जीव जिस क्षण कुक्षि में प्रवेश करता है उसी समय आहार पर्याप्ति नाम कर्म का उदय होता हुआ आहार ग्रहण करता है। तत्पश्चात् शरीर पर्याप्ति और इन्द्रिय नाम की पर्याप्ति उदय में आती हैं और शरीर की तथा इन्द्रियों की रचना होती है।

अनंत शक्ति रखनेवाली कर्मसत्ता अपने विपाक काल में उपस्थित रहती है और गर्भ में प्रवेश करता हुआ जीव स्वयं द्वारा किये गये शुभाशुभ कर्मों को भुगतने के लिए ही शरीरादि की रचना में स्वयं पर्याप्ति नाम कर्म के साथ कार्यान्वित होता है। क्योंकि जीव और कर्मसत्ता दोनों अपने–अपने कार्य में सशक्त हैं। एक शरीर को छोड़कर दूसरे शरीर को धारण करते हुए इस जीव को अधिक से अधिक चार समय और कम से कम एक समय

P. P. Ac. Gunratansuriji M.S. Jin Gun Aaradhak Trust

लगता है। उस समय यद्यपि स्थूल शरीरादि नहीं होता है, फिर भी सूक्ष्म शरीर (तैजस और कार्मण) तथा भावेन्द्रियाँ (लब्धि और उपयोग) तो अवश्यमेव होती है।

गर्भ में प्रविष्ट जीव के शरीर में मांस, खून और मगज ये तीन माता के अंग कहे जाते हैं और हड्डियाँ, मज्जा और दाढ़ी मूछ के केश पिता के अंग कहे जाते हैं। सारांश यह है कि संसार की माया के रंग में रंगे हुए, व्यभिचार कर्म में पूर्ण मस्त, तामसिक और राजसिक आहार को खानेवाला तथा धार्मिक वातावरण से अप्रभावित माता–पिता के शरीर में रहे हुए खून, मांस, हड्डियाँ, मज्जा, मेद, शुक्र और रज आदि सात धातु अत्यंत अशुद्ध तथा तामसिक होने के कारण जन्म लेनेवाले बालक का अंग भी निर्बल, खंडित और दोषयुक्त होता है।

अतएव सदाचारमय जीवन, धार्मिक वातावरण, वृद्धों की उपासना तथा परमदयालु परमात्मा के साथ तादात्म्य, ये चार प्रकार से जीवन बिताने वाले भाग्यशाली और पुण्यवान कहे जाते हैं। अहिंसाधर्म के आराधक पुण्यशाली सबसे पहले जो गर्भ में आये हैं और जो भविष्य में आयेंगे, उन संतान पर ही उन माता पिता को अहिंसा भाव के प्रयोग को आजमाना चाहिए। जिससे उनका अहिंसक जीवन अन्तिम श्वास तक अमरफल दे सके।

संतान को देवतास्वरुप संस्कारों से युक्त बनाना हो, घर में और अपने दिल (हृदय) के मंदिर में जिनेश्वर देव के धर्म की स्थापना करनी हो तथा अपनी सात पिढियों (पुश्त) को उज्ज्वल बनाने की भावना हो तो अपनी स्त्री गर्भवती होने के बाद, उसके साथ अर्थात् जिस दिन से गर्भाधान हो उस दिन से लेकर मैथुन कर्म, मलिन विचार, काम संबंधी चेष्टाएं और खान पान की अशुद्धि का निवारण करना चाहिए। बस, यही अहिंसा है और अपने कुल में महावीर स्वामी के अहिंसा धर्म को स्थापन करने के लिए ही एक पवित्र और उत्तम मार्ग है।

P. P. Ac. Gunratansuriji M.S. Jin Gun Aaradhak Trust

-जो माता पिता खुद संयम भाव में स्थिर नहीं रह सकते हैं। अर्थात् अपनी कुकर्म–चेष्टाएं पर अंकुश नहीं रख सकते हैं। वे किसी समय अपनी संतान के सन्मुख अहिंसक नहीं बन सकते हैं। तो संसार के अन्य जीवों के प्रति अहिंसकभाव, मैत्रीभाव या संयमभाव कैसे रख सकेंगे? यह भी एक प्रकार की आत्मवंचना है।

जिन महापाप कर्मी जीवात्माओं ने पूर्वभव में अत्यन्त क्लिष्ट भाव से तीव्र रसवाले कर्म बांधे हैं, उनको गर्भ में से बाहर निकलते ही वेदना भुगतनी ही पड़ती है। उनके लिए पापकर्मों का अधिक उदय होने से वे जीव कुरुप, भद्देवर्णवाले, दुर्गन्धयुक्त शरीरवाले, नीरसवाले, अस्पर्श्य, अनिष्ट अकांत, अप्रिय, अशुभ, अमनोज्ञ, दीन–हीन स्वरवाले, अनिष्ट और प्रेम बिनाके होते हैं। तथा अनादेय नामकर्म के स्वामी होने से उन्होंने अनेक प्रकार की विपत्तियों [कठनाईयों] को भुगतने के लिए ही मनुष्य जीवन धारण किया है।

पूर्व भव में अनेक जीवों के प्रति की गई हिंसा वैर-विरोध, चोरी-मैथुन और परिग्रह आदि पापों के भार स्वरुप बना हुआ यह जीव जब गर्भावास में प्रवेश करता है, तब गर्भ में रहे हुअे को गतभव के वैर विरोध याद आतेही अपनी वीर्यलब्धि और वैक्रियलब्धि द्वारा मानसिक युद्ध के लिए तैयारी करता है और उसमें मस्त होकर संभवतः उसी समय अर्थात् गर्भ में रहा हुआ ही मर जावे तो नरक और तिर्यचगति को ही प्राप्त करेगा।

जब गतभव में की गई अरिहंत देव [धर्म] की आराधना तथा दया-दान आदि भावों को यदि गर्भगत जीव उन-उन पूर्वभव में किये हुए सुकृत को स्मरण करता हुआ और उन सत्कर्मों की आराधना में मन को लगाता हुआ उसी क्षण आयुष्कर्म को समाप्त करें तो देवगति को प्राप्त करने के लिए ही समर्थ बनेगा। सारांश यह है कि गर्भ में रहा हुआ जीव नरक और देवगति को भी प्राप्त कर सकता है। इन दोनों प्रकार की गतियों में माता

P. P. Ac. Gunratansuriji M.S. Jin Gun Aaradhak Trust

पिता के गृहस्थाश्रम के कुसंस्कार और सुसंस्कारों का भी अवश्यमेव प्रभाव पड़ता है। अतएव घर के वातावरण को सुसंस्कारी रखने के लिए सबसे प्रथम प्रयास करना चाहिए और घर में सुसंस्कार तभी आवेंगे जबकि माता पिता और बुजुर्ग अपने जीवन में ब्रह्मचर्यधर्म, सदाचारधर्म, सत्यधर्म और प्रामाणिकता लावेंगे। इसके अतिरिक्त दूसरा कोई हितावह मार्ग नहीं है।

॥ सातवा उद्देशा समाप्त ॥

बालादि की आयु

इस उद्देशक में अलग अलग प्रकार के मनुष्यों कि किस किस प्रकार की आयुष्य की मर्यादा हैं, और एक क्रिया करते उसमें कैसे कर्म उपार्जन होते हैं, इसके संबंध में वर्णन है।

जीवों की आंतरिक श्रद्धा और अश्रद्धा आदि को लक्ष्य में रखकर मनुष्यों के अलग अलग भेद गिनने में आये हैं।

एकान्तबाल, पंडित और बालपंडित

यहाँ प्रश्न पूछे जाते हैं कि-एकान्त बाल, एकान्त पंडित और बाल पंडित किस तरह का आयुष्य बांधते हैं और कहाँ जाते हैं।

यहाँ एकान्त विशेषण रखा (जोडा) गया है। इसका कारण यह है कि-एकान्त बाल से मिथ्यादृष्टिवाला मनुष्य समझना चाहिए। यदि एकान्तबाल नहीं कहते तो मिश्रदृष्टिवाला जीव भी जाना जाता।

इसीप्रकार एकान्त पंडित से साधु ही लेना है। सर्वथा प्राणातिपातादि का त्यागी, सर्व विरत साधु, वह एकान्त पंडित है और बालपंडित अर्थात् वह श्रावक जिसने स्थूल से हिंसादि पापारंभ का त्याग किया है।

P. P. Ac. Gunratansuriji M.S. Jin Gun Aaradhak Trust

ऐसे एकान्तबाल, एकान्त पंडित और बाल पंडित के आयुष्य के संबंध में जानकारी दी जाती है–

एकान्त बाल मनुष्य नैरयिक, तिर्यंच मनुष्य और देव गति संबंधी आयुष्य को बांध सकता है और उस-उस आयुष्य को बांधकर उस-उस गति में जाता है।

एकान्त पंडित मनुष्य निश्चयपूर्वक आयुष्य बांधता है और नहीं भी बांधता है, यदि आयुष्य बांधता है तो देवलोक में ही जाता है। यदि आयुष्य नहीं बांधता है तो मोक्ष में ही जाता है। क्योंकि एकान्त पंडित की दो गतियाँ बतायी गई हैं। अंत-क्रिया और कल्पोपपातिका। चार अनंतानुबंधि, और तीन मोहनीय कर्मों का सप्तक खपजाने–नाश हो जाने के बाद वह साधु आयुष्य नहीं बांधता है और कर्म खपाने (नाश करने) में कुछ बाकी रह गये हो और यदि वह आयुष्य बांधता है तो देवलोक की ही आयुष्य बांधता है।

बालपंडित मनुष्य देव की आयुष्य बांधकर देवगति में जाता है। क्योंकि बाल पंडित मनुष्य किसी उत्तम साधु से आर्य वचन सुनकर और मन में उनको धारणकर कितनी प्रवृत्तियों से रुक जाता है और कितनी प्रवृत्तियों से नहीं रुकता (अटकता) है कितनी प्रवृत्तियों के लिए पच्चक्खाण करता है और कितने के लिए नहीं भी करता है। इसप्रकार कितनी प्रवृत्तियों से अटका हुआ और कितने ही पच्चक्खाण करने के कारण वह नैरयिक का

P. P. Ac. Gunratansuriji M.S. Jin Gun Aaradhak Trust

आयुष्य नहीं बांधता है, देवका आयुष्य बांधकर देवलोक में जाता है। ※ २४

क्रिया विचार

जैन शास्त्रों में पांच प्रकार की क्रियाएं कही गई है- १ कायिकी, २ आधिकरणिकी, ३ प्राद्वेषिकी, ४ पारितापनिकी और ५ प्राणाति पातिकी।

मृगघातकादि पुरुषों को शिकार आदि क्रिया करते समय

※ २४ एकान्त वालजीव मिथ्यादृष्टि और अविरत होते हैं। वे चार गति के कर्म बांधते हैं। यद्यपि उनको मिथ्यात्व का उदय होता है तो भी आयुष्य बांधने के अलग अलग परिणाम होने से किसी जीव को अधिक रुप से मिथ्यात्व का उदय होता है तब बड़ी मात्रा में आरंभ समारंभ परिग्रह तथा द्‌वुद्धि और सद्‌विवेक के विरुद्ध उपदेश देनेवाला होने से वह जीव नरक गैर तिर्यंच का आयुष्य बांधता है। जब मिथ्यात्व होता हुआ भी कोई भद्रिक परिणाम होने से कषायों से दूर रहनेवाला तथा अकाम निर्जरा, वाल तप आदि सत्कर्मो का पालन करनेवाला होने से वह जीव देवगति और मनुष्यगति की आयुष्य बांधता है। इसलिए एकान्त वालजीव चार गतियों की आयुष्य बांध सकता है, ये शास्त्र के वचन हैं।

उसीप्रकार वाल-पंडित अर्थात् श्रावक श्राविका के भाव सम्यक्त्व धर्म में होने से तथा जैन शासन के अनुयायी होने से पापकर्म त्याग करने योग्य है, ऐसी भावना होने के कारण अपनी शक्ति तथा परिस्थिति वश अमुक वस्तुओं का त्याग पच्चक्खाण करता है और दो घड़ी भी मन-वचन-काया से पाप नहीं करता है और नहीं कराता है। ऐसा अहिंसक भाव सहित सामायिक धर्म का आचरण करता है, अतः वह देवगति का ही अधिकारी वनता है।

P. P. Ac. Gunratansuriji M.S. Jin Gun Aaradhak Trust

कितने-कितने प्रकार की क्रियाएं लगती हैं उनका वर्णन यहाँ किया गया है। उसका सार इसप्रकार है–

किसी शिकार करने योग्य प्रदेश में कोई शिकारी मृग का वध करने के लिए खड्डे खोदता है और जाल रचता है तब वह शिकारी मनुष्य तीन क्रियावाला, चार क्रियावाला और संभवत: पांच क्रिया वाला कहलाता है।

इसका कारण यह है कि वह मनुष्य जब तक जाल को पकडता है किन्तु न तो हरिणों को बांधता है और न उनको मारता है तब तक कायिकी, आधिकरणिकी और प्राद्वेषिकी इन तीन क्रियाओं से वह स्पर्शित होता है और तीन क्रियावाला कहलाता है। तत्पश्चात् वह जाल को पकडकर मृगों को बांधता है किन्तु मारता नहीं है। तब वह चार क्रियावाला कहलाता है, अर्थात् पारितापनिकी एक अधिक क्रिया से स्पर्शित हुआ, और जब मृगों को बांधकर मारता है तब उसे पांच क्रिया वाला अर्थात् प्राणातिपातिकी क्रिया भी लगती है।

दूसरा उदाहरण इसप्रकार है कि किसी जंगल में कोई आदमी तृण को एकत्रित कर आग लगाता है तब वह तीन चार या पांच क्रियावाला होता है। यहाँ इसप्रकार कहा जाता है कि जबतक वह तृण को एकत्रित करता है तबतक तीन क्रिया वाला और जब वह आग लगाता है किन्तु किसी को जलाता नहीं ऐसी स्थिति में चार क्रियावाला और जब किसी को जलाता है तब वह पांच क्रियावाला कहलाता है।

P. P. Ac. Gunratansuriji M.S. Jin Gun Aaradhak Trust

मृगों को मारनेवाला कोई शिकारी किसी जंगल में उनका वध करने के लिए बाण फेंकता है तो भिन्न-भिन्न स्थिति के अनुसार तीन, चार या पांच क्रियावाला कहलाता है। अर्थात् वह बाण केवल फेंकता है किन्तु बाण से किसी जीव को वेधता नहीं है, तबतक वह तीन क्रियावाला और जब बाण फेंकता है और मृग को वेधता है तब तक चार क्रियावाला और जब वह मृग मर जाता है तब वह पांच क्रियावाला कहलाता है !

यहाँ एक विचित्र प्रश्न पूछा जाता है।

कोई पुरुष मृग का वध करने के लिए कान तक लंबा किया हुआ बाण प्रयत्नपूर्वक खींचकर खडा है। अभी तक उसके हाथ से बाण छूटा नहीं है। इसके दरम्यान दूसरा पुरुष तलवार से शिकारी का सिर उडा देता है। उस समय पहले से खींचा हुआ वह बाण उसके हाथ से छूट जाता है और उस बाण से मृग वींधा जाता है (वेधा जाता है) उस समय वह पुरुष क्या मृग के वैर से स्पृष्ट है या मृग पुरुष के वैर से स्पृष्ट है ?

भगवान इसका उत्तर देते हुए कहते हैं कि–जो पुरुष मृग को मारता है वह मृग के वैर से स्पृष्ट है और जो पुरुष को मारता है वह पुरुष के वैर से स्पृष्ट है कारण यह है कि–

यह सिद्धान्त पहले ही प्रतिपादित किया गया है कि 'कराता' हो उसे 'कराया', 'संधाता' हो उसे 'संधाया' कहा जाता है। 'फेंकता' हो उसे 'फेंका' कहा जाता है, वगैरह। इस हेतु से जो मृग को मारता है वह मृग के वैर से स्पृष्ट और जो पुरुष को मारता है वह पुरुष के वैर से स्पृष्ट कहा जाता है।

P. P. Ac. Gunratansuriji M.S. Jin Gun Aaradhak Trust

वीर्य विचार

यहाँ एक दुसरा प्रश्न भी विचार करने योग्य है। वे पुरुष हैं। जिनका समान वर्ण, समान उम्र, समान द्रव्य और समान ही उपकरण हथियार वगैरेह हैं। इन दोनों पुरुषों में लडाई होती है। उनमें से एक जीतता है और एक हारता है। इसका क्या कारण ? इसका जवाब यह है कि जो वीर्यवाला होता है, वह जीतता है और विना वीर्यवाला पुरुष हारता है। अर्थात् जिस पुरुष ने वीर्यरहित कर्म नहीं बांधे हैं, स्पृष्ट नहीं किये, प्राप्त नहीं किये, और वे कर्म उदीर्ण नहीं हुए किन्तु उपशांत हैं वह पुरुष जीतता है और जो पुरुष वीर्यरहित कर्म बांधता है, वे कर्म उदय में आये हैं, किन्तु उपशांत नहीं है, वह पुरुष पराजित होता है।

जीव वीर्यवाले भी है और विना वीर्यवाले भी हैं। क्योंकि जीव दो प्रकार के कहे गये है। संसार समापन्नक और असंसार समापन्नक ! जो जीव असंसार समापन्नक हैं, वे सिद्ध हैं और वे वीर्यरहित हैं। जो जीव संसार समापन्नक हैं, वे दो प्रकार के हैं-शैलशी प्रतिपन्न और अशैलेशी प्रतिपन्न, उनमें जो शैलेशी प्रतिपन्न हैं वे लब्धिवीर्य से सवीर्य हैं और करणवीर्य से सवीर्य और अवीर्य भी होते हैं।

नैरयिक लब्धिवीर्य से सवीर्य और करणवीर्य से सवीर्य भी हैं और अवीर्य भी हैं। इसका कारण है कि जिन नैरयिकों में उत्थान, कर्म, बल, वीर्य और पुरुषाकार पराक्रम है, वे नैरयिक लब्धिवीर्य से और करणवीर्य से भी सवीर्य है तथा जिन नैरयिको

P. P. Ac. Gunratansuriji M.S. Jin Gun Aaradhak Trust

में उत्थानादि नहीं है। वे लब्धिवीर्य से सवीर्य है किन्तु करण-वीर्य से अवीर्य है।

इसप्रकार पंचेन्द्रिय तिर्यंच तक जीवों के लिए जानना चाहिए और सामान्य जीवों के समान मनुष्यों के लिए जानना चाहिए। ※ २५

※ २५ जो की जाती है वह क्रियां पांच प्रकार की है, वे निम्नानुसार हैं :–

(१) **कायिकी**–जीव वध करने के लिए शरीर संबंधी हलन, चलन, गमन आगमन वगैरे कायिकी क्रिया कहलाती है। जीवन में अत्युत्कट राग–द्वेष–मोह–कुतूहल–अनंतानुबंधी क्रोध–मान–माया–लोभ और अज्ञान का जोर होता है। तब इस जीव के शरीर का व्यापार प्रायः करके परघात स्वरूप ही होता है।

(२) "**अधिकरणिकी**–अधिक्रियन्ते घाताय प्राणिनोऽस्मिन्निति अधिकरणम् अथवा अधःक्रियतेजीवोऽनेनेत्यधिकरणम्" अधिकरणम् उसे कहते हैं, जो जीव को नीच स्थानपर अर्थात् दुर्गति की तरफ ले जाता है।

परघात (दूसरों की हत्या करने) के लिए तलवार, तीर, बरछी, गोफण, लकड़ी तथा छुरी आदि तथा दूसरे जीवों को फंसाने के लिए खड्डे खोदना, तथा उनको पकड़ने के लिए जाल फैलाना, उसे कूटपाश शस्त्र भी कहते हैं। जिसके द्वारा क्रिया होती है उस क्रिया को अधिकरणिकी क्रिया कहते हैं।

(३) **प्राद्वेषिकी**–जीवों को मारने के लिए दुष्टभाव–द्वेषभाव–घृणाभाव वगैरे से हुई क्रिया प्राद्वेषिकी क्रिया कहलाती है।

(४) **पारितापनिकी**–जीवों को जाल में फंसाना, खड्डे में डालना, पिंजरे में या जाल में बन्द करना या करवाना, आदि क्रिया से जीवों को परिपात होता है उसे परिपातनिकी क्रिया कहते हैं।

P. P. Ac. Gunratansuriji M.S. Jin Gun Aaradhak Trust

(५) **प्राणातिपातिकी**–जीवों के प्राणों का हनन हो, वह प्राणातिपातिकी क्रिया प्रसिद्ध है। मृगों को मारने की भावना से तीर–धनुष्य लेकर जंगल में गये हुए शिकारी का शरीर मृग का वध करने के लिए प्रयत्नशील है। शस्त्र पास में है और धनुष्य की रस्सी कान तक खींचकर खड़ा है। मृगों को मारने के लिए द्वेष भी उत्कट है। ऐसी परिस्थिति में उस शिकारी को पहले की तीन क्रियाएं लगेगी। जब मृग, फैलाई हुई जाल में फंस जाता है और वहाँ तडफता है तब चौथी क्रिया लगेगी और मृग के मरनेपर पांचवीं क्रिया लगेगी। इसप्रकार दूसरे प्रश्नों में भी ये पांच क्रियांएँ समझ लेनी चाहिए।

यहाँ तो मृगघात को लक्ष्य में रखकर ही प्रश्न और जवाब हैं। अन्य प्रश्नों में तथा हमारे जीवन की प्रत्येक क्रिया में उपरोक्त क्रियाएँ लगा सकते हैं।

नवतत्त्व प्रकरण में क्रियाओं की संख्या पच्चीस है। वे सब त्याज्य है। ऐसा समझकर हमको अपना जीवन संयमित मर्यादित और निष्परिग्रही रखना चाहिए जिससे आश्रवतत्व से मुक्ति प्राप्ति के लिए हम भाग्यशाली बन जावें।

प्रसन्नचंद्र राजर्षि के दृष्टान्त से भी इन क्रियाओं का रहस्य जाना जा सकता है। वे मुनि थे, महामुनि थे, महातपस्वी और महाध्यानी थे। रजोहरण के अतिरिक्त उनके पास कुछ भी नहीं था। तो भी दुर्मुख दूतभुख से सुना और एक क्षण के पूर्व जिस का शरीर मोक्ष मार्ग की तरफ बढ़ रहा था। वही शरीर पुत्र मोह के कारण चंचल बन गया, होठ कांपने लगे, आंखों में ललाई छा गई, भृकुटि टेढ़ी हो गई, हाथ की अंगुलियां मुठ्ठीके रुप में परिणत हो गई, अतः यह कायिकी क्रिया हुई।

पुत्र के प्रति मोह उत्पन्न हुआ राग और शत्रुओं के प्रति द्वेष इसप्रकार राग द्वेष नाम के भाव–शस्त्र मुनि को प्राप्त हो गये और महामुनि राग द्वेष में गले पर्यन्त डूब गये। इसकारण से उनको आधिकरणिकी क्रिया लगी।

P. P. Ac. Gunratansuriji M.S. Jin Gun Aaradhak Trust

अपने पुत्र के द्रव्य शत्रुओं के प्रति यह मुनिराज अत्यन्त द्वेष में लीन होकर मानसिक युद्ध में रमण करने लगे। वह सब प्राद्वेषिकी क्रिया के कारण से ही हुआ।

स्वपुत्र के प्रति बुरे भाव रखनेवालों के प्रति इस महातपस्वी मुनिराज की मानसिक विचार धाराएं दूसरों को परिताप देने से परितापनिकी क्रिया हो गई और अन्त में एक-एक राजा को मारने के लिए एक-एक शस्त्र फेंकते गये और उसकी मानसिक कल्पना में एक-एक राजा कत्ल कर डाला गया।

इस प्रकार प्राणातिपातिकी क्रिया का मालिक भी हुआ।

इस प्रकार इन क्रियाओं के कारण मुनिराज श्रीप्रसन्नचंद्रजी सातवीं नारकी तक पहुँच गयें और अन्तिम शस्त्र पकड़ने के लिए सिरपर हाथ पहुँचते ही पुनः स्मृति जागृत हो गई (होश में आये) और पांचों क्रियाओं से इस प्रकार मुक्ति पा गये। जिससे तत्काल केवल ज्ञान के मालिक बनकर मोक्ष में पहुंच गये।

॥ आठवा उद्देशा समाप्त ॥

शतक पहिला उद्देशक–९

गुरुत्वादि विचार

आत्मा का मुख्य ध्येय मुक्ति प्राप्त करना है। आत्मा अपने स्वभाव से अच्छेदी, अभेदी और अनाहारी वगैरह से विशिष्ट गुणवंत हैं, तथापि उसमें संलग्न कर्म के कारण यह आत्मा संसार में परिभ्रमण करती है।

आत्मा के लिए लघु बनना, संसार को कम करना, थोडा करना और पार करना, ये चार वस्तुएँ प्रशस्त हैं, उनसे विपरीत भारपन, संसार को प्रचुर बनाना, लंबा बनाना और अन्त में उसमें व्यर्थ भटकना, ये चार अप्रशस्त हैं।

हमने अनुभव किया है और यह स्वाभाविक है कि, गुरुत्व यह अप्रशस्त है; और लघुत्व यह प्रशस्त है। संसार में अनंत पदार्थ हैं। उनमें बहुत से गुरु हैं और बहुत से लघु हैं, बल्कि कितने ही पदार्थ गुरुलघु और अगुरुलघु भी हैं उदाहरण स्वरूप हमको देखना है कि–

पत्थर यह गुरु है, क्योंकि उसका नीचे की तरफ जाने का स्वभाव है। धूम, यह लघु है क्योंकि उसका ऊंचा जाने का वभाव है। वायु यह गुरु लघु पदार्थ है, क्योंकि उसका तिरछा जाने का स्वभाव है और आकाश यह अगुरुलघु द्रव्य है क्योंकि उसका वैसा स्वभाव है।

P. P. Ac. Gunratansuriji M.S. Jin Gun Aaradhak Trust

इस प्रकरण में इसके संबंधीही लगभग प्रश्नोत्तर हैं। उपरांत निर्ग्रंथों के लिए क्या प्रशस्त हैं और इसे उसके साथ दूसरे मत-वाले तथा अन्त में पार्श्वनाथ के वंश में हुए कालास्यवेष्टि-पुत्र का स्थविर अनगार के साथ हुआ संवाद यहाँ दिया गया है। जिसका सार निम्नानुसार है–

कोई भी जीव प्राणातिपात, मृषावाद, अदत्तादान, मैथुन, परिग्रह, क्रोध, मान, माया, लोभ, प्रेम, द्वेष, कलह, कलंक-आरोपण करना, चुगली खाना, अरतिरति, दूसरे की निंदा, कपट-पूर्वक असत्य बोलना और अविवेक–मिथ्या दर्शन शल्य इसके द्वारा आत्मा भारी बनती है, और इससे विपरीत प्राणातिपाता-दिका रुकावट करने से, हलकापन प्राप्त करते हैं और इन कारणों से अर्थात् प्राणातिपातदि से जीव संसार की वृद्धि करता है, लंबा करता है और संसार में भटकता रहता है और इस कारणों से निवृत्त होने से जीव संसार को घटाता है, छोटा (संक्षिप्त) बनाता है और पारकर जाता है। ※ २६

※ २६ अकाम निर्जरा से अनेक-अनेक कर्म खपाने के पश्चात् देव दुर्लभ मनुष्य अवतार को प्राप्त हुए जीव कौनसे कर्म तथा पाप करता है? जिस कारण से वे भारी (वजनदार) हो जाते हैं? इस प्रश्न का जबाव देते हुए संसारातीत दया के सागर भगवान ने फर्माया है कि अठारह प्रकार के पापों से आत्मा भारी बनती है। जिनके सेवन से पाप लगता है। उसे पाप-स्थानक कहा जाता है। "**स्थीयतेऽस्मिन्निति स्थानकम्। पापानां स्थानक मिति पापस्थानकम्**" इस व्युत्पत्ति से पापों का ही संग्रह करानेवाले इन पापस्थानकों का वर्णन संक्षेप में इस प्रकार है :–

P. P. Ac. Gunratansuriji M.S. Jin Gun Aaradhak Trust

(१) **प्राणातिपात**– अर्थात् स्पर्शेन्द्रिय, रसनेन्द्रिय, घ्राणेन्द्रिय, चक्षुरिन्द्रिय, श्रवणेन्द्रिय, मनबल, वचनबल, कायबल, श्वासोच्छ्वास और आयुष्यरुपी दस प्राणों का तारतम्य रुप से धारण करनेवाला जीव प्राणी कहलाता है। हिंसा वह है जिससे प्राणीमात्र के प्राणों को किसी प्रकार की हानि पहुँचे, आघात लगे, छेदन–भेदन करे, लात मारे, धूल से ढँक दे, परस्पर विरोधी जीवों को एकत्रित करे और अपने पुण्य कर्म के बल से दूसरों को मन, वचन तथा काया के बल से दबा देना जिससे वह तथा उसकी संतान दुःखी बने। **" सव्वे जीवावि इच्छन्ति जीविउं........** अर्थात् प्राणी मात्र जीवित रहने की इच्छा रखता है, किन्तु अपने प्राणों से विमुक्त होने की कोई भी इच्छा नहीं करता है। परन्तु इन्द्रियों का गुलाम कषाय युक्त आत्मा अज्ञान और प्रमादवश होकर अन्य जीवों का घात करता है। अर्थात् प्राणियों को उनके प्राणों से विमुक्त करता है। वह प्राणातिपात नाम का पहला पाप स्थानक कहलाता हैं। **प्राणानामतिपातः वा प्राणाः अतिपात्यन्त येन दुष्प्रयुक्तेन मनसा वचसा कायेन इति प्राणातिपातः।**

(२) **मृषावाद**– मृषा अर्थात् असत्य और वाद अर्थात् बोलना, सारांश कि पदार्थ जिस स्वरुप में हैं उससे विपरीत बोलना, वह असत्य भाषण तीन प्रकार का है–१ सद्भाव प्रतिषेध, २ अर्थान्तर, ३ गर्हावचन ।

आत्मा नहीं, परलोक नहीं, पाप–पुण्य नहीं, मोक्ष नहीं अथवा अंगुठा या चावल के माप जितनी आत्मा है। इसके अनुसार वचन बोलें, उनको सद्भाव प्रतिषेध और अभूतोद्भावन कहते हैं। पदार्थो के वास्तविक स्वरूप को तथा उनके अर्थ का निषेध करना, वह अर्थान्तर नाम का मिथ्या वचन है। हिंसक, कठोर, मर्मभेदक, प्राणघातक, पैशुन्यात्मक आदि वचनों का प्रयोग गर्हावचन है । अर्थात् हिंसक भाषादि किसी काल में भी सत्यवचन हो ही नहीं सकती।

(३) **अदत्तादान**– राग द्वेष के वश होकर चोरी करवाने के इरादे

P. P. Ac. Gunratansuriji M.S. Jin Gun Aaradhak Trust

से अन्य की वस्तु लेना या छुपाना, वह तीसरा पापस्थानक कहा जाता है।

(४) मैथुन–रागवश होकर मिथुन भाव का सेवन करना, उसे मैथुन कहते हैं। पाप के इरादे से पुरुष–स्त्री का युगल, दो पुरुषों का युगल अथवा दो स्त्रियों का युगल जो व्यभिचार करते हैं उसे मैथुन कर्म कहते है। अथवा राग मोह के क्लिष्ट अध्यवसाय को लेकर एकाकी जीव भी मैथुन भाव का चिंतन करता है। भोगे हुए भोग याद करता है। भविष्य में भी विषय भोग की चाह करता है, इसके अनुसार गंदे विचार, गंदा साहित्य और गंदे चित्रों द्वारा मानसिक परिणामों में उत्तेजना लाकर पुरुष अपने वीर्य का अथवा स्त्री कृत्रिम साधनों द्वारा अपने रज का पतन करती है उसे भी मैथुन कहते हैं।

(५) परिग्रह–" **परि-समन्ताद् आत्मानं गृह्णातीति परिग्रहः, अथवा ऽऽत्मापरिगृह्यतेऽनेनेति परिग्रहः**। मर्यादातीत धन–धान्य–पशु–वस्त्र–आभूषण आदि का संग्रह करना—वह परिग्रह है। ये उपर्युक्त पापस्थानक, द्रव्य पाप है।

शेष तेरह पापस्थानक भावपरिग्रह है, जो निम्नलिखित है।

(६) क्रोध– सकारण अथवा निष्कारण आत्मा के क्रूर अध्यवसायों को क्रोध कहते हैं। अपनी आत्मा का उपघात करनेवाला और मित्र–स्वजन आदि के मन में अप्रीति पैदा करनेवाले क्रोध को चांडाल की उपमा दी गई है।

(७) मान–धर्मगुरु–विद्यागुरु–दीक्षागुरु–माता–पिता तथा वडिलों के सन्मुख अकड़कर खड़ा रहना, तथा अपनी प्रकृति को जानबूझकर उद्धत. बनाना वह अभिमान है। जाति–कुल, ऐश्वर्य, बल, रूप, लाभ, तप, श्रुत आदि का अभिमान आठ प्रकार का हैं।

(८) माया– आत्मा के विचारों में अशुद्धता–वक्रता को लाना, तथा जीवन को विसंवादी बनाना, माया नाम का आठवाँ पाप है।

P. P. Ac. Gunratansuriji M.S. Jin Gun Aaradhak Trust

(९) **लोभ**– आत्मा, जिससे अशुद्ध–अर्थात् मलिन बनती है, परिणामों में चंचलता आये, विचार–उच्चार परद्रोहात्मक बने। वह लोभ है।

(१०) **राग**– मन, पांच इन्द्रियें तथा शरीर को प्रिय लगे वैंसे भोजनपान–वस्त्र–सुगंध–स्पर्शन–दर्शन तथा श्रवण के प्रति अत्यन्त आसक्ति मोह रखने को राग कहते है।

" दोषाः स्मरप्रभृतयो रागस्य परिचारकाः "

जिससे अर्थात् जिन वृत्ति तथा प्रवृत्ति से काम वासना भड़के मलिन चेष्टाएं बढ़े। मानसिक जीवन में मादकता का प्रादुर्भाव हो तथा ज्ञानोपासना में अन्तराय आये। इसका मूलकारण राग है। जो अत्यन्त दुस्त्याज्य है।

(११) **द्वेष**– राग–द्वेष दोनों बाल मित्र हैं। जब एक वस्तुपर राग होगा तब दूसरी वस्तुपर द्वेष हुए बिना नहीं रहेगा। राग प्रीत्यात्मक है और द्वेष अप्रीत्यात्मक है। इन्हीं के कारण आत्मा तथा मन बहुत मलिन होते हैं। द्रव्य रोग की दवा होती है तब आत्मा के भाव रोग रुपी राग, द्वेष की दवा नहीं होती है। इससे हाथ, पांव, मुख और नेत्रकी मलिनात्मक चेष्टाओं का उद्भव होता है। विशुद्धतर बनी हुई आत्मा को भी अशुद्ध, अशुद्धतर, अशुद्धतम बनानेवाला द्वेष है। मात्सर्यवश होकर अन्यथा रूप में कहना, यह द्वेष है गुणी मानव के प्रति भी दोषारोपण करना यह द्वेष का फल है। जिस से परलोक बिगड़े बगैर नहीं रहेगा।

(१२) **कलह**– दूसरे के साथ क्लेश करने के लिए चिल्लाना, दूसरे को बदनाम करने की आदत रखना, वाक्युद्ध करना, द्वेष और मस्करी से युद्ध–वैर–क्लेश कंकास और जोर जोर से गला फाड़कर असमंजस भाषा बोलना, विरोध को उत्तेजित करने योग्य शब्दों में आक्रोशता लाना और जिस किसी के साथ विवाद करना, यह सब बारहवे कलह नाम के पाप के कारण होते हैं।

P. P. Ac. Gunratansuriji M.S. Jin Gun Aaradhak Trust

(१३) **अभ्या ख्यान**–दूसरों के असद् दोषों को प्रकट करना, दूसरोंपर दोषारोपण करना, विपक्षी का दोष न होते हुए भी उसे दोषी प्रमाणित करने हेतु हजारों प्रयत्न करना, यह सब अभ्याख्यान पाप का कारण होता है।

(१४) **पैशून्य**– अर्थात् दूसरे की चुगली खाना, दूसरों के प्रत्यक्ष या परोक्ष दोष भी दूसरों के सन्मुख जाहिर करना, पीठ पीछे [परोक्ष में] दूसरों के अवगुण बतलाना, छेदन–भेदन अर्थात् तोड़ने फोड़ने की प्रवृत्ति करना, आत्मिक जीवन में शठता (बदमाशी) रखना, ये सब पैशून्य पापके कारण हैं। जिससे हमारे प्रीत्यात्मक स्वभाव का भी ह्रास होता है तथा दूसरों के साथ मैत्री भाव में कमी हो जाती है।

(१५) **रति अरति**– राग–द्वेष के वश होकर एक पदार्थ के प्रति प्रेम रखना और दूसरे का तिरस्कार करना, एक वस्त्र पसंद करना, जबकि दूसरा वस्त्र पसन्द न करना, ये सब इस पाप की लेश्याओं का परिणाम है। अर्थात् मन पसन्द चीज मिलनेपर आनंदित होना और अनिच्छित वस्तु मिलनेपर अप्रसन्न होना।

(१६) **परपरिवाद**– जहां–वहां दूसरों के गुण–दोष प्रकट करना अनेक जन के समक्ष दूसरों के दोषों का उद्घाटन करना, उसके लिए बिभत्स, गंदा तथा असभ्य वचन बोलना आदि इस पाप के कारण होता है।

(१७) **मायामृषावाद**– इस पाप स्थानक में मन और वचन का मिश्रण होने से अत्यन्त खतरनाक तथा दुस्त्याज्य यह पाप है। माया–कपट–धूर्तता–शठता–परवंचकता आदि मानसिक पापों के वश होकर सफाई पूर्वक, बदमाशी पूर्वक व्यंग में तथा मजाक में बोलना, तथा उस प्रकार व्यवहार करना, ये सब इस पाप के कारण से ही होता है। जहाँ सर्वथा सीधी बात हो, काम में सरलता से सफलता मिल जाती हो या काम सरलता से पूरा हो जाता हो वहाँ कूटनीतिज्ञ बनना अथवा दांभिकता पूर्वक भाषा का व्यवहार करना, ये सब माया मृषावाद का परिणाम है।

P. P. Ac. Gunratansuriji M.S. Jin Gun Aaradhak Trust

इस प्रकार सातवां अवकाशांतर, सातवां तनुवात, सातवां घनवात, सातवां घनोदधि, सातवीं पृथ्वी वगैरे संबंधी प्रश्न हैं।

जवाब में सातवां अवकाशान्तर अगुरुलघु अर्थात् बहुत भारी भी नहीं और हलका भी नहीं, जब कि सातवां तनुवात खूब हलका है। इसी तरह सातवां घनवात, सातवां घनोदधि, सातवीं पृथ्वी और सब अवकाशान्तर जानना चाहिए।

इस प्रकार नैरयिकों के संबंध में कहा जाता है कि वे वजनदार तथा हलके हैं और अगुरु लघु याने भारी हलके सिवाय के भी है। क्योंकि वैक्रिय और तैजस शरीर की अपेक्षा से भारी नहीं, हलके नहीं और भारीहलके सिवाय के भी नहीं है। किन्तु भारी हलका गुरु लघु है और जीव तथा कर्म की अपेक्षा से

---

(१८) **मिथ्यात्व**–ऊपर लिखे हुए सब पापों को उत्तेजित करनेवाला तथा वृद्धि करनेवाला मिथ्यात्व नाम का पाप है। जिसके कारण अहिंसा में हिंसा का आरोपण, सत्य में असत्य का स्थापन, अरिहंत देव में अदेव बुद्धि, धर्म में अधर्म बुद्धि, तथा पंच महाव्रतधारी गुरु में मलिन बुद्धि आदि मानसिक विकार इस पाप के कारण से होते हैं। जिसके कारण मनुष्य मात्र पाप के प्रति प्रयाण करते हें। अतः जगत् गुरु भगवान् महावीर स्वामी ने कहा है कि इन अठारह पापों से आत्मा भार स्वरुप बन जाती है। संसार में भटकती है और यमदूतों द्वारा वे अनेक भव में मार खाते हैं।

एतदर्थ आत्म–कल्याण के अभिलाषियों को सबसे पहले इन पापों से मुक्ति की प्राप्ति के लिए ही प्रयत्न करना चाहिए।

P. P. Ac. Gunratansuriji M.S. Jin Gun Aaradhak Trust

भारी नहीं हलका नहीं, भारी व हलका नहीं परंतु भारी हल सिवाय के है। इसीप्रकार वैमानिकों तक जानना चाहिए।

धर्मास्ति कायादि पदार्थ यावत् जीवास्तिकाय अगुरु लघु है और पुद्गलास्तिकाय गुरुलघु और अगुरुलघु भी है।

समय और कर्म अगुरु लघु है।

कृष्ण लेश्या गुरू लघु और अगुरू लघु भी है। अर्थात् द्रव्य लेश्या की अपेक्षा से गुरू लघु है और भाव लेश्या की अपेक्षा से अगुरू लघु है। इसप्रकार सभी लेश्याएँ जाननी चाहिए।

दृष्टि, दर्शन, ज्ञान, अज्ञान और संज्ञा, ये अगुरु लघु हैं। मनयोग, वचनयोग, साकार-उपयोग, निराकार उपयोग ये सब अगुरू लघु हैं। काय योग गुरु लघु है। काल-भूत, भविष्य और वर्तमान-सर्वकाल अगुरु लघु है।

जो गुरु, लघु आदि ऊपर बताये गये हैं, वे सही रीति से तो निश्चय-नय की अपेक्षा सबसे भारी और सबसे हलका कोई द्रव्य नहीं है। व्यवहारनय की अपेक्षा से स्थूल स्कंधों में सबसे भारीपन और सबसे हलकापन रहता है।

परन्तु दूसरे में वह नहीं, अगुरु लघु और गुरुलघु के संबंध में निश्चयनय कहता है कि जो द्रव्य चार स्पर्शवाले होते हैं और जो द्रव्य अरूपी होते हैं वे सब अगुरु लघु हैं। शेष आठ स्पर्शवाले द्रव्य गुरू लघु हैं।

अब निर्ग्रन्थों के संबंध में प्रशस्त क्या और अप्रशस्त क्या? उनके संबंध में कहा जाता है कि—

P. P. Ac. Gunratansuriji M.S. Jin Gun Aaradhak Trust

लाघव, कम इच्छा, अमूर्च्छा, अनासक्ति और अप्रतिबद्धता तथा अक्रोध, अमान, अकपट तथा अलोभ, ये सब निर्ग्रन्थ-श्रमणों को प्रशस्त है। तथा कांक्षा मोहनीय क्षीण होने के बाद श्रमण निर्ग्रन्थ सिद्ध होते हैं, सब दुखों का नाश करते हैं। ※ २७

※ २७ बड़े पुण्योदय से प्राप्त हुआ और प्राप्त किया चारित्र प्रति समय शुद्ध होता रहे, उस संबंध में ये प्रश्नोत्तर अत्यन्त स्पष्ट है। भाव संयम का व्यवस्थित रुप से विकास करने के लिए आत्मा में शुद्ध लेश्या स्वाध्याय बल तथा तपोबल की पूर्ण आवश्यकता है। जिस कारण से आंतरिक जीवन में–

लाघविक– अर्थात् संयम की रक्षा के लिए स्वीकृत वस्त्र, पात्र, कम्बल, रजोहरण, आदि उपकरणों में अल्पता लाने का आग्रह रखना अर्थात् उपाधि जितनी कम होगी, उतनी संयम की मात्रा भी शुद्ध रहेगी। कषायों की निवृत्ति होगी और भाव मन शुद्ध होगा।

अल्पेच्छा– अर्थात् आहार पानी के विषय की अभिलाषा कम रखनी चाहिए। जिससे स्वाध्याय और आभ्यन्तर तप की प्राप्ति सुलभ हो जायेंगी तथा अनादिकाल की आहार संज्ञा मर्यादा में आवेगी। अन्यथा इसके सद्-भाव में मैथुन संज्ञा के लिए द्वार खुले ही रहेंगे। और इसकी उपस्थिति में परिग्रह संज्ञा जीवित डाकिनी की तरह तैयार है। बाद में भय संज्ञा से आपका यह संपूर्ण जीवन आर्त्तध्यान रौद्रध्यान में पूर्ण होगा।

अमूर्च्छा– अर्थात् धर्मध्यान के लिए संग्रह किये गये और दूसरों को धर्मध्यान में सम्मिलित करने के लिए इकठ्ठे किये हुए धर्मोपकरण में आत्मिक जीवन को बरबाद करानेवाली मूर्च्छा नहीं रखनी चाहिए।

अगृद्धि– अर्थात् आहार पानी करते समय खाद्य पदार्थों के रस में मस्त होकर लंपटता नहीं रखनी चाहिए।

P. P. Ac. Gunratansuriji M.S. Jin Gun Aaradhak Trust

जीव और आयुष्य

कोई मतान्तरवाले ऐसा मानते हैं कि एक जीव एक समय में दो आयुष्य करते हैं। इस भव का आयुष्य करते हैं और आगामी भव का आयुष्य करते हैं। भगवान महावीर इसे अस्वीकार करते हैं। गौतम स्वामी के प्रश्न के उत्तर में वे कहते है कि हे गौतम! एक जीव एक समय में एक आयुष्य करता है। जब इस भव का आयुष्य करता है, उस समय में परभव का आयुष्य नहीं करता है और जिस समय में परभव का आयुष्य करता है उस समय में इस भव का आयुष्य नहीं करता है।

इस संबंध में यह बात है कि एकही जीव एकही समय में दो आयुष्य नहीं करता है। बाकी दो जीव दो आयुष्य करते हैं। अथवा एक जीव अलग-अलग समय में दो आयुष्य करता है। इसमें तो संदेह हो ही नहीं सकता है।

कालास्यवेषि पुत्र

ये श्री पार्श्वनाथ भगवान् के संतानीय अणगार थे। एक समय वे विचरते-विचरते वहाँ आये, जहाँ भगवान् महावीर के स्थविर विचरते थे। दोनों मिले। कालास्यवेषिपुत्र ने इन स्थविरों

अप्रतिबद्धता–दीक्षा लेने के पश्चात् अपने स्वजनों के प्रति किसी भी प्रकार का राग संबंध नहीं रखना चाहिए।

उपर्युक्त पांच वस्तुएं संयम तथा संयमी दोनों के लिए प्रशस्त हैं। इस से ही क्रोध, मन, माया, लोभ कम होते जायेंगे और शुक्र के तारे के समान हमारा संयम प्रति समय देदीप्यमान होगा।

P. P. Ac. Gunratansuriji M.S. Jin Gun Aaradhak Trust

से कहा, आप सामायिक नहीं जानते हैं। सामायिक का अर्थ नहीं जानते हैं। इसीप्रकार संयम, संवर, विवेक और व्युत्सर्ग को नहीं जानते हैं और उनके अर्थ को भी नहीं जानते है।

स्थविरों ने जवाब दिया कि हम अच्छी तरह इनके अर्थ जानते हैं। कालास्यवेषि पुत्र ने कहा-यदि आप सामायिकादि और उनके अर्थों को जानते हो तो बताओ की सामायिकादि क्या है? और उसका अर्थ क्या है?

स्थविरों ने जवाब देते हुए कहा कि हमारी आत्मा ही सामायिक है। यही सामायिक का अर्थ है। यही पच्चक्खाण का अर्थ है। यावत् यही संयम, यही संवर, यही विवेक और उसका अर्थ है।

कालास्यवेषिपुत्र-यदि ऐसा ही है तो फिर आप क्रोधादिक का त्याग करके किसलिए क्रोधादि की निंदा करते हैं?

स्थविरवृन्द-संयम के लिए ही क्रोधादि की निंदा करते है।

कालास्यवेषिपुत्र-निंदा, गर्हा यह संयम है। या असंयम?

स्थविर-निंदा-गर्हा यह संयम है। गर्हा सब दोषों का नाश करती है। आत्मा मिथ्यात्व को जानकर गर्हा द्वारा सब दोषों का नाश करती हैं। इसप्रकार हमारी आत्मा संयम में स्थापित होती है। तत्पश्चात् कालास्यवेषि पुत्र स्थविरों की इस बात को स्वीकार करते हैं। इतना ही नहीं परंतु अपना मत जो चारमहाव्रतवाला था, उसे त्यागकर भगवान महावीर का चारित्र जो पांच महाव्रत और प्रतिक्रमण सहित (कारण हो या न हो प्रतिक्रमण करना ही) धर्म को स्वीकार करते हैं।

P. P. Ac. Gunratansuriji M.S. Jin Gun Aaradhak Trust

बाद में श्री गौतमस्वामी द्वारा प्रत्याख्यान और आ
कर्मादि संबंधी पूछे गये प्रश्नों के उत्तर में भगवान ने स्पष्टीकरण किया है की, एक सेठ, एक दरिद्र, एक लोभी और एक क्षत्रिय (राजा) ये सब एक साथ अप्रत्याख्यान क्रिया कर सकते हैं। यह वचन अविरति के आश्रित है।

आधा कर्म दोषवाले आहार को खाता हुआ श्रमण आयुष्य के अतिरिक्त कमजोर बंध से बांधी हुई सात प्रकृतियों को मजबूत बंध से बांधता है और संसार में बारंवार भ्रमण करता है। क्योंकि वैसा करनेवाला श्रमण अपने धर्म का उल्लंघन करता है। तथा पृथ्वीकाय और त्रसकाय की परवाह नहीं करता है।

इस के विपरीत प्रासुक और निर्दोष आहार करता हुआ श्रमण निर्ग्रंथ आयुष्य के अतिरिक्त मजबूत बंधी हुई सात कर्म प्रकृतियों को कमजोर बनाता है। (आयुष्य कर्म को कदाचित् बांधता है और कदाचित् बांधता नहीं है।) और संसार को पार कर लेता है। क्योंकि वह अपने धर्म का उल्लंघन नहीं करता है। पृथ्वीकाय से लेकर त्रसकाय तक के जीवो की संभाल रखता है।

पदार्थो के स्वभाव के संबंध में कहते है कि अस्थिर पदार्थ बदलते नहीं हैं। अस्थिर पदार्थ भग्न होते है, स्थिर पदार्थ भग्न नहीं होते है। बालक शाश्वत है, बालकपन अशाश्वत है। पंडित शाश्वत है, पंडितपन अशाश्वत है। ※ २८

※ २८ पार्श्वनाथ भगवान् के शिष्य कालास्यवेषि पुत्र नाम के अणगार ने महावीर स्वामी के शिष्यों से प्रश्न पूछे कि आप निम्नानुसार पद और

P. P. Ac. Gunratansuriji M.S.	Jin Gun Aaradhak Trust

पदार्थ जानते नहीं है। उसके उत्तर में महावीर के श्रमणों ने इस प्रकार कहा कि हम इन पदार्थों को इसप्रकार जानते हैं :—

सामायिक—दीक्षा ग्रहण की, उसी क्षण से आयुष्य की अन्तिम क्षण तक समभाव से रहना और नये कर्मों का उपार्जन नहीं करना। यह सामायिक और यह सामायिक का अर्थ है।

प्रत्याख्यान—नवकारशी–पौरुषी (पोरसी), साढ पोरसी चौविहार, गंठसी, मुठसी आदि पच्चकखाणों के नियम रखने। जिससे आश्रवद्वार बंध होते हैं। सर्वथा नियम विना का चाहे जैसा ज्ञानी होगा तो यह आश्रवद्वार बंध नहीं कर सकता।

संयम—पृथ्वी, पानी, अग्नि, वायु, वनस्पति और त्रस काय के जीवों का रक्षण करना उसे संयम कहते हैं।

संवर—पांचों इन्द्रियों को तथा मन को समिति तथा गुप्ति नाम के संवर धर्म में जोड़ने के लिए प्रयत्नशील रहना चाहिए।

विवेक—विशेष प्रकार से जीव–अजीव–पुण्य–पाप–आश्रव–संवर–बंध–निर्जरा और मोक्ष इन नव तत्त्वों की जानकारी होनी चाहिए। श्रद्धा में स्थापित करने और आचरण में लाने के लिए ही प्रयत्न करना चाहिए। उसे विवेक कहते हैं। इससे त्याग करने योग्य पदार्थ तथा क्रियाओं का त्याग किया जायगा और मन, वचन तथा काया अरिहंत देव के धर्म के प्रति संयुक्त हो जायेंगी।

व्युत्सर्ग—शरीर और इन्द्रियों का व्युत्सर्ग करने के लिए अर्थात् काया की माया छोड़कर मन, वचन, तथा शरीर को कम से कम घंटा आधा घंटा ध्यान में तथा प्रभु के जप में लगाना चाहिए। जिससे अनादि कालीन शरीर पर का मोह कम हो जायगा।

निन्दा और गर्हा— "तं च निंदे तं च गरिहामी" क्या संयम हो सकेगा ? इसके जवाब में कहा है कि हमारे द्वारा जो पाप हो उनकी निंदा

P. P. Ac. Gunratansuriji M.S. Jin Gun Aaradhak Trust

करनी चाहिए । विशेष प्रकार से निंदा करनी चाहिए। गुरू की साक्षी ले कर इन पापों की निंदा और गर्हा करनेवाला साधक पापों से और पापकर्मों मुक्त हो जायगा ।

आधाकर्म से सिर्फ गोचरी ही नहीं लेनी चाहिए। किन्तु साधु महाराज के आशय से चाहे जो फल शाक आदि निर्जीव किया जाय या अचित्त बनाया जाय । सचित्त वस्तु को पकाया जाय । साधु महाराज के लिए ही मकान निर्माण करना तथा अमुक साईज का या अमुक अर्ज का कपड़ा तैयार करना । ये सब आधे कर्म हैं । अर्थात् साधु के लिए ही चाहे जो वस्तु तैयार करनी हो, जिसमें आरंभ रहा हुआ हो, वे सब आधे कर्म कहलाते हैं। इस प्रकार के अपने लिये ही खास तैयार किये हुए या कराये हुए पदार्थों में मस्त बना हुआ साधु धीरे-धीरे समिति तथा गुप्ति धर्म को भूल जाता है। तथा पृथ्वी कायादि और आगे बढ़कर त्रस काय की रक्षा में भी ध्यान रहित बन जाता है। इसप्रकार होते हुए द्रव्य संयमी वारंबार सात प्रकार के कर्मों को बांधता है और भाव संयम से भ्रष्ट होकर अनंत संसार बढ़ा देता हैं।

जब आधे कर्म को त्याग करनेवाला साधक बांधे हुए कर्म को भी कम करता जाता है। मोक्ष तक आगे बढ़ता है। क्योंकि आत्म कल्याण में तत्पर साधक अपने जीवन में किसी भी प्रकार के शाक के लिए, फल के लिए, दूध चाय के लिए ओसामण (मांड) आदि के लिए, अमुक प्रकारकी चपाती (रोटी) के लिए अमुकही मिल की बनी हुई, अमुक मार्के की मलमल कपड़ा, अथवा कम्बल के लिए, यहाँ तक अपने शरीर के लिए भी मोह नहीं रखता है।

जब लोकैषणा, भोगैषणा और वित्तैषणा का इच्छुक असंयमी अथवा द्रव्यसंयमी साधक आसक्ति का त्याग नहीं कर सकता है। इसलिए चाहे जब उस में हिंसकवृत्ति तथा परिग्रहवृद्धि की मात्रा बढ़ जाती है।

मिट्टी के ढेलें की तरह कर्म भी अस्थिर है। इसलिए जीव के प्रदेशों से प्रतिसमय कर्म वर्गणा चलती रहती है। अर्थात् चलती ही होती है।

P. P. Ac. Gunratansuriji M.S. Jin Gun Aaradhak Trust

आत्मा के परिणामों से बंध, उदय और निर्जरणा भी बदलती रहती है। पत्थर की शिला के समान कर्म क्षय होते हुए भी जीव स्थिर ही रहता है। और अपने स्वभाव से कभी भी बदलता नहीं है। लोहे की सलाई के समान शाश्वत जीव का किसी काल में भी क्षय या नाश नहीं होता है।

व्यवहारकाल में बालक अर्थात् बच्चा अज्ञानी है, और निश्चयनय से बालक यानी असंयत जीव लेना है। जीव इसलिए शाश्वत है कि वह 'द्रव्य' है। द्रव्य रुप से किसी पदार्थ का नाश नहीं होता है। जब पर्याय रुप से उसमें उत्पन्न और नाश बनता ही रहता है। व्यवहार नय से जिस प्रकार बालक का बालकत्व अशाश्व है, उसीप्रकार निश्चयनय से बालकत्व (असंयमी जीवन) भी अशाश्वत है। जो परिस्थितिवश बदलता रहता है।

व्यवहारनय से शास्त्रों का ज्ञाता पंडित है और निश्चयनय से संयमी जीव पंडित है। संयमी साधु अच्छी तरह से अष्ट प्रवचन माता का जानकार होगा। उस कारण वह पंडित है। परन्तु यम नियम और प्रत्याख्यान के बिना चाहे जैसा महान शास्त्रज्ञाता भी पंडित नहीं है।

॥ नववाँ उद्देशा समाप्त ॥

P. P. Ac. Gunratansuriji M.S. Jin Gun Aaradhak Trust

भाषा विचार

अन्य–बोलने के समय पूर्व की भाषा वह भाषा है। बोलने समय की भाषा वह अभाषा है और बोलने के समय बाद की भाषा बोली गई है, वह भाषा है।

महावीर–बोलने (के) पूर्व की भाषा, अभाषा है। बोली जाती भाषा वह भाषा है। बोलने के बाद की बोली हुई भाषा वह अभाषा है।

अन्य–बोलने पूर्व की भाषा भाषा है। बोलाई जाती भाषा वह अभाषा है, और बोलने बाद की बोलाई जाती हुई भाषा वह भाषा है। क्या वह बोलते पुरुष की भाषा है या नहीं, बोलते हुए पुरुष की?

उत्तर–नहीं बोलते हुए पुरुष की वह भाषा है। बोलते हुए पुरुष की नहीं।

महावीर–पूर्व की भाषा वह अभाषा है। बोली जाती हुई भाषा वह भाषा है और बोलने के बाद की बोली हुई भाषा अभाषा है। तो क्या वह बोलते हुए पुरुष की भाषा है या नहीं बोलते हुए पुरुष की?

उत्तर–वह बोलते हुए पुरुष की भाषा है, नहीं बोलते हुए पुरुष की नहीं है।

अन्य–अकृत्य दुःख है, अस्पृश्य दुःख है और अक्रियमाण

कृत दुःख है, उसको नहीं करके प्राण, भूत, जीव और सत्व वेदना को वेदते हैं, अनुभव करते हैं।

महावीर--कृत्य दुःख है, स्पृश्य दुःख है, क्रियमाण कृत दुःख है उसको नहीं करके प्राण, भूत, जीव और सत्त्व वेदना को वेदते हैं, अनुभव करते हैं।

नोट--टीकाकार ने प्राण, भूत, जीव और सत्व के भेद इस प्रकार बताये हैं :--

दो, तीन, चार इन्द्रियवाले जीव प्राण कहे जाते हैं।

वृक्षों को भूत कहते हैं।

पांच इन्द्रियवाले जीव कहे जाते हैं।

पृथ्वी वगैरे के जीव को सत्व कहते हैं।

क्रिया

अब दूसरे मतवालों के द्वारा माने हुए क्रियासंबंधी प्रश्न हैं। अर्थात् एक जीव एक समय में दो क्रिया करता है। ईर्यापथिकी और सांपरायिकी। भगवान महावीर ने कहा, जीव एक समय में ईर्यापथिकी और सांपरायिकी इसप्रकार दो क्रियाएं नहीं करता है। इसमें से कोई एक क्रिया करता है।

यहाँ ईर्यापथिकी और सांपरायिकी क्रिया कौनसी है? उनको देखें "ईर्या" अर्थात् जाना और पथ अर्थात् मार्ग अर्थात् जो जाने का मार्ग उसे 'इर्या पथ' कहते हैं। उसमें हुई जो क्रिया वह

P. P. Ac. Gunratansuriji M.S.   Jin Gun Aaradhak Trust

ईर्यापथिकी क्रिया अर्थात् मात्र शरीर के व्यापार से हुआ कर्मबंध।

अब जिससे प्राणी संसार में घूमते हैं उसे संपराय अर्थात् कषाय कहते हैं। उन कषायों से जो क्रिया होती है उसे सांपरायिक अर्थात् कषायों से हुआ कर्मबंध।

अब विचारणीय विषय यह है कि ईर्यापथिकी क्रिया का कारण अकषाय हैं। कषाय बिना की स्थिति है और सांपरायिकी क्रिया का कारण कषायवाली स्थिति है अतः ये दोनों परस्पर विरुद्ध क्रिया की उत्पत्ति एकही काल में, एक जीव में किस प्रकार हो सकती है ? क्योंकि वे दोनों क्रियाएं परस्पर विरुद्ध है। (एक समय में दो क्रियाओं का अनुभव हो, इस मत की उत्पत्ति करनेवाले धनगुप्त के शिष्य आर्यगंग थे। उनका इतिहास भगवती पृष्ठ २२० पर देखिये। (महावीर स्वामी सिद्ध होने के बाद २२८ वर्ष पर होने का लिखा है। विशेषावश्यक का वह उद्धृत अंश है।)

इस प्रकरण के अंत में एक प्रश्न है--नारकी जीव कितने समय तक उपपात बिना के रह सकते है ?

जबाब में भगवान ने कहा कि जघन्य से एक समय तक और उत्कृष्ट से बारह मुहूर्त तक उपपात बिना के कहे हैं।

"शतक समाप्तिवचन"

शास्त्र विशारद, जैनाचार्य, नवयुग प्रवर्तक, शासन तथा समाज के हितचिंतक, बंगाल, बिहार, उत्तर प्रदेश आदि देशों के महापंडितों को अहिंसक बनानेवाले तथा भ. महावीर स्वामी के अहिंसा तथा स्याद्वाद सिद्धांत का प्रबल प्रचार करनेवाले जगत-

P. P. Ac. Gunratansuriji M.S. Jin Gun Aaradhak Trust

पूज्य शास्त्र विशारद जैनाचार्य श्री १००८ श्री विजय धर्मसूरीश्वरजी म. के शिष्य, शासनदीपक सतत सद्धर्म और जैन तत्त्वज्ञान के महान् प्रचारक, सत्य और सदाचार के निर्भिक उपदेष्टा, परमपूज्य गुरुदेव, श्री विद्याविजयजी महाराज साहब ने 'भगवती' जैसे गंभीर सूत्रपर जो विवरण लिखा है। उसपर विस्तृत टीका लिखकर मैंने यथा मति संवर्धन और संपादन किया है।

॥ शुभं भूयात् सर्वेषां प्राणिनाम् ॥

॥ दस उद्देशों के साथ प्रथम शतक पूर्ण हुआ ॥

P. P. Ac. Gunratansuriji M.S.　　　　Jin Gun Aaradhak Trust

ईर्यापथिकी क्रिया अर्थात् मात्र शरीर के व्यापार से हुआ कर्मबंध
अब जिससे प्राणी संसार में घूमते हैं उसे संपराय अर्थात्
कषाय कहते हैं। उन कषायों से जो क्रिया होती है उसे सांपरायिक
अर्थात् कषायों से हुआ कर्मबंध।

अब विचारणीय विषय यह है कि ईर्यापथिकी क्रिया का
कारण अकषाय हैं। कषाय बिना की स्थिति है और सांपरायिकी
क्रिया का कारण कषायवाली स्थिति है अतः ये दोनों
परस्पर विरुद्ध क्रिया की उत्पत्ति एकही काल में, एक जीव में किस
प्रकार हो सकती है? क्योंकि वे दोनों क्रियाएं परस्पर विरुद्ध है।
(एक समय में दो क्रियाओं का अनुभव हो, इस मत की उत्पत्ति
करनेवाले धनगुप्त के शिष्य आर्यगंग थे। उनका इतिहास भगवती
पृष्ठ २२० पर देखिये। (महावीर स्वामी सिद्ध होने के बाद २२८
वर्ष पर होने का लिखा है। विशेषावश्यक का वह उद्धृत अंश है।)

इस प्रकरण के अंत में एक प्रश्न है--नारकी जीव कितने
समय तक उपपात विना के रह सकते है?

जवाब में भगवान ने कहा कि जघन्य से एक समय तक
और उत्कृष्ट से बारह मुहूर्त तक उपपात बिना के कहे हैं।

"शतक समाप्तिवचन"

शास्त्र विशारद, जैनाचार्य, नवयुग प्रवर्तक, शासन तथा
समाज के हितचिंतक, बंगाल, बिहार, उत्तर प्रदेश आदि देशों के
पंडितों को अहिंसक बनानेवाले तथा भ. महावीर स्वामी के
अहिंसा तथा स्याद्वाद सिद्धांत का प्रबल प्रचार करनेवाले जगत-

P. P. Ac. Gunratansuriji M.S. Jin Gun Aaradhak Trust

पूज्य शास्त्र विशारद जैनाचार्य श्री १००८ श्री विजय धर्मसूरीश्वरजी म. के शिष्य, शासनदीपक सतत सद्धर्म और जैन तत्त्वज्ञान के महान् प्रचारक, सत्य और सदाचार के निर्भिक उपदेष्टा, परमपूज्य गुरुदेव, श्री विद्याविजयजी महाराज साहब ने 'भगवती' जैसे गंभीर सूत्रपर जो विवरण लिखा है। उसपर विस्तृत टीका लिखकर मैंने यथा मति संवर्धन और संपादन किया है।

॥ शुभं भूयात् सर्वेषां प्राणिनाम् ॥

॥ दस उद्देशों के साथ प्रथम शतक पूर्ण हुआ ॥

P. P. Ac. Gunratansuriji M.S.   Jin Gun Aaradhak Trust

नमोनमः श्री प्रभुधर्मसूरये ।

पृथ्वीकायिकादि के श्वासोच्छवास

इस उद्देशक में पृथ्वीकायादि जीवों का श्वासोच्छवास इन श्वासोच्छवास में लिए जाते हुए द्रव्य; नैरयिकों का श्वासोच्छवास वायुकाय के जीवों का श्वासोच्छवास, मृतादि अर्थात् प्रासुक भोजी निर्गंथ अणगार पुनः मनुष्ययोनि कैसे प्राप्त करें, वगैरे इन बावतों का विवेचन करने के साथ स्कंदक नाम के परिव्राजक का संपूर्ण जीवन वृत्तान्त दिया गया है । सारांश यह है :–

दो इन्द्रिय, तीन इन्द्रिय (त्रीन्द्रिय) चौरिन्द्रिय और पंचेन्द्रिय जीव श्वासोच्छ्वास लेते हुए दिखाई देते हैं । परंतु पृथ्वी कायादि एकेन्द्रिय जीव श्वासोच्छवास कैसे लेते हैं और छोडते है ? यह मुख्य (विषय) बावत है । भगवान् महावीर स्वामी कहते है कि पृथ्वी कायादि एकेन्द्रिय जीव भी बाहर और भीतर का उच्छवास लेते है और अंदर तथा बाहर के निःश्वास को छोडते है । वे जीव द्रव्य से अनंत प्रदेशवाले, क्षेत्र से असंख्य प्रदेश में रहे हुए, काल से किसी भी जाति की स्थितिवाले (एक पल या दो पल रहनेवाले वगैरे, और भाव से वर्ण–गंध--रस स्पर्श वाले द्रव्यों का बाहर और भीतर का श्वास लेते हैं और उन्ही द्रव्यों का बाहर और भीतर का निःश्वास छोडते है । ये जीव पांच दिशाओं से श्वास और निःश्वास

के अणुओं का संग्रह करते हैं।

इसीप्रकार नारकी के जीवों के संबंध में भी समझना चाहिए। वे छः दिशाओं में से बाहर और अंदर के श्वास और निःश्वास के अणुओं का संग्रह करते हैं।

जीव और एकेन्द्रिय, यदि उनको किसी प्रकार की बाधा (अडचन) न हो, तो वे सब छः दिशाओं से श्वास और निःश्वास के अणुओं का संग्रह करते हैं और यदि कोई अडचन हो तो वे किसी समय तीन दिशा से, किसी समय चार और किसी समय पांच दिशाओं से अणुओं का संग्रह करते हैं।

जो एकेन्द्रियादि जीव लोकाकाश के अंत में रहनेवाले है। इसलिए अलोकाकाश का व्याघात होने से वे तीन दिशा के श्वास परमाणुओं का संग्रह नहीं कर सकते हैं।

वायु काय के श्वासोच्छ्वास–

वायुकाय के जीव वायुकायों को ही अंदर और बाहर के श्वास में लेते है और छोडते हैं। ये वायुकाय अनेक लाख दफे मर कर फिर दूसरे स्थानपर जाकर वापस वहीं उत्पन्न होते हैं। ये वायुकाय के जीव अपनी जाति या परजाति के जीवों के साथ टकराने से मर जाते हैं। किन्तु बिना टकराये वे नहीं मरते हैं। वायुकाय के जीव मरकर कथंचित् शरीरवाले होते है और कथंचित् शरीर बिना के होते है। अर्थात् वायुकाय चार शरीर बताये हैं– औदारिक, वैक्रिय, तैजस और कार्मण। उनमें औदारिक और वैक्रिय शरीर को छोड देते है। अतः बिना स्थूल शरीर के और तैजस और कार्मण सूक्ष्म शरीर सहित जाते हैं।

P. P. Ac. Gunratansuriji M.S. Jin Gun Aaradhak Trust

यहाँ एक बात ध्यान में रखने की है :–

वायुकाय, जिस वायु को श्वास और निःश्वास के रुप में लेते हैं और छोडते हैं। वे निर्जिव हैं, जड हैं। यदि वह श्वास निःश्वास रुप में लिया जाता हुआ और छोडा जाता हुआ वायु भी सचेतन होता तो इसे भी दूसरे वायु की जरुरत रहती और वैसे होते तो अनवस्था आ जाती है। किन्तु खरी बात यह है कि वे वायुकाय के जीव जो वायु लेते है और छोडते हैं, वे जड हैं।

जिसप्रकार वायुकाय के जीवों के संबंध में कहा है, उसी प्रकार पृथ्वीकायिकादिक भी अपनी कायस्थिति के असंख्य तथा अनंत स्वरुप सहित मरकर वापस अपनी काया में जन्म लेते है।

एकेन्द्रियादि चार प्रकार के जीवों की कायस्थिति असंख्य उत्सार्पिणी और अवसर्पिणी है। जबकि वनस्पति की कायस्थिति अनंत उत्सर्पिणी और अवसर्पिणी की है। अर्थात् विषय वासना में वश हुए जीव जो वनस्पति में जन्म लेते हैं वे अनंतकाल तक वापस ऊपर आ नहीं सकते हैं।

प्रासुकभोजी अणगार का क्या ?

इस अवतरण में अणगार के संबंध में इसप्रकार के प्रश्न पूछे गये हैं :– जिसने संसार को चेक नहीं किया। संसार के प्रपंचों को कंट्रोल में नहीं किया। जिसका संसार क्षीण नहीं हुआ। जिसका मोहनीय वेदनीय, कर्म क्षीण नहीं हुआ, जिसका संसार नहीं कटा, जिसका संसार वेदनीय कर्म व्युच्छिन्न नहीं हुआ, जो कृतार्थ नहीं, और जिसका काम पूर्ण नहीं, ऐसा मृतादि (प्रासुक भोजी)

P. P. Ac. Gunratansuriji M.S. Jin Gun Aaradhak Trust

अणगार क्या फिर भी शीघ्र मनुष्ययोनि वगैरह को प्राप्त करेगा ?

भगवान ने उत्तर में फरमाया है कि–हाँ, प्राप्त करेगा।

इस निर्ग्रंथ के जीव को प्राण, भूत, जीव, सत्व, विज्ञ या वेद कहते हैं।

इसप्रकार अलग–अलग नाम लेने में हेतु हैं। वे बाहर और अन्दर श्वास-निःश्वास लेते हैं। इसलिए 'प्राण'! अस्तित्व में आना उसका स्वभाव है, होता है, और होगा। इसलिए 'भूत'! जीवित है और आयुष्यकर्म का अनुभव करता है इसलिए 'जीव' शुभ और अशुभ कर्मों से संबद्ध है। इसलिए 'सत्व' कटु कषाय खारे और मीठे रस को जानता है। इसलिए 'विज्ञ' और सुख दुख को भुगतते हैं। इसलिए 'वेद' कहते है। इसप्रकार अलग अलग अपेक्षा से अलग-अलग नाम कहे जाते हैं।

इससे उल्टा (विपरीत) जिसने संसार को काबू में (नियंत्रण) रखा है। जिसका कार्य समाप्त हो गया है। ऐसा मृतादि (प्रासुक भोजी) मनुष्य वगैरह के भावों को प्राप्त नहीं करता है और वह सिद्ध, बुद्ध, मुक्त, परिनिर्वृत्त, अंतकृत और सर्व दुःख प्रहीण कहा जाता है।

इसके पश्चात् श्री स्कंदक तपस्वी का चरित्र बहुत विस्तारपूर्वक वर्णित है। सार यह है:–

स्कंदक तापस

भगवान महावीर स्वामी ने राजगृहनगरी के समीपस्थ गुण शील मंदिर से प्रस्थान किया। तत्पश्चात् उन्होंने कृतंगला नाम की

P. P. Ac. Gunratansuriji M.S. Jin Gun Aaradhak Trust

नगरी के उत्तर पूर्व दिशा के भाग में स्थित छत्रपलाशक नाम मंदिर में पदार्पण किया।

इस कृतंगला नगरी के पास में श्रावस्ती नाम की नगरी थी इस नगरी में कात्यायन गोत्रीय गर्दभाल नामक परिव्राजक का शिष्य परिव्राजक स्कंदक नामक तपस्वी रहता था।

यह स्कंदक ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद, अथर्वणवेद, इतिहास और पुराण तथा निघंटु का भी संपूर्ण ज्ञाता था। कापिलीय शास्त्र का विशारद था। गणित, शिक्षा, आचार, व्याकरण, छंद, व्युत्पत्ति और ज्योतिष आदि दूसरे अनेक ब्राह्मण तथा परिव्राजक संबंधी नीति और दर्शन शास्त्रों में निपुण था।

इस श्रावस्ती नगरी में पिंगल नाम का निर्ग्रंथ था। एकबार इस पिंगल ने स्कंदक के पास जाकर आक्षेपपूर्वक कहा :– हे स्कंदक बोल-- (१) लोक, जीव, सिद्धि, सिद्ध ये अंतवाले हैं या बिना अंत के हैं ?

(२) जीव की मृत्यु किसप्रकार हो तो उसका संसार बढे और घटे ?

इस प्रश्न को सुनकर स्कंदक विचारमग्न हो गया। मन ही मन में शंका तथा कांक्षा युक्त होकर वह आत्मविश्वास खो बैठा, वह कोई उत्तर न दे सका। तब पिंगलक साधुने फिर से पूछा, इस प्रकार दो–तीन बार वही प्रश्न दोहराया। किन्तु स्कंदक कोई भी जवाब नहीं दे सका। मैं जो उत्तर देता हूँ, वह सही होगा क्या ? इसका जवाब मुझे कैसे आये ? मैं जवाब दूँगा। उसे सुनकर सब

P. P. Ac. Gunratansuriji M.S. Jin Gun Aaradhak Trust

सहमत होंगे क्या ? इसप्रकार मन ही मन में शंका, कांक्षा और अविश्वास करता ही रहा।"

इसी समय तापस स्कंदक ने अनेक लोगों के मुख से यह सुना की, कृतंगला नगरी के बाहर छत्रपलाक यक्षायतन में भगवान महावीर स्वामी पधारे हुए हैं। यह सुनकर उसके मन में इस प्रकार की जागृति हुई कि मैं उनकी शरण में जाऊं, वन्दना तथा नमस्कार करुं और सत्कार तथा सन्मानपूर्वक उनकी पर्युपासना करके इन सब प्रश्नों का स्पष्टीकरण कर लूं।

वह परिव्राजकों के मठ में गया और वहाँ से त्रिदंड, कुंडी, रुद्राक्ष की माला, मिट्टी के बर्तन, आसन, बर्तनो को साफ करने का कपडा, त्रिगडी, अंकुशक, अंगूठी, गणोत्रिका, (कलाई पर पहना हुआ एक प्रकार का आभूषण, गहना) छत्र, खडाऊ, और गेरु से रंगे हुए वस्त्र, इतनी वस्तुएं लेकर उसने प्रस्थान किया। वह श्रावस्ती के बीच में होकर चल रहा था। उधर कृतंगला नगरी की तरफ छत्र पलाशक मंदिर स्थित है। वहाँ भगवान महावीर स्वामी विराजमान है। उस मंदिर की तरफ चलने लगा।

उधर भगवान महावीर स्वामी नें गौतम को संबोधित करके कहा, "हे गौतम ! तू आज तेरे पूर्व के संबंधी को देखेगा।"

गौतम–किस को देखूंगा ?

महावीर–स्कंदक नाम के तपस्वी को देखेगा।

गौतम–कब, किस प्रकार और किस समय मिलूंगा ?

महावीर--उस परिव्राजक ने इस तरफ आने का संकल्प किया

P. P. Ac. Gunratansuriji M.S. Jin Gun Aaradhak Trust

है और लगभग पास में आ गया है। तू उससे आज ही मिलेगा।

गौतम--भगवान् वह कात्यायन गोत्रीय तपस्वी स्कंदक सिर मुंडाकर आपकी शरण में अणगारपन श्रमणता ग्रहण कर सकता है?

महावीर--हाँ, वह अणगारपन ग्रहण कर सकता है। यह बातचीत हो रही थी, इतने में वह तपस्वी स्कंदक उस स्थानपर आ पहुँचा।

स्कंदक तपस्वी को समीप आया जानकर गौतम आसन से उठ खडे हुए। उनके सन्मुख जाते हैं और स्कंदक के पास आकर गौतम उन परिव्राजक से कहते हैं:-

'हे स्कंदक, आपका स्वागत करता हूँ। आपका सुस्वागत है, पधारिये, भले पधारिये।

इसप्रकार सन्मान करके गौतम ने कहा, अरे पिंगलक नामक निर्ग्रंथ ने आपसे अनेक प्रश्न पूछे हैं न? (जिसप्रकार के प्रश्न पूछे थे, गौतम ने यहाँ उसीप्रकार के प्रश्न पूछे) और उन प्रश्नों से घबडाकर आप यहाँ शीघ्र आये हैं। स्कंदक, कहिये, यह बात सत्य है न?

स्कंदक ने हाँ में उत्तर दिया। और गौतम से पूछा, "हे गौतम, इसप्रकार के ज्ञानी और तपस्वी कौन हैं जिन्होंने आप से मेरी यह गुप्त बात शीघ्र कह दी थी?

गौतम--स्कंदक! ये मेरे धर्मगुरु, धर्मोपदेशक श्रमण भगवान महावीर स्वामी हैं।

P. P. Ac. Gunratansuriji M.S. Jin Gun Aaradhak Trust

तत्पश्चात् स्कंदक ने भगवान महावीर स्वामी के पास जाने की इच्छा प्रकट की।

स्कंदक महावीर स्वामी के पास आया। भगवान् महावीर स्वामी के अकृत्रिम मनोहर शरीर के दर्शन कर वह हर्षित हुआ। उसने भगवान की तीन बार प्रदक्षिणा की और उनकी पर्युपासना करने लगा।

भगवान महावीर ने 'स्कंदक'! इस प्रकार संबोधित करके श्रावस्ती नगरी में पिंगलक निर्ग्रंथ द्वारा पूछे गये प्रश्न संबंधी सारी हकीकत कही, और इससे घवडाकर तू मेरे पास शीघ्र आया है। क्या यह बात सत्य है ? स्कंदक ने यह बात स्वीकार की।

तत्पश्चात् भगवान महावीर स्वामी ने उन सब प्रश्नों का स्पष्टीकरण किया। जिसका सार यह है :--

(१) लोक संबंधी

लोक चार प्रकार का हैं--१) द्रव्य से द्रव्यलोक (२) क्षेत्र से क्षेत्रलोक (३) काल से काललोक और (४) भाव से भावलोक।

द्रव्यलोक--एक है और अनंत है।

क्षेत्रलोक--असंख्य कोडाकोडी योजन तक लंबाई और चौडाई वाला है। उसकी परिधि असंख्य योजन कोडाकोडी बताई है। उसका अंत है।

काललोक--किसी समय नहीं था और नहीं होगा। इस प्रकार नहीं किन्तु था और हमेशा रहेगा। वह ध्रुव, नियत, शाश्वत अक्षत, और अव्यय है उसका अंत नहीं।

P. P. Ac. Gunratansuriji M.S. Jin Gun Aaradhak Trust

भावलोक--वह अनंत वर्ण पर्यवरूप है। अनंत गंध, रस औ
स्पर्श पर्यवरूप हैं। अनंत आकार पर्यवरूप है। अनंत गुरु लघु
पर्यवरूप है। तथा अनंत अगुरु लघु पर्यवरूप है। इसका अंत नहीं

(२) जीव संबंधी

द्रव्य से जीव एक है और अंतवाला है।

क्षेत्र से जीव--असंख्य प्रदेशवाला है। असंख्य प्रदेश में अवगाढ है। उसका अंत भी है।

काल से जीव--कोई दिन नहीं था, नहीं है और नहीं होगा। ऐसा नहीं, किन्तु है ही, नित्य है, उसका अंत नहीं।

भाव से जीव--अनंत ज्ञान पर्याय रूप, अनंत दर्शन पर्यायरूप, अनंत अगुरु लघु पर्यायरूप है। उसका अंत नहीं।

(३) सिद्धि संबंधी

द्रव्य से सिद्धि--एक है, अंतवाली है।

क्षेत्र से सिद्धि--लंबाई, चौडाई, पैंतालीस लाख योजन, उसकी परिधि, एक करोड बयालीस लाख तीन हजार दो सौ उनपचास योजन से कुछ विशेष है। उसका अंत है।

काल से सिद्धि--नहीं थी, नहीं है या नहीं होगी, ऐसा नहीं किन्तु थी, है, और रहेगी ही, अंत बिना की है।

भाव से सिद्धि--भाव लोक के समान समझना

(४) सिद्ध संबंधी

द्रव्य से--एक है, अंतवाला है।

P. P. Ac. Gunratansuriji M.S. Jin Gun Aaradhak Trust

क्षेत्र से--असंख्य प्रदेशवाला है, असंख्य प्रदेश में अवगाढ है। उसका अंत भी है।

काल से--आदिवाला है और अंत बिना का है।

भाव से-अनंतज्ञान पर्यवरुप, अनंत दर्शन पर्यवरुप है। अनंत अगुरु लघु पर्यवरुप है। उसका अंत नहीं है।

(५) जीव संबंधी

अर्थात् जीव किस प्रकार मरता है। तब उसका संसार बढता है और कम होता है? मृत्यु (मरने) के २ प्रकार हैं- (१) बाल मरण, और (२) पंडित मरण।

बालमरण १२ प्रकार से हैं।

(१) बालमरण-तड़फते तड़फते मरना।

(२) वशार्तमरण-पराधीनता पूर्वक दुःख भुगतते हुए मरना।

(३) अंतःशल्यमरण- शरीर में रहे हुए शस्त्रादि से मरना अथवा सन्मार्ग से भ्रष्ट होकर मरना।

(४) तद्भवमरण-मनुष्य शरीर से मरकर पुनः मनुष्य बनना।

(५) पहाड या ऊँचे स्थान से गिरकर मरना।

(६) वृक्षपर से गिरकर मरना।

(७) जलाशय, तलाव, समुद्र में डूबकर मरना।

(८) अग्नि से जलकर मरना।

(९) विष खाकर मरना।

P. P. Ac. Gunratansuriji M.S. Jin Gun Aaradhak Trust

(१०) तलवार, छूरी, बंदूक आदि से मरना।

(११) गले में फांसा लगाकर मरना।

(१२) बाघ, सिंह, सर्प, बिच्छु, कुत्ते आदि से मरना।

मरने की इच्छा न होनेपर भी उपर्युक्त बारह प्रकार से मरा हुआ जीव बहुतवार नरकों में जाता है और पुनः पुनः चार गति रूप संसार में परिभ्रमण करता रहता है।

पंडित मरण

यह भी दो प्रकार का हैं–

(१) पादपोगम (ज्ञान तथा वैराग्य पूर्वक वृक्ष के माफिक स्थिर रहकर मरना।

(२) भक्त प्रत्याख्यान (वैराग्यपूर्वक पापों को, पाप भावनाओं को, तथा आहार आदि को त्यागकर मरना।)

पादपोगम भी दो प्रकार का है।

(१) निर्हारिम (मुरदे को बाहर निकालकर अग्निसंस्कार करने में आवे।)

(२) अनिर्हारिम–ऊपर से विपरीत।

यह दो प्रकार का मरण प्रतिकर्म विना का है। जब भक्त प्रत्याख्यान मरण प्रतिकर्मयुक्त हैं।

ये दोनों प्रकार के पंडित मरण द्वारा मरता हुआ जीव नैरयिक के बहुत से भवों को प्राप्त नहीं करता है। तथा संसार को कम करता है।

P. P. Ac. Gunratansuriji M.S. Jin Gun Aaradhak Trust

महावीर स्वामी का यह वर्णन सुनकर कात्यायान गोत्रीय स्कंदक परिव्राजक को बोध हुआ और उसने भगवान को वंदनाकर विशेष प्रकार से धर्म सुनने की जिज्ञासा प्रकट की। भगवान ने उस को और सभा को धर्म सुनाया।

भगवान् का उपदेश सुनकर इसको अधिक प्रतिबोध हुआ। उसने प्रार्थना की कि, हे भगवान ! मैं निर्गन्थ प्रवचन में श्रद्धा रखता हूँ, प्रीति रखता हूँ, मैं निर्गन्थ प्रवचन को स्वीकार करता हूँ। आपने जो कहा है वह सत्य है, संदेह बिना का है।

बाद में भगवान् को वंदनाकर के वह वहाँ से ईशान कोण में गया। वहाँ जाकर खुद के त्रिदंड, कुंडिका और वस्त्र वगैरह सर्व वस्तुओं को एक तरफ रखदिया। पुनः भगवान के पास आकर तीन प्रदक्षिणा देकर भगवान से निवेदन किया कि–

"भगवान् यह संसार बुढापा और मृत्यु के दुःख से दुःखी है। उदाहरण स्वरुप–जलते हुए मकान में से हलका या भारी जो हाथ लगा उसे ही लेकर मनुष्य भविष्य के हित के लिए बाहर निकल जाता है। उसीप्रकार मनुष्य की यह चाह रहती है कि परलोक में मेरी आत्मा का कल्याण हो, इस सदुद्देश्य से मैं इस संसार के अनेक प्रकार के रोग, घातक व्यथा–पीडा और परिषह आदि उपसर्गों से मेरी रक्षा चाहता हूँ। और आपके पास प्रव्रजित हो जाऊं, मुंडित (शिष्य) बन जाऊं। क्रियाओं को तथा सूत्र और उनके अर्थ पढ लूं। आप कृपा करके ऐसा धर्म बताइये जो आचार, विनय, विनय का फल, चारित्र, पिंड विशुद्धयादि करण,

P. P. Ac. Gunratansuriji M.S. Jin Gun Aaradhak Trust

संयम यात्रा और संयम का निर्वाहक आहार के निरुपण को प्रका शित करे।

स्वयं महावीर ने स्कंदक को दीक्षित किया और धर्मपर प्रकाश डाला। बाद में भगवान् महावीर की आज्ञानुसार उत्तम चारित्र का पालन करने लगा और स्थविरों के साथ विचरने लगा और उन्होंने इन स्थविरों द्वारा ग्यारह अंगों का अभ्यास किया।

तत्पश्चात् स्कंदक अणगार ने अपना जीवन एक के बाद एक अलग-अलग तपस्याएं करने में व्यतीत किया है। भगवतीसूत्र में इन तपस्याओं का विस्तारपूर्वक वर्णन है।

यहाँ संक्षेप से कहता हूँ—

१ मासिक भिक्षु प्रतिमा
२ द्विमासिक ,,
३ त्रिमासिक ,,
४ चतुर्मासिक ,,
५ पंचमासिक ,,
६ छः मासिक ,,
७ सप्तमासिक ,,
८ प्रथम सात रात्री दिवस की भिक्षु प्रतिमा
९ दूसरी सात रात्री दिवस की ,,
१० तीसरी सात रात्री दिवस की ,,
११ चौथी सात रात्री दिवस की ,,
१२ पांचवीं सात रात्री दिवस की ,,

P. P. Ac. Gunratansuriji M.S. Jin Gun Aaradhak Trust

इसके अनुसार बारह के उपरांत--एक रात दिवस तक आराधना करने के बाद उन्होंने गुणरत्न संवत्सर नाम का तप किया। यह तप इसप्रकार किया गया :--

पहल माह में निरंतर उपवास, दिन में सूर्य के सन्मुख दृष्टि रखकर, जहाँ धूप आती हो, ऐसे स्थान में खडे रहना, बैठे रहना और रात को कोई भी वस्त्र ओढे या पहने बिना वीरासन लगा कर बैठे रहना।

दूसरे महिने में दो दो उपवास और उपर्युक्त अनुसार विधि			
तीसरे महीने में तीन-तीन उपवास	,,	,,	,,
चौथे महीने में चार-चार उपवास	,,	,,	,,
पांचवे महीने में पांच-पांच उपवास	,,	,,	,,
छट्वे महीने में छः-छः उपवास	,,	,,	,,
सातवें महीने में सात-सात उपवास	,,	,,	,,
आठवें महीने में आठ-आठ उपवास	,,	,,	,,
नववें महीने में नव-नव उपवास	,,	,,	,,
दसवें महीने में दस-दस उपवास	,,	,,	,,
ग्यारहवें महीने में ग्यारह-ग्यारह उपवास	,,	,,	,,
बाहरवें महीने में बारह-बारह उपवास	,,	,,	,,
तेरहवें महीने में तेरह-तेरह उपवास	,,	,,	,,
चौदहवें महीने में चौदह-चौदह उपवास	,,	,,	,,
पंद्रहवें महीने में पंद्रह-पंद्रह उपवास	,,	,,	,,
सोलहवे महीने में सोलह-सोलह उपवास	,,	,,	,,

P. P. Ac. Gunratansuriji M.S. Jin Gun Aaradhak Trust

इसके अनुसार तपस्या करने के पश्चात् उन्होंने दूसरे फुटकर छ्ह, अठ्ठम, दशम, द्वादशादि तप तथा मास खमण, अर्ध मास खमण वगैरह तपस्याएँ कीं।

स्कंदक अणगार का शरीर घोर तपस्याओं के कारण खूब क्षीण हो गया। अस्थिपंजर (हाडकियाँ) मात्र चर्म (चमडी) से ढका हुआ रह गया। जब वह चलता था तब हाडकियाँ खड खड बजती थीं। शरीर पर नसें स्पष्ट झलकती थीं। वह मात्र अपने आत्मबल से ही गति और स्थिति करने लगा। बोलते हुए या बोलने के बाद भी उनको कष्ट अनुभव होने लगा। यद्यपि शरीर से कृश हो गया था तथापि वह तपस्तेज से शोभित रहा।

एक समय उनके मन में विचार उठा कि "शरीर कृश होते हुए भी अभीतक मेरे शरीर में उत्थान, कर्म, बल, वीर्य और पुरुषाकार पुरुषार्थ है। इसलिए भगवान से आदेश लेकर मैं अनशन करूं, अर्थात् शरीर की मांया छोड़कर विशेष प्रकार से आत्मसाधना करूं।

वह प्रातः भगवान की सेवा में जाता है। स्वयं भगवान उसका संकल्प बता देते हैं और अनशन करने की आज्ञा देते हैं। तत्पश्चात् वह बडे पर्वतपर गया और एक शिला पट्टक पर दर्भ का बिछौना फैलाकर पूर्व दिशा में मुखकर पर्यंकासन पर बैठ गया तथा दस नख सहित दोनों हाथ शामिलकर सिर से झुककर भगवान को नमस्कार किया तथा वंदना की और भगवान के गुणगान कर महाव्रतों का पुनः उच्चारण किया तथा चार प्रकार के आहार का त्याग किया। फिर वृक्ष की तरह स्थिर रह गया।

P. P. Ac. Gunratansuriji M.S. Jin Gun Aaradhak Trust

फिर उन्होंने एक महिने तक संलेखना की, आलोचना और प्रतिक्रमण किया। तत्पश्चात् समाधिपूर्वक काल धर्म को प्राप्त हुआ।

उनके समीपस्थ विपुल पर्वत पर रहे हुए स्थविरों ने तब कायोत्सर्ग किया जबकि उन्होंने स्कंदक अणगार को कालधर्म प्राप्त हुअे देखा। इनके वस्त्र और पात्र ले लिए और विपुल पर्वत से नीचे उतरकर श्रमण भगवान महावीर की सेवा में आये। वहाँ आकर उन्होंने भगवान को ये समाचार सुनाये की स्कंदक अणगार कालधर्म को प्राप्त हो गये हैं। तथा उन्होंने स्कंदक के उपकरण वस्त्र तथा पात्र दे दिये।

गौतम स्वामीने भगवान को वंदना करके पूछा, हे भगवान् आप का शिष्य स्कंदक अणगार काल करके कहाँ गया?

भगवानें ने बताया, "वह अच्युत कल्प में देवस्वरुप में उत्पन्न हुआ है।" वहाँ बाइस सागरोपम की आयुष्य भुगतकर देव भव का क्षय हो जाने के पश्चात् वहाँ से च्यवकर महाविदेह क्षेत्र में जाकर सिद्ध हो जायेंगे। बुद्ध होंगे, मुक्त होंगे, परिनिर्वाण प्राप्त करेंगे और सब दुःखों का विनाश करेंगे। ※ २९

※ २९ भगवान महावीर तीर्थंकर को उत्पन्न दर्शनज्ञानधर, जिन, केवली सर्वज्ञ, सर्वदर्शी और आकाश में निराधार रहे हुए छत्रयुक्त, इत्यादि समवसरण तक के विशेषण दिये गये हैं। जिसकी यथार्थता इसप्रकार हैं :—

उत्कृष्टतम ज्ञान और वैराग्यपूर्वक गृहस्थाश्रम का अर्थात् धन-धान्य, पुत्र-परिवारादि बाह्य परिग्रह और मिथ्यात्व, पुरुषवेद, स्त्रीवेद, नपुंसनवेद, हास्य, रति, अरति, शोक, भय, जुगुप्सा, क्रोध, मान, माया और लोभ रूप आभ्यन्तर परिग्रह का समूल त्याग करके दीक्षा लेने के पश्चात् अति उत्कट

P. P. Ac. Gunratansuriji M.S. Jin Gun Aaradhak Trust

तपश्चर्या रुप अग्नि में भव भवान्तर के उपार्जित कर्म रुप काष्ठ जलाके जिसने अपनी आत्मा की अनंत शक्ति को उद्घाटित किया है। केवल ज्ञान तथा दर्शन के मालिक बने हैं। वे देवाधिदेव भगवान कहलाते हैं। इस विशेषण से जो संसारी आत्मा, मुक्त आत्मा और नित्य आत्मा को माननेवाले हैं उनका खंडन हो जाता है। क्योंकि समय-समय पर अवतार ग्रहण करके बत्तीस हजार स्त्रियों से विवाह करनेपर तथा राज्यपाट को भुगतने के लिए रण-मैदान खेलनेवाले, पुत्र-पुत्रियोंके पिता बननेवाले, अर्थात् संसार की माया में पूर्ण मस्त बने हुए और अन्तिम श्वास तक भी जो माया छोड़ नहीं सके हैं वे जीवात्मा नित्य ईश्वर नहीं हो सकते।

कर्म बंधन की व्यवस्था सब जीवों के लिए एक समान हैं। संसारी जीव को कर्म का बंधन होता हो तो नित्य ईश्वर जो समय-समय पर अवतार लेते हैं और संसार के भोग विलास में और राज्यपाट में मग्न रहते है। उन को भी कर्मबंधन होगा ही और जिनकी आत्मा कर्म से भारी बनी हुई हैं वे भगवान किसप्रकार कहे जाएंगे? अतः मनुष्यजीवन धारण करके समूल कर्मो का नाश करने के पश्चात् जिनको केवल ज्ञान और केवलदर्शन प्राप्त हो गया है। वे देवाधिदेव भगवान कहे जाते है।

केवलज्ञान अर्थात् उदीयमान सूर्य की विद्यमानता में ग्रह, नक्षत्र, तारा और चंद्र जैसे अस्त हो जाते हैं वैसे केवलज्ञान प्राप्त होनेपर अन्य छद्मस्थ अर्थात् आवरणवाला ज्ञान भी अस्त हो जाता है।

जब केवलज्ञान प्राप्त होता है तब एक साथ संपूर्णतया प्राप्त हो जाता है। तमाम ज्ञेय पदार्थ हस्तामलकवत् हो जाते हैं जो सर्वथा अद्वितीय ज्ञान कहा जाता है। सूर्य की तरह स्वयं प्रकाशित होने से अन्य छाद्मस्थिक ज्ञान तथा इन्द्रियों के मदद की जरुरत नहीं रहती है। इस ज्ञानपर एक भी कर्म का आवरण नहीं आ सकता। क्योंकि अन्य सर्व कर्मो का क्षय होने के पश्चात् ही केवल ज्ञान उत्पन्न होता है। त्रिलोकवर्ती, त्रिकालवर्ती तमाम सूक्ष्म और बादर पदार्थों की जानकारी कराने में केवलज्ञान स्वतः समर्थ होता है। ज्ञेय अनंत होने से केवल ज्ञान के पर्याय भी अनंत है।

'जयति रागादीन् शत्रून् इति जिन:' इस व्युत्पत्ति से अनादिकाल के आंतरिक शत्रुओं को जीतनेवाले "जिनदेव" कहलाते है। किन्तु जो राग, द्वेष, मोह, वासना से पराजित हुए होने से ३२ हजार स्त्रियों के शृंगार रस में लीन बने हुए हैं और उनके संभोग शृंगार में आसक्त बने हुए जीव तथा जिनके पास अन्तिम श्वास तक गदा, धनुष्य, मंडल, जपमाला और स्त्रियाँ होती हैं वे किसी काल में भी भगवान कहलाने योग्य नहीं हैं। क्योंकि स्त्री गदा आदि राग तथा द्वेष को सूचित करनेवाले हैं और वे संसारी आत्मा के पास ही शोभित होते है। जिन परमात्मा के पास भी इन पदार्थों के होने की कल्पना की जाय तो उनमें और संसारी आत्मा में कोई भेद नहीं रहता हैं। अतएव राग, द्वेष का समूल नाश करनेवाले और उनके द्योतक पदार्थो से सर्वथा दूर रहकर आंतरिक शत्रुओं को जितनेवाले ही भगवान कहे जाते हैं।

जैसे खान में से निकला सोना काट-छांट-छेदन तथा ताडन करनेपर आब तथा चमकयुक्त बन जाता है। उसीप्रकार आत्मा भी अनादिकाल के कर्म मैल सहित होता हुआ भी घोराति-घोर तप परिषह और उपसर्ग सहन करके जब कर्म रुपी मैल को धोकर साफ कर देता है। तभी उसे केवल ज्ञान की प्राप्ति होती है। ऐसे केवल ज्ञानी ही भगवान हो सकते हैं।

"सर्व जानातीति सर्वज्ञ:-" इस व्युत्पत्ति से जो केवल ज्ञान के माध्यम से तीन लोक में रहनेवाले संपूर्ण जीवों का तथा अनंतानंत पुद्गलो का तथा तीन काल में होनेवाले परिवर्तनो को एवं पदार्थमात्र के यथार्थ स्वरुप को जानकर उनको उसी के अनुसार प्ररुपित करनेवाले ही सर्वज्ञ भगवान कहे जाते हैं और वे ही सर्वदर्शी बनते हैं। अर्थात् त्रिलोकवर्तीसंपूर्ण पदार्थ जैसे कि नरक-नारक उनके दुःख, आयुष्य देव उनके स्थान, तिर्यंच, मनुष्य, उनके पाप, पुण्य, कर्म, समुद्र, द्वीप, पृथ्वी आदि चराचर सृष्टि को खुद के ज्ञान से प्रत्यक्ष करनेवाले होते हैं। दर्शन से स्टष्ट देखनेवाले होते हैं।

इसप्रकार लोकोत्तर महापुरुष तीर्थंकर भी अपने पहले भवों में तीर्थंकर नाम कर्म की समुपार्जना करते है। सामान्यरुप से संसारवर्ती अन्य

P. P. Ac. Gunratansuriji M.S. Jin Gun Aaradhak Trust

आत्माओं की अपेक्षा से उन महापुरुषों की आत्मा अत्युत्कृष्ट संयम की आराधना से अधिक शुद्ध होती है और जैसे-जैसे यह शुद्धता बढ़ती जाती है, वैसे वैसे संसारी आत्माओं का मोह से पैदा हुआ जन्म, शोक, बुढ़ापा, आधि, व्याधि और उपाधि के दुःखो को देखकर वे अत्यन्त भावदया के मालिक बन जाते है। तब ही "एवं च चिन्तयित्वा स महात्मा सदैवपरार्थव्यसनी करुणादिगुणोपेतः प्रतिक्षणं परार्थकरणप्रवर्धमानमहाशयो यथा यथा परेषामुपकरो भवति तथा तथा चेष्टते, तत इत्थं सत्वानां तत्कल्याणसंपादनेनोपकारं कुर्वस्तीर्थंकर नामकर्म समुपार्ज्य परं सत्वार्थसाधनं तीर्थंकरत्वमाप्नोति।"

(आर्हतदर्शनदीपिका पेज ८३०)

अर्थात् तीर्थंकर होने के पूर्व भवों में वे महापुरुष अन्य जीवों के प्रति दुःख की सहानुभूति रखनेवाले, करुणा, प्रमोद, मैत्री और ताटस्थ्य भावों से परिपूर्ण, प्रतिक्षण दूसरों के हित साधन के प्रयत्नों में जागृत रहनेवाले और हिंसा, असत्य, चौर्य, मैथुन तथा परिग्रह के कारण दुःखी बने हुए जगत को अहिंसा, सत्य, अचौर्य, ब्रह्मचर्य और संतोष धर्म देकर उनका जिसप्रकार हित हो वैसी ही भावना रखनेवाले होते है। उसी भावना को लक्ष्य में रखकर अपनी माता को दुःख न हो, अतः वे कुक्षि में भी स्थिर रहे। अपने बड़े भाई का मान रखने हेतु दीक्षा लेने के पूर्व उन्होने उन (बडे भाई की) की आज्ञा शिरोधार्य की। वैसे ही दीक्षा ग्रहण करने के बाद में भी वे दरिद्र ब्राह्मण का दुःख नहीं देख सके, इस कारण उन्होंने अपना अर्धवस्त्र उस दरिद्र ब्राह्मण को दे दिया। पंचम नरक भूमि के योग्य चण्ड कौशिक भी दुःखी न बने और देवलोक को प्राप्त करे। इसलिए उन्होने देश की वेदना सहन की।

राजा महाराजा, धनिक और रसिक पुरुषों के हृदय में रहे हुए व्यभिचार, दुराचार, मद्यपान, मांसभक्षण और गुलामी की प्रथा का समूल नाश करने हेतु मानो भाव दया के सागर भगवान ने १७५ दिवसों का साभिग्रह उपवास किया। अरे! मेरे निमित्त यह बिचारा संगमदेव नरक में जायेगा?

इस प्रकार के करुणाभाव से ही मानो महावीर स्वामी की आँखे आसुओं से आर्द्रित बन गई थी। कितनी करुणा।

अब मुनिसुव्रतस्वामी की भावदया का दृश्य देखिये।

"एकस्यापि तुरङ्गमस्य कमपि ज्ञात्वोपकारं सुर
श्रेणिभिः सह षष्टी योजनमितामाक्रम्य यः काश्यपीम्।
आरामे समवासरद् मृगुपुरस्यैशानदिङ्मण्डने
सः श्रीमान् मयि सुव्रतः प्रकुरुता कारुण्यसान्द्रे दृशौ।"

बीसवे तीर्थंकर श्री मुनिसुव्रतस्वामी साठ योजन का लंबा विहार करके भी केवल एक ही घोड़े को उपदेश देने के लिए भृगुपुर (भरुच) नगर में पधारे। इसप्रकार की भावदया जिसके नस-नस में उतर गई हो वे ही तीर्थंकर नामकर्म की निकाचना कर सकते है और उनके प्रताप से ही वे जन्मते ही अतिशय संपन्न होते है। कुल ३४ अतिशय होते हैं। उन में ४ अतिशय जन्म लेते ही उत्पन्न होते हैं। घाति कर्मों का क्षय होते हुए अद्वितीय ऐसे ११ अतिशय प्राप्त होते हैं और देव तथा दानवेन्द्रों द्वारा कराये गये १९ अतिशय भी उनको प्राप्त है। इसप्रकार तीर्थंकर बननेवाले जीव को ३४ अतिशय प्राप्त होते हैं। इसलिए तीर्थंकर जगत में अद्वितीय पुरुष माने गये हैं।

इन अतिशयों के कारण से ही जगत के प्राणी उनके दर्शन करते और उनकी वाणी का श्रवण करते धर्म को प्राप्त करते हैं और मोक्ष मार्ग की आराधना करके संसार से मुक्त होते है। स्कंदक परिव्राजक अपना परिव्राजकत्व छोड़कर महावीर स्वामी के चरणों में चा पहुँचा और सम्यग् बोध से वासित होकर मुक्ति का सच्चा मार्ग जान सका और आराधना कर सका।

॥ पहिला उद्देशा समाप्त ॥

P. P. Ac. Gunratansuriji M.S. Jin Gun Aaradhak Trust

समुद्घात

इस प्रकरण में केवल समुद्घात संबंधी ही हकीकत है और मूल तो वही हकीकत संक्षेप मात्र ही है। किन्तु विवेचन में और नीचे नोट में 'प्रज्ञापना सूत्र' के आधारपर ठीक स्पष्टीकरण किया गया है। सार यह है :-

समुद्घात सात प्रकार के हैं। वेदना समुद्घात, कषायसमुद्घात, मारणान्तिक समुद्घात, वैक्रिय समुद्घात, तैजस समुद्घात, आहारक समुद्घात और केवली समुद्घात।

समुद्घात का संक्षेप में अर्थ इसप्रकार है :-

एकमेक (परस्पर) होने के साथ प्रबलता से हनन करना वही समुद्घात है। आत्मा में दो शक्तियाँ हैं। संकोचशक्ति, और विकास शक्ति। इन दो शक्तियों के प्रताप से ही आत्मा एक छोटे से छोटे चींटी के शरीर में रहती है और स्थूल से स्थूल हाथी के शरीर में रहती है। आत्मा अपने प्रदेशों को अखिल ब्रह्माण्ड में फैला सकती है। आत्मा अमुक कारणों से अपने प्रदेशो को शरीर से बाहर फैला सकती है और संकुचित कर सकती है। इसी क्रिया को समुद्घात कहते हैं। जिसप्रकार के समुद्घात में आत्मा बरतती हो उसके अनुभव ज्ञान के साथ एकमेव होकर उन संबंधी कर्मों को आत्मा से सर्वथा भिन्न (जुदा) करती है।

P. P. Ac. Gunratansuriji M.S. Jin Gun Aaradhak Trust

यह स्वरूप इस समुद्घात का है। उदाहरण स्वरूप-

जैसे कोई जीव वेदना समुद्घातवाला है तो वह वेदना के अनुभव ज्ञान के साथ एकमेक हो जाता है। फिर आत्मा के साथ संबद्ध हुए वेदनीय कर्म के पुद्गलों पर वह जीव प्रबलतापूर्वक प्रहार करता हैं। परिणाम यह आता है कि जो वेदनीय कर्म कालान्तर में वेदने योग्य है। उसको उदीरणा द्वारा उदय में लाकर आत्मा से सर्वथा जुदा कर डालते हैं। यह स्वरूप है वेदनीय समुद्घात का।

इसी प्रकार दूसरे समुद्घातों के बारे में भी समझना चाहिए। ※ ३०

※ ३० समुद्घात का स्वरूप समझने के लिए कबूतर के उदाहरण से सब समझ में आ जायगा। जब कबूतर की पांखें और शरीर धूल के भार से भारी बन जाते हैं, तब वह अपनी पांखें फैला कर धूल को जल्दी से झाड़ डालता है और उसके भारसे मुक्त बन जाता है। ठीक उसी प्रकार यह जीवात्मा कर्मों के भार से जब अधिक मात्रा में दब जाता है और उन कर्मों का भार असह्य बन जाता है। उस समय उदय में आये हुए असातावेदनीय कर्मों के कारण अत्यंत भयग्रस्थ बना हुआ आत्मा समुद्घात करने से लंबे सयम तक भोग्य कर्मों को उदयावलिका में प्रवेश करा कर झाड़ देता है।

जब हम मरनेवाले मनुष्य की मृत्यु देखते हैं तब हमको यह अनुभव होता है कि मृत्यु शय्या पर पड़ी हुई वह आत्मा अपने संपूर्ण प्रदेशों से असातावेदनीय कर्म भुगतने में अत्यन्त दुःखी बनकर न बोल सकता है और न भुगत सकता है, ऐसी अवस्था में भी वे आत्माएं जिन्होंने ज्ञान का अनुभव किया होगा ? और आन्तरिक जीवन में आत्मा और शरीर सर्वथा भिन्न

P. P. Ac. Gunratansuriji M.S. Jin Gun Aaradhak Trust

भिन्न है " उस प्रकार के अनुभव ज्ञान को उस समय में अपने प्रबल पुरुषार्थ द्वारा उदय में ला सकने के लिए समर्थ बनी होगी ? तो वेदनीय समुद्घात में वरतता हुआ जीव नये कर्मों का बंधन किये बिना ही पुराने कर्मों की असंख्य राशिका नाश करने में समर्थ बनेगा. अन्यथा आंतरिक ज्ञान के अनुभव बिना का जीव मात्र असाता वेदनीय के उदय समय में हाथ पैर पछाड़ता है, मुख में से यद्वा–तद्वा बोलता है और संसार की अनंत माया को भुगती हुई होने से उस समय आँखें खोल कर अपनी स्वयं की संचित माया को डगमग रूप से देखता हुआ और आँखों में से आंसुओं को टपकाता हुआ भयंकर से भयंकर असातावेदनीय कर्म को भुगतता हुआ वह जीवात्मा उस समय अनेकानेक नये कर्मों का उपार्जन करके पुनः कर्मों के भार से भारी वन जाता है । इसप्रकार कषाय समुद्घात में भी समझना चाहिये ।

कषायों का प्राबल्य इतना अधिक जोरदार होता है कि उस समय अर्थात् कषायों के उदय समय में अथवा उनकी उदीर्णा में जीवात्मा की ज्ञान–संज्ञा विवेक–संज्ञा प्रायः करके अदृश्य हो जाती है । ऐसी स्थिति में कषाय समुद्घात भी जीवात्मा को नये कर्म उपार्जन करानेवाला प्रमाणित होगा । अतएव जैन शास्त्रकार कहते हैं कि "सर्वतोमुखी बाह्यज्ञान की अपेक्षा जीवन में उतारा हुआ एकही ज्ञान किरण चाहे तभी केवल ज्ञान की ज्योति प्राप्त करावेगा ।

वेदनीय–समुद्घात–सब छद्मस्थ जीवों के अशातावेदनीय कर्म के उदय से उत्पन्न होता है । और उस कर्म का नाश होता है ।

कषाय–समुद्घात–सब छद्मस्थजीवों को चारित्र मोहनीय कर्म के कारण उद्भवता है । और कषाय कर्म नाश होते हैं । मरण–समुद्घात–सब छद्मस्थ जीवों को आयुष्य कर्म के अंत समय में होता है, और कर्म नाश होते हैं । वैक्रिय समुद्घात–नारक जीवों को, व्यंतरों को, ज्योतिष्कों को, वैमानिकों को, पंचेन्द्रिय तिर्यंचों को, वायुकाय को तथा छद्मस्थ मनुष्यों को

P. P. Ac. Gunratansuriji M.S. Jin Gun Aaradhak Trust

वैक्रिय शरीर नामकर्म से उद्भव होता है। और वह शरीर के पुराने पुद्‌गलों का नाश करके नये पुद्‌गलों को ग्रहण करता है।

तैजस-समुद्‌घात-व्यंतरों को, ज्योतिष्कों को, वैमानिकों को पंचेन्द्रिय तिर्यंचों को, वायुकाय को तथा छद्मस्थ मनुष्यों को तैजस शरीर नामकर्म से प्राप्त होता है और वे कर्म नाश होते हैं।

आहारक-समुद्‌घात-चतुर्दश पूर्वधारी को आहारक शरीर नाम कर्म से होता है। और शरीर के उन पुद्‌गलों का नाश होता है।

केवलि समुद्‌घात-केवल ज्ञान के मालिकों को शेष रहे हुए नामकर्म, गोत्रकर्म, वेदनीय कर्म के कारण अर्थात् उनका नाश करने के लिए होता है। और वे तीनों कर्म आयुष्यर्म के साथ समाप्त होते हैं।

इस समुद्‌घात का समय आठ समय का होता है। जब उपर के-समुद्‌घात अंतर्मुहुर्त समय तक के ही होते हैं।

॥ दूसरा उद्देशा समाप्त ॥

P. P. Ac. Gunratansuriji M.S. Jin Gun Aaradhak Trust

नरकभूमि संबंधी—

इस उद्देशक में मात्र नरकभूमि संबंधी वर्णन है। वह इस प्रकार हैं :–

पृथ्वियाँ सात है। रत्नप्रभा, शर्कराप्रभा, वालुकाप्रभा, पंकप्रभा, धूमप्रभा, तमःप्रभा और तमस्तमःप्रभा।

यह अधिकार जीवाभिगम सूत्र में है विशेष प्रकार से है। ऐसा टीकाकारने बताया है। ※ ३१

※ ३१ अनादिकाल से कर्मवश भ्रमण करता हुआ यह जीव अनंतबार नरकभूमि में गया है। जयाँ निरंतर अशुभतरलेश्या, परिणाम, देह, वेदना और विक्रिया का अनुभव होता है।

गतिनाम कर्म, जाति नाम कर्म, शरीर नाम कर्म, और अंगोपांग नाम कर्म सहित नरकगति के नारक जीवों में लेश्या आदि भाव किसी काल में भी शुभ नहीं होते हैं।

रत्नप्रभा में कापोत लेश्या होती है। शर्कराप्रभा में अत्यन्त तीव्रतर कापोत लेश्या होती है। वालुकाप्रभा में कापोत लेश्या अधिक और नीललेश्या थोड़ी होती है।

पंकप्रभा में नीललेश्या होती है।

धूमं प्रभा, में अत्यन्त तीव्रतर नीललेश्या अधिक होती है और कृष्णलेश्या होती है।

P. P. Ac. Gunratansuriji M.S. Jin Gun Aaradhak Trust

तमः प्रभा में कृष्ण लेश्या तीव्रतर होती है।

तमस्तमः प्रभा में अत्यन्त तीव्र कृष्णलेश्या होती है। परिणाम भी अशुभतर ही होता है।

शरीर, गति, संस्थान, भेद, वर्ण, गंध, रस और स्पर्श परिणाम अत्यंत अशुभ होता है।

नरकभूमि में हमेशा अंधकार होता है। श्लेष्म, मूत्र, विष्ठा, मल, खून, चर्बी, मवाद (पीप) आदि बदबू (दुर्गन्ध) वाले पुद्गलों से वह भूमि लीपी हुई होती है। जिनमें कुत्ते, शृगाल, बिल्ली, नेवला, सर्प, चूहा, हाथी, गाय और मनुष्य आदि मूर्दो (लाश) की दुर्गन्ध असह्य होती है।

अत्यन्त असह्य वेदनाओं को भुगतते हुए वे नारक जीव करुण विलाप करते हैं। परमाधामियों से दीनतापूर्वक दया की याचना करते हैं। अनुनय विनय करते हैं। इसप्रकार उम्र (जीवन) पर्यन्त रुदन, आक्रन्दन और चीखें लगाते रहते हैं। उनके शरीर अत्यन्त अशुभ होते हैं, दुर्गन्धवाले होते हैं, भयानक होते हैं और बीभत्स होते है।

पहली भूमि में तीव्र उष्ण वेदना होती है। दूसरी में तीव्रतर और तीसरी में तीव्रतम उष्ण वेदना भुगतनी पड़ती है। चौथी में बहुतों को उष्ण और थोड़े नारको को शीत वेदना होती है। पांचवीं में बहुतों को शीत और थोड़े नारको को उष्ण वेदना होती है। छट्ठी में शीत वेदना और सातवी में अत्यन्त शीत वेदना होती है।

वैक्रिय शरीर होने से उनकी विक्रियाएं भी अशुभ ही होती हैं। सुख के लिए की जाती हुई विक्रिया घोरातिघोर दुःखदायी बन जाती है।

मनुष्य जीवन में दुर्बुद्धिवश स्वार्थवश, पुत्रपरिवार के प्रति मोहवश अनेक प्रकार के आरंभ-समारंभ किये हैं। परिग्रह के मायाजाल में हजारों

P. P. Ac. Gunratansuriji M.S. Jin Gun Aaradhak Trust

और लाखों प्रकार की दुर्नीति से खोटे व्यापार खोटे तोल माप तथा व्याजका घोटाला (अव्यवस्था) भाव में वृद्धि, व्यापार में सेलभेल (नकली तथा बढ़ीया माल का मिश्रण) करने का पाप तथा अनेक जीवों की हत्या, असत्य (झूठ) प्रपंच, परस्त्रीगमन आदि अनेक प्रकार के दुष्कृत्य करके असंख्य जीवों के साथ वैर, विरोध, मारपीट, झगडा आदि किये हैं। इन सब पाप की गठरी सहित नरक भूमि में उत्पन्न हुए जीव विभंग ज्ञान द्वारा चारों तरफ के नारक जीवों को वैरी समझकर चुनौती देतेहै और अपने वैर को याद करके ये नारक जीव आपस में अपने आयुष्य कर्म पर्यन्त भाला, तलवार, बरछी, मुद्गल मूसल, वाण शक्ति लकड़ी, गोफण वगैरह शस्त्रों से लड़ाई करते ही रहते हैं। रक्तसे लथ पथ हो जाते हैं। मांस और हड्डियाँ बाहर निकल जाय वहाँ तक लड़ते ही रहते हैं। वहाँ इन नारकों को कोई छुड़ानेवाला नहीं है।

मनुष्य जीवन में पुत्र, स्त्री, माता और (पुत्रियों) कन्याओं के लिए जो पाप किये थे, उन पापों को खुद अकेले को ही भुगतने के सिवा दूसरा कोई मार्ग नहीं। पूर्व भव में अत्यन्त क्लिष्ट कर्मों के कारण असुर गति को प्राप्त हुए परमाधामि स्वभाव से ही पापकर्म में रत होते हैं। अत्यन्त रौद्र स्वभाववाले होते हैं। वे नारक जीवों को भयंकर से भयंकर निम्नानुसार वेदनाएं देते हैं।

लोहे का पिघाला हुआ रस पिलाते हैं।
लोहे की लाल अंगारे के समान पुतलीओं से आलिंगन कराते हैं।
लोहे के हथोड़े से पीटते हैं।
अस्त्रों से अवयव छेदे जाते हैं।
गर्म खौलते हुए तेल से स्नान कराते हैं।
कुंभी पाक में पकाते हैं।
लोहे की सलाईयों से मारते हैं।
आरे से चिरवाते हैं।

P. P. Ac. Gunratansuriji M.S. Jin Gun Aaradhak Trust

शरीर को कड़ाई में डालकर तलते हैं।

भट्टी में रखकर सेंकते हैं।

सिंह, बाघ, तेंदुआ, कुत्ता, शृगाल, सर्प, नेवला आदि जानवरों द्वारा खिलाने की व्यवस्था की जाति है।

इस जीव ने उपर्युक्तानुसार नारकीय वेदनाओं को अनेकबार तथा अनंत प्रकार से भुगती हैं।

॥ तीसरा उद्देशा समाप्त ॥

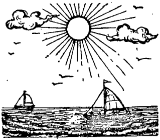

P. P. Ac. Gunratansuriji M.S. Jin Gun Aaradhak Trust

इन्द्रियाँ

इसमें इन्द्रिय संबंधी वर्णन है। इन्द्रियाँ पांच कही गई हैं–स्पर्श, रस, घ्राण, चक्षु और श्रोत्र यह अधिकार प्रज्ञापना सूत्र में है।

दूसरी प्रकार से इन्द्रियों के दो भेद बताये गये हैं–१ द्रव्येन्द्रिय और २ भावेन्द्रिय। द्रव्येन्द्रिय के २ भेद हैं। निर्वृत्ति और उपकरण। भावेन्द्रिय के २ भेद हैं। लब्धि और उपयोग।

यहाँ पांच इन्द्रियों का एक यंत्र दिया गया है, वह जानने योग्य है। ※ ३२

※ ३२ इन्द्रियाँ पांच ही होती हैं। दूसरे मतवाले पांच कर्मेन्द्रियों को पृथक् मानते हैं। परंतु उन सबका समावेश स्पर्शेन्द्रिय में हो जाने से ये पांच इन्द्रियाँ ज्ञानेद्रिय कही जाती हैं।

इन्द्र अर्थात् आत्मा जो सब पदार्थों में उत्कृष्ट ऐश्वर्य का मालिक होने से सर्वथा स्वतंत्र है। अतः भोक्ता है।

अपने (खुदके) शुभाशुभ कर्मों को भुगतनेवाली आत्मा है। शरीर और इन्द्रियाँ साधन हैं। इनके माध्यम से जीवमात्र अपने कर्मों को भुगतता है।

इस आत्मा का अस्तित्व करानेवाली, बतलानेवाली, सूचित करनेवाली और ज्ञान प्राप्त करानेवाली इन्द्रियाँ हैं।

P. P. Ac. Gunratansuriji M.S. Jin Gun Aaradhak Trust

ये इन्द्रियाँ करण होने से स्वतः जड़ हैं। अतः आत्मा से आज्ञप्त होकर प्रेरणा पाकर अपने स्वयं के इष्ट विषयों को ग्रहण करती हैं। जीव की विद्यमानता में इन्द्रियाँ सक्रिय रहती हैं। इन्द्रियों के विना सकर्मक जीव का काम नहीं चल सकता है। अतः उनकी उत्पत्ति जीवाधीन है।

ये इन्द्रियाँ द्रव्य और भावरुप से दो प्रकार की हैं—

द्रव्येन्द्रिय उसे कहते हैं जो आत्मा के असंख्य प्रदेशों की अपेक्षा से अनंत पुद्गल परमाणु द्वारा उन–उन इन्द्रियों का आकार रुप बनता है और कर्मों के क्षयोपशम की अपेक्षा से उन-उन विषयों को ग्रहण करने की परिणति विशेष को भावेन्द्रिय कहते हैं। द्रव्येन्द्रिय भी दो प्रकार की हैं–निर्वृत्ति और उपकरण।

कान की लौ, आँख का कोया, नाक, जीभ वगैरह जो बाह्य रुप में इन्द्रियों का आकार दिखाई देता है उसे बाह्य निर्वृत्ति कहते हैं, और आभ्यन्तर रुप में स्पर्शेन्द्रिय का आकार अनियमित है। क्योंकि प्रत्येक जीव का शरीर भिन्न–भिन्न होता है। जिव्हेन्द्रिय का आकार क्षुरप्र (अस्त्र) के जैसा है। घ्राणेन्द्रिय का आभ्यन्तर आकार अतिमुक्तक चंद्र के जैसा है। चक्षुरिन्द्रिय का आकार मसूर की दाल जैसा है और कर्णेन्द्रिय का आकार कदंब के पुष्प जैसा है। इसे आभ्यन्तर निर्वृत्ति कहते हैं।

आभ्यन्तर निर्वृत्ति इन्द्रिय में रही हुई अपने विषय को ग्रहण करने की शक्ति विशेष को उपकरणेन्द्रिय कहते हैं। जिनके सद्भाव में ही निर्वृत्ति इन्द्रिय काम दे सकती है। अन्यथा बहरा आदमी के कान की लौ और अंधा आदमी के आंख का कोया होनेपर भी उपकरणेन्द्रिय की शक्ति को किसी कारण से आघात पहुँचा हो तो बाह्य और आभ्यन्तर निर्वृत्ति इन्द्रियों अपने विषय को ग्रहण नहीं कर सकती है।

ये दोनों इन्द्रियां पौद्गलिक हैं।

जब भावेन्द्रिय का संबंध आत्मा के साथ है। उन-उन कर्मों

P. P. Ac. Gunratansuriji M.S. Jin Gun Aaradhak Trust

के आवरणों का क्षयोपशम होने से आत्मा को विषय ग्रहण करने की जो शक्ति प्राप्त होती है, उसे लब्धिभावेन्द्रिय कहते हैं, और आत्मा स्वयं उपयोगी बनकर जिन विषयों को ग्रहण करती हैं, उन्हें उपयोगेन्द्रिय कहते हैं।

सीमातीत विषय वासना भोगविलास परिग्रह की ममता तथा अत्युत्कट पापों के कारण एकेन्द्रिय अवतार को प्राप्त हुए अनंतानंत जीवों को रसनेन्द्रिय, घ्राणेन्द्रिय, नेत्रेन्द्रिय और श्रवणेन्द्रिय के आवरणीय कर्मों का उदय होने से उनको जीभ, नाक, आंख और कान इन्द्रियों से सर्वथा वंचित रहना पड़ता है। उससे उनको स्पर्शेन्द्रिय नाम की एक ही इन्द्रिय होने से अस्पष्ट वेदनाओं को भुगतते हुए छेदन–भेदन सहन करते, शरदी–गरमी तथा हिमपात की तीव्र वेदना को वेदते हुए जीव असंख्य और अनंतकाल तक वहीं रहते हैं।

इसमें पृथ्वी काय, जलकाय, अग्निकाय, वायुकाय और वनस्पतिकाय के जीवों का समावेश हो जाता है। स्थावर नामकर्म के कारण स्थावर कहे जाते हैं। दो इन्द्रियांवाले जीवों के स्पर्श और जीभ इन्द्रियां होती हैं। जब नाक, आंख और कान इद्रियों के आवरण कर्मों का प्रवल उदय होने से उनके नाक, आंख और कान नहीं होते हैं। इसलिए तीन इन्द्रियों के ज्ञान से वे हमेशा के लिए वंचित रहते हैं।

दो इन्द्रियाँवाले जीवों में सब प्रकार के छोटे, वड़े, शंख, कौडा, कौडी, पेट में होनेवाली कृमियां, खराब खून को चूसनेवाले जोंक, अलसियां बासी चपाती, रोट, भात, नरम पुरी वगैरह में उत्पन्न होनेवाले कीड़े, लकड़ी के कीड़े, पेट में, फुंसियां में, मस्से में, कुड़े–करकट में पैदा हुए तरह तरह तरह के कृमियां, बासी पानी में उत्पन्न होनेवाले जलजंतु, छोटी–वड़ी सीप तथा वाले (नारु) के जीव वगैरह आ जाते हैं।

तीन इन्द्रियवाले जीवों के चक्षुरिन्द्रिय और श्रवणेन्द्रिय का आवरण होने से उनको उन विषयों का ज्ञान नहीं होता है। इसमें छोटे–मोटे कान

P. P. Ac. Gunratansuriji M.S. Jin Gun Aaradhak Trust

खजूरे, खटमल, जूं, लीक, चींटी, दीमक की डेमकोड़े, अनाज में पैदा होने वाले धुंन, वाल के मूल में तथा कुत्ते के कान में होनेवाले कीड़े वेकार छोड़ी हुई जमीन में पैदा होनेवाले जीव जन्तु, कुंडे (छाणा) तथा विष्ठा में पैदा हुए कीड़े, कुंथुआ, चीनी (शक्कर) गुड तथा चावलों में होनेवाली ईलियां तथा चातुर्मास के प्रारंभ में होनेवाले लाल रंग के कीड़े, ये सब तेइन्द्रिय (तीन इन्द्रियांवाले) कहलाते हैं।

चार इन्द्रियवाले जीवों के कर्णेन्द्रिय नहीं होती है। इसमें पीले, काले रंग के बिच्छु, बगई (कुकुरमाछी) भौंरा, भौंरी, तीड़, मांखी (दंशा वर्षो-द्भवाः) डांस वर्षा में उत्पन्न होते हैं। मच्छर कंसारी और घास का एक कीट (ग्रास होपर) वगैरह जीव होते हैं।

पंचेन्द्रिय जीवों को पांच इन्द्रियों का आवरण नहीं होने के कारण पांच इन्द्रियों के विषय को ग्रहण करने की लब्धियां प्राप्त होती हैं। महा-पुण्योदय से अथवा दुर्गति के भयंकर दुःखो को भुगतने के वाद मिली हुई इन्द्रिय पटुता जो संयम की आराधना में, अहिंसा धर्म के पालने में तथा प्रचार में उपयोगवाली हो जाय तो इस जीव का बेडा पार होते देर नहीं लगती। अर्थात् वह आत्मा अपने साध्य मोक्ष को जल्दी प्राप्त कर लेती है और सर्व दुःखों से मुक्त हो जाती है।

॥ चौथा उद्देशा समाप्त ॥

P. P. Ac. Gunratansuriji M.S. Jin Gun Aaradhak Trust

देव और वेद

इस प्रकरण में एक जीव एक काल में दो वेदों (स्त्री वेद और पुरुष वेद) को वेदते हैं या नहीं ? तत्पश्चात् गर्भ विचार, उसके बाद पार्श्वनाथ के शिष्यों के साथ तुंगिका के श्रावकों के प्रश्नोत्तर।

राजगृह में श्री गौतम स्वामी का भिक्षाटन, गौतम स्वामी द्वारा भगवान को पूछकर किया हुआ निर्णय और अन्त में राजगृह में स्थित गर्म पानी के कुंडों का वर्णन है।

कितने ही लोग ऐसा मानते हैं कि–निर्ग्रन्थ मर कर देव होने के बाद वह देव, वहाँ दूसरे देव या दूसरे देवियां के साथ विषय सेवन नहीं करता है। किन्तु खुद के दों रूप करते हैं। एक देव का और दूसरा देवी का। ऐसा करके वे कृत्रिम देवी के साथ विषय वासना करते हैं। ऐसा करने से एक जीव एक काल में दो वेदका अनुभव करते हैं। ये भी सिद्ध होते हैं। पुरुष वेद और स्त्री वेद, परन्तु वह बात ठीक नहीं है। यहाँ से मरकर उत्पन्न हुए देव दूसरे देवों के साथ तथा दूसरे देव की देवियों के साथ उनको वश करके तथा अपनी देवियों के साथ भी परिचारणा विषय सेवन करते हैं। वह स्वयं के दो रुप बनाकर परिचारणा नहीं करता है। इससे यह भी सिद्ध होता है कि–एक जीव एक

P. P. Ac. Gunratansuriji M.S. Jin Gun Aaradhak Trust

समय में एक वेदना का ही अनुभव करता है। स्त्री वेद या पुरुष वेद। जिस समय स्त्री वेद को वेदता है उस समय पुरुष को नहीं वेदता है, और जिस समय पुरुष को वेदता है, उस समय स्त्री वेद को नहीं वेदता है।

उदकगर्भ विचार

अव उदकगर्भ संबंधी विचार है। जैसे मनुष्य को उत्पन्न होने के लिए पहले गर्भ धारण करने की विधि है, उसीप्रकार वर्षा होने में पहले गर्भ का बंध होता है। जिसको 'उदक गर्भ' कहते हैं। अर्थात् कालान्तर में पानी बरसने में हेतु रूप जो पुद्गल का परिणाम है, उसका नाम है 'उदक गर्भ'।

यह 'उदक गर्भ' उदक गर्भ के रूप में कम से कम एक समय और अधिक से अधिक छः महीने तक रहता है।

"तिर्यग् योनिगर्भ" तिर्यग योनि गर्भ रूप में कम से कम अंतर्मुहूर्त और अधिक से अधिक आठ वर्ष तक रहता है।

मनुषी गर्भ मनुषी गर्भरूप में कम से कम अंतर्मुहूर्त और अधिक से अधिक चार वर्ष तक रहता है।

कायभवस्थ कायभवस्थ रूप में कम से कम अंतर्मुहूर्त और अधिक से अधिक चौबीस वर्ष तक रहते हैं।

माता के पेट में रहा हुआ गर्भ का शरीर वह 'काय' कहलाता है। शरीर में जो उत्पन्न होता है उसे 'कायभव' कहते हैं और उसमें जो जन्मा है उसे 'कायभवस्थ' कहते हैं, वह

P. P. Ac. Gunratansuriji M.S. Jin Gun Aaradhak Trust

कायभवस्थरूप में चौवीस वर्ष तक रहता है। वह इसप्रका किसी जीव का शरीर गर्भ में रचाया गया हो बाद में वह जी उस शरीर में माता के उदर में चार वर्ष तक रहकर मर जात है। फिर स्वयं रचे गये उस शरीर में उत्पन्न होकर पुनः चार वर्ष तक रहता है। इसप्रकार चौवीस वर्ष तक कायभवस्थ रूप में रहे, अथवा ऐसा भी कहते हैं कि बारह वर्ष तक रहकर फिर दूसरे वीर्य द्वारा वहीं उसी शरीर में बारह वर्ष की स्थिति युक्त होकर जन्म लेता है, इसप्रकार चौवीस वर्ष गिने जाते हैं। ※ ३३

※ ३३ उदक गर्भ के लिए संपूर्ण जानकारी भगवतीसूत्र के विवेचन से जान लेनी चाहिए।

गर्भगत जीव कम से कम और अधिक से अधिक कहाँ तक रहेगा? उसकी चर्चा करने के बाद एक जीव के एक साथ कितने पिता हो सकते हैं? उसके जवाब में नरदेव और भावदेव द्वारा पूजित देवाधिदेव भगवान महावीर स्वामी ने फरमाया है कि, दो सौ की संख्या से लेकर नौसौ की संख्या तक एक जीव के पिता हो सकते हैं। अनंत संसार की माया भी अत्यन्त अगोचर होती है। किसी क्षेत्र की अपेक्षा से यह बात होगी। जैसे एक गाय की योनि में एक सांड का वीर्य गिरा और उसके बाद दूसरे दूसरे दो सौ से नौ सौ तक सांड़ों का वीर्य उसमें जो गिरेगा तो उस गाय से जन्म लेनेवाले एक बछड़े के पिता भी उतने ही हो सकते हैं। क्योंकि सबके वीर्य से एक बछड़ा जन्मा है।

संसार चक्र में कोई बात नहीं हो सके ऐसा है ही नहीं। किन्तु ये सब अगम निगम की बातें केवल ज्ञानी के सिवाय दूसरा कोई नहीं जान सकता है। ज्ञातव्य बातें जान लेने के बाद मैथुन कर्म की तीव्रता और अतिशय भयानकता भी जानने को मिलती है।

P. P. Ac. Gunratansuriji M.S. Jin Gun Aaradhak Trust

मनुषी और पंचेन्द्रिय तिर्यंची संबंधी योनिगत वीर्य कमसे कम अन्तर्मुहूर्त और अधिक से अधिक बारह मुहूर्त तक योनिभूत-रूप में रहता है।

मैथुन का सेवन करनेवाले मनुष्य का कितना घोर असंयम होता है, सूत्रकार उसे उदाहरण देकर समझाते हैं, कि एक बांस की नली में ठूस ठूस कर रूई भरी हुई हो, फिर तपाये गये सोने की सली को उसमें डालकर उस रूई को जलावे, इस प्रकार मैथुन का सेवन करनेवाले मनुष्य का असंयम होता है।

पार्श्वनाथ के शिष्यवृन्द

अब यहाँ श्री पार्श्वनाथ के शिष्यों और तुंगिका के श्रावकों में हुए प्रश्नोत्तरों की चर्चा की जाती है। इस प्रसंग में तुंगिका नगरी के उत्तर पूर्व विभाग में पुष्पवती नाम का एक मंदिर (चैत्य) था। इस मन्दिर में श्री पार्श्वनाथ के शिष्य आकर ठहरे थे। तुंगिका के श्रावकों को इसकी सूचना मिल गई! सब श्रावक

भवभवान्तर में अत्यन्त दुःख देनेवाले, महापाप कर्म के उपार्जन करने-वाले, ऐसे इस मैथुन पापके फल जीव को दारुण यातना पहुँचाकर मारने वाले होते हैं। ऐसे दुःख प्रद मैथुन कर्म का नियाणा बांधकर दूसरे भव में जन्म लेनेवाले जीवों को अमुक क्षेत्र में तथा अमुक जाति में जन्म लेना पडता है।

एक साथ में एक पिता की कितनी संतान हो सकती है? इसके जवाब में भगवान ने फरमाया है, कि कामवासना में अत्यन्त उत्तेजित बना हुआ मनुष्य जब स्त्री सेवन करता है तब वीर्य और रज सम्मिलित होते ही उस

P. P. Ac. Gunratansuriji M.S. Jin Gun Aaradhak Trust

एकत्रित होकर विचार करते हैं कि उनको वंदना करने तथा उपदेश सुनने के लिए जाना चाहिए। ऐसा निश्चित कर सुंदर वस्त्रों से सज्जित होकर सब एक साथ उस मन्दिर की तरफ चले। वे श्रावक उन मुनि राजों के पास जाते हुए पांच अभिगमों का सम्यक् पालन करते हैं। अर्थात् संचित्त द्रव्य दूर करते हैं। अचित्त वस्तुओं को साथ में रखते हैं। अपने अपने दुपट्टे को जनोई (जनेऊ) की तरह धारण करते हैं। मुनिराज के दर्शन करते ही वे हाथ जोडते हैं, और मन को एकाग्र करके उनके समीप जाते हैं। तत्पश्चात् वे तीन प्रदक्षिणा करते हैं।

फिर वे स्थविर एकत्रित हुई उस सभा को चार महाव्रतवाले

में दो लाख से नौ लाख तक जीव उत्पन्न होते है। जो पंचेन्द्रिय जीव होते हैं, इसमें से जिसका आयुष्य कर्म अधिक हो तो एक, दो या तीन जीव नौ माह पूरे करके संसार के स्टेजपर आने के लिए समर्थ बनते हैं। शेष सब जीव वहीं मर जाते हैं। नौ में माह में जन्म लेनेवाली जैसे संतान कहलाती है। उसीप्रकार माता की कुक्षि में ही मरे हुए दो से नौ लाख तक जीव भी संतान की तरह ही कहलाती है। क्योंकि एकवार के मैथुन से उत्पन्न होनेवाला जीव उसके वीर्य से उत्पन्न हुआ है और मरा है। जीवों की उत्पत्ति ही जीव हत्या का कारण बनती है। मनुष्य के असंयमी जीवन के कारण से ही यह जीव वहाँ उत्पन्न होता है और मरता है। इसमें जो उत्पादक होता है, उसको ही जीव हत्या का पाप लगेगा। स्त्री भी असंयम के कारण बेकाबू बनकर मैथुन कर्म में मस्त बनी रहती है। तब वह भी जीव हत्या के पाप की भागीदार बनती है।

इसप्रकार के घोर पापों से बचानेवाले भ. महावीर स्वामी के शासन के अतिरिक्त दूसरा एक भी शासन नहीं है। क्योंकि संयम के सर्वतोमुखी

P. P. Ac. Gunratansuriji M.S. Jin Gun Aaradhak Trust

धर्म का उपदेश देते हैं। तत्पश्चात् उन श्रमणोपासकों द्वारा पूछे गये प्रश्न के उत्तर में उन मुनिराजों ने बतलाया कि–

'संयम का फल आस्रव का त्याग करना और तप का फल व्यवदान अर्थात् कर्मों का क्षय करना है।'

इस बात से उन श्रावकों को एक शंका रह गई कि 'संयम की आराधना से देवगति प्राप्त होती है,' इसप्रकार जो कहा जाता है, उसका क्या तात्पर्य है? उससे उन्होंने फिर प्रश्न किया कि "देव देवलोक में उत्पन्न होते हैं, उसका क्या कारण है?

इसके उत्तर में—

और सर्वांगीण सिद्धान्त महावीर स्वामी के आगम सूत्रों से ही जानने को मिलते हैं। देश संयमी व्रतधारी जीव भी मैथुन तो सेवन करेगा, किन्तु उसके अन्तर्जीवन में जीवों के प्रति करुणता होगी। भाव दया होगी, अतः उस का सांसारिक जीवन बहुत ही श्रेष्ठ और पवित्र होता है।

वीर्य और रज के मिश्रण से २ से ९ लाख तक के जीव जन्म लेते हैं और मरते हैं। उसके उपरांत भी आम्र की मंजरी के समान स्त्री की योनि जो प्रति समय मूत्र और रुधिर से युक्त तथा गंदी होती है। उसमें भी असंख्य जीव जन्मते हैं।

मैथुन कर्मी पुरुष जब मैथुनारुढ़ होता है, तब उसकी जननेन्द्रिय योनि-गत जीवों की हत्या करती हुई प्रवेश करती है और उस समय भी असंख्य जीव वहाँ मरते हैं।

जैसे रुई (कपास) से भरी हुई नली में अँगारे जैसी सलाई प्रवेश करती हुई रुई को जलाती जाती है, उसीप्रकार ही मैथुनारुढ़ मनुष्य भी जीवों की हत्या करता है।

P. P. Ac. Gunratansuriji M.S. Jin Gun Aaradhak Trust

कालिका पुत्र नाम के स्थविरने कहा कि–पूर्व के तप से देव देवलोक में उत्पन्न होते हैं।

मेथिल नाम के स्थविर ने कहा कि–पूर्व के संयम से देव देवलोक में उत्पन्न होते ह।

आनंदरक्षित नाम के स्थविर ने कहा कि–कर्मीपन के कारण देव देवलोक में उत्पन्न होता है।

काश्यप नामक स्थविरने कहा कि–संगिपन के कारण देव देवलोक में उत्पन्न होते हैं।

विशेष रूप से उन स्थविरों ने यह भी कहा कि–" यह बात सच्ची है, इसलिए कही है, किन्तु हम अपने अभिमान से यह बात नहीं कहते हैं।"

तत्पश्चात नमस्कारकर हर्षित हुए श्रावक तुंगिका नगरी में आये। और वे स्थविर पुष्पवती चैत्य (मन्दिर) से विहार कर चले गये।

इस समय श्रमण भगवान महावीर स्वामी के मुख्य शिष्य गौतमस्वामी छठ छठ की तपस्या करके संयम और तपसे अपनी आत्मा को भावित करते विचरते थे। भगवान महावीर के साथ वे राजगृह के समीप गुणशील चैत्य (मंदिर) में आये। वे पहली पौरुषी में स्वाध्याय करते हैं। दूसरी पौरुषी में ध्यान करते हैं। और जब आहार करने का समय होता है तब तीसरी पौरुषी में शारीरिक और मानसिक चंचलता से रहित होकर 'मुहपत्ति की पडिलेहणाकर तथा वस्त्र पात्र का पडिलेहण' करके साथ में पात्र लेकर गोचरी के लिए निकल जाते हैं।

P. P. Ac. Gunratansuriji M.S. Jin Gun Aaradhak Trust

गौतमस्वामी राजगृह नगरी में गोचरी के लिए गये, वे उच्च नीच और मध्यम कुल में विधिपूर्वक भिक्षा लेकर विचरते हैं।

राजगृह में भिक्षा के लिए आये हुए गौतमस्वामी ने लोगों के मुख से सुना कि तुंगिका नगरी के बाहर पुष्पवती नाम के चैत्य (मंदिर) में पार्श्वनाथ के शिष्य पधारे हुए हैं और उन्होंने तुंगिका के श्रावकों को ऊपर लिखे अनुसार उपदेश दिया और उन में प्रश्नोत्तर हुए।

सब वृत्तान्त सुनकर गौतम स्वामी भगवान महावीर स्वामी के पास आये। उन्होंने वहाँ आकर जाने आने के संबंध में अतिचारों का चिंतन किया। भिक्षा लेते समय आरोपित दोषों के लिए आलोचन किया। भगवान को लाया हुआ आहार तथा पानी बताया। तत्पश्चात् उन्होंन राजगृह नगरी में लोगों के मुख से सुनी हुई हकीकत भगवान् को कही और सुनाई। तत्पश्चात् भगवान् से प्रश्न किया कि:–

हे भगवान्, वे स्थविर भगवान् उन श्रमणोपासकों को इस प्रकार के जवाब देने में क्या समर्थ है? वे उसप्रकार का अभ्यास किये हुए हैं? वे उसप्रकार के उपयोगवाले हैं? वे वैसे विशेष ज्ञानी हैं?

भगवान् महावीर ने जवाब दिया, हाँ गौतम, वे वैसे समर्थ हैं, अभ्यास किये हुए हैं, उपयोगवाले हैं और विशेषज्ञानी भी हैं। उन्होंने जो बात कही है, वह सत्य है, इसलिए कही है। आत्मा के अभिमान के लिए नहीं कही है।

P. P. Ac. Gunratansuriji M.S. Jin Gun Aaradhak Trust

भगवान्ने कहाँ कि यह बात सत्य है कि पूर्व के तप से, पूर्व के संयम से, कर्मिपने से और संगिपने से देव, देवलोक में उत्पन्न होते हैं।

इसके बाद गौतम स्वामी ने पूछा कि उसप्रकार के श्रमण या ब्राह्मण की पर्युपासना करनेवाले मनुष्य को उनकी सेवा का क्या फल मिलता है ?

भगवान द्वारा पर्युपासना का फल बतलाने के बाद एक-एक का फल पूछने पर यह निष्कर्ष निकाला कि उपासना से श्रवण, श्रवण से ज्ञान, ज्ञान से विज्ञान, विज्ञान से प्रत्याख्यान, प्रत्याख्यान से संयम, संयम से अनास्रव, अनास्रव से तप, तप से कर्म का नाश कर्म के नाश से निष्कर्मपन और निष्कर्मपन से सिद्धि–अर्थात् मोक्ष की प्राप्ति होती है। ※ ३४

※ ३४ तुंगीका (तुंगिया) नगरी के श्रावक और श्राविकाओं का आन्तरिक जीवन का वर्णन करते हुए भगवान ने फरमाया है कि 'वे बहु जणस्स अपरिभूआ' इस नगरी के श्रावक ऐक्य और शारीरिक बल से सशक्त होने के कारण किसी से भी दबने योग्य नहीं थे।

गृहस्थ धर्म में सवा विश्वा की दया होती है। इसलिए वे अपने कुटुम्ब की, समाज की और धर्म की रक्षा के लिए पूरे समर्थ थे।

"निरपराधि त्रस जीवों को जान बूझकर नहीं सताना चाहिए" इस प्रकार भगवान महावीर स्वामी द्वारा फरमाये हुए गृहस्थ धर्म में अहिंसा धर्म का पालन करने के लिए सामाजिक द्रोहियों को दंड देने में अपने बाल बच्चों को संयम की मर्यादा में रखने के लिए प्रायः करके दंड नीति का आश्रय लेना पड़ता है।

P. P. Ac. Gunratansuriji M.S. Jin Gun Aaradhak Trust

गांव, घर या मुहल्ले में आग लगानेवाला, कुआं, बावड़ी या तालाब के पानी में विष मिलानेवाला, तलवार, लकड़ी या शस्त्र हाथ में लेकर घूमनेवाले, गांव, खेत तथा खेती को नुकसान पहुंचानेवाले, रास्ते में चलती हुई स्त्रियों से छेड़खानी तथा मस्करी करनेवाले इत्यादि प्रकार के कुकृत्य करनेवाले अपराधियों को दंड देना योग्य है। गृहस्थाश्रमियों का यह धर्म है कि दुष्टों को सजा देना। क्योंकि उपरोक्त व्यक्ति, मानवों के, मानवता के कुटुंब के, समाज के, और धर्म तथा धार्मिकता से द्रोह रखनेवाली होती है। इसलिए वे अपराधी हैं।

जब सर्प, वाघ, सिंह, हरिण, चूहा, खटमल, मच्छर, जूं इत्यादि छोटे बड़े जीव, जंतु, मानव जाति का किसी प्रकार का जानबूझकर नुकसान नहीं करते हैं। इसलिए निरपराधी हैं और अदण्ड्य हैं।

तुंगिका नगरी के श्रावक जीव-अजीव आदि तत्वों को सब प्रकार से जाननेवाले थे। पुण्य कर्म किसप्रकार बांधा जाय ? और किसप्रकार भुगता जाय ? वैसे ही पाप कर्म भी किसप्रकार बांधा जाता है ? और उनका फल कितना और किसप्रकार भुगतना पड़ता है ? नये कर्मों का बंधन किस प्रकार से होता है ? और बांधे हुए कर्मों का स्वभाव, रस और स्थिति कैसी होती है ? पाप के दरवाजे किससे बंद होते हैं ? और कर्म सत्ता से मुक्त होकर आत्मा अनंत सुख के स्थान रूप सिद्ध शिला को किसप्रकार प्राप्त करते हैं ? इत्यादि तत्वों की सम्यक्तया जानकारी थी। निर्ग्रन्थ मुनियों के प्रवचन से उनकी आत्मशक्ति इतनी विकसित हो गई थी कि देवी देवता भी उपद्रव करने के लिए तथा जैनत्व और जैन सत्त्व से विचलित करने के लिए समर्थ नहीं थे।

इसका कारण यह था कि वे शास्त्रों के अर्थ सुनते थे, अतः जो कुछ होना है वह अपने किये हुए कर्मों के अनुसार होता है। वे इसप्रकार की पूर्ण श्रद्धा रखते थे। अतः वे निःशंक थे। मुनियों के परम भक्त थे। जैन शासन के प्रति उनकी नस-नस में प्रेम व्याप्त था, खाने में, पीने में, बोलने

P. P. Ac. Gunratansuriji M.S. Jin Gun Aaradhak Trust

में, चलने में और रहन सहन में संपूर्ण प्रकार से जैन शासन की मर्यादा का पालन करनेवाले थे । आत्मकल्याण के लिए व्रतधारी बने थे । डाह, ईर्ष्या वैर, विरोध नहीं रखने से वे सर्वत्र प्रीतिकर थे, विश्वास के पात्र थे ।

इसप्रकार के तुंगिआ नगरी के श्रावक-श्राविकाएं महावीर स्वामी के शासन के प्रति असीम अनुरागी होने से गुणग्राही थे, गुणपूजक थे, मुनिवेष और मुनि धर्म के प्रति आदरवाले थे । अतः पार्श्वनाथ भगवान के मुनियों का आगमन सुनते ही प्रसन्न हो गये और उनको वंदना करने तथा नमन करने के लिए और उपासना करने के लिए वहाँ आये । अपनी शंकाएं दूर कर सके । वे सत्पात्र को दान देने में अधिक रुचि रखते थे । उसीप्रकार अनुकम्प्य जीवों को अनुकम्पापूर्वक दान देने में विशेष प्रकार से आग्रही थे। इसकारण उनके दरवाजे रातदिन खुले रहते थे ।

जब पार्श्वनाथ भगवान के मुनिराजों के साथ चर्चा करते हुए उन श्रावकों को मालूम हुआ की संयम अर्थात् पापों के नये द्वार बंद करना और तप अर्थात् पुराने पापों का नाश करना तो फिर देवगति किस प्रकार प्राप्त हो ? क्योंकि जो नये पापों को रोकता है और पुराने पापों का क्षय करता है । वह मोक्ष में जाने का अधिकारी बनता है ।

इस शंका के निवारण के लिए मुनियों ने कहा है कि पूर्व संयम और पूर्व तप के कारण देवगति प्राप्त होती है । अर्थात् संयम और तप की आराधना करनेपर भी जो रागग्रस्त है । उसे पूर्व संयम और पूर्व तप कहा जाता है । ऐसा साधक अर्थात् राग सहित संयम और तप का आराधक मोक्ष में नहीं जाकर देवगति को प्राप्त करता है। इस उत्तर से श्रावक निःशंक होकर पुनः पुनः मुनियों को नमन तथा वंदन करके और जैन शासन की भूरि-भूरि प्रशंसा करते हुए अपने घर आये और अपनी आत्मा को धर्मध्यान में स्थिर किया ।

यद्यपि मकान तथा वृक्ष एक समान नहीं होते तथापि ऊंचे शिखरपर चढ़े हुए मनुष्यों को यह पूरा गांव समान आकार का दिखलाई देता है ।

P. P. Ac. Gunratansuriji M.S. Jin Gun Aaradhak Trust

उसीप्रकार सम्यक्त्व रुपी ऊंचे शिखर पर चढ़ी हुई भाग्यशाली आत्मा सम-भाव में आकर इतनी निर्विकारी हो जाती है कि दूसरो आत्माएं भी उस को अपनी आत्मा के जैसी लगती है। तथा सब जीवों में अमुक गुणों को देखकर उन सबको सद्गुणी मानने की वृत्ति तथा प्रवृत्ति भी प्रादुर्भूत होती है। जिस कारण से यह मेरा है, यह तेरा है, मैं समकिती हूँ, तू मिथ्यात्वी है। मेरे शिष्य जैन धर्म का पालन करते है, दूसरे जैन धर्म का पालन नहीं करते है। मेरा संघ ही संघ हैं, दूसरे आचार्यों का संघ गुण रहित है। मेरे तपागच्छ को छोड़कर दूसरे किसी भी संप्रदाय में सम्यक्त्व हो ही नहीं सकता। इसप्रकार की बुद्धि-भ्रान्तियां किसी काल में भी उन सम्यक्त्य धारियों को नहीं होती हैं। यदि उस आत्मा को सम्यक्त्व का स्पर्श हो गया होगा।

अन्यथा क्लेश, कलह कि उदीरणा में राग-द्वेष की परिणति में मोह माया के जाल में सम्यक्त्व को स्थान कहाँ मिलेगा? यह भगवान जाने।

इस नगरी के श्रावक शुद्ध सम्यक्त्वी थे। अत: उनको तीर्थंकर तथा परमात्मा के मुनि दोनों एक समान ही सद्गुणी, चारित्रधारी और वंदनीय लगते है।

गृहस्थाश्रम का वैराग्यपूर्वक त्याग करनेवाले तथा यथाशक्ति तपश्चर्या का आचरण करनेवाले मुनियों में धर्म के नामपर, सम्यक्त्व-मिथ्यात्व के नाम पर, आस्तिक-नास्तिक के नामपर तथा सुधारक कट्टरता के नामपर वर्ग भेद करना और असत् कर्म का सहारा (समर्थन) देना महामिथ्यात्व है। आत्मिक दुराचार है और उत्सूत्र प्ररूपन का अद्वितीय उदाहरण है।

॥ पांचवा उद्देशा समाप्त ॥

P. P. Ac. Gunratansuriji M.S. Jin Gun Aaradhak Trust

गरम पानी के कुण्ड

अन्त में राजगृह के गरम पानी के कुंड के संबंध में वृत्तांत है। समीप के वैभार पर्वत के नीचे गरम पानी का कुंड है। (अभी भी है) इसके संबंध में कितने लोगों का कहना है कि इसकी लंबाई और चौडाई अनेक योजन तक है। उसका अग्रभाग अनेक विविध वृक्षों से सुशोभित है। उस ह्रद में अनेक उदार मेघ संस्वेदते हैं, संमूर्छते हैं और वर्षा करते हैं उस ह्रद में से हमेशा गर्म पानी टपकता है। संस्वेदता है, यानि पानी गिरने की तैयारी में है और संमूर्च्छता है, गिरता है।

गौतम स्वामी के प्रश्न के उत्तर में भगवान कहते हैं कि ऐसा नहीं है। राजगृहनगर के बाहर वैभार पर्वत के पास महातपोपतीरप्रभव नाम का झरना है। उसकी लंबाई-चौडाई पांच सौ धनुष्य तक है। उसका अग्रभाग अनेक वनखंडों से सुशोभित है। उस झरने में अनेक उष्ण योनिवाले जीव और पुद्गल पानी में भी उत्पन्न होते है। नाश होते हैं। च्यूता है और उपचय होता है। उस झरने में से हमेशा गर्म पानी झरता है।

यह कुंड अभी भी मौजूद है। ऐसी संभावना है कि ऐसे किसी झरने में से निरंतर पानी वहाँ आया करता है। ऐसे अनेक झरने दिखाई देते हैं कि जो निरंतर हमेशा झरते ही रहते है और

P. P. Ac. Gunratansuriji M.S. Jin Gun Aaradhak Trust

हमको यह मालूम नहीं होता है कि कहाँ से पानी आता है ?

भगवान सुधर्मास्वामी के समय में भी यह कुंड था। और विक्रम की पांचवीं शताब्दी में भारत में यात्रानिमित्त आनेवाले चीन से फाहियान और सातवीं शताब्दी में आनेवाले हुएनसांग के समय में भी यही कुंड था और अभी भी यही कुण्ड है। बिहार प्रान्त में पटना जिले में राजगृहनगरी है।

चार प्रकार की भाषा

इस प्रकरण में केवल भाषा संबंधी एकही प्रश्न है। गौतम स्वामीने 'भाषा अवधारिणी है'। ऐसा मैं मानूँ यह प्रश्न पूछा है। यह प्रज्ञापना सूत्र के भाषा पद का उल्लेख करने में आया है।

यहाँ भाषा विचार का कोष्टक दिया गया है। उसमें जो उल्लेखित है उसके अनुसार सत्य भाषा, असत्य भाषा, सत्यमृषा भाषा, और असत्य अनृतभाषा, ये चार प्रकार की भाषाएं बताई गई हैं। ※ ३५

※ ३५ दूसरे जीवों को ज्ञान प्राप्त कराने के लिए 'भाषा व्यवहार' ही सर्वश्रेष्ठ साधन है। इसलिए ही पांच ज्ञान में श्रुत ज्ञान को छोड़कर दूसरे चार ज्ञान को मूक कहे हैं। केवल ज्ञान भी मूक होने के कारण ही देवाधिदेव तीर्थंकर भगवन्त को भी श्रुतज्ञान का ही आश्रय लेना पड़ा है। गत भव में भाषा पर्याप्ति नामकर्म उपार्जन करने के कारण से ही इस भव में अपना मानसिक अभिप्राय जब दूसरों को सूचित करना हो तब यह जीवात्मा भाषा वर्गणा के पुद्‌गलों को ग्रहण करता है और बाहर फेंकता है।

P. P. Ac. Gunratansuriji M.S. Jin Gun Aaradhak Trust

अद्वितीय शक्ति को धारण करनेवाले यह भाषा वर्गणा के पुद्गलों के बाहर आते ही विद्रोही पर जादुका सा असर करती है। भाषा का प्रयोग करने वाले बोलनेवाले व्यक्ति जिस प्रकार का आचार रखेंगे वे वैसा ही उच्चारण करेंगे। भक्षण की गई खुराक के अनुसार ही डकार आती है। वैसे ही दुराचारी द्वारा भाषा का व्यवहार भी दुराचार पूर्ण होता है और सदाचारी द्वारा भाषा का व्यवहार सदाचार पूर्ण होता है। अतः बोलनेवाले के आशय को स्पष्ट करनेवाली भाषा भी चार प्रकार की होती है। सत्यभाषा, मृषाभाषा, सत्यामृषाभाषा और असत्य अमृषा भाषा।

सत्यभाषा का अर्थ इसप्रकार है। सब जीवों के हितकर, सभ्य, असिदग्ध, पाप विना की (पापरहित) परिणित शब्दों वाली भाषा, वह सत्या है। अहिंसक और धार्मिक मनुष्यों के बोलने योग्य और लिखने योग्य भाषा सत्याभाषा है। जो दस प्रकार की है-- जनपदसत्या, संमतसत्या, स्थापना सत्या, नाम सत्या, रूप सत्या, प्रतीत्य सत्या, व्यवहार सत्या, भाव सत्या, तथा औपम्य सत्या।

दूसरी मृषा भाषा है। जिस कारण से जीवों की हत्या होती हो, किसी की अत्मा को दुख पहुंचाया जाय और अन्य जनों की आजीविका बन्द हो इत्यादि भाषा मृषा भाषा है। वह दस प्रकार की है।

क्रोध, मान, माया, लोभ, प्रीति, द्वेष, हास्य, भय, आख्यायिका और उपघात इसप्रकार के आत्मिक दूषणो के कारण बोलने वाले की भाषा मृषा भाषा कही जाती है। मोह कर्म का प्रबल उदय विद्यमान हो। मोह कर्म की उदीरणा करने में ही जिसको रस आता हो और उसप्रकार के मोहांधजीवों के साथ मित्रता करके जीवन विताया जाता हो तो उन जीवात्माओं का भाषा व्यवहार असत्यपूर्ण रहता है। क्रोध के आवेश में आकर जिस भाषा का प्रयोग किया जाता है, वह हिंसात्मक होने के कारण मृषा भाषा कही जाती है। हिंसक दो प्रकार के होते हैं। एक तो द्रव्य-हिंसक और दुसरा भाव हिंसक।

अपनी उदर पूर्ति के लिए अमुक कारणों को लक्ष्य में रखकर अनिवार्य रूप से हिंसक वृत्ति का आश्रय लिया जाता है, वह द्रव्यहिंसक होता है। वे अपना स्वार्थ सिद्ध करने के पश्चात् हिंसा और हिंसा के व्यापार को छोड़ भी देते हैं। जब भव परंपरा के आत्मीय दूषणों से प्रसन्न होने वाले व्यक्ति जाने-अजाने अथवा स्वार्थ के लिए क्रोध, मान, माया, लोभ, प्रीति, द्वेष, हास्य आदि का आश्रय लेते है, तब उन भाव हिंसक का मानसिक, वाचिक और कायिक व्यापार परघातक और स्वघातक रूप में परिणत हो जाता है। इसलिए ही द्रव्यहिंसा की अपेक्षा भावहिंसा अत्यंत दुस्त्याज्य है। उसीसे ही जैन शासन का यह कथन है कि क्रोधी मनुष्य का भाषण असत्य ही होता है। क्योंकि क्रोध पर पीडात्मक, अप्रीत्यात्मक रुप से ही अनुभव होता है। जाति, लाभ, कुल, ऐश्वर्य, बल, रुप, श्रुत और तप के मद का नशा जब आत्मा पर चढ़ता है तब दूसरों की निंदा, अपमान, तिरस्कार करने से उनकी भाषा भी परिपीड़ात्मक होने के कारण मृषा भाषा के रूप में ही परिणित होगी।

तीर्थंकर परमात्माओं का शासन कहता है कि अहंकारी तथा मिथ्याभिमानियों की भाषा असत्य भाषा है। मायावी तथा कपटी मनुष्य अपने दूषणोंको छुपाते हैं। इसलिए उसका सब आडम्बर मृषावादात्मक होने से उन की भाषा भी असत्यरुप ही होती हैं। श्रीमंताई का, सत्ताप्राप्ति का, शिष्यों का, पुत्रों का, यश और कीर्ति प्राप्ति का लोभ किसी समय भी सत्य भाषण करने नहीं देता है। इसलिए लोभांध मनुष्य का भाषा व्यवहार असत्य होता है।

पर पदार्थ के प्रति जब अतिशय प्रेम बंध जाता है तब उनकी भाषा में असत्यता आये बिना नहीं रहती है। जब द्वेषी मनुष्य दूसरों के गुणों का विद्वता का तथा सत्कार्यो का लोप करने के लिए तैय्यार हो जाता है तब आप उस गुण द्वेषी, तपोद्वेषी और व्यक्ति द्वेषी मनुष्य के मुख से सत्य भाषण कभी नहीं सुन सकते हैं।

P. P. Ac. Gunratansuriji M.S. Jin Gun Aaradhak Trust

हास्य अर्थात् मस्करी करने का स्वभाव तो असत्य का जनक (पिता) कहा जाता है । ऐसी स्थिति में वे सत्य भाषा का प्रयोग किस प्रकार करेंगे? प्रसंग के बिना आवश्यकता से अधिक बोलना तथा अतिशयोक्ति करने में मृषाभाषण करना ही पड़ता हैं और दूसरों के लिए इसप्रकार प्रयोग की गई भाषा को भी महावीर के सिद्धांत में असत्य भाषा कही गई हैं ।

अखिल संसार के संपूर्ण दर्शन शास्त्रों में जैन शासन की यही दिर्घ-दृष्टिता है । जिस कारण से मानव मात्र की मानवता, धार्मिकता और अंत में आत्मतत्त्व की परिपूर्णता प्राप्त होती है । जैन शासन ने हिंसा विरमणव्रत और मृषावाद विरमणव्रत की प्रतिपादना की है । क्योंकि अहिंसा व्रत या सत्यव्रत स्वतः कोई पदार्थ है ही नहीं । इसलिए सर्वप्रथम अहिंसा व्रत का झंडा लेकर घूमने के पहिले अनादिकाल से हिंसा, हिंसक भावना, हिंसक भाषा और मृषा भाषा की जो टेव–आदत अपने जीवन में पड़ गई है, उनको दूर करने के लिए ही प्रयत्नशील होने की जरुरत है ।

जब ये वृत्तियाँ और प्रवृत्तियाँ जीवन में से चली जायगीं तभी मानव अहिंसक और सत्यवादी बनेगा । अर्थात् हिंसाजन्य संस्कारों का त्याग किये बिना मनुष्य अहिंसक नहीं बन सकता ।

इसी प्रकार मृषावाद का त्याग किये बिना सत्यवादी बनने का ढोंग सर्वथा ढोंग ही है । अतः सत्यवादी बननेवाले को सर्वप्रथम मृषावाद का त्याग करना अनिवार्य है और मृषावाद का त्याग करने की भावनावाले मनुष्य को सर्वप्रथम उनके मूल कारणों को, जो ऊपर बताये गये हैं । उनको सर्वथा छोड़ने के लिए ही तैय्यार रहना चाहिए ।

आगम का वचन भी है—कोहा वा लोहा वा भया वा हासा वा इन चार कारणों से मनुष्य झूठ बोलता है । ऐसी स्थिति में वे दूसरे व्रत किस प्रकार लेंगे ? और यदि लेंगे तो किस प्रकार पालन करेंगे ? अगर पालन नहीं कर सके तो व्रतों की मरकरी अर्थात् महावीर के शासन की मजाक ही उन के भाग्य में रहेगी ।

भाषा का तीसरा प्रकार सत्यामृषा है। जिस भाषा को बोलने में थोड़ी सत्यता और थोड़ी असत्यता भी रही हुई हो। उस सत्यामृषा भाषा के भी दस प्रकार हैं–१ उत्पन्न मिश्रित, २ विगत मिश्रित, ३ उत्पन्न विगत मिश्रित, ४ जीव मिश्रित, ५ अजीव मिश्रित, ६ जीवाजीव मिश्रित, ७ अनंत मिश्रित, ८ प्रत्येक मिश्रित, ९ काल मिश्रित, १० अद्धाद्धा मिश्रित है, और चौथे प्रकार की भाषा असत्यामृषा है। जिसमें सत्यता या असत्यता भी नहीं। केवल व्यवहार ही इस भाषा का हेतु है। उसके १२ भेद हैं–

१ आमंत्रणी, २ आज्ञापनी, ३ याचनी, ४ प्रच्छन्नी, ५ प्रज्ञापनी, ६ प्रत्याख्यानी, ७ इच्छानुलोमा, ८ अनभिगृहीता, ९ अभिगृहीता, १० संशयकरणी, ११ व्याकृत तथा १२ अव्याकृत है।

इस व्यावहारिक भाषा को बोलनेवाले के मन में अशुद्ध हेतु नहीं होता है। वैसे ही सुननेवाले के मन में भी अशुद्धता नहीं होती है। केवल व्यवहार में जिसप्रकार बोली जाती है, वैसे ही बोलनेवाले बोलते हैं और समझने वाले समझते हैं। उपरोक्तानुसार चार प्रकार की भाषाओं में पहला और अन्तिम प्रकार अर्थात् सत्य भाषा और असत्यामृषा भाषा का प्रकार ही भाषा समिति को लागू पड़ता है। जब मृषा और सत्यामृषा भाषा को बोलने वाला मनुष्य भाषा समिति का पालक नहीं बन सकता है। सूत्रकार को भी भाषा समिति का यह लक्षण इष्ट है।

"..........निरवद्यार्थ भाषणत्वे सति सत्यासत्यामृषालक्षणयो र्भाषयोः सूत्रानुसारिण्योर्भाषणरूपत्वं वा भाषा समिते र्लक्षणम्"

[आर्हतदर्शनदीपिका पेज १०७०]

॥ छठवा उद्देशा समाप्त ॥

***

P. P. Ac. Gunratansuriji M.S. Jin Gun Aaradhak Trust

देव

इस प्रकरण में देवों के भेद संबंधी विचार है। सार यह है कि देव चार प्रकार के हैं-भवन पति, वानव्यंतर, ज्योतिष्क और वैमानिक।

इस संबंध में वर्णन प्रज्ञापना सूत्र के दूसरे 'स्थान' नाम के पद में आता है। ※ ३६

※ ३६ "दीव्यन्ति-द्योतन्ते-मोदन्ते-माद्यन्ति, इति देवः" इस व्युत्पत्ति के अनुसार जो भिन्न भिन्न प्रकार की क्रीड़ा करनेवाले, सब तरह से प्रकाशमान आधि व्यधि से दूर रहने के कारण खुश रहनेवाले, पुण्य कर्म को भोगते हुए प्रसन्न चित्त से आयुष्य पूर्ण करनेवाले, "देव" होते हैं। उसको किसी प्रकार की गर्भ की वेदना भुगतनी नहीं पड़ती है। वृद्धावस्था के दुःख या मरण की शारीरिक वेदना भी नहीं होती है।

मनुष्य के अवतार में अनंत तथा असंख्य जीवों की रक्षा, संयम, सराग संयम, श्रावक धर्म, बालतप, अकाम निर्जरा, दान, सत्कर्म वगैरह पुण्य कर्मों की उपार्जना की गई होने से देवगति को प्राप्त करनेवाले भाग्यशाली देवशय्या पर उत्पन्न होते हैं। उनके शरीर की कांति, देदीप्यमान शारीरिक प्रभा, सुंदर संस्थान, कर्पूर के जैसा उज्ज्वल शरीर, भूख-प्यास, शोक-संताप और वियोग की वेदना बिना का जीवन, सुंदर-स्वच्छ विमान, खुद के भवनों में स्वेच्छानुसार रहना, मनपसंद आभूषण, वस्त्र तथा शस्त्रों की प्राप्ति में मस्त होकर आमोद प्रमोद करनेवाले देवताओं को हमारे से अधिक असंख्य अनंत

P. P. Ac. Gunratansuriji M.S. Jin Gun Aaradhak Trust

गुण आयुष्य कर्म को भुगतना होता है। नाच, गान, खेल, और तमाशे में समय व्यतीत करनेवाले देव अपनी देवियों के साथ और देवियाँ अपने देवों के साथ अमन–चमन करनेवाले होते हैं। मनुष्य की, मनुष्य लोक की गंध से सवर्था दूर रहनेवाले वे देवता भवनपति, व्यंतर, ज्योतिष्क और वैमानिक रुप से चार प्रकार के होते हैं।

भवनपति के देव असुरकुमार, नागकुमार, विद्युत्कुमार, अग्निकुमार, वायुकुमार, स्तनितकुमार, उदधिकुमार, द्वीप कुमार, दिक् कुमार के नाम से दस भेद होते हैं। वे 'राजकुमार' के जैसे सुंदर आकारवाले सुकोमल और शृंगार प्रिय होते हैं।

महामेरु पर्वत के उत्तर और दक्षिण की तरफ उनका आवास होता है। तूफानी होने के कारण उनके मस्तक पर दो दो इन्द्र होते हैं। जिसको उत्तराधिपति और दक्षिणाधिपति कहते हैं।

व्यंतरो का स्थान नियत नहीं होने के कारण उनकी इच्छा के अनुसार स्थान रहता है। वे व्यंतर आठ प्रकार के हैं– किन्नर, किंपुरुष, महोरग, गन्धर्व, यक्ष, राक्षस, भूत और पिशाच। इसके अवांतर भेद इसके अनु-सार है:–किन्नर, किंपुरुष, किंपुरुषोत्तम, किंनरोत्तम, हृदयंगम, रूपशाली, अनिन्दित, मनोरम, रतिप्रिय इसप्रकार किन्नर के दस भेद हैं।

पुरुष, सत्पुरुष, महापुरुष, पुरुष वृषभ, पुरुषोत्तम, आदिपुरुष मरुदेव मरुत, मेरुप्रभ, और यशस्वंत इस प्रकार किंपुरुष के दस भेद हैं।

हाहा, हूहू, तुम्बुरव, नारद, ऋषिवादिक, भूतवादिक, कादंब, महा-कादंब, रैवत, विश्वावसु, गीतरत और गीतयश नाम पर गान्धर्व देवों के १२ भेद हैं।

पूर्णभद्र, मणिभद्र, श्वेतभद्र, हरिभद्र, सुमनोभद्र, व्यतिपादिकभद्र, सुभद्र, सर्वतोभद्र, मनुष्य यक्ष, वनाधिपति, वनाहर, रूपयक्ष, यक्षोत्तम, इसप्रकार यक्ष के १३ भेद हैं।

भीम, महाभीम, अतिरुप, भूत्तोत्तम, स्कन्दिक, महास्कन्दिक, महावेग

P. P. Ac. Gunratansuriji M.S. Jin Gun Aaradhak Trust

प्रतिछन्न, आकाशग इसप्रकार के भूत नाम के व्यंतर नौ प्रकारके हैं।

कुष्मांड, पटक, जोष, आह्रक, काल, महाकाल, श्चौक्ष, अश्चौक्ष ताल पिशाच, मुखर पिशाच, अधस्तारक, देह, महाविदेह, स्तूष्णीक और वन-पिशाचक। इसप्रकार पिशाच व्यंतर १५ प्रकार के होते हैं।

तीसरे प्रकार के ज्योतिष्क देवता निम्नानुसार पांच प्रकार के हैं:-सूर्य, चन्द्र, ग्रह, नक्षत्र और तारा।

आकाश में भी उनका यही क्रम है। सबसे नीचे सूर्य फिर चन्द्र, ग्रह, नक्षत्र और तारा हैं।

मेरु पर्वत की समतल भूमि से ८०० योजन ऊपर जाने से सूर्य का विमान आता है। उससे ८० योजन ऊपर चन्द्र का विमान है। उससे २० योजन ऊपर जाने से तारागण आते हैं।

मनुष्य लोक में मेरु पर्वत के चारों तरफ गति करनेवाले १३२ सूर्य और चन्द्र हैं, २८ नक्षत्र हैं, ८८ ग्रह हैं और ६६९७५ कोड़ा कोड़ी तारा हैं।

विमान में रहनेवाले वैमानिक देव १२ प्रकार के हैं। सौधर्म, ईशान, सानत्कुमार, माहेन्द्र, ब्रह्मलोक, लान्तक, महाशुक्र, सहस्त्रार, आनत, प्राणत, आरण और अच्युत।

इसके ऊपर नौ ग्रैवेयक देव हैं और सबसे ऊपर विजय, वैजयन्त, जयन्त, अपराजित और सर्वार्थ सिद्ध देव हैं। ये सब एकावतारी होते हैं।

॥ सातवा उद्देशा समाप्त ॥

P. P. Ac. Gunratansuriji M.S. Jin Gun Aaradhak Trust

चमर की सभा

इसमें प्रश्न एक ही है कि असुरकुमारों का इन्द्र और उनके राजा चमर की सुधर्मा नाम की सभा कहाँ है ? इसके उत्तर में विस्तार से इस स्थान का वर्णन है। संक्षेप में कहा जाय तो जंबूद्वीप में मंदर पर्वत के दक्षिण की तरफ असंख्य द्वीप और समुद्र पार करने के पश्चात अरूणवर नाग का द्वीप आता है। उससे आगे अरूणोदय समुद्र आता है। इस समुद्र में बयालीस लाख योजन अन्दर उतरने के पश्चात् चमर का तिगिच्छककूट नाम का पर्वत आता है इस पर्वत के सबसे ऊपर के भाग के बीच में महल है।

यहाँ तिगिच्छककूट, अरूणोदय समुद्र, चमर चंचा राजधानी, सुधर्मा सभा आदि का विस्तार से वर्णन है।

इस तिगिच्छककूट नाम का पर्वत चमरेन्द्र का उत्पात पर्वत है। जिसका विष्कंभ १०२२ योजन है।

॥ आठवा उद्देशा समाप्त ॥

P. P. Ac. Gunratansuriji M.S. Jin Gun Aaradhak Trust

समयक्षेत्र

इस प्रकरण में समय क्षेत्र का प्रश्न है। अढाई द्वीप और दो समुद्र। इसे समय क्षेत्र कहते हैं। उसमें यह जंवू द्वीप सब द्वीप और समुद्रों के बीच में हैं। (यह अधिकार जीवाभिगम सूत्र में विशेष रुपसे वर्णित है।

समय अर्थात् काल। काल से उपलक्षित जो क्षेत्र है उसे 'समय क्षेत्र' कहते हैं। कहा जाता है कि सूर्य की गति से परिचित दिन और मासादि रूप काल यह मनुष्य क्षेत्र में ही है। इससे आगे नहीं है। क्योंकि आगे रहनेवाला सूर्य गतिवाला नहीं है।

जंवू द्वीप से लेकर मानषोत्तर पर्वत तक मनुष्यलोक है। जिस क्षेत्र में अरिहंत, चक्रवर्ती, बलदेव, वासुदेव, श्रावक और श्राविकाएं हैं। वह मनुष्यलोक है। जहाँ महान् मेघ वरसते हैं, जहाँ अग्निकाय है, जहाँ चंद्रग्रहण और सूर्यग्रहण होता है वह मनुष्यलोक है।

पांच द्रव्य

जैन शास्त्रों में छः द्रव्य माने जाते हैं। जिनमें पांच अस्तिकायरूप है। और छठा द्रव्य है काल। अस्तिकाय द्रव्य ये

P. P. Ac. Gunratansuriji M.S. Jin Gun Aaradhak Trust

हैं-धर्मास्तिकाय, अधर्मास्तिकाय, आकाशास्तिकाय, जीवास्तिकाय और पुद्गलास्तिकाय। इन पांच अस्तिकायों का वर्णन इस प्रकरण में है। जिनका सार यह है:-

सर्वप्रथम इसकी जानकारी होनी चाहिए कि 'अस्तिकाय, इसका अर्थ क्या है? 'अस्ति' का अर्थ प्रदेश और 'काय' का अर्थ समूह, अर्थात् प्रदेशों का समूह। इसका दूसरा अर्थ यह भी है कि-'अस्ति यह तीन कालों का सूचक निपात (अव्यय) है। अर्थात् जो होता है, हुआ है और होगा, इसप्रकार जो प्रदेशों का समूह, इसका नाम है अस्तिकाय।

ऐसे अस्तिकाय स्वरूप पदार्थ पांच हैं। धर्मास्तिकाय, अधर्मास्तिकाय, आकाशास्तिकाय, जीवास्तिकाय और पुद्गलास्तिकाय।

धर्मास्तिकाय अरूपी, अजीव और शाश्वत है। अवस्थित लोक द्रव्य है।

धर्मास्तिकाय द्रव्य से एक है। क्षेत्र से लोक प्रमाण अर्थात जितना लोक है उतना है। काल से नित्य है और भाव से रंग, गंध, रस और स्पर्श बिना का है। गुण से गति गुणवाला है।

इसीप्रकार अधर्मास्तिकाय और आकाशास्तिकाय भी है। विशेषता यह है कि अधर्मास्तिकाय गुण से स्थिति गुणवाला है। आकाशास्तिकाय क्षेत्र से लोकालोक प्रमाण अर्थात् जितना लोकालोक है, उतना है, अनंत है और गुणसे अवगाहना गुणवाला है। ऊपर धर्मास्तिकाय का गति-गुण बताया है, और अधर्मास्तिकाय

P. P. Ac. Gunratansuriji M.S. Jin Gun Aaradhak Trust

का गुण स्थितिगुण बताया। इसका कारण यह है कि इस लोकाकाश में ऐसे दो पदार्थ सर्वत्र व्याप्त होकर स्थित हैं। जो जीव और पुद्गल को गति में और स्थिति में सहायक होते हैं जैसे मछली को चलने में पानी सहायक होता है और खडे रहने में जमीन सहायक होती है, उसी प्रकार जीव और पुद्गल की गति जिसकी सहायता से होती है, उसका नाम धर्मास्तिकाय है। जीव और पुद्गल की स्थिति (स्थिरता) जिसकी सहायता से होती हैं, उसका नाम अधर्मास्तिकाय है।

अब जीवास्तिकाय–द्रव्य से अनंत जीव द्रव्य रूप है। क्षेत्र से लोक प्रमाण है। काल से हमेशा नित्य है। भाव से रंग, गंध, रस, स्पर्श बिना का है। गुण से उपयोगगुणवाला है।

अब पुद्गलास्तिकाय का स्वरूप देखिए–पुद्गलास्तिकाय में पांच रंग, पांच रस, दो गंध और आठ स्पर्श है। यह अस्तिकाय रूपवाला है। अजीव है, शाश्वत है और अवस्थित लोक द्रव्य है। संक्षेप में–पुद्गलास्तिकाय द्रव्य से अनंत द्रव्यरूप है। क्षेत्र से मात्र लोक प्रमाण है। काल से नित्य है। भाव से रंगवाला, गंधवाला, रसवाला और स्पर्शवाला है। गुण से ग्रहण गुणवाला है।

ये पांच पदार्थ अस्तिकाय हैं। अस्तिकाय का अर्थ प्रदेशों का समूह, धर्म, अधर्म, आकाश जीव और पुद्गल ये पांच द्रव्य अपने समग्र प्रदेशों से युक्त होते हैं, अतः धर्मास्तिकाय, अधर्मास्तिकाय, आकाशास्तिकाय, जीवास्तिकाय और पुद्गलास्तिकाय कहलाते हैं। उन-उन द्रव्यों को एक, दो, पांच पच्चीस, जबतक

P. P. Ac. Gunratansuriji M.S. Jin Gun Aaradhak Trust

समस्त प्रदेशों में से एक भी कम होता है तब तक वह धर्मास्तिकाय वगैरह नहीं कहलाता है।

निश्चयनय की अपेक्षा से यह वचन कहने में आया है। व्यवहारनय की अपेक्षा से तो कुछ न्यूनता होनेपर भी वह वस्तु कही जा सकती है। व्यवहारनय घडे के खंड को भी घडा कहता है। अगर कुत्ते के कान काट लिये जाय तो भी वह कुत्ता ही कहलाता है। किन्तु ऊपर जो कहने में आया है वह निश्चयनय की अपेक्षा से है।

ऊपर के पांच द्रव्यों में आकाशास्तिकाय और पुद्गलास्तिकाय के अनंत प्रदेश है और धर्मास्तिकाय, अधर्मास्तिकाय तथा जीवास्तिकाय के असंख्य प्रदेश हैं। हम पहले लिख चुके हैं कि जीवास्तिकाय का गुण उपयोग है। वह जीव उत्थानवाला, कर्मवाला, बलवाला, वीर्यवाला और पुरुषाकार पराक्रमवाला है। आत्मभाव से जीव भाव को बताया है। इसका कारण यह है कि जीव, मति, श्रुत, अवधि, मनः पर्यव और केवल ज्ञान के अनंत पर्यवों के, मति अज्ञान, श्रुत अज्ञान विभंग ज्ञान के अनंत पर्यवों के, चक्षुदर्शन, अचक्षुदर्शन अवधि दर्शन और केवल दर्शन के अनंत पर्यवों के उपयोग को प्राप्त करता है। सार यह है कि जीव उपयोग रूप है। अतएव उत्थानादिवाला जीव आत्मभाव से जीवभाव को दिखाता है। यहाँपर जो पर्यव कहे हैं इसका अर्थ है बुद्धि द्वारा कहे गये विभाग। कहने का मतलब यह है कि– मति ज्ञान के ऐसे पर्यव अनंत होते हैं। उसीसे उत्थानादि (खडा होना, बैठना, सोना, खाना आदि) भाव में वर्तता हुआ आत्मा

P. P. Ac. Gunratansuriji M.S. Jin Gun Aaradhak Trust

मति ज्ञान संबंधी अनंत पर्यवों के उपयोग को मति ज्ञान के पर्यव-रूप एक प्रकार के चैतन्य को प्राप्त करता हैं। ऐसा कहा जाता है।

आकाशास्तिकाय--आकाश दो प्रकार का है। लोकाकाश और अलोकाकाश। जिस क्षेत्र में धर्मास्तिकाय आदि द्रव्य रहते हैं वह क्षेत्र लोकाकाश कहलाता है और जहाँ वे द्रव्य नहीं है, वह अलोक अलोकाकाश कहा जाता है।

यह पहले ही कहा जा चुका है कि यह लोकाकाशरूप अधिकरण आधार में सम्पूर्ण जीव द्रव्य रहते हैं। वैसे ही अजीव द्रव्य भी रहते हैं। इससे कोई अपेक्षा ऐसा कह सकते हैं कि लोकाकाश में जीव, जीव के देश, जीव के प्रदेश, वैसे ही अजीव, अजीव के देश, अजीव के प्रदेश हैं। जो जीव हैं, वे एकेन्द्रिय, दो इन्द्रिय, तीन इन्द्रिय, चार इन्द्रिय, पंचेन्द्रिय और अतिन्द्रिय हैं।

अजीव दो प्रकार के हैं। रूपी और अरूपी। रूपी के चार कार हैं। स्कन्ध, स्कन्ध देश, स्कन्ध प्रदेश और परमाणु पुद्गल। जो अरूपी हैं, उसके पांच भेद हैं। धर्मास्तिकाय का देश, धर्मास्तिकाय का प्रदेश, अधर्मास्तिकाय का देश, अधर्मास्तिकाय का प्रदेश तथा अद्धासमय।

अलोकाकाश यह जीव या जीव का प्रदेश नहीं कहा जाता हैं। वह एक अजीव द्रव्य देश है। अगुरुलघु है तथा अगुरुलघुरूप अनंत गुणों से संयुक्त है। और अनंत भाग से न्यून और सर्व आकाशरूप हैं।

लोकाकाश में वर्ण, गंध, रस और स्पर्श नहीं हैं। वह एक अजीव द्रव्य देश है। अगरुलघु है।। अगुरुलघुरूप अनंत गुणों से संयुक्त है और सब आकाशरूप हैं।

धर्मास्तिकायादि संबंधी कुछ विशेष--

धर्मास्तिकाय लोक रूप है। लोकमात्र है, लोक प्रमाण है। लोक से स्पर्शित और लोक से ही छुआ हुआ स्थित है। इसके अनुसार अधर्मास्तिकाय, लोकाकाश, जीवास्तिकाय और पुद्गलास्तिकाय संबंधी जानना चाहिए। अधोलोक धर्मास्तिकाय के आधे से अधिक भाग से स्पर्शित है।

तिर्यग्लोक--धर्मास्तिकाय के असंख्येय भाग से स्पर्शित है।

अर्ध्वलोक--धर्मास्तिकाय के कुछ न्यून अर्ध भाग से स्पर्शित है।

रत्नप्रभापृथ्वी--धर्मास्तिकाय के असंख्येय भाग को स्पर्श करती हैं।

घनोदधि--धर्मास्तिकाय के असंख्येय भाग को स्पर्शित है।

इसप्रकार घनवात और तनुवात संबंध में भी जानना चाहिए।

रत्नप्रभा पृथ्वी का अवकाशान्तर धर्मास्तिकाय के संख्येय भाग को स्पर्शित है। किन्तु असंख्येय भाग को संख्येय भागों को, असंख्येय भागों को और संपूर्ण को भी स्पर्श नहीं करता है।

इसप्रकार दूसरे अवकाशान्तरो को भी जानना। जंबूद्वीपादिक द्वीप और लवण समुद्रादिक समुद्र, सौधर्मकल्प, ईषत्

P. P. Ac. Gunratnasuriji M.S. Jin Gun Aaradhak Trust

प्राग्भारा पृथ्वी वे सब असंख्येय भाग को स्पर्श करते हैं।

इसप्रकार अधर्मास्तिकाय और लोकाकाश को स्पर्श करने के संबंध में भी जानना।

संक्षेप में पृथ्वी, उदधि, घनवात तनुवात, कल्प, ग्रैवेयक, अनुत्तर और सिद्धि! इन सबके अंतर धर्मास्तिकाय के असंख्य भाग को स्पर्श करता है और बाकी अधर्मास्तिकाय के असंख्य भाग स्पर्श करता है। ॐ ३७

ॐ ३७ अब दूसरे शतक में यह अन्तिम दसवां उद्देशा अजीव काय का है। जिसके धर्मास्तिकाय, अधर्मास्तिकाय, आकाशास्तिकाय, पुद्गलास्तिकाय और काल ये पांच भेद हैं और छठा द्रव्य जीवास्तिकाय है।

अजीव यानी पांच द्रव्य जीव रूप में नहीं हैं। ज्ञान–विज्ञान बिना का अन्य उपयोग से रहित अजीव होता है। केवल अस्तित्वादि धर्मों की अपेक्षा जीव द्रव्य में और धर्मादि द्रव्यों में सादृश्य होने से 'नञ' का पर्युदास यानी सदृशग्राही अर्थ लेना है। जीव नामकर्म के उदय से प्राणों को धारण करता है, वे प्राण जिसमें नहीं है वे अजीव हैं। किन्तु यह अर्थ सुसंगत इसलिए नहीं है कि नामकर्म के भेदों में जीव नामकर्म है ही नहीं।

"काय" शब्द से प्रदेश और अवयवों की बहुलता और कालद्रव्य में प्रदेश का निषेध सूचित होता है। इन चार द्रव्यों में "अजीव काय" शब्द का व्यवहार कर्मधारय समास के अनुसार करना है। क्योंकि ये चार द्रव्य अजीव भी हैं और काय भी है। अजीवाश्च ते कायाश्चेति–अजीवकायाः। इस समास में दोनों शब्दों की वृत्ति परस्पर एक दूसरे को छोड़कर भी रहती है। "जैसे नीलोत्पल" में स्थित नील शब्द को छोडकर उत्पल शब्द "रक्तोत्पल" में रहता है और उत्पल को छोड़कर नीलशब्द, नीलवस्त्र के साथ भी प्रयुक्त होता है।

P. P. Ac. Gunratansuriji M.S. Jin Gun Aaradhak Trust

इस प्रकार अजीव शब्द को छोड़कर "काय" शब्द जीवास्तिकाय में रहता है और "काय" शब्द को छोड़कर "अजीव" शब्द कालद्रव्य में भी रहता है। धर्मास्तिकाय और अधर्मास्तिकाय में "धर्म और अधर्म" शब्द प्रचलित पाप और पुण्य का पर्याय शब्द नहीं हैं। वैसे ही वैशेषिक दर्शन द्वारा मान्य "द्रव्य-गुण-कर्म-सामान्य-विशेष-समवायाऽभावाः सप्तपदार्थाः" इस सूत्र में स्थित गुण शब्द का विशेष अर्थ भी नहीं हैं। परन्तु जैन शासन द्वारा मान्य यह द्रव्य सर्वथा स्वतंत्र द्रव्य है।

उपर्युक्त चार द्रव्य, काल तथा जीवास्तिकाय द्रव्य कहे जाते हैं। इन छः द्रव्यों में संसार का समावेश हुआ है, तथा दूसरे दर्शन द्वारा मान्य सब द्रव्य और तत्व ऊपर के छः द्रव्यों में समाहित है। उपरोक्त छः द्रव्य नित्य, अवस्थित और अरूपी हैं। नित्य का अर्थ यह है कि "स्वयं के मूल स्वभाव का व्यय न हो"। क्योंकि इसमें से कोई भी द्रव्य अपने स्वभाव को छोड़ता नहीं है। धर्मास्तिकाय किसी काल में भी अधर्मास्तिकाय रुप में नहीं होता हैं। वैसे ही ये दोनों आकाशास्तिकाय के रूप को धारण नहीं करते हैं। जीव पुद्गल रुप में नहीं होता है। वैसे पुद्गल किसी समय में भी जीव नहीं होता है।

इसके अनुसार प्रत्येक द्रव्य अपने अपने स्वरुप में कायम रहते हैं किसी काल में भी उनका नाश नहीं होता हैं। शंकरजी का कैसा भी और कितने ही समयतक डमरु बजता रहे। फिर भी संसार का नाश असंभव है। इसलिए ऊपर के छः द्रव्य अपने मूल स्वरुप में नित्य है। तथा उन द्रव्यों के आश्रित उनके गुण भी नित्य हैं। जैसे धर्मास्तिकाय, अधर्मास्तिकायादि रुप में परिवर्तित नहीं होता है। वैसे धर्म के गुण भी परिवर्तित नहीं होते हैं। यहाँ नित्य का अर्थ "तद् भावाव्ययं नित्यं" लेना है। किन्तु अप्रच्युतानुत्पन्न-स्थिरैकरूपं नित्यं" नित्य का यह स्वरुप जैन शासन को सर्वथा अमान्य है। क्योंकि इस लक्षण से लक्षित संसार में एक भी पदार्थ है ही नहीं। अमुक अंश में जिसका नाश नहीं होता है और अमुक अंश में जिसका उत्पाद नहीं होवे ऐसा एक भी पदार्थ स्थिर रूप में नहीं है।

ये छः द्रव्य अवस्थित हैं। क्योंकि इनकी संख्या में हानि वृद्धि नहीं। तथा किसी से भी उत्पादित नहीं। किन्तु अनादि कालीन है।

अतः उनका परिणमन भी परस्पर नहीं होता है। इसलिए अवस्थित है। जैसे "जहाँ आकाशास्तिकाय का प्रदेश है, वहाँ धर्मास्तिकाय, अधर्मास्तिकाय जीवास्तिकाय के भी प्रदेश अवस्थित रहे हुए हैं। फिर भी उन सबका प्रदेश एक दूसरे में परिणत नहीं होता है। वैसे ही एक दूसरे को अपने में परिणत नहीं करते हैं। पुदगलास्तिकाय को छोड़कर बाकी सब द्रव्य अरूपी हैं। रूप का अर्थ मूर्त होता है। रूप, रस, गंध, स्पर्श इन चार गुणों को तथा गुणों से युक्त द्रव्य को मूर्त कहते हैं। इससे हम जान सकते हैं कि बाकी के सब द्रव्य रूप, रस, गंध और स्पर्श बिना के है। इसलिए अरूपी हैं। जीवास्तिकाय भी अरूपी हैं: चारों गुणों का साहचर्य होने से अनंत, असंख्यात, संख्यात प्रदेशात्मक पुद्गल स्कंध और परमाणु में भी चारों गुणों की विद्यमानता अबाध है। ेशक कितने में उनका स्पष्टीकरण होता है। कितने ही अनुमान से जाने ाते है। जैसे कि :— "वायुः, रुपवान्. स्पर्शवत्वात्, घटादिवत्"

"रुपिणः, पुद्गलाः" में "रूपं अस्ति एषां एषु वा रूपिणः" इस व्युत्पत्ति से एक में संबंध की और दूसरे में अधिकरण की अपेक्षा है। पहली अपेक्षा में रूप और रूपी में कथंचित् भेद है। जब दूसरे पक्ष में कथंचित् अभेद की कल्पना है। जिनेश्वर भगवान का शासन एकान्तवाद में नहीं है। परन्तु अनेकान्त रुप में है। इसलिए रूप (रूप, रस, रंग, गंध, स्पर्श) जिनके हैं अथवा जिसमें है। ये दोनों अर्थ संगत हैं। अपेक्षा बुद्धि के मर्म को समझ सकते हो तो हमको भी स्पष्ट रीति से समझने में देरी नहीं लगती है। क्योंकि रुप (गुण) और रूपी (गुणी) का तादात्म संबंध होने से किसी क्षण में भी ये अलग नहीं है। कोई भी द्रव्य ऐसा नहीं है, कि जो गुण बिना का हो अर्थात् गुण, द्रव्य (गुणी) को किसी समय नहीं छोड़ता। जब आम पीले रंग का होता है तब मीठा होता है और सुगंधित होता है। और

सुगन्धित ओम स्निग्ध स्पर्शवाला होता है। इस कथन में एक ही आम के पदार्थ में रूप, रस, गंध और स्पर्श इन चारों गुणों का साहचर्य जैसे प्रत्यक्ष अनुभूत है। वैसे आम अलग है और पीला और लीला रंग, मिठा रस, सुगन्धि और स्पर्श गुण अलग अलग है। यह बात केवल अपेक्षा बुद्धि से समझ में आएगी। इसलिए गुण मात्र को गुणी द्रव्य मात्र के साथ में भिन्नाभिन्न संबंध जान लेना चाहिए। चाहे किसी पदार्थ का निर्णय करें। उसके पूर्व अपेक्षा बुद्धि को उत्तेजित बनाना जरूरी है।

पुद्गलों को रूपी कहने से पहले के पांच पदार्थ अरुपी तौर पर और अनंत पुद्गलों के साथ रूपादि गुणों का तादात्म्य संबंध सिद्ध होता है, इसलिए " रूपिण पुद्गलाः एव " " पुद्गलाः रुपिणः एव " ये दोनों व्याख्याएं जैनशासन को मान्य है।

वैशेषिक दर्शनकार 'उत्पत्तिक्षणे द्रव्यं क्षणं निर्गुणं निष्क्रियं च तिष्ठति, इस सिद्धान्त के अनुसार पुद्गल को उत्पत्ति के प्रथम समय में गुण बिना का मानते हैं। वैसे ही पृथ्वी में चार गुण, पानी में तीन गुण, अग्नि में दो गुण और वायु में एक गुण मानते हैं।

जब केवली भगवान् ने फरमाया है कि गुणी कही भी अलग नहीं रहते हैं। घट बनते ही साथ में उसमें गुण भी विद्यमान होते हैं। अर्थात् घट की उत्पत्ति और उसके गुण सर्वथा साथ ही है और पुद्गल द्रव्य एक है। किन्तु अलग अलग सहकार को लेकर पर्याय रूप से अलग अलग है।

धर्म अधर्म और आकाश ये तीन द्रव्य लोकाकाश में एक एक द्रव्य ही है। जब जीव और पुद्गल अनंत हैं। लोकाकाश असंख्यात प्रदेशी होकर जैसे अखण्ड है वैसे धर्मास्तिकाय (गति सहायक) अधर्मास्तिकाय (स्थिति सहायक) द्रव्य असंख्यात प्रदेशी होकर भी एक एक अखंड द्रव्य, गति में सहायता करनेवाले धर्मास्तिकाय की तुलना में आवे और स्थिति में सहायता करनेवाले अधर्मास्तिकाय की तुलना में आवे ऐसा दूसरा पदार्थ एक

P. P. Ac. Gunratansuriji M.S. Jin Gun Aaradhak Trust

भी नहीं है। तव आकाशास्तिकाय सबको अवकाश देता हैं। ये तीन द्रव्य जैसे अखंड हैं, वैसे क्रिया विना के हैं। जब जीव और पुद्‌गल क्रियावान् हैं।

क्रिया अर्थात् एक स्थान से दूसरे स्थान को और एक आकार से दूसरे आकाश को प्राप्त करना उसे क्रिया कहते हैं। जब धर्म, अधर्म और आकाश का तो किसीभी समय में क्षेत्रांतर या आकारान्तर नहीं होता है। तथापि अस्ति भवति–गत्युपग्रह–स्थित्युपग्रह और अवकाशदानोपग्रह आदि क्रिया का व्यवहार तीनों द्रव्यों में होता है, इसलिए परिणाम लक्षण क्रिया इन तीनों में समझना। जीव तथा पुद्‌गल में परिस्पन्द लक्षण क्रिया समझना। यहाँ जीव तथा पुद्‌गलों को क्रियावान् कहे हैं। वे परिस्पन्द लक्षण क्रिया के कारण ही और यही क्रिया असली क्रिया है। धर्म-अधर्म आकाश और जीव के प्रदेश असंख्य हैं। प्रदेश यानी सर्व सूक्ष्म पदार्थ जिसका दूसरा विभाग न हो सके और परमाणु का अवगाहन जितने स्थान में होता है उसे प्रदेश कहते हैं।

परमाणु को आदि विना का, मध्य विना का, और अप्रदेशी कहा है। जब परमाणुओंसे बना हुआ स्कंध अवयववाला ही होता है, उसका छेदन-भेदन होने पर जो निरवयवी अंश रहता है वह परमाणु है।

प्रदेश का छेदन-भेदन जैन शासन को मान्य नहीं है। धर्म-अधर्म और आकाश के प्रदेशों का संकोच और विस्तार नहीं है। जब जीव का प्रदेश संकोच और विस्तारवाला होता है, इसलिए ही असंख्य प्रदेशी जीव चींटी के शरीर में और हाथी के शरीर में अबाध रह सकता हैं। कीडी के शरीर को छोड़कर यह जीव हाथी के शरीर से लेकर उत्तर वैक्रियधारी देव के शरीर में प्रवेश करता हैं, तब अपने प्रदेशों का विस्तार करता हैं। लोकाकाश और अलोकाकाश दोनोंके प्रदेश अनन्त हैं। अकेले लोकाकाश के प्रदेश असंख्य है। सब द्रव्य लोकाकाश में रहे हुए हैं। रहने के दो प्रकार हैं, सादि और अनादि। जीव और पुद्‌गल सक्रिय होने से उनका क्षेत्रान्तर और आकाशान्तर होता रहता है। इसलिए वे जिस क्षेत्र और जिस आकाश को

P. P. Ac. Gunratansuriji M.S. Jin Gun Aaradhak Trust

प्राप्त करेंगे उस अपेक्षा से सादि हैं। जब सामान्य प्रकार से धर्मास्तिकाय अधर्मास्तिकाय अनादिकाल से अनंतकाल तक लोकाकाश में अवगाहन करते रहते है।

तथा पुद्गल द्रव्य आकाश के एक प्रदेश से लेकर पूरे आकाश के असंख्य प्रदेश में रहते हैं। आकाश के एक प्रदेश में जैसे एक परमाणु रहता है। वैसे द्वयणुक और त्र्यणुक से लेकर संख्य असंख्य और अनंत पुद्गलो का अवगाहन भी जैन शासन को मान्य है। केवल संख्यात प्रदेशी स्कंध संख्यात प्रदेश में रहेंगे। किन्तु असंख्यात प्रदेश में नहीं रहते है। जब असंख्यात और अनंत अवयवी पुद्गल स्कंध एक प्रदेश से लेकर असंख्यात प्रदेश में रहेंगे।

अनंत पुद्गलो का स्कंध असंख्यात प्रदेश में या संख्यात प्रदेश में कैसे रह सकता है? इसके जवाब में भगवान ने कहा है कि जैसे एक मन कपास (रुई) जितने प्रदेश में रहता है, उतने ही प्रदेश में सैकड़ों मन के पत्थर, लोहा, सोना, चांदी समा सकती है। अथवा एक ही कमरे में एक दीपक से लेकर हजारों दीपकों का प्रकाश जैसे समा जाता है, वैसे अनंत पुद्गल भी असंख्य प्रदेश में रह सकते है। उसमें कोई बाधा नहीं आती है।

जीवात्मा का अवगाहन लोकाकाश के असंख्य भाग से लेकर संपूण लोकाकाश में रहता हैं। क्योंकि जीव के शरीर की अवगाहना अंगुल के असंख्य भाग जितनी शास्त्रों में बताई है और केवली समुद्घात की अपेक्षा से संपूर्ण लोकाकाश में भी अवगाहना मान्य है।

परन्तु उससे जीव को सर्वव्यापी मानने की जरुरत नहीं है। जैन शासन को मान्य जीवमात्र शरीर व्यापी ही है। यह हकीकत आगम और तर्क से सिद्ध है क्योंकि जिसके गुण जहाँ दिखाई देते है, उन द्रव्य की कल्पना भी उतने ही क्षेत्र में करने की होती है। जहाँ घड़ा है वहाँ उनका गुण प्रत्यक्षगोचर है। उसी प्रकार आत्मा के सब गुण शरीर में ही विद्यमान है, अन्यत्र नहीं। इसलिए जीव शरीर व्यापी है।

P. P. Ac. Gunratansuriji M.S. Jin Gun Aaradhak Trust

धर्मास्तिकाय जीव को गति करने में सहायक बनता है और अधर्मास्तिकाय खड़े रहने में सहायक बनता है। ये दोनो उदासीन कारण समझने चाहिए। प्रेरक कारण नहीं। यदि प्रेरक कारण मानने में आवे तो संसार में गड्बड़ खड़ी होगी। इस प्रकार चलनेवाले जीव को धर्मास्तिकाय चलावेंगे और खड़े रहनेवाले जीव को अधर्मास्तिकाय चलने नहीं देगे। परन्तु अनादि काल के संसार में ऐसा कभी भी नहीं बना, नहीं बनता है और अनंत संसार में नहीं बनेगा। जिनेश्वर देव का शासन लोक की मर्यादा को व्यवस्थित रूप में प्रदर्शित करनेवाला है। गधे के सींग के जैसी असत्कल्पना अथवा आकाश में फूल खिले जैसी मिथ्या भ्रान्ति जैन शासन में नहीं हैं।

जीव और पुद्गल के सहायक रूप में ये दोनों द्रव्य लोकाकाश में रहते है। अर्थात् लोकाकाश के अन्तिम प्रदेश तक ही है। इसलिए अलोकाकाश में जीव और पुद्गल को धर्मास्तिकाय की सहायता नहीं होने के कारण नहीं जा सकते। निर्वाण दशा को प्राप्त हुआ जीव सिद्धशिलापर विराजमान होता है।

पुद्गल द्रव्य से बना हुआ बंगला जैसे सांत है, उसी प्रकार धर्मास्तिकाय और अधर्मास्तिकाय जहाँ विराम पाते है वह लोकाकाश भी सांत है। याने अंतवाला है। इसलिए ही एक लोकाकाश है। जब दूसरा अलोकाकाश इसलिए कहा जाता है कि वहाँ धर्म और अधर्म का प्रदेश नहीं। धर्म और अधर्म की सहायता बिना एक भी जीव और पुद्गल वहाँ जा सके वैसा नहीं। तत्त्वों के विभागी करण में जैन शासन की यह स्पष्ट मर्यादा है।

धर्मास्तिकाय, अधर्मास्तिकाय और आकाशास्तिकाय का जगतपर जो उपकार है। उनको जान लेने के बाद पुद्गास्तिकाय का उपकार क्या हैं ? उन को जान लेना चाहिए। यद्यपि पुद्गल अजीव द्रव्य है तथापि इसकी शक्ति कितनी जोरदार है। इसकी जानकारी रखना अत्यन्त रसप्रद हैं।

जैन शासन इसलिए अद्वितीय हैं कि उसकी पदार्थ व्यवस्था और

P. P. Ac. Gunratansuriji M.S. Jin Gun Aaradhak Trust

प्ररूपणा सर्वथा यथार्थ और अनुभव गम्य है। शरीर, वाणी, मन, प्राण और अपान की रचना किससे होती है? इसका जवाब यथार्थवादि भगवान महावीर स्वामी इस प्रकार देते है कि ईश्वर निरंजन निराकार होने से संसार का निर्माण नहीं कर सकता है। क्योंकि किसी भी वस्तु के निर्माण में राग-द्वेष का संभव अवश्यमेव होता है। जब ईश्वर तो निरंजन स्वरूप हैं। इसलिए संपूर्ण राग, द्वेष, काम, क्रोध को नाश करनेवाला ईश्वर संसार को बना सके वैसा भी नहीं हैं।

बिना शरीर के ईश्कर किन साधनों से संसार बनावेगा? क्योंकि जिसके शरीर ही नहीं हैं, उसके हाथ पैर भी कहाँ से होवे? ऐसी स्थिति में कोई मानव किसी भी वस्तुका निर्माणकर्ता होवे। ऐसा अनुभव किसी को भी नहीं है। ईश्वर निराकार है। अर्थात् "सिद्धाणं नत्थि देहो"।

इसप्रकार आगम वचन के अनुसार भी ईश्वर शरीर विना का है। इसलिए अनंत संसार की एक भी रचना ईश्वर के आधीन नहीं। फिर भी अनादिकाल से संसार है, मानव है, पुद्गल है और संसार का संचालन स्वयं अपने आप हो रहा है।

संसार के प्रत्यक्ष दिखलाई देते हुए अनेक पदार्थ जैसे कि—आकाश के बादल, बिजली की चमक, जमीन में डाले हुए बीज के आधारपर बड़े बड़े पेड़, उसपर खिलनेवाले पुष्प, फल, उसमें भी खट्टा मिठा रस इत्यादिक अगणित पदार्थों के निर्माणकर्ता को किसी ने नहीं देखा, देखने में नहीं आता है। इसलिए जो अदृश्य शक्ति के माध्यम से संसार का संचालन दिखाई देता है। वह शक्ति ही कर्मसत्ता है। "मनः वचनकायैः यत् क्रियते तत् कर्म" अर्थात् मन, वचन और शरीर से जो किया जाता है वह कर्म पौद्गलिक होने के कारण अजीव है। फिर भी उनकी अनंतशक्ति सबको प्रत्यक्ष दिखाई देती है।

खान में से निकले हुए सुवर्ण की तरह जीव और अजीवकर्म के मिश्रण से ही संसार का संचालन सुस्पष्ट और अनुभव गम्य है।

P. P. Ac. Gunratansuriji M.S. Jin Gun Aaradhak Trust

आत्मा के प्रत्येक प्रदेश में कर्म वर्गणा संलग्न होने से अरुपी ऐसी आत्मा भी कथंचित् रुपी हैं और इससे ही किये गये कर्मो को लेकर चार गतियों में परिभ्रमण करते हैं और सुख दुःख भुगतते हैं।

" आत्मा को कूटस्थ नित्य मानने से उसका रूपान्तर, क्षेत्रान्तर आकाश के माफिक किसी काल में भी संभव नहीं है। " खुद की विद्यमान अवस्था को कभी भी नहीं छोड़े, सुखी अवस्था में से दुखी अवस्था की उत्पत्ति नहीं होती है। फिर भी स्थिर रहे उसे कूटस्थनित्य कहते हैं। "

उपरोक्त नियम के अनुसार तो संसार की कोई भी व्यवस्था किसी को भी नहीं दिखाई देती है। किसी को अनुभव भी नहीं होता है। इसलिए ही जैन शासन मान्य 'स्याद्वाद धर्म' अमर रुप से चमकता है। जिस कारण से अर्थात् द्रव्यमात्र अपने मूल स्वभाव को छोड़े बिना एक पर्याय रूप से उत्पन्न होता है और दूसरे पर्याय रुप से नाश होता है। इसप्रकार प्रत्यक्ष आँखो से दिखलाई देता हुआ संसार का संचालन हमको सबको यथार्थ दिखाई देता है और जो प्रत्यक्ष अनुभव होता है, वही सच्चा तत्त्वज्ञान है।

यह संसार अनंतानंत पुद्गलों से भरा हुआ है। उनमें भी अमुक पुद्गल ही कर्मवर्गणा के है। जिससे आठों कर्म बांधे जाते है। उनमें नाम कर्म भी है। इस कर्म के तथा उनके अवान्तर भेदों के कारण शरीर की रचना करनेवाला यह जीव खुद ही समर्थ शक्तिवान है। शुभ या अशुभ नामकर्म की उपार्जना की गई होवे उसी के अनुसार जन्म धारण करते हुए जीव को वे कर्म उदय में आते हैं और उस उस प्रकार से शरीर की रचना होती है। मानव या तिर्यंच अवतार को धारण करनेवाले जीव को कुक्षी गत वीर्य और रज की ही आवश्यकता पड़ती है। जिससे यह जीव जन्म धारण करता है। अपने शुभाशुभ कर्मो को भुगतने के लिए धारण कराते हुए शरीर की रचना में पुद्गल ही उपकारक है। जिससे संसारवर्ती सब जीव शरीर धारण करते हैं।

P. P. Ac. Gunratansuriji M.S. Jin Gun Aaradhak Trust

भाषा पर्याप्ति नामकर्म से दो इन्द्रियों से लेकर पंचेन्द्रिय तक के जीव अपनी खुद की भाषा का व्यवहार करते हैं। यह भाषा वर्गणा अर्थात् जो भाषा हम बोलते हैं वह कर्म पुद्गल ही है। शब्द भी पौद्गलिक है। क्योंकि गुणों को गति नहीं होती है किन्तु पुद्गल तो प्रयोग के अनुसार गति करते हैं। तभी चाहे जहाँ से बोला जाता हुआ शब्द कान के पास आता है और अपने पास में आये शब्द को कर्णेन्द्रिय ग्रहण करती है। पौद्गलिक शब्द मूर्तिमान है। इसलिए कान में शब्द का स्पर्श अनुभव होता है। जो स्पर्शवान् होते हैं वे रूपी होते हैं। और जो रूपी होते है वे पुद्गल होते हैं। आकाश और परमाणु सर्वथा परोक्ष होने से शब्द उनका गुण नहीं है। क्योंकि परोक्ष पदार्थ का गुण प्रत्यक्ष हो ही नहीं सकता। और शब्द तो प्रत्यक्ष है। शायद कोई कहे कि "वायु परोक्ष है, फिरभी उनका स्पर्श गुण प्रत्यक्ष अनुभव होता है। इसप्रकार आकाश भले ही परोक्ष रहा हो। किन्तु उनका गुण शब्द प्रत्यक्ष रह सकता है।" परंतु यह बात ठीक नहीं है। कारण कि जैन शासन मान्य वायु भी प्रत्यक्षही है। स्पर्शवाला होने से तथैव शब्द भी प्रत्यक्ष है। जिसकी उत्पत्ति और विनाश होता है वह गुण नहीं होता किन्तु द्रव्य होता है। शब्द भी उत्पन्न होता है और नष्ट होता है, इसलिए द्रव्य है।

'सोऽयं गकारः' इस प्रत्यभिज्ञान से गकार वही है, जिसका उच्चारण आपने पहले किया था, इस युक्ति से शब्द में एकान्त नित्यत्व भी नहीं हो सकता, क्योंकि 'सेयं दीपज्वाला' 'तदेवेदमौषधम्' इस अनुमानसे ऊपर की युक्ति खंडित हो जाती है। यह वही दीपज्वाला है, यह वही औषध है, यह जिस तरहसे भ्रान्ति ज्ञान है, वैसे ही यह वही 'गकार' है। यह भी भ्रान्ति है। क्योंकि बोला हुए शब्द का नाश होता है। इसलिए शब्द नित्य नहीं परन्तु नित्यानित्य है। जो जो क्रियावान् होते हैं वे द्रव्य होते हैं। शब्द को सुनने के बाद सुननेवाले के जीवन में शुभ अशुभ क्रिया चालू होती है, अपशब्द सुनने से हम को रोष होता है और आशीर्वादात्मक

शब्द सुनने से हमको समता और संतोष होता हैं, इसलिए अपने जीवन में क्रिया उत्पन्न करनेवाले सुनाई देते हुए शब्द हैं।

गुण सर्वथा निष्क्रिय ही होते है। इसलिए शब्द पौद्गलिक है। इसप्रकार का भाषा-व्यवहार एकेन्द्रिय जीवों को नहीं होता है। क्योंकि उन्होंने पूर्वभव में भाषा पर्याप्ति नामकर्म उपार्जन नहीं किया। जिससे वे अपनी मानसिक व्यथा दूसरे किसी भी जीव को बता नहीं सकते। मनोवर्गणा के पुद्गल केवल संज्ञी जीवों को ही होता है। एकेन्द्रिय, दो इन्द्रिय, तीन इन्द्रिय, चार इन्द्रिय और गर्भ बिना का पंचेन्द्रिय संमूर्च्छिम जीवों को मनोवर्गणा नहीं होने के कारण ऊपर के जीव द्रव्य मन बिना के होते हैं। जब गर्भज जीवों को ही मन होने से उनका मानसिक विचार प्रत्यक्ष गम्य है। यहाँ आहार, निद्रा, भय और मैथुन संज्ञा नहीं लेनी हैं। क्योंकि ये चार संज्ञा तो निगोद वर्ती जीवों को भी होती है। इसलिए मानसिक विचार रखनेवालों की संज्ञा दो प्रकार की होती है।

दीर्घकालिकी संज्ञा यानी भूत और भविष्य का विचार कराती है, सी संज्ञा को दीर्घकालिकी संज्ञा कहते हैं और दूसरी संज्ञा दृष्टीवादोपदेशिकी संज्ञा जो विशिष्ट प्रकार के श्रुतज्ञान का क्षयोपशमयुक्त होती है। इस में सम्यग्ज्ञान का प्रकाश होने से हेय और उपदेय क्या है? उसकी जानकारी करने के लिए जीव समर्थ हो जाता है।

पर्याप्त नामकर्म के कारण जो जीव पर्याप्त अवस्था को प्राप्त होता है, उसको प्राण और अपान की रचना नामकर्म से होती है।

प्राण यानी उच्छ्वास रूप में परिणत हुए द्रव्य के समूह द्वारा जो श्वास लेने रूप व्यापार करने में आता है उसे उच्छ्वास कहते हैं। नाभिमें से उत्पन्न हुआ उच्छ्वास रुप वायु प्राण रूप से संबोधित होता है।

जब बाहर का वायु अंदर ले जाया जाता है। उसे निश्वास रूप से वापस फेंका जाता है, उसे अपान वायु कहते हैं।

P. P. Ac. Gunratansuriji M.S. Jin Gun Aaradhak Trust

इसप्रकार शरीर, वचन, मन, प्राण और अपान की रचना में नाम कम के अवांतर भेद काम करते हैं। इसलिए इन पुद्गलों का उपकार स्पष्ट है। "भोगायतनं शरीरम्"। कर्मों के फल को भोगने के लिए जीवात्मा को शरीर धारण किये विना नहीं चल सकता और शरीरादि रचना में नामकर्म की मुख्यता है। तत्पश्चात् मनःवांछित रूप, स्पर्श, रस, गंध और वर्ण मिलने से जीव को सुख होता है, और उससे विपरीत दुःख होता है। इन दोनों में अर्थात् सुख-दुःख में साता वेदनीय और असाता वेदनीय कर्म कारण रूप है।

विधि पूर्वक स्नान, आच्छादन, अनुलेप, आहार और विहार आदि दीर्घायुप्रदान करनेवाले हैं। इसके विपरीत आहार विहार करना, शस्त्राघात, अग्नि तथा विषभक्षण करना ये सब मृत्यु के कारण हैं। इसलिए जीवन और मरण में भी पुद्गल ही काम करते हैं। दीर्घायुष्य में आयुष्यकर्म की प्रधानता हैं और मरण में उनका अभाव है। जीवद्रव्य परस्पर हित और अहित के उपदेश से दूसरों के उपकारक हैं अर्थात् निमित्त बनते हैं। भविष्य और वर्तमानकाल में जो शक्य, न्याय और युक्त हैं उसे हित कहते हैं और उससे विपरीत अहित है। जीव परस्पर एक दूसरे के हित रूप में तथा अहित रूप में निमित्त बनता हैं।

इस प्रकार कालद्रव्य का उपकार भी प्रकरण ग्रन्थों से जान लेना चाहिए।

इस प्रकार दूसरे शतक का १० उद्देशक सम्पूर्ण।

॥ शतक दूसरा संपूर्ण ॥

"समाप्ति वचनम्"

नवयुग प्रवर्तक, शास्त्रविशारद, जैनाचार्य श्री १००८ श्री विजय धर्मसूरीश्वरजी महाराज साहब के शिष्य शासन दीपक व्याख्यातृ चूडामणि, लघु एवं वृहद् ७० पुस्तकों के लेखक, सौम्याकृति, प्रसन्नवदन, तार्किक शिरोमणि स्व. मुनिराज श्री विद्याविजयजी महाराज साहेवने स्वयं के स्वाध्याय के लिए जिस भगवती सूत्र के छः शतक का वित्ररण लिखा है, उसपर विशेष प्रकार के प्रश्न तथा उत्तर के मर्म को जान सके, उसके अनुसार मेंने यह पुस्तक अल्पमति से तैयार की है।

" शुभं भूयात् सर्वेषां जीवानाम्
सर्वे जीवाः जैनत्वं प्राप्नुयुः "

॥ नववा, दसवा उद्देशा समाप्त ॥

P. P. Ac. Gunratansuriji M.S. Jin Gun Aaradhak Trust

'शतक तीसरे के संबंध में सम्पादक का प्राक् कथन'

शास्त्रविशारद श्री विजयधर्म सूरीश्वराय नम:

शतक तिसरा उद्देशक–१

भगवतीसूत्र की जयकुंजर हाथी से तुलना

यह कभी सुनने में नहीं आया कि विना आकाश के सूर्य और चन्द्र रहे हो। क्योंकि संसार के अमुक पदार्थ शाश्वत हैं उसीके अनुसार द्वादशांगी (जैनवाणी) भी शाश्वती है। बारह अंगों में विस्तृत हुई भगवान महावीर स्वामी की वाणी का पांचवा अंगरूप 'भगवतीसूत्र' सुप्रसिद्ध और सर्वश्रेष्ठ है, देव, दानव तथा मानव द्वारा वंदित हैं। शास्त्र में भगवतीसूत्र (अपर नाम व्याख्या प्रज्ञप्ति विवाह पन्नति) को जयकुंजर हाथी की उपमा दी जाती है। हाथियों में जयकुंजर सर्वश्रेष्ठ है। वैसे ही यह भगवती सूत्र भी सर्व शास्त्रों में श्रेष्ठ, अभूतपूर्व और अमूल्य ज्ञान रूपी खजाने से भरा हुआ है। हेय, ज्ञेय और उपादेय तत्त्वों को बतानेवाले सूत्रों में इस सूत्र का सर्वप्रथम नम्बर आता है।

हाथी की चाल जैसे मदभरी और ललित होती है वैसे इस सूत्र में भी ललित-मनमोहक पद स्थल स्थल पर विद्यमान है। इस कारण से यह सूत्र पंडितों के मन को खुश करनेवाला है।

हाथी दु:खप्रद अंकुशादि विघ्नों के निपात को सहन करनेंवाला है, उसीप्रकार यह सूत्र भी असंख्य उपद्रवों का सामना

P. P. Ac. Gunratansuriji M.S. Jin Gun Aaradhak Trust

करते हुए भी अव्यय है। द्रव्यास्तिकनय से जिसका किसी समय भी नाश नहीं होता है उसे अव्यय कहते हैं।

हाथी की गर्जना जैसे गंभीर और मनोरंजक होती है वैसे इस सूत्र में प्रत्येक शब्द गंभीर और आह्लादक है।

इस सूत्र में शब्दों के लिंग और विभक्ति की व्यवस्था भी अत्यन्त सरस है। हाथी के लिए भी उसी प्रकार समझना चाहिए। हाथी के प्रत्येक अवयव भी सुंदर होते हैं।

जैसे हाथी सब लक्षणों से युक्त और देवों से अधिष्ठित होता है, वैसे भगवती सूत्र भी देव दानव नरिंद गणचिअस्स होने से प्रसिद्ध है। अथवा सुवाच्य आख्यात–धातुओं से सुशोभित है। अत्यन्त मांगलिक होनेसे सब लक्षणों से युक्त है। जगत का कल्याण करानेवाला होने से देवों द्वारा सुरक्षित है। जयकुंजर हाथीका उद्देशक–शिरोभाग सुवर्ण मंडित है। वैसे भगवती सूत्रके प्रत्येक उद्देशक भी सुवर्ण है। यानी 'अ' से लेकर 'ह' तक सब वर्ण योग्य स्थान पर स्थापित होने से बहुमूल्य रत्न के सदृश सुशोभित होता है। जैसे हाथी का चरित्र विविध प्रकारका होता है वैसे इस सूत्र में कहींपर कथानक, तो कहींपर तत्वज्ञान, तो कहीं भौगोलिक वर्णन और कहीं शारीरिक विज्ञान के वर्णन से अंकित होने के कारण ही अद्भुत् और अवर्णनीय है।

जैसे हाथीका शरीर स्थूल (बडा) होता है, वैसे इस सूत्र में अनेक शतक हैं। एक एक शतक में अनेक उद्देशे हैं और

P. P. Ac. Gunratansuriji M.S. Jin Gun Aaradhak Trust

प्रत्येक उद्देशे में अनेक प्रश्न हैं। सब मिलकर ३६ हजार प्रश्न और उत्तर हैं।

हाथी के दो कुंभ स्थल के जैसे इस सूत्र के निश्चय और व्यवहारनय रूपी दो कुंभ स्थल है।

द्रव्यानुयोग, चरित्रानुयोग, गणितानुयोग तथा कथानुयोग रूप चार पैर हैं। सम्यग् ज्ञान और सम्यग् चारित्र रूपी दो नयन हैं। द्रव्यास्तिक तथा पर्यायास्तिक नय रूप में दो दंत शूल हैं। योग और क्षेम रूप में दो कान हैं। अप्राप्त वस्तु को प्राप्त करा दें। उसे योग और मिली हुई (प्राप्त) वस्तु को स्थिर करे, उसे क्षेम कहते है।

जैसे हाथी की बडी सूँड होती है, वैसे इस सूत्र प्रारंभ में बडी प्रस्तावना रूपी सूंड है।

उपसंहार वचन तथा निगमनरूप वचन पुच्छ स्थान पर है। इसमें काल-विनय-बहुमानादि आठ प्रकार के तंग स्थान हैं। उत्सर्ग और अपवादरूप कथन दोनों तरफ के घंटा सदृश है। और स्याद्‌वादरूपी अंकुश से यह सूत्र पराधीन है। जैसे कोई भी प्रजा राजा की आज्ञा का उल्लंघन नहीं कर सकती है, उसीप्रकार संसार का कोई भी पदार्थ स्याद्‌वाद रूपी राजा की आज्ञा का उल्लंघन नहीं कर सकता है।

जिसमें विविध प्रकार के हेतु रूपी शस्त्र हैं, हाथी पर रखे हुए शस्त्र जैसे शत्रुओं का संहार करने के लिए होते हैं, वैसे भगवान् महावीर स्वामी नाम के महाराजा भी मिथ्यात्व, अज्ञान

P. P. Ac. Gunratansuriji M.S. Jin Gun Aaradhak Trust

और अविरति रूपी भाव शत्रुओं का नाश करने के लिए अलग अलग हेतुओं से मानवों के मन में स्थित भावशत्रुओं को भगा कर दूर करने में सकल हुए हैं।

इस प्रकार जयकुंजर हाथी की उपमा को संपूर्ण प्रकार से धारण करता हुआ यह भगवतीसूत्र सबके लिए वंदनीय, पूजनीय, पठनीय तथा मननीय है।

मनुष्यजीवन की सार्थकता

इस सूत्र में विविध प्रकार से जीवादि नौ तत्त्वों की व्याख्या विशद प्रकार से की गई है। उनकी जानकारी ही उत्कृष्टतम सम्यग् ज्ञान है। उसके बिना संसारभर का ज्ञान और विज्ञान संसार के नाश को निमंत्रण देता है। आज के संसार की दयनीय दुर्दशा मिथ्या ज्ञान के आभारी है। अतः जीवन में सबसे पहले सम्यग् ज्ञानकी जरूरत है।

यथार्थ तत्त्वज्ञान को प्राप्त करने के लिए और प्राप्त ज्ञान को जीवन में उतारने के लिए मनुष्य अवतार सिवाय दूसरा एक भी अवतार नहीं, क्योंकि जीवमात्र अपने अपने किये हुए (कृत) कर्मराज के फन्दे में फंसा हुआ है।

अत्यंत पाप कर्म करके नरक गति में पडा हुआ नारक जीव अपने पाप के फलों को भुगतने से ही ऊँचा नहीं आता है। जब देवगति के देव अपने पुण्य कर्मों के फलों को भुगतने में मस्त बने हुए हैं। तिर्यंच गति के तैर्यंच अविवेकी, पराधीन, भूख, प्यास,

P. P. Ac. Gunratansuriji M.S. Jin Gun Aaradhak Trust

ठंडी और गरमी आदि के दुःखों से आकुल-व्याकुल बने हुए होने से ज्ञान संज्ञा उनके लिए भी अत्यंत दुर्लभ है। जब मोक्ष के द्वार के जैसा मनुष्य अवतार ही ज्ञान संज्ञा प्राप्त कराने की योग्यता को धारण करता है।

जो मनुष्य अनादिकाल के सहचारी रुप में बने हुए अविद्या, अहंकार, राग, द्वेष, मोह, माया आदि आत्मिक दूषणों को दूर करके सत्संग, ज्ञानोपार्जन, तथा समता, दया और संतोष आदि आत्मिक तत्त्वों को प्राप्त करने के लिए भाग्यशाली बनने की इच्छा करें तो ज्ञान रूपी सूर्य के दर्शन करने में समर्थ हो सकते हैं।

" ज्ञायते आत्मतत्वं, हेयोपादेयादि
तत्वं चानेन तद् ज्ञानम् "

सम्यग्ज्ञान वह ज्ञान है जिससे आत्मतत्त्व की यथार्थता और त्याग करने योग्य तथा स्वीकार करने योग्य तत्त्वों की पहचान सरल बनती है। ऐसा ज्ञान 'केवल ज्ञान' ही हो सकता है। क्योंकि इस ज्ञान में एक भी कर्मावरण नहीं होता है। जहाँ रागादि दूषणों की उत्पत्ति भी समाप्त हो जाती है। उसे 'केवल ज्ञान' कहते हैं। ऐसे ज्ञान के मालिक, परमपावन, पतित पावन भगवान महावीर स्वामी हैं। वे कैसे हैं ? उनका स्वरूप क्या है ? इस बात की उनके विशेषणों से हम जानकारी प्राप्त करे जो नमुत्थुणं सूत्र में संगृहीत है।

देव निर्मित समवसरण

केवल ज्ञान होने के बाद देव वहाँपर समवसरण की रचना

करते हैं और देवाधिदेव, पतित पावन भगवान महावीर स्वामी समवसरण में आकर "नमो तित्थस" कहकर विराजमान होते हैं। इसप्रकार का देव निर्मित समवसरण, उसकी रचना, उसका वर्णन जैन सूत्रों को छोडकर दूसरे स्थान पर कहीं भी देखने में नहीं आता है। संसार में चाहे जैसा बडे से बडा चक्रवर्ती हो, वासुदेव हो, या बलदेव हो, त्यागी–तपस्वी–महातपस्वी हो, या करोडों का दान देनेवाले लक्ष्मीपुत्र हो, या उल्टे सिर पूरी जिन्दगी तक लटकनेवाला बडा योगी हो, तो भी किसी के लिए ऐसे समवसरण की रचना हुई हो, ऐसा कहीं पर भी देखने में नहीं आया, जब ये अपूर्व और अद्वितीय अतिशय तो तीर्थंकर परमात्माओं को ही होते हैं।

मोका नगरी में वायुवेग से जब यह बात जानने में आई कि भगवान महावीर स्वामी गांवके बाहर नंदन नाम के चैत्य में विराजमान है। तब वहां के राजा और प्रजा को बहुत आनन्द हुआ और सब एक स्थान पर एकत्रित होकर यही एक बात करने लगे कि हमारे नगरवासियों का यह महान् पुण्योदय है कि पतित पावन भगवान महावीर स्वामी पधारे हैं। उन अरिहंत को वन्दना करना, सत्कार करना, नमन करना और उनकी पर्युपासना करना यही जीवन का एक महान् आनंद है। इसलिए सब तैयार हो जावो। सबने स्नान किया, बलिकर्म किया, मंगल किया, तिलक किया और सभ्यवेष परिधान करके अपने अपने घर से बाहर आकर एक स्थानपर एकत्रित हुए। सबके हृदय श्रद्धा से परिपूर्ण थे, मन में अरिहंत देव के दर्शन करने का उल्लास था, आँखों में

P. P. Ac. Gunratansuriji M.S. Jin Gun Aaradhak Trust

आतुरता थी, भगवान् की वाणी कानों से सुनने की तीव्र उत्सुकता थी, हाथ जोडे हुए थे, पैर आगे बढने के लिए छटपटाते थे, इसप्रकार वे सब भावुक बडे सामैये के साथ (स्वागत की तैयारी के साथ) गांव के बाहर आये और अरिहंत के समवसरण को देखतेही झुक कर वंदना की। नाभी तक शरीर झुक गया और श्रद्धापूर्वक समवसरण में आकर तथा तीन प्रदक्षिणा करके योग्य स्थान पर बैठ गये। सब की आँखें भगवान् को एकटक से देख रही थीं। कान भगवान् के दिव्योपदेश को सुनने के लिए तत्पर थे। श्रद्धा से परिपूरित हृदय था। आत्मा को परमात्मपद पर पहुँचाने की भावना थी।

भगवान बोले कि "हे भाग्यशालिओं, लोक है, जीव है, अजीव है, पुण्य है, पाप है, आश्रव है, बंध है, संवर है, निर्जरा है और मोक्ष है।"

सारी जिन्दगी में और भवभ्रमण करते हुए मानो प्रथम बारही ये शब्द कर्णगोचर हुए।

ये शब्द कान में प्रवेश करते ही सब के मनरूपी मयूर नाचने लगे। जीवन में नई चेतना आई और सब को परमानन्द हो गया। भवभ्रमण का चक्कर सफल हुआ ऐसा अनुभव हुआ। कितने ही भावुक प्रव्रज्या अंगीकार करने को तैयार हुए! तो किसीने सम्यक्त्व पूर्वक बारह व्रतों का स्वीकार किये। और पुनः पुनः भगवान को वंदना की तथा अपने स्थानपर जाने के लिए खडे हुए। उल्लसित हुए भाव मनसे सब एक साथ एक स्वर से इस प्रकार बोले:—

P. P. Ac. Gunratansuriji M.S. Jin Gun Aaradhak Trust

" अरिहंत देवों का शरण हमको प्राप्त हो ।
सिद्ध भगवंतों का शरण हमको प्राप्त हो ।
जैन धर्मका शरण हमको प्राप्त हो ।
और मुनि भगवंतोका शरण हमको प्राप्त हो ।"
और बाद में सब अपने अपने घर चले गये ।

पाप कर्म के फलों को भुगतने की चरमसीमा जैसे नारकों में तथा निगोद स्थित जीवों में है, वैसे व्यवहार दृष्टिसे ६४ हजार स्त्रियों के मालिक, षट्खंड राज्य के धनी चक्रवर्ती और ३२ हजार स्त्रियों के मालिक तथा तीन खंड के राजा वासुदेव भी पुण्यशालि है, फिरभी उन का पुण्य सीमातीत नहीं है, क्योंकि संपूर्ण जीवन राज्यों की खटपट में, स्त्रियों के साथ रंग राग में पूर्ण हो जाता है, और जीवन लीला को समाप्त कर पाताल लोक को प्राप्त करते हैं। देव तथा देवेंद्रो को भी " क्षीणे पुण्ये मर्त्ये लोकं विशन्ति " इस उक्ति के अनुसार पुनः गर्भ वेदना भुगतने के अतिरिक्त छुटकारा नहीं है।

अन्य देवांगनाओं का हरण, अपना पराधीन जीवन और मृत्यु के समय का दुःख-वेदन आदि दुःखों की वेदना देवलोक में भी है। मनुष्य जन्म–जरा–व्याधि–उपाधि के दुःखों को प्रत्यक्ष अनुभव करता है। इस प्रकार संसारवर्ती जीवात्मा चाहे जितनी पुण्यशाली होगी तो भी उसका पुण्य अधूरा है, सीमित है,

" संसारात्मा सदा दुःखी जन्म मरण शोकभाक् "

जब दुःखजनक कर्मों का नाश करने के बाद ही केवलज्ञान प्राप्त होता है। और तीर्थंकर पद की प्राप्ति होती है।

ऐसे तीर्थंकर परमात्मा उत्कृष्टतम, पुण्यशाली होनेके कारण आधि-व्याधि तथा उपाधि से सर्वथा मुक्त है इसलिए पुण्य कर्मों के फलों की चरमसीमा तीर्थंकर देवों में प्रत्यक्ष होती है।

जब मर्यादातीत कारुणिक भावना जीवन में उद्भूत होती है, तब तीर्थंकर नाम कर्म की निकाचना होती है और वे महा-पुरुष लाखों–करोडों–तथा संख्य और असंख्य जीवों के मित्र बन जाते हैं और सब की भलाई में तथा सबों को पाप में से मुक्त कराने में तत्पर रहते हैं। केवल ज्ञान की प्राप्ति होने के बाद पूर्वोपार्जित तीर्थंकर नाम कर्म का उदय होता है और इन्द्रों का आसन भी चलायमान होता है। खुदके अवधि-ज्ञान से तीर्थंकरों का ज्ञान कल्याणक समझकर ६४ इंद्र खुद के परिवारवाले देव तथा देवियों को साथमें लेकर वहाँ आते हैं, और समवसरण की रचना करते हैं। उसमें बैठकर तीर्थंकर देव सब जीवों के लिए परम हितकारी ऐसे संघ की स्थापना करते हैं। उनमें सबसे पहले गणधर–गणपति–गणेश जो प्रभु के मुख्य शिष्य-अंतेवासी होते हैं, जिसका संयम मांगल्यप्रद होने के कारण ही सब कोई के लिए मंगल करनेवाले बनते हैं।

महावीर स्वामी के गणधरों की संख्या ११ थी, पौद्गलिक सूंड तो हाथी जैसे जानवर को होती है। जब ज्ञानरूपी सूंड के मालिक गणधर भगवान् होने से चतुर्विध संघ के शिरोमणी बनकर संपूर्ण संघ को मोक्ष के मार्ग के प्रति प्रस्थान करानेवाले तथा सबके भाव मंगल जैसे गणधर भगवंत होते हैं।

उन गणधरों में इन्द्रभूति (गौतम स्वामी) सबसे बडे

P. P. Ac. Gunratansuriji M.S. Jin Gun Aaradhak Trust

गणधर थे जो भगवान महावीर स्वामी के मुख्य अन्तेवासी थे।

पूर्ण दयालु होनेसे अबतक सब प्रश्न भगवान महावीर स्वामी को केवल लोक कल्याण की भावना से पूछे थे। अपनी जिज्ञासा के हेतु तथा जीवमात्र को यह जानकारी मिले कि जैन शासन क्या है? और उसका आदर कैसे करे तथा अपने जीवन का ध्येय कैसे पूर्ण करें, इस आशय को लेकर प्रश्न पूछे हैं। चराचर सृष्टि के कल्याणेच्छु भगवान महावीर स्वामीने उनका उत्तर दिया है।

देवेन्द्र संबंधी प्रश्न

तीसरे शतक के इस पहले उद्देश में खासकर देवलोक संबंधी वर्णन है। अर्थात् पृथक् पृथक् देवलोक के इन्द्र, सामानिक देव वगैरह प्रश्नोत्तर हैं। मोका नगरी के नंदन नाम के चैत्य में ये प्रश्नोत्तर हुए थे। दूसरे गणधर अग्निभूति ने उनमें से कितने ही प्रश्न भगवान से किये हैं। तथा तीसरे गणधर वायुभूति ने भी कितने ही प्रश्न किये हैं।

चमर को उद्देश कर प्रश्न पूछने शुरू किये हैं। चमरेन्द्र अर्थात् 'चमर' की ऋद्धि, कांति, बल, कीर्ति, सुख प्रभाव और विकुर्वणादि शक्ति संबंधी प्रश्न भगवान से पूछे हैं भगवान् ने उनके संबंध में वर्णन किया है।

तत्पश्चात् चमर के सामानिक देव, त्रायस्त्रिंशक देव और चमरकी पट्टरानियाँ संबंधी प्रश्न हैं।

यहाँ यह विशेषता है कि–अग्निभूतिने भगवान से इसका जवाब सुनने के पश्चात् उन्होंने वायुभूति से कहा है। वायुभूति

P. P. Ac. Gunratansuriji M.S. Jin Gun Aaradhak Trust

को इसपर पूर्ण रूपसे श्रद्धा नहीं हुई तब उन्होंने स्वयं भगवान् से पूछकर उत्तर सुने तव उसको पूरा विश्वास हुआ।

तत्पश्चात तीसरे गणधर वायुभूति ने विरोच नेन्द्र, नागकुमार, इन्द्र धरण, स्तनित कुमार, वानव्यंतर और ज्योतिष्क संबंधी प्रश्न किये हैं।

देव संबंधी इन प्रश्नों में दक्षिण दिशा के इन्द्रों के लिए अग्निभूतिने प्रश्न किये हैं। जबकि उत्तर दिशा के इन्द्रों के लिए वायुभूति ने प्रश्न पूछे है।

अग्निभूति द्वारा शकेन्द्र संबंधी ऊपर की बाबतों के प्रश्न पूछने के बाद भगवान के शिष्य तिष्यक, जिन्होंने छठ छठ की तपस्यापूर्वक आत्मा को भावित करते हुए आठ वर्ष तक साधुपने का पालन किया। मासिक संलेखनापूर्वक आत्मा का संशोधनकर साठ टंक का अनशन करके काल करके (मृत्यु होने के बाद) सौधर्म कल्प में देवेन्द्र के सामानिक देवरूप में उत्पन्न हुए। उनकी ऋद्धि और विकुर्वणा की शक्ति वगैरह संबंधी प्रश्न पूछे हैं। यह एकही नहीं परंतु बाकी के सामानिक देव, इशानेन्द्र आदि। भगवान के शिष्य कुरुदत्तपुत्र, जिन्होंने निरंतर अट्ठम अट्ठम के पारणे में आंविल-तपसे आत्मा को भावित करते हुए आतापना लेते हुए छः मास साधुपना पालकर पंद्रह दिवस की संलेखना से आत्मा को संयोजकर, तीस टाईम अनशनका पालनकर समाधिपूर्वक काल करके ईशान कल्प में ईशानेन्द्र के सामानिक देवरुप में उत्पन्न हुए थे। उनके संबंधी प्रश्न हुए हैं।

P. P. Ac. Gunratansuriji M.S. Jin Gun Aaradhak Trust

इसप्रकार सनत्कुमार सामानिकदेव, त्रायस्त्रिंशक देव, लोकपाल, और पट्टरानियाँ इसी अनुसार माहेंद्र, ब्रह्मलोक, लांतक, महाशुक्र, सहस्रार, प्राणत और अच्युत के देवों की विकुर्वणा शक्ति संबंधी वर्णन है। ☀ ३८

☀ ३८ तीसरे शतक के पहिले उद्देशे के प्रश्नकर्ता 'अग्नि भूति' नाम के दूसरे गणधर हैं, जिन्होंने मगधदेश के "गोवर" गांव में गौतम गोत्रीय श्री वसुभूति ब्राह्मण के वहाँ पृथ्वीदेवी के कुक्षि से कृतिका नक्षत्र में जन्म लिया था। वेद, वेदांत आदि १४ विद्याओं के पारगामी होने के साथ ५०० शिष्यों के गुरु थे। वे एक दिन सोमिल नाम के विप्र द्वारा आरंभ किये हुए बड़े यज्ञ में पधारे थे। उस समय भगवान महावीर स्वामी को केवल ज्ञान की प्राप्ति हो जाने के कारण देवों द्वारा रचित समवसरण में विराजित भगवान् महावीर स्वामी को पराजित करने के लिए (उनके भाई) इन्द्रभूति गये थे। किन्तु हुआ इसके विपरित। अर्थात् इन्द्रभूति ने महावीर स्वामी की शरण लेना स्वीकार किया। यह बात सुनकर अग्निभूमि भी भगवान के पास आये और शंका समाधान करने के बाद वे भी भ. महावीर के अन्तेवासी न गये। उस समय उनकी उम्र ४६ वर्ष की थी, और १२ वर्ष छद्मवस्था रहकर जन्म से ५८ वे वर्ष में केवल ज्ञान प्राप्त किया। १६ वर्ष तक केवली पर्याय में रहे और ७४ वर्ष की आयुष्य पूर्णकर मोक्ष गये।

वे अग्निभूति गणधर द्वारा भवनपति के दस भेदों में से असुरकुमारों के इन्द्र दक्षिणाधिपति चमरेन्द्र की ऋद्धि आदि के लिए पूछे गये प्रश्न के उत्तर में भगवान महावीर स्वामी इसप्रकार जवाब देते हैं।

वे चमरेन्द्र बड़ी ऋद्धिवाले हैं। ३४ लाख भवनवासी देवताओंपर, ६४ हजार सामानिक देवोंपर ३३ त्रायस्त्रिंशक देवोंपर, चार लोकपाल, पांच पट्टराणी, तीन पर्षदा, सात सेना, सात सेनापति, दो लाख छप्पन्न हजार आत्म रक्षक देव तथा दूसरे भी अनेक देव तथा देवियोंपर भी उनका प्रभाव

P. P. Ac. Gunratansuriji M.S. Jin Gun Aaradhak Trust

है। काकन्दी नगरी में ३३ श्रमणोपासक तत्त्वज्ञ थे। जो चमरेन्द्र के त्रायस्त्रिंशक देव हुए है। विकुर्वणा के लिए वैक्रिय समुद्घात से जम्बू द्वीप को घेर सकते हैं। इस द्वीप के मेरु पर्वत की दक्षिण दिशा में १७८००० योजन प्रमाण के मध्य में असुरकुमार देव तथा देवियों के ३४ लाख भवन हैं। जो बाहर से गोल तथा अन्दरसे चौरस है। अत्यन्त सुंदर, स्वच्छ पुष्पों से सुसज्जित लींपे हुए, सफेदी किये हुए, धूप से सुगंधित कान्तियुक्त उनके आवास हैं।

इस इन्द्रके सामानिक देवों में भी इतनी शक्ति है कि पूरे जम्बू द्वीप के तथा तिरछे लोक के असंख्य द्वीप तथा समुद्रों का आकीर्ण कर सकते हैं। इसप्रकार त्रायस्त्रिंशक देवों की शक्ति भी जाननी चाहिए।

लोकपाल देवों की तथा उनकी पट्टरानियों के लिए भी जानना चाहिए। वैक्रिय समुद्घात में वैक्रिय पुदगल ही काम आते हैं। तब वज्र, वैडुर्य, लोहिताक्ष, मसारगल्ला वगैरह रत्न औदारिक होते हैं। वे वैक्रिय समुद्घात में किसप्रकार काम आते हैं? टीकाकार इस बात का निर्णय देते हैं कि वैक्रिय समुद्घात में जो पुद्गल लिए जाते है वे रत्नों के जैसे ही स्तरवाले (उत्तम) होते हैं।

भगवान महावीर स्वामी के तीसरे गणधर गौतम गोत्र के इन्द्रभूति के छोटे भाई ४२ वें वर्ष में भगवान महावीर स्वामी के पास में दीक्षित हुए १० वर्ष छद्मस्थ अवस्था में रहते है। १८ वर्ष तक केवली पर्याय पालते हैं। और जन्म से ७० वें वर्ष मोक्ष में जाते है। वे देवाधिदेव से वैरोचनराज बलि इन्द्र की ऋद्धि के लिए प्रश्न करते हैं और भगवान कहते हैं कि उनके मेरु पर्वत की उत्तर दिशा में ३० लाख आवास हैं। ६० हजार सामानिक देव हैं। दूसरे भी अनेक देव तथा देवियोंपर उनका आधिपत्य है। विकुर्वणा शक्ति में चमरेन्द्र से भी बढ़कर है।

नागकुमारों का इन्द्र, धरणेन्द्र, बड़ी ऋद्धिवाला तथा शक्तिवाला है। दाक्षिणात्य धरणेन्द्र के आधिपत्य में ४४ लाख भवन, छः हजार सामानिक

P. P. Ac. Gunratansuriji M.S. Jin Gun Aaradhak Trust

देव, ३३ त्रायस्त्रिंशक देव, ४ लोकपाल परिवार सहित, ६ अग्रमहिषियें, ३ सभा, ७ प्रकार का सैन्य, ७ सेनापति, २४ हजार आत्मरक्षक देव, और दूसरे भी अनेक दाक्षिणात्य देव तथा देवियां हैं।

इस प्रकार दूसरे भवनपतियों के लिए भी जानना चाहिए। मेरु पर्वत की दक्षिण दिशा की तरफ रहनेवाले भवनपति के इन्द्र अनुक्रम से चरम, धरण, वेणुदेव, हरिकांत, अग्निशिख, पूर्ण, जलकांत, अमित, विलम्ब और घोष है। तब उत्तराधिपति बलि, भूतानंद, वेणुदाली, हरिसाह, अग्निमानव, वसिष्ठ, जलप्रभ, अमितवाहन, प्रभंजन तथा महाघोष है।

व्यंतरेन्द्र भी परिवार सहित जानना चाहिए। इसमें भी दाक्षिणात्य और उत्तर भाग के व्यंतरों के इन्द्र अनुक्रम से काल–महाकाल, सुरूप–प्रतिरूप, पूर्णभद्र–मणिभद्र, भीम–महाभीम, किन्नर–किंपुरुष, सत्पुरुष–महापुरुष अतिकाय–महाकाय, गीत रती–गीत यशा है। इसप्रकार ज्योतिष्कों के लिए भी जान लेना चाहिए।

देवेन्द्र शक्र के लिए ये प्रश्नोत्तर हैं। जम्बूद्वीप के मेरु पर्वत की समतल भूमि से ८०० योजन ऊपर जाने के बाद सूर्य की राजधानी है। वहाँ से ८० योजन चन्द्रदेव की राजधानी है। वहाँ से २० योजन के अंतर में ग्रह-क्षत्र और ताराओंका विमान है। वहाँ से भी असंख्य योजनपर सौधर्म वलोक है। वह धनोदधि के आधारपर है। वहाँ ३२ लाख विमान है। जो गोल त्रिकोण और समचोरस है, वर्ण काला, नीला, लोहित, हालिद्र और सफेद है। गन्ध से सुगन्धी और स्पर्श से कोमल है। उनके भव धारणीय और उत्तर वैक्रिय इसप्रकार के शरीर होते है। अंगुल के असंख्य भाग से यावत् सात हाथ तक का शरीर भवधारणीय की अपेक्षा से समझना चाहिए। जबकि अंगुल के असंख्य भाग से एक लाख योजन तक शरीर उत्तर वैक्रिय संबंधी जानना चाहिए। उसके ८४ हजार सामानिक देव, ३३ त्रायस्त्रिंशक देव, ४ लोकपाल, (सोम, यम, वरुण, कुबेर) ७ सेना और ७ सेनापति, तीन लाख छत्तीस हजार आत्मरक्षक देव, आठ पट्टरानी और सुधर्मा नाम की सभा है।

P. P. Ac. Gunratansuriji M.S. Jin Gun Aaradhak Trust

ईशानेन्द्र की उत्पत्ति

इसके पश्चात् ईशानेंद्र की दिव्यऋद्धि और उनकी उत्पत्ति का वर्णन आता है। प्रसंग के अनुसार वर्णन निम्नानुसार है:-

भगवान महावीर स्वामी मोका नगरी के नंदन चैत्य से निकलकर विहार करते हुए राजगृह में पधारते हैं। उस वक्त हाथ में शूल धारण किये हुए और बैल का वाहन रखनेवाले लोक के उत्तरार्ध के स्वामी अठाईस लाख विमान के स्वामी ईशानेन्द्र स्वच्छ वस्त्रों को पहनकर, मालासे सुसज्जित होकर, शिरपर मुकुट रखे हुए, नये सुवर्ण (सोने) के सुंदर विचित्र और चंचल कुंडलों से अपने गालों को देदीप्यमान करते हुए और दसों दिशाओं को प्रकाशित करते हुए ईशान कल्प में ईशानावतंसक विमान में देवऋद्धि का अनुभव करता हुए, आये और बन्दन कर जिस दिशा से प्रकट हुए थे उसी दिशा में चले गये।

इस वक्त गौतमने महावीर स्वामी को वंदनाकर नमन किया और भगवान से पूछा, "ईशानेन्द्र की वह दिव्य ऋद्धि कहाँ गई? और कहाँ प्रवेश कर गई।

भगवानने जवाव दिया-वह उनके शरीर में से उत्पन्न हुई और शरीर में प्रवेश कर गई। ※ ३९

※ ३९ सुधर्मा सभा में ईशान नाम के सिंहासन पर बैठे ईशानेन्द्र अपने दिव्य वैभव का आनन्द लूटता है। वह ८० हजार सामानिक देव, चार लोकपाल, आठ इन्द्राणी, सात सेनापति, तीन लाख बत्तीस हजार अंगरक्षक देव आदि दूसरे देव देवियोंपर आधिपत्य रखता है। एक समय अपने अवधि

P. P. Ac. Gunratansuriji M.S. Jin Gun Aaradhak Trust

तामली तापस और प्राणामा दीक्षा

इसके पश्चात् श्री गौतमद्वारा ईशानेन्द्र की उत्पत्ति संबंधी किये गये प्रश्न का जवाब खुब विस्तार से है। जिसका सार निम्नानुसार है :-

ताम्रलिप्ति नगरी में तामली नाम का मौर्यपुत्र (मौर्य वंशी) गृहपति रहता था। वह महत्तर धनाढ्य था। उत्तरोत्तर प्रतिदिन ऋद्धि-समृद्धि में बढता जाता था। बाद में वह वैरागी बन गया। उसने अपने सगे संबंधी और स्वजातिवाले भाईयों का अनेक

ज्ञान से इन्द्र ने भगवान महावीर स्वामी के दर्शन किये और आसन से नीचे उतरकर सात आठ कदम उस दिशा की तरफ चले, जिस दिशा में भगवान थे और उन्होंने भगवान को वन्दना की। तत्पश्चात् अपने आभियोगिक देवों को संबोधनकर आज्ञा देते हुए कहते हैं कि "मैं भगवान महावीर स्वामी की वन्दन करने के लिए जाता हूँ" तो आप भी मेरे साथ चलिए, और अपने परिवार को भी खबर भेजिए। तदनन्तर लाख योजन प्रमाण वाले विमान में बैठकर तथा नंदीश्वर दीप में उस विमान को समेटकर इन्द्र महाराज अपने परिवार के साथ राजगृहनगर में आये और भगवान को तीन प्रदक्षिणा देकर पर्युपासना की। धर्मदेशना सुनने के पश्चात् इन्द्रने अत्यन्त भक्तिभावपूर्वक भगवान से कहा कि हे प्रभो, मैं गौतम स्वामी आदि महर्षियों को नाटचविधी (नाटक) दिखलाने की इच्छा रखता हूँ। इसप्रकार कहकर इन्द्र अपने दाहिने हाथ से १०८ देवकुमारों को तथा बांये हाथ से १०८ देवकन्याओं को प्रकट करके वाद्य, नाद के साथ बत्तीस प्रकार के विविध नाटक किये। नाटक समाप्त होनेपर भगवान को वन्दना तथा नमन करके अपने स्थानपर गये। गौतम स्वामीने भगवान से पूछा कि इन्द्र महाराज की इतनी संपूर्ण ऋद्धि कहां गई ? भगवानने जवाब दिया की उनकी ऋद्धि उनके ही शरीर में प्रवेश कर गई है। शेषं स्पष्टम्।

P. P. Ac. Gunratansuriji M.S. Jin Gun Aaradhak Trust

प्रकार के पदार्थो से सत्कार-सन्मानकर अपने जेष्ठ पुत्र को कुटुम्ब का भार सौंपकर तथा स्थानपर नियुक्त करके प्रणामा नाम की दीक्षा ली। तत्पश्चात् वह छट्ठ-छट्ठ की तपस्या करता रहा और हाथ ऊंचे रखे हुए सूर्य के सन्मुख खडा रहकर आतपाना लेता है। ऊंच, नीच और मध्यम कुल में से भिक्षा लेता है। पारणे के दिन ऐसा अभिग्रह धारण करता है कि दाल और साग बिना के भात भिक्षा में लेना और भिक्षा में लाये हुए भात को पानी से इक्कीस बार धोकर फिर खाना, इसप्रकार पारणा होता था।

इस दीक्षा को प्रणामा दीक्षा इसलिए नाम दिया गया है कि-वह जिस किसी को जहांपर भी देखता जैसे-इंद्र, स्कन्द, रुद्र, शिव, कुबेर, पार्वती, चंडिका, राजा, सार्थवाह, कौआ, कुत्ता, चांडाल आदि हो उन सबको प्रणाम करता था। ऊंचे को देखकर ऊंची रीति से प्रणाम करता है इसलिए इस प्रवज्या को प्रणामा कहा है।

मौर्य पुत्र तामलीने घोर तपस्या की, शरीर को सुखादिया, तत्पश्चात् उसने दीक्षा लेने के पूर्व के तथा बाद के सब परिचितों की सम्मतिपूर्वक अपने पास की पादुका (खडाऊ) तथा कुंडी वगैरह उपकरण दूर कर दिये। ताम्रलिप्ति नगरी में ईशान कोन में आहार पानी का त्याग कर पादोपगमन नाम का अनशन किया।

इस वक्त बलिचंचा राजधानी इन्द्र और पुरोहित से रहित थी। वहाँ के निवासी-अनेक असुर-कुमार देव और देवियोंने बाल तपस्वी तामली को अवधिज्ञान से देखा। इन सबने तामली को

P. P. Ac. Gunratansuriji M.S. Jin Gun Aaradhak Trust

बलिचंचा के इन्द्र पद प्राप्ति के लिए उसके द्वारा संकल्प कराने का विचार किया। ये देव देवियें तामली के पास आये। अपनी दिव्य समृद्धि से बत्तीस प्रकार के नाटक बताये। तत्पश्चात् उसको नमन तथा वंदनाकर प्रदक्षिणा दी और बलिचंचा का इंद्र बनने के लिए उनसे प्रार्थना की और इसप्रकार का 'नियाणा' (निदान) बांधने के लिए कहा। तामलीने यह बात स्वीकार नहीं की 'वह मौन रहा। तब उन देवदेवियोंने दूसरी तथा तीसरी बार उनसे इसप्रकार की प्रार्थना की है। किन्तु तामलीने कुछ भी जवाब नहीं दिया: अंत में वे देव देवियां हार मानकर अपने देवलोक बलिचंचा में चली गई।

तत्पश्चात् तामली हजार वर्ष अपनी दीक्षा का पालनकर दो महिने संलेखनाकर फिर काल कर गये और ईशान कल्प में ईशानदेवेंद्र रूप से उत्पन्न हुए। इस वक्त ईशान देवलोक में भी इंद्र और पुरोहित का स्थान खाली था।

बलिचंचा के देवदेवियोंने ज्ञानदृष्टि से देखा कि तामली मर कर ईशान में इंद्र बन गया है और उसका शव (लाश) वहीं है, जहाँ वह मरा है। इसलिए क्रोधित बनकर वे शव के पास आये और उसके बांये पैर में डोरी बांध दी। उसके मुंह में तीन बार थूंका। यहाँ तक ही नहीं परंतु ताम्रलिप्ति नगरी में सर्वत्र उस शव को घसिटते हुए फेरा (चक्कर लगवाया) इस शरीर की खूब निंदा की। खूब तिरस्कार किया। ठोक पीटकर उसकी कदर्थना की। तत्पश्चात् उस शव को एकान्त में फेंककर चले गये।

लाश की यह हेलणा-कदर्थना-निंदा हो रही थी, यह बात

P. P. Ac. Gunratansuriji M.S. Jin Gun Aaradhak Trust

ईशान देवलोक के देवदेवियोंने अपने ज्ञान से देखी। उन्होंने ईशानेंद्र से यह बात निवेदन की। ईशानेंद्र क्रोधित हुआ। फिर उसकी भौंए टेढी हो गई और बलिचंचा राजधानी के प्रति देखा। उस वक्त अपने दिव्य प्रभाव से बलिचंचा में आग धधक उठी। आग से जलकर बलिचंचा नगरी भस्म हो गई। उस नगरी के निवासी असुरकुमार खूब भयभीत हुए। अत्यंत दुःखी हुए। त्रस्त हुए। चारों तरफ भाग दौड मच गई उनकी समझ में आया कि यह ईशानेंद्र के कोप का परिणाम है। तब सब असुरकुमारों ने ईशानेंद्र से खूब खूब प्रार्थना की। खूब खूब क्षमा मांगी। उसकी शक्ति की प्रशंसा की। तत्पश्चात् ईशानेंद्र द्वारा बलिचंचा पर फेंकी गई अपनी लेश्या वापस खींच ली।

तब से लेकर बलिचंचा के निवासी अनेक असुरकुमार देव और देवियां ईशानेंद्र का आदर, तथा उनकी सेवा वगैरह करते हैं और ईशानेंद्र की आज्ञा में सेवामें-आदेश में रहते हैं।

शक्र और ईशान की तुलना

इस ईशानेंद्र की स्थिति दो सागरोपम से कईक अधिक है और देवलोक से च्यवकर वह महाविदेह क्षेत्र में जाकर वहाँ से सिद्ध बनेगा।

शक्रेंद्र के विमान ईशान के विमान से कुछ ऊंचा है। शक्रेंद्र ईशानेंद्र के पास आने में समर्थ है। जब वह आता है तब ईशानेंद्र का आदर करता हुआ आता है। न कि अनादर करता हुआ आता है। इसीप्रकार ईशानेंद्र शक्रेंद्र के पास आता

P. P. Ac. Gunratansuriji M.S. Jin Gun Aaradhak Trust

है, तव आदर करता हुआ आता है। अनादर करता हुआ भी आ सकता है, शकेंद्र ईशानेंद्र को चारों ओर से अर्थात् सबप्रकार से देखने में समर्थ है।

इसप्रकार उपरोक्तानुसार शकेंद्र ईशानेंद्र के साथ बातचीत करने में भी समर्थ है। इन दोनों के बीच में परस्पर किसी वक्त एक दूसरे से काम पडता है। जब शक्र को कोई काम होता है, तव वह ईशानेंद्र के पास आता है। किंतु जब ईशानेंद्र के काम होता है तब शकेंद्र के पास जाता है। उनके परस्पर संबोधन करने की रीति यह है। 'हे दक्षिणलोकार्थ के स्वामी देवेंद्र देवराज शक्र।" "हे उत्तर लोकार्थ के स्वामी देवेंद्र देवराज ईशान। " इन दोनों में किसी किसी समय विवाद भी होता है। जब विवाद होता है तब वे सनत्कुमार नाम के देवेंद्र को याद करते हैं। याद करते ही वे सनत्कुमार उन दोनों देवेंद्र के पास उपस्थित हो जाते हैं। सनत्कुमारेंद्र जो कहते हैं, वे दोनों इंद्र उसको स्वीकार करते हैं।

यह सनत्कुमार इंद्र भवसिद्धिक है, सम्यग्दृष्टि है। मित संसारी है। सुलभ बोधि है, आराधक है और चरम है। वे सनत्कुमारेंद्र अनेक श्रमण और श्रमणियों, श्रावक और श्राविकाओं के हितेच्छु हैं। सुखेच्छु और पथ्येच्छु है। उनपर अनुकंपा करते हैं उनका निःश्रेयस चाहते हैं। सनत्कुमारें की स्थिति सात सागरोपम की है। आयुष्य पूरा होने के वाद महाविदेह क्षेत्र में उत्पन्न होकर सिद्ध वनेंगे। ※ ४०

※ ४० वैमानिक देवताओं संबंधी विशेष वर्णन इसप्रकार है :-

P. P. Ac. Gunratansuriji M.S. Jin Gun Aaradhak Trust

वैमानिक देवों के बारह भेद हैं:-सौधर्म, ऐशान, सनत्कुमार, माहेन्द्र ब्रह्मलोक, लांतक, महाशुक्र, सहस्त्रार, आनत, प्राणत, आरण और अच्युत ये बारह देवलोक हैं।

जिसमें सौधर्म नाम की सभा है,-उसे सौधर्म, जहाँ ईशानेन्द्र का निवास है, वह ऐशान। इसप्रकार सब समझ लेना चाहिए।

उन वैमानिक देवों की आयुष्य मर्यादा इसप्रकार है:-

बारह देवलोक के नाम	जघन्य स्थिति	उत्कृष्ट स्थिति
१ सौधर्म	१ पल्योपम	२ सागरोपम
२ ऐशान	१ ,, से अधिक	२ सागरोपम से अधिक
३ सनत्कुमार	१ सागरोपम	७ सागरोपम
४ माहेन्द्र	२ ,, से अधिक	७ सागरोपम से अधिक
५ ब्रह्मलोक	७ ,, अधिक	१० सागरोपम
६ लांतक	१० ,, से अधिक	१४ ,,
७ सहस्त्रार	१४ ,, ,,	१७ ,,
८ महाशुक्र	१७ ,, ,,	१८ ,,
९ आनत	१८ ,, ,,	२० ,,
१० प्राणत	२० ,, ,,	२० ,,
११ आरण	२० ,, ,,	२२ ,,
१२ अच्युत	२१ ,, ,,	२२ ,,

ये वैमानिक देव इतनी बाबत में ऊपर ऊपर बढ़ते जाते है। प्रभाव अचिन्त्य शक्ति को प्रभाव कहा जाता है। वह निग्रह, अनुग्रह, विक्रिया और पराभियोग आदि रूप में समझना चाहिए।

दूसरे को श्राप अथवा दंड देने की शक्ति को निग्रह कहते है।

परोपकार आदि करने की शक्ति को अनुग्रह कहते हैं। अणिमा महिमा आदि शरीर के रूपान्तर को विक्रिया कहते हैं।

P. P. Ac. Gunratansuriji M.S. Jin Gun Aaradhak Trust

दूसरे को दवाकर काम करवाना वह पराभियोग है।

यह और दूसरी भी प्रभावशक्ति नीचे से ऊपर के देवों में वढ़ती जाती है। किन्तु स्वयं मन्दाभिमानी तथा अल्प संकलेशवाले होने से उनका उपयोग बहुत ही कम होता है। पुण्य प्रभाव होने से उनका स्थान, उनकी पौद्गलिक शक्ति वगैरह सुखरुप ही होता है और आगे आगे के देवों में सुख बढ़ता है। शरीर की कान्ति भी आगे की देवों के अनुक्रम से वढ़ती है। लेश्याओं की विशुद्धि भी विशेष होती है।

दूर से किसी भी पदार्थ को और उनके विषय को ग्रहण करने में इन्द्रियों का सामर्थ्य आगे आगे वढ़ता जाता है। अवधिज्ञान का विषय भी ऊपर ऊपर के देवों में विशेष और स्पष्ट होता है। वह इसके अनुसार।

पहले और दूसरे कल्पके देव अवधिज्ञान से नीचे पहली नरक भूमि को देख सकते है। तिरछेपन से असंख्य लाख योजन तक देखते हैं। ऊपर में अपने विमान तक देखते हैं। तीसरे और चौथे कल्पके देव नीचे दूसरी नरक तक और तिरछे असंख्यात लाख योजन तक और ऊपर में अपने विमान तक देखते है। पांचवे और छट्टे कल्पके देव तीसरी नरक तक देखते हैं। सातवे और आठवे कल्पके देव चौथी नरक तक देखते हैं। नवमें, दसवें, ग्यारहवे और बारहवे कल्पके देव पांचवी नरक तक देखते हैं। इससे मालूम होता है कि अपने अपने से ऊपर ऊपर के देवों में आयुष्य कर्म की स्थिति, प्रभाव, शरीर कान्ति लेश्याएं, विषय ग्रहण की शक्ति और अवधि ज्ञान की मर्यादा अधिक अधिक होती है। परन्तु गति के विषय में, शरीरकी ऊंचाई आदि में, परिग्रह के विषय में तथा अभिमान में, उच्छ्वास में, आहार वेदना, उपपात और अनुभव के विषय में तो ऊपर ऊपर के देव हीन होते हैं। वे निम्नानुसार:—

गति-दो सागरोपम की जघन्य स्थितिवाले देव सातवी नरकभूमि तक जा सकते हैं। पूर्व दिशाओं में असंख्य कोटी योजन तक तिरछी गति करते

करते हैं । दो सागरोपम से अधिक जघन्य स्थिति के देवों की घटती जावे, तृतीय भूमि तक ही वे जा सकते हैं । पूर्व भव के स्नेह संबंध को लेकर वे गति करते हैं । भावी में भी अपना उद्धार रावण के हाथहोगा । ऐसा जानने से स्नेह सागर में डुबे हुए वे सीतेद्र (अच्युतेन्द्र) चौथी नरक भूमि में जाकर रावण तथा लक्ष्मण को प्रतिबोध देकर वैर मुक्त बनाते है ।

गति के विषय में इतनी शक्ति धारण करते हुए भी उनको गति करने के विषय में रस नहीं हैं । क्योंकि वहाँ मोह कर्म की तीव्रता नहीं है ।

शरीर-पहले और दूसरे देवलोक के देवों के शरीर सात हाथ प्रमाण होते हैं । तीसरे चौथे कल्पके देवों के शरीर छः हाथ के होते हैं । पांचवे छठे कल्पके देवों का शरीर पांच हाथ का होता है । सातवे आठवे कल्प के देवों का शरीर चार हाथ का होता है । नौ, दस, ग्यारह और बारहवे कल्प के देवों का शरीर तीन हाथ का होता है ।

परिग्रह-विमानो की संख्या का परिग्रह अगले अगले देवों के लिए कम होता जाता है । जैसे-" पहले स्वर्ग में लाख बत्तीस, दूसरे में लाख अट्ठावीस कहे हैं । तीसरे में बारह लाख, इसप्रकार आगे भी समझना चाहिए ।

परिग्रह की वृद्धि तामसवृत्ति को बढ़ानेवाली है और परिग्रह की अल्पता समतावृतिको उत्पन्न करती है ।

अभिमान-यद्यपि वैमानिक देवों के पास परिवार, अचिन्त्य शक्ति, इन्द्रिय तथा अवधिज्ञान का विषय क्षेत्र ऐश्वर्य आदि पदार्थ उत्तरोत्तर बढ़ते हैं । तथापि इस संबंध में उनको अभिमान-गर्व नहीं होता है और ऊपर ऊपर के देवों में तो गर्व कम होता जाता है । क्योंकि अभिमान के मूल कारण मोह कर्म होता है और मोहकर्म में 'वेदकर्म' यद्यपि 'नोकर्म' कहा जाता है तो भी कषायों की उत्पत्ति में नोकर्म की मुख्यता होती है । ऐसी स्थिति में उत्तरोत्तर वेदकर्म जिसको कम होता गया है उसको अभिमान की मात्रा स्वभावतः (घटती) कम होती जाती है ।

P. P. Ac. Gunratansuriji M.S. Jin Gun Aaradhak Trust

दुःख मात्र को उत्पन्न करानेवाले बाह्य तथा आभ्यन्तर कारणों में वेद कर्म की भी मुख्यता हैं।

उच्छ्वास आहार सब से जघन्य स्थितिवाले देवों में श्वासोच्छ्वास सात स्तोक काल पूरा होने के बाद लिया जाता है और आहार के लिए क्रम एक दिन का अंतर है। जिन देवों की स्थिति एक पल्योपम की है। उनको एक एक दिन के बाद श्वासोच्छ्वास होता है और आहार की अभिलाषा दो दिन से नौ दिन के मध्य में होती है।

जिसकी स्थिति (आयुष्य मर्यादा) जितने सागरोपम की होती है। उतने ही पक्ष (पखवाड़े) बीतने के बाद श्वासोच्छ्वास लिया जाता है और उतने ही हजार वर्ष के बाद आहार की अभिलाषा होती हैं। जैसे-जिनकी दो सागरोपम की आयुष्य है वे देव दो पखवाड़े यानी एक माह के बाद श्वासोच्छ्वास लेंगे और आज का आहार लेने के बाद दुबारा (फिर) दो हजार वर्ष होने के बाद आहार की अभिलाषा होगी।

देवों में उत्तरोत्तर विशेषसुख होने का कारण यह है कि उनका श्वासोच्छवास और आहारभिलाष कम होता है।

"परिग्रह की माया में मस्त बने हुए, विषयवासना के चिन्तनवाले, भोग विलास की मर्यादा तोड़नेवाले को, विशेष आहार और निद्रा के मालिक को, तथा जल्दी से कार्य करनेवाले को श्वासोश्वास विशेष लेना पड़ता है। इसीलिए उनकी आयुष्य कर्म की मर्यादा कम होती है।

वेदना-देवताओंको असात वेदना प्रायः करके नहीं होती है। शायद हो तो अन्तर्मुहुर्त तक ही होती है और सातवेदना विशेष होती है। वह भी ६ महिनेतक एकसमान होती है। तत्पश्चात् अन्तर्मुहुर्त के लिए अलग हो जाती है और फिर से सात वेदना का अनुभव होता है।

उपपात-अन्यलिंगी मिथ्यादृष्टी जीवात्मा भी बारहवे देवलोक तक जा सकता हैं। जैन लिंगवाले अर्थात् द्रव्य लिंगी होते हुए भी मिथ्यादृष्टी

P. P. Ac. Gunratansuriji M.S. Jin Gun Aaradhak Trust

हो तो वह नवग्रैवयक तक जाता है । सम्यग्दृष्टि जैनलिंगधारी सर्वार्थ सिद्ध विमान तक जाता है ।

अनुभाव-देवों का विमान निरालंव है । अर्थात् आधार बिना का है । उनमें लोक स्थिति ही मुख्य कारण है । अनादिकाल से अनंतकाल तक लोक स्थिति एक समान होती है । अरिहंत देवों के पांच कल्याण को में ये देवता आते हैं और अत्यन्त संवेग-वैराग्यपूर्वक अरिहंतो का गुणगान, स्तुति वन्दना और पर्युपासना करते हैं ।

इसप्रकार देव उत्तरोत्तर सुखी होते हैं:—क्योंकि मनुष्य लोक में जिस भाग्यशालीयों का जीवन शुद्ध, पवित्र, कषाय रहित, पूर्ण ब्रह्मचारी, गृहस्था श्रम की मर्यादा का ब्रह्मचर्य धर्म अर्थात् एकपत्नी व्रत, एक पति व्रत, स्वदारा संतोषी व्रत, संसार की खटपट से दूर रहने की ही भावना, माया प्रपंच से हजारों कोस दूर रहनेवाले, क्लेश कलह के वातावरण में मौन रहने वाले, अनादिकाल से पड़ी हुई बुरी आदतों के कारण की गई हिंसा, असत्य, चौर्य, मैथुन, परिग्रह वगैरह बड़े पापों को भी जिसने अहिंसा धर्म से, सत्य धर्म से, अचौर्य व्रत से, ब्रह्मचर्य सेवन से और परिग्रह परिमाण व्रत से अथवा भाग्य को लेकर जो मिला उसी से संतोष मानकर जिसने अपने जीवन को पूर्ण किया है अथवा ज्ञान वैराग्यपूर्वक अपने जीवन को पुरुषार्थ शक्ति से संयमित करने के लिए समर्थ बने हैं । वे ही वैमानिक देवलोक प्राप्त कर सकते हैं । तब निश्चित है कि पहले भव के संस्कार दूसरे भव में उतर आते है । इस कारण से वैमानिक देव विषय वासना से दूर अथवा थोडे में ही संतोष माननेवाले और तृप्त होने से उनके आत्म परिणाम क्लिष्ट और गंदे नहीं होते है । इसलिए शक्ति पूर्ण होनेपर भी उनको अभिमान, और मोह, माया नहीं सता सकती है । इसलिए ही उसके उपयोग में भी उनको रस नहीं होता है ।

वैमानिक देवों की अनादिकाल से ऐसी मर्यादा है कि पहले और दूसरे देवलोक तक ही देवीयों की उत्पत्ति होती है । तब ऊपर के देवलोको में

P. P. Ac. Gunratansuriji M.S. Jin Gun Aaradhak Trust

देवियों की उत्पत्ति ही नहीं। इसकारण से ही उनका जीवन पवित्र, हृदय में परमशांति, आँख में निर्विकारिता तथा दिल और दिमाग भी ठंडा होता है।

जब जीवन में विषय वासना कम होती है। अथवा जीवन संयमित होता है तभी ऐसा होता है। क्योंकि कारणों की शुद्धता होती है तभी कार्य की भी शुद्धता होती है। वृत्ति (मानसिक विचार धारा) जिसकी पवित्र होती है उसकी प्रवृत्ति भी शीतल, गंभीर, परोपकारपूर्ण और जीव मात्र के प्रति कल्याणकारिणी होती है। पहले और दूसरे कल्प में देवियों की विद्यमानता है। इसलिए वे देव और देवियाँ मनुष्य की तरफ ही विषय वासना का अनुभव करते ही है। तो भी दोनों देवलोकों में उससे ऊपर के देवों को विषयवासना के लिए अत्युत्कट राग, ताकिदी और मर्यादा भंग नहीं होता है उससे उनके जीवन में सुख, शांति, समता और समाधि विशेष रुप से होती है।

तीसरे और चौथे देवलोक के देवों को मनुष्य की तरह विषय सेवन नहीं होता है। फिर भी जब उसको मैथुन कर्म की इच्छा होती है तब पहले ौर दूसरे देवलोक की अपरिगृहीता देवियें श्रृंगार करके वहाँ उपस्थित ोती है और उनके स्पर्शमात्र से ही वे देव संतुष्ट हो जाते हैं और विषय-ासना से तृप्त होकर संतोषी बनते है।

पांचवे और छठे देवलोक के देव, देवियों का रूप, रंग और श्रृंगार तथा उनके हावभाव देखकर विषयवासना से तृप्त हो जाते है।

सातवे और आठवे देवलोक के देव दूसरी देवियों के मधुर शब्द सुनने मात्र से ही तृप्त हो जाते है और परम संतोष को धारण करते है।

जब नवमें, दसमें, ग्यारहवें और बारहवें देवलोक के देवों के मन में विषय वासना की इच्छा होती है। तब मानसिक भावना से ही उनको विषयवासनाकी तृप्ति हो जाती है तभी तो वे देव अनुपम सुख में मस्त रहनेवाले

P. P. Ac. Gunratansuriji M.S. Jin Gun Aaradhak Trust

होते है । हमारे जीवन की यही बड़ी से वड़ी कमजोरी है, बुद्धिभ्रमता है, मिथ्याज्ञान की चमत्कारिता है । तथा इन्द्रियों की गुलामी मन की कमजोरी का कारण है । जिससे अपने रोम रोम में खून (रक्त) की बूंद बूंद में विषय सुख की छटपटी है । मैथुन करने की लालसा है, तथा विषय सुख के सिवाय उससे विशेष कोई सुख है ही नहीं । ऐसी हमारी कल्पना है । उससे अनंत सुख का मालिक हमारी आत्मा इतनी विशेष कमजोर वन जाती है कि मैं सव छोड़ने में समर्थ हूँ । किन्तु मुझसे विषयवासना नहीं छूट सकती इसप्रकार की आत्मिक कमजोरी के कारण यह है हम वगैर धर्मकर्म के रहते हैं, जभी तो दिल और दिमाग में उष्णता रहती है, आँखो में खरावी रहती है । इसलिए ही गृहस्थाश्रम में दिवाली के दीपक प्रकट नहीं करा सके । जब अनंतज्ञानी अपने ज्ञान के अनुभव से इसप्रकार कहते है कि विषयवासना के सुख से स्वाध्याय, जप, ध्यान, एकाग्रता द्वारा प्राप्त हुआ सुख अनंतगुण विशेष है ।

विषयवासना में भयंकर दुःख है । उनका त्याग महान सुख देनेवाला है ।

स्त्रियों का सहवास और स्त्रियों के लिए पुरुषों का सहवास वड़ी वेदना है । जबकि उनका त्याग अनंत सुख देता है ।

संसार की माया–परिग्रहता अनंत दुःखो को देती है । किन्तु उनका त्याग अनंत सुखदाई होता है । कौनसा मार्ग श्रेष्ठ ? इसके निर्णयार्थ ही यह मनुष्य अवतार है । इसलिए मोक्ष के द्वार के समान और जंक्शन के जैसा यह अवतार प्राप्तकर यदि भूल गये तो लाखों करोंड़ों अवतार बिगड़े वगैर नहीं रहेंगे और ऐसा होने के पहले ही यदि सावधान हो गये तो अनंत सुखों की प्राप्ति हुए बिना नहीं रहती । वैमानिक देव इसीलिए सुखी हैं । जिनके वारे में जानकारी अपन पहले प्राप्त कर चुके है ।

॥ पहला उद्देशा समाप्त ॥

असुरकुमारों की गति

इस प्रकरण में भी देवताओ के संबंध में हकीकत है। असुरों का स्थान, असुरों का गमन असुरों के देवो द्वारा दी गई सजा। तत्पश्चात् चमर की हकीकत आती है। जिसमें चमर की उत्पत्ति, उसकी दीक्षा और चमरपन में उत्पन्न होने के पश्चात् शक्र और चमर के बीच में हुए युद्ध का खूब विस्तार से वर्णन है। इस सबका सार निम्नानुसार है :-

असुरकुमार एक लाख अस्सी हजार योजन की मोटाईवाली रत्नप्रभा पृथ्वी के १७८००० योजन के बीच के हिस्से में रहते हैं। वे असुरकुमार अपने स्थान से नीचे सातवी पृथ्वी तक जा सकते हैं। परंतु वे वहाँ तक गये नहीं हैं, न तो जाते है और जायेंगे भी नहीं। वे तीसरी पृथ्वी तक गये हैं, जाते हैं और जाएंगे भी सही और वहाँ अपने पुराने शत्रु को दुःख देने जाते हैं या पुराने मित्र को सुख देने जाते है।

असुरकुमार तिरछा असंख्य द्वीप समुद्र तक जाने का सामर्थ रखते है। किन्तु गये हैं, जाते हैं और जाएंगे तो नंदीश्वरदीप तक ही। इसीप्रकार वे ऊँचे, अच्युत देवलोक तक जाने का सामर्थ्य रखते है। परंतु गये है, जाते है और जाएंगे तो सौधर्म कल्पतक

P. P. Ac. Gunratansuriji M.S. Jin Gun Aaradhak Trust

वे असुर वहाँ के आत्मरक्षक देवों को त्रास पैदा करते है। उनके रत्नों को लेकर दौड जाते है। रत्नो को लेने के बाद वे वैमानिक द्वारा खूब तकलीफ भुगतते है। ये असुरकुमार यदि ऊपर के देवों की अप्सराएं उनको स्वामी तरीके स्वीकार करें और उनका आदर करे तो वे वहाँ रही हुई अप्सराओं के साथ दिव्य और भोगने योग्य भोगो को भुगत सकते है। ये असुरकुमार अनंत उत्सर्पिणी और अनंत अवसर्पिणी बीत जाने के पश्चात् लोक में आश्चर्य प्राप्त करने वाले ये भाव "असुरकुमारों का ऊँचा जाना" होता है और जो बडी ऋद्धिवाले होते है वे उनसे भी ऊपर जाते हैं।

ये असुरकुमार देव अरिहंतो का, अरिहंत के चैत्यों का और भावितात्मा साधुओं का आश्रय लेकर ऊँचे सौधर्म कल्पतक जाते हैं। जिसप्रकार की, शबर, बब्बर, ढंकण, भुतुअ, पण्ह और पुलिंद जाति के लोग, जंगल, खड्डा, जलदुर्ग, स्थलदुर्ग, गुफा, और वृक्षों से व्याप्त हुए भाग का और पर्वतों का आश्रय लेकर किसी बडे योद्धा की सेना को हाथी या घोडों की सेना अथवा धनुषधारी की सेना को हरा सकते है।

तत्पश्चात् चमरेन्द्र की उत्पत्ति और शक्र तथा चमरेन्द्र का युद्ध संबंधी वर्णन आता हैं। जिसका सार निम्नानुसार है:–

पूरण तपस्वी

भारतवर्ष के विंध्याचल की तलहटी में वेभेल नाम का संनिवेश था। वहाँ पूरण नाम का गृहस्थ रहता था। वह वैरागी बनकर चार खानेवाला लकडी का पात्र लेकर शिर मुंडाकर 'दानामा'

P. P. Ac. Gunratansuriji M.S. Jin Gun Aaradhak Trust

नाम की दीक्षा से दीक्षित हुआ। बेभेल में वह ऊंच, नीच और मध्यम कुलों में भिक्षाटन करता है। पहली बार वह जो खाना प्राप्त करता है, उसे रास्ते में पथिक को दे देता है। दूसरी बार जो खाना मिलता है, उसे कौए और कबूतरों को खिला देता है। तीसरी बार खाने में जो मिलता है उसे मछलियों और कछुओं को खिला देता है और चौथी बार जो खाना मिलता है, उसे स्वयं खाता है। इसप्रकार बचपन में तपस्या करता हुआ अंत में खुद की वस्तुएं चार खानेवाला पात्र, कुंडी, खडाऊ आदि एकान्त में रखकर बेभेल संन्निवेश के अग्निकोण में अर्ध निर्वतक मंडल का आलेखन कर पादोपगमन नाम का अनशन करता हुआ देवगत हुआ।

इस वक्त भगवान महावीर स्वामी छद्मस्थावस्था में थे। दीक्षा अंगीकार किये ग्यारह वर्ष हुए थे। भगवान छठ्ठ छठ्ठ की तपस्या करते हुए विचरते थे। वे सुसुमापुर नगर के अशोक वन के खंड में पृथ्वीशीला पट्टकपर पधारकर अट्ठम की तपस्या करके ध्यानस्थ अवस्था में एक रात की बडी प्रतिमा स्वीकार कर विराजित हुए।

चमर और इन्द्र

वह पुरण मरकर चमरचंचा राजधानी में इन्द्र स्वरुप में उत्पन्न हुआ। क्योंकि इस वक्त चमरचंचा में इन्द्र तथा पुरोहितके पद को कोई सुशोभित नहीं करता था। वहाँ उत्पन्न होने के पश्चात् उन्होंने अवधिज्ञान से सौधर्म कल्प में रहे हुए शक्र (इन्द्र) को देखा। खुद की अपेक्षा शक्र की विशेष रूप से ऋद्धि समृद्धि और सत्ता आदि देखकर इस चमरेन्द्र को ईर्ष्या हुई और

P. P. Ac. Gunratansuriji M.S. Jin Gun Aaradhak Trust

क्रोध भी हुआ। उन्होंने खुद के सामानिक देवों को एकत्रित कर अपना भाव व्यक्त किया। बाद में चमरेन्द्र ने निश्चय किया कि शक्रेन्द्र को प्रभुत्व (वैभव) से भ्रष्ट कर देना। वह भगवान महावीर स्वामी की सेवा में उपस्थित हुआ। उसके पास उस समय परिधरत्न नाम का हथियार था। वह यह कहकर वहाँ से विदा हुआ कि भगवान का आश्रय लेकर मैं शक्र को उसकी शोभा से भ्रष्ट करना चाहता हूँ। एक लाख योजन का शरीर बनाकर भयंकर उपद्रव मचाता हुआ वह चला और सबसे पहले उसने वाणव्यंतर देवों को सताना शुरु किया। ज्योतिष्क देवों के दो भाग कर डाले। आत्मरक्षक देवों को भगा दिये। इसप्रकार उपद्रव करता हुआ वह अपने परिधरत्न नाम के शस्त्र को घुमाता हुआ सौधर्म कल्प के सौधर्मावतसक विमान में सौधर्म सभा में आया। उसने खुद के परिधरत्न से इन्द्रासन को तीन बार कूटा तत्पश्चात् उसने शक्र को चुनौती दी। शक्र की इन्द्राणियो को चुनौती दी की, कि तुम मेरी आधीनता स्वीकार करो। उसने कठोरातिकठोर वचन कहे। इसप्रकार चमर का तूफान देखकर शक्र क्रोध के मारे खूब लाल पिलें हुए। उसने जलते हुए और तड्-तड् शब्द करते हुए हजारो अंगारो को बिखरते हुए विशेष वेगवाले भयंकर वज्र चमर की तरफ फेंका। चमर आगे और वज्र उसके पीछे पीछे। चमरेन्द्र ने दौडकर भगवान महावीर की शरण ली। "भगवान, आप मुझे अपनी शरण में लीजीए।" ऐसा कहकर उसने भगवान के पैर पकड लिये। शक्र ने विचार किया की, कि चमर किसी अरिहंत, अरिहंत के चैत्य या अणगार का आश्रय लिये बिना सुरक्षित नहीं रह सकता। अवधिज्ञान के उपयोग से देखा

P. P. Ac. Gunratansuriji M.S. Jin Gun Aaradhak Trust

तो मालूम हुआ। ओ हो! उसने तो भगवान महावीर का आश्रय लिया है। इस कारण से उसे अरिहंत की आशातना का डर लगा। वह एकदम (तात्काल) वज्र के पीछे दौडा और वज्र को पकड लिया। जिस वक्त शक्र ने वज्र लिया उस वक्त वह इतने वेग से दौडा कि हवा से भगवान के केशाग्र हिलने लग गये। शक्रने वज्र लेकर तीन बार भगवान की प्रदक्षिणा की। उसने भगवान से क्षमा याचना की और चमर ने आपका आश्रय लेकर। जो उपद्रव मचाया इससे मुझे वज्र को छोडना पडा वहातक की हकीकत निवेंदन की।

वहाँ से शक्र उत्तर पूर्व के दिग्भाग में गया और तीन बार बायां पैर पछाडकर चमर से कहा, " चमर, श्रमण भगवान महावीर स्वामी के प्रभाव से तूं बच गया है। अब मुझ से जरा भी डर नहीं हैं। इसप्रकार कहकर जिस दिशा से आया था। वह उस दिशा में चला गया।

उपरोक्त चमर और शक्र की कथा के पश्चात् श्री गौतम वामी ने जो प्रश्न किये है और भगवान ने जो उत्तर दिये हैं। इस का सार यह है:-

देव में ऐसी शक्ति है कि पहले दूर किये गये पुद्गलो को उनके पीछे जाकर उनको पुनः ग्रहण कर सकता है। इसका कारण यह है कि जब पुद्गल दूर किये जाते हैं तब शुरु में ही उनकी शीघ्रगति होती है।

बाद में वे मंदगतिवाले हो जाते है। जब देव की गति तो एक समान ही शीघ्र होती है। उस से वह पकड में आ

जाता है। इसप्रकार की गति से शक्र चमर को पकडने के प्रयत्न में था किंतु पकडा नहीं जा सका। इसका कारण यह है कि असुरकुमार नीचे जाने में बहुत ही शीघ्र गतिवाले होते हैं और ऊपर जाने में मंदगतीवाले होते हैं। जब वैमानिक देवों को नीचे जाने में अधिक समय लगता है और ऊपर जाने में कम समय लगता है। इसीप्रकार शक्र के वज्रको नीचे जाने में कम समय लगता है।

शक्रेंद्र एक समय में सबसे थोडा भाग नीचे जाता है। उसकी अपेक्षा तिरछा संख्येय भाग जाता है और ऊपर भी संख्येय भाग जाता है।

चमर एक समय में सबसे थोडा भाग ऊपर जाता है। उसकी अपेक्षा तिरछा संख्येय भाग जाता है और नीचे भी संख्येय भाग जातहै। सबका सारांश यह है कि-

शक्र का ऊपर जाने का काल और चमर का नीचे जाने का काल ये दोनों समान हैं और सबसे थोडा हैं। शक्र का नीचे आने का काल और वज्र का ऊपर जाने का काल ये दोनों समान हैं और संख्येयगणा हैं। चमर का ऊंचे जाने का काल और वज्र का नीचे आनेका काल ये दोनो समान और विशेषाधिक है।

हमने उपर देखा है कि चमरेंद्र केवल महावीर स्वामी के आश्रय से बच गया। किंतु उसने खुद ने जो सोचा था वह पूर्ण नहीं हुआ, वह शक्र द्वारा अपमानित हुआ, चमर चंचा राजधानी में सुधर्मा सभा में उदासीन भावसे सिंहासनपर बैठ अपने कृत्य के लिए पश्चाताप कर रहा है। सामानिक देवों द्वारा इस

P. P. Ac. Gunratansuriji M.S. Jin Gun Aaradhak Trust

उदासीनता का कारण पूछने पर उसने सारी हकीकत कही और अंत में यह भी कहा कि चलो, हम महावीर स्वामी के पास जाकर क्षमा मांगे। यह सब निवेदन करे, फिर चौसठ हजार सामानिक देवों के साथ वह महावीर स्वामी के पास आता है और निवेदन करता है कि, हे भगवान्, मैं इन्द्र को उसके पदसे भ्रष्ट करना चाहताथा किन्तु जब उसने अपना वज्र मुज पर फेंका तब मैंने अपनी इच्छा से आपका आश्रय लिया और आपका आश्रय लेने से मैं बच गया हूँ इसलिये अब मैं आपसे क्षमा याचना करता हूँ आपका कल्याण हो। इसप्रकार क्षमायाचना करके वह ईशान कोण की तरफ चला गया।

वह चमरेन्द्र सागरोपम का आयुष्य पूरा करके महाविदेह क्षेत्र में सिद्ध होगा।

असुरकुमार देव सौधर्मकल्प तक ऊंचे जाते हैं। इसका कारण यह है कि असुरकुमारों का यह संकल्प होता है कि शक्र के पास उपस्थित हो उसकी देव ऋद्धि को देखें और जानें और वह भी हमारी देव ऋद्धि को देखें और जानें। इस कारण से वे असुरकुमार देव सौधर्म कल्प तक ऊंचे जाते हैं।

॥ दूसरा उद्देशा समाप्त ॥

P. P. Ac. Gunratansuriji M.S. Jin Gun Aaradhak Trust

क्रिया के भेद

इस प्रकरण में क्रिया, कर्म, जीव का एजन (कंपन) परिणमन, अनगार की सावधानता, अप्रमत्त की स्थिति का प्रमाण और लवणसमुद्र का ज्वार भाटे का कारण, इत्यादि विषयोंपर विवेचन है। मंडितपुत्र नाम के भगवान के छट्ठे गणधर द्वारा ये प्रश्न किये गये हैं-

क्रिया पांच प्रकार की है और प्रत्येक के दो दो भेद हैं- वे निम्नानुसार हैं-

मूल क्रिया	भेद	
१ कायिकी	१ अनुपरतकायक्रिया	२ दुष्प्रयुक्तकाय क्रिया
२ अधिकरणिकी	१ संयोजनाधिकरण	२ निर्वर्तनाधिकरण
३ प्राद्वेषिकी	१ जीव प्राद्वेषिकी	२ अजीव प्राद्वेषिकी
४ पारितापनिकी	१ स्वहस्तपारितापनिकी	२ परहस्तपारितापनिकी
५ प्राणातिपातिकी	१ स्वहस्त प्राणातिप्रात क्रिया	२ परहस्त प्राणातिपात क्रिया

प्रसंगवश यहाँ इतना विवेचन करना असंगत न होगा कि कर्म के बंधन होने में कारण रूप जो चेष्टा होती है उसका नाम क्रिया है।

P. P. Ac. Gunratansuriji M.S. Jin Gun Aaradhak Trust

शरीर में अथवा शरीर द्वारा होती हुई जो क्रिया है, वह कायिकी क्रिया है। अधिकरण यानी शस्त्र रूप चक्र, तलवार आदि उसमें या उसके द्वारा हुई जो क्रिया वह अधिकरणिकी क्रिया है। प्रद्वेष यानी मत्सर, उसके निमित्त को लेकर हुई अथवा मत्सर द्वारा हुई क्रिया वह प्राद्वेषिकी क्रिया है।

किसी को सताना या दुःख देना, उसे परिताप कहते हैं। उसके कारणसे या उसके द्वारा हुई क्रिया अथवा परिताप रूप जो क्रिया, उसे पारितापनिकी और प्राणों को शरीर से अलग करना, उसे प्राणातिपात। प्राणातिपात से संबंधित जो क्रिया अथवा प्राणातिरूप जो क्रिया, उसे प्राणातिपातिकी क्रिया कहतें हैं।

प्राण दस प्रकार के कहें हैं। ५ इन्द्रिय, ३ बल, (शरीर-मन-वचनरूप) १ श्वासोच्छ्वास और १ आयुष्य।

१ अनुपरत-त्यागवत्ति के बिना प्राणी द्वारा हुई शरीर से जो क्रिया उसे अनुपरतकायिकी क्रिया कहतें है।

दुष्प्रयुक्त-दुष्ट रीतिसे प्रयोग में लायें शरीर द्वारा हुई जो क्रिया उसे दुष्ययुक्त कायिकी क्रिया कहतें है।

२ संयोजना-विविध वस्तुओं के अंश से मिश्रित एक वस्तु तैयार करना, उदाहरण स्वरू हल, जहर (विष) मिश्रित वस्तु पक्षी या हरिणों को पकडनें का यंत्र, इसप्रकार संयोजन रूप जो अधिकरण है, वह संयोजनाधिकरण।

निर्वर्तना-तलवार, बरछी आदि शस्त्रों को बनानें की यह निर्वतनरूप जो अधिकरण क्रिया उसे निर्वर्तनाधिकरण कहतें है।

P. P. Ac. Gunratansuriji M.S. Jin Gun Aaradhak Trust

३ जीवप्राद्वेपिकी–खुदपर या दूसरेपर द्वेष द्वारा हुई क्रिया या खुदपर या दूसरेपर जो द्वेष करना उसे जीव प्राद्वेषिकी क्रिया कहते है।

अजीव प्राद्वेपिकी–अजीव पर किये द्वेष से जो क्रियाहुई है उसे अजीव प्राद्वेपिकी क्रिया कहते है।

४ स्वहस्तपरितापनिकी–खुद के हाथ से अपनी अथवा दूसरे के या दोनों का परितापन (दुःख) से उदीरणा द्वारा हुई क्रिया अथवा यह परितापन ही, स्वहस्तपरितापनिकी क्रिया कही जाती है।

परहस्त प्राणातिपातिकी–इसी प्रकार परहस्त संबंधी समझना।

५ स्वहस्त प्राणातिपातिकी

परहस्त प्राणातिपातिकी

उपरोक्त के अनुसार अर्थ करना। ※ ४१

※ ४१ अनादिकाल से किये गये कर्मो की विचित्रता

अनंत संसार में अनादिकाल से अपने किये हुए कर्मों के भार को सिरपर उठाकर घूमनेवाली इन जीवात्माओं ने संसार के किसी भी स्थान, वेष, जाति, कर्म तथा आहार को नहीं छोड़ा है। सभी सूत्रकारों का भी यह कथन है कि अनार्य देश, अनार्य जाति, अनार्य कुल, अनार्य आहार और अनार्य भाषण को अनंतवार करता हुआ यह जीव उसीप्रकार के संस्कारो से आक्रान्त हुआ है तथा जिस कारण से आत्मा का एक एक प्रदेश अनंत अनंत हिंसक कर्म, असत्य कर्म, चौर्य कर्म, मैथुन कर्म, और परिग्रह कर्म के भार से वजनदार बना हुआ है। अनंत भवों में यह जीव मांसाहरी, मांसविक्रेता, शराब पिनेवाला और बेचनेवाला, हिंसकभाषा बोलनेवाला और हिंसक शस्त्रों

P. P. Ac. Gunratansuriji M.S. Jin Gun Aaradhak Trust

से अनेकानेक जीवों को मारनेवाला, जीव का वध करनेवाला, परजीवों को सतानेवाला, झूठी साक्षी, अभ्याख्यान, कूटलेख, कूटमाप, अनीति, अन्याय, प्रपंच, परस्त्रीगमन, परस्त्रीहरण, वेश्यागमन, गणिकाकर्म, तथा १५ कर्मादान के व्यापार इत्यादि पापकर्म कर चुका है। किए हुए इसप्रकार के पाप कर्मों के कारण वर्तमान के मनुष्य भव में भी यह जीव समाधि, शांति, समता, सरलता, पवित्रता, सत्कर्मिता, धार्मिकता, पापरहितता, आर्त तथा रौद्रध्यान की विमुखता, संतोषवर्तिता आदि आत्मिक गुणों को प्राप्त नहीं कर सका। यदि प्राप्त भी हो गये तो उन गुणों को स्थिर नहीं रख सका। यदि स्थिर रख सका तो आराधित नहीं कर सका इसलियेजैसा था वैसा ही रहा। यह कहावत चरितार्थ होती है कि "राम और रतन दो भक्त हुए लेकिन वे अंत में तो कोली के कोली रहे, अर्थात् आगे नहीं बढ़ सके। क्योंकि मूल संस्कार अच्छे नहीं थे।"

तत्त्वज्ञान की जितनी कमजोरी होती है उसके अनुसार ही आत्मा के पुरुषार्थ बल की भी कमजोरी जाननी चाहिए। इसलिए ही आत्मा के मित्र के सदृश सामायिक, पौषध, देवपूजा, भक्तिभाव की धुन वगैरह को समझने में देर नहीं लगती है। किन्तु अनादिकाल से आत्मा के कट्टर शत्रु के समान आश्रव तत्त्व को पहचानने में और छोड़ने में हमने सबसे विशेष शिथिलता धारण कर रखी है। फलस्वरूप वीतराग के दर्शन तथा पूजन किये लेकिन वीतरागता से हजारों कोस दूर रहे हैं। सामायिकादि की विधि विधान जाननेपर भी समताभाव को पालन करने में असफल रहे हैं। उपवास-आयंबिलादि करनेपर भी आहार संज्ञा के गुलाम बनकर पारणा करते तथा पारणे में किन किन चीजों का उपयोग करेंगे इसप्रकार अपनी वृत्ति इत्यादि का चिन्तन नहीं छोड़ सके हैं। इत्यादिक अगणित उदाहरणों से हम अपनी प्रवृत्ति का माप निकाल सकते हैं।

एसा क्यों हुआ? सबसे पहले विचारणीय प्रश्न यही है। चालू प्रश्न क्रियासंबंधी है और भगवान का जवाब यही है।

P. P. Ac. Gunratansuriji M.S. Jin Gun Aaradhak Trust

क्रियाओं की विशद व्याख्या

'क्रिया से कर्म' इस न्याय से शरीर में शरीर द्वारा की जाती क्रिया कर्म बंध निबंधन स्वरूपा है। उसके दो भेद हैं -१ अनुपरतकायिकी क्रिया और २ दुष्प्रयुक्त कायिकी क्रिया। पहली क्रिया देश विरत और सर्वविरत के नहीं होती है। क्योंकि पाप क्रिया दो प्रकार की होती है। एक तो पापी पेट भरने के लिए कुटुंब निर्वाह के लिए, विवाह धर्म का पालन करने के लिए अनिवार्य रुप से (जिसका त्याग गृहस्थ श्रावक नहीं कर सकता) क्योंकि व्यापार, खानपान, पाणीग्रहण इत्यादि कार्य करने पड़ते हैं। जब दूसरे प्रकार के पांप निरर्थक पाप कहे जाते है। "कोलसे की दलाली में काले हाथ" अथवा "विन खाये विन भोगव्ये फोकट कर्म वंधाय" उसे निरर्थक पाप समझकर त्याग करने के इरादे से ज्ञान और वैराग्यपूर्वक त्याग करनेवाले और त्याग किये गये पाप को दुवारा नहीं सेवन करने के लिये जागृत रहते हुए श्रावक को भी यह अनुपरत कायिकी क्रिया नहीं लगती। श्रावक धर्म के बारह व्रत निरर्थक पापों को त्याग करने के लिए और पापी पेट के लिए किये जाते हुए पापों में भी मर्यादा रखने के लिए होते हैं। फिर सब पापों का द्वार वंद कर महाव्रतो के पालने वाले मुनिराज को तो यह कायिकी अनुपरत क्रिया की संभावना नहीं हो सकती।

दूसरी दुष्प्रयुक्त कायिकी क्रिया उसे कहते है कि मोहवश प्रमादवश होकर शरीर को पापमार्ग में प्रवर्तन करना, वह दुष्प्रयुक्त क्रिया कही जाती है। यह क्रिया छठ्ठे गुण ठाणे के मालिक प्रमत्त संयमी को भी हो सकती है क्योंकि इस स्थानकपर प्रमाद की मुख्यता है। जिस कारण से ज्ञान संज्ञापर कुछ आवरण आ जाता है और शरीर संचालन में ख्याल नहीं रहता है।

अधिकरण में और अधिकरण से हुई क्रिया आधिकरणिकी क्रिया कही जाती है। जिस कारण से जीव नरकादि गति का मालिक बनता है। उसे अधिकरण कहते है। पहले के बने हुए शस्त्रों के भिन्न भिन्न विभागों को

P. P. Ac. Gunratansuriji M.S. Jin Gun Aaradhak Trust

मिलाकर जोड़कर एक शस्त्ररूप बनाया जाता है। वह संयोजनाधि करणिकी क्रिया कही जाती है और नये शस्त्र बनवाने, उसके लिए कारखाने खोलना और शस्त्र बेचना वह निर्वर्तनाधिकरणिकी क्रिया कही जाती है।

कर्म बंधन के करणरूप आत्मा के परिणामों में द्वेष, मत्सर वश, अकुशलता लाना, वह प्राद्वेषिकी क्रिया कहलाती है। दूसरे को सताना उसे परितापनिकी क्रिया कहते है और दूसरे के प्राणों को हरना, उसे प्राणातिपातिकी क्रिया कहते है। जो जीव शैलशी अवस्था को प्राप्त नहीं होते है। वे संयोगी होने के कारण सक्रिय होते है। किन्तु निष्क्रिय नहीं होते है। दस प्रकार के प्राणों को हरने के मानसिक भाव भी प्राणातिपातिकी क्रिया का सूचक है। ऋजुसूत्र नय के अनुसार भी हिंसा का अध्यवसाय उत्पन्न होते ही हिंसक अवस्था प्राप्त होते देर नहीं लगती है। मारने का अध्यवसाय जीव के विषय में ही संभव हैं। जैसे कि सर्पाकार में स्थित रज्जु के विषय में हम को जब सर्पबुद्धि की भ्रान्ति होती है। तब हाथ में छड़ी (स्टीक) लेकर सर्प को मारने के इरादे से ही छड़ी का उपयोग करते हैं। यद्यपि वह सर्प नहीं होता है। वैसे ही कोई मरता नहीं है। लेकिन हम तो सर्प समझकर ही क्रिया करते है। आटे का बना हुआ मुर्गा या बकरे को मारते हुए भी अध्यवसाय तो सच्चे मुर्गे या बकरे को ही मारने जैसा होता है।

आश्रव मार्ग को समझने के लिए इस विषय को दूसरे प्रकार से भी समझ लेना चाहिए। यद्यपि की जाति हुई क्रियाओं से कर्म बंधन सामान्य ही होता है। तो भी क्रिया में यदि तीव्र भाव, ज्ञान भाव और अधिकरण विशेष की सहायता मिल जाय तो कर्म बंधन में तीव्रतमता आये विना नहीं रहती है। अधिकरण की विशेषता को लेकर कर्म बंधन में वैचित्र्य आता है। उस अधिकरण के दो भेद हैं। जीवाधिकरण और अजीवाधिकरण और और दोनों का द्रव्याधिकरण और भावाधिकरण रूप से दो भेद हैं। कर्म बंधन में जीव और अजीव का साहचर्य अनिवार्य है। अकेला जीव या अकेला अजीव कुछ भी नहीं कर सकता हैं। जीवात्मा जो कर्म बांधने के लिए

P. P. Ac. Gunratansuriji M.S. Jin Gun Aaradhak Trust

तैयार होते है वह तथा जिस साधन से कर्म बांधते है वे द्रव्याधिकरण है।

जब उस जीवात्मा का कषाय वश तीव्र परिणाम और तलवार आदि की तीक्ष्ण शस्त्र शक्ति ये दोनों भावाधिकरण है। उसी प्रकार विषय वासना के वश होकर मैथुन कर्म का तीव्र परिणाम और उसी क्षण में अनुकूल हुई स्त्री, अथवा मैथुन भाव में तीव्र परिणामवाली स्त्री और उसी समय अनुकूल हुआ पुरुष ये दोनों भावाधिकरण हैं। इसका अर्थ यह हुआ की जीव की शुभ या अशुभ प्रवृति में सहायक बननेवाला द्रव्य जिस अवस्था में वर्तमान होता है। वह भावाधिकरण है।

अब द्रव्याधिकरण के दस भेद रूप में दस शस्त्र कहे जाते हैं।

१ तलवार आदि से दूसरे जीवों के हाथ, पैर, कान, नाक अंडकोश आदि काटना।

२ अग्नि से सचेतन या अचेतन पदार्थों को जलाना।

३ विष आदि के प्रयोग से दूसरे जीवों को मारना।

४ नमक (लवण), साबन, तेजाब आदि पदार्थों से पृथ्वीकाय के तथा अप्काय के जीवों को मारना।

५ घी, तेल आदि पदार्थों से पृथ्वीकाय के जीवों का नाश करना।

६ क्षार आदि पदार्थ के प्रयोग से दूसरे जीवों की चमड़ी, मांस वगैरह को नुकसान करना।

७ कांजी, राख, तथा दूसरे भी उसी प्रकार के द्रव्य पृथ्वीपर डालकर उन जीवों का घात करना।

८ उपयोग रखे बिना मन से प्रवृत्त होना।

९ उपयोग रखे बिना वचन का प्रयोग करना।

१० उपयोग रखे बिना शरीर का हलन चलन करना।

भावाधिकरण

अब भावाधिकरण के संबंध में विवेचन किया जाता हैं जो १०८ प्रकार का हैं :-

P. P. Ac. Gunratansuriji M.S. Jin Gun Aaradhak Trust

संरंभ, समारंभ और आरंभ इन तीन आश्रवों को मन, वचन तथा काया से करना, कराना और अनुमोदना तथा उसे भी क्रोध, मान, माया और लोभ से करना, इसप्रकार–३x३x३x४ = १०८ होते हैं।

सरंभ–दूसरे किसी भी जीव को मारने का इरादा करना, झूठ बोलने के लिए, झूठी साक्षी देने के लिए, दूसरेपर कलंक आरोपित करने के लिए, अमानत की रकम खा जाने (गबन) के लिए, चोरी करने के लिए, मिलावट करने के लिए, कूट तोल, कूट माप रखने के लिए, परस्त्री को भोगने के लिए, तथा परपुरुष को भोगवने के लिए, वैसे ही परिग्रह बढाने के लिए, मन, वचन तथा काया का संकल्प करना, वह संरंभ आश्रव है।

समारंभ–उपर्युक्त कार्यो को सफल करने के लिए उसी प्रकार की तैय्यारी करना, द्रव्य तथा भाव से इस तैय्यारी को समारंभ कहते हैं।

आरंभ–उस प्रकार की तैय्यारी करने के पश्चात् शस्त्र से जीवों को मार ही डालना, झूठ बोलना, चोरी करना, खोटा (दोषपूर्ण) व्यापार करना, परस्त्री गमन करना, आदि पापयुक्त क्रियाएं करना, वह आरंभ नाम का आश्रव है।

१०८ प्रकार के आश्रव का कोष्टक

१ मन से संरंभ क्रोधपूर्वक करना			२ मनसे समारंभ क्रोधपूर्वक करना		
... ...	...	करवाना	... ...	...	करवाना
... ...	...	अनुमोदना	... ...	...	अनुमोदना
वचन से संरभ क्रोधपूर्वक करना			वचन से...	...	करना
... ...	...	करवाना	... ...	...	करवाना
... ...	...	अनुमोदना	... ...	...	अनुमोदना
शरीर से...	...	करना	काया से ...	...	करना
... ...	...	करवाना	... ...	...	करवाना
... ...	...	अनुमोदना	... ...	...	अनुमोदना

P. P. Ac. Gunratansuriji M.S. Jin Gun Aaradhak Trust

३ मन से आरंभ क्रोधपूर्वक करना	४ मन से सरंभ मानपूर्वक करना
... ... करवाना	... ... करवाना
... ... अनुमोदन	... ... अनुमोदना
वचन से... ... करना	वचन से संरंभ मानपूर्वक करना
... ... करवाना	... ... करवाना
... ... अनुमोदना	... ... अनुमोदना
काया से ... ... कराना	काया से ... ... कराना
... ... करवाना	... ... करवाना
... ... अनुमोदनः	... ... अनुमोदना

५ मन से समारंभ मानपूर्वक करना	६ मन से आरंभ मानपूर्वक करना
... ... करवाना	... ... करवाना
... ... करवाना	... ... अनुमोदना
वचन से... .. करना	वचन से ... ... करना
... ... करवाना	... ... करवाना
... ... अनुमोदना	... ... अनुमोदना
काया से... ... करना	काया से ... ... करना
... ... करवाना	... ... करवाना
... ... अनुमोदना	... ... अनुमोदना

७ मन से संरंभ मायापूर्वक करना	८ मन से समारंभ मायापूर्वक करना
... ... करवाना	... ... करवाना
... ... अनुमोदना	... ... अनुमोदना
वचन से... ... करना	वचन से ... ... करना
... ... करवाना	... ... करवाना
... ... अनुमोदना	... ... अनुमोदना
काया से ... ... करना	काया से ... ... करना
... ... करवाना	... ... करवाना
... ... अनुमोदना	... ... अनुमोदना

P. P. Ac. Gunratansuriji M.S. Jin Gun Aaradhak Trust

९ मन से आरंभ मायापूर्वक करना		१० मन से संरंभ लोभपूर्वक करना	
... ...	करवाना	... ...	करवाना
... ...	अनुमोदना	... ...	अनुमोदना
वचन से	करना	वचन से	करना
... ...	करवाना	... ...	करवाना
... ...	अनुमोदना	... ...	अनुमोदना
काया से	करना	काया से	करना
... ...	करवाना	... ...	करवाना
... ...	अनुमोदना	... ...	अनुमोदना

११ मन से समारंभ लोभपूर्वक करना		१२ मन से आरंभ लोभपूर्वक करना	
... ...	करवाना	... ...	करवाना
... ...	अनुमोदना	.. ..	अनुमोदना
वचन से	करना	वचन से	करना
... ...	करवाना	... ...	करवाना
... ...	अनुमोदना	... .	अनुमोदना
काया से	करना	काया से	करना
... ...	करवाना	... ...	कराना
... ...	अनुमोदना	... ...	अनुमोदना

इस प्रकार उपर्युक्त कोष्टक के अनुसार भावाधिकरण के १०८ भेद स्पष्ट जान सकते है।

हमारे जीवन में उपदेश पद्धति की करुणता ही रही है। सबने स्वर्ग और मोक्ष का मार्गमात्र वताया है। किन्तु पाप त्याग की प्रमुखता तो जिनेश्वर देवों ने ही फरमाई है। जीवन में पुण्यकर्म की प्राप्ति शायद दो वर्ष के पश्चात् होगी, इसमें कुछ हानी पड़नेवाली नहीं है, परंतु पापकर्म की त्याग-भावना और उन पापों को त्यागने का आरम्भ तो आज से ही शुरु हो जाना चाहिए।

P. P. Ac. Gunratansuriji M.S. Jin Gun Aaradhak Trust

पाप का त्याग किये विना पुण्य कर्म का फल कितना मिलेगा ? यह तो केवली भगवान जाने । पुष्प पूजा करने से कुमारपाल राजा को १८ देश का राज्य मिला । यह बात सोलह आने सत्य होते हुए भी 'पुष्पों में भी जीव' है । पुष्प की एक एक पंखड़ी में एक एक जीव है । इस बात का ध्यान रखे विना अविवेकपूर्वक केवल चर्मचक्षु को पसन्द आया, वही ठीक है । इसप्रकार की पुष्पपूजा करने से हमको भी क्या १८ देशों का राज्य मिलेगा ? यह तो केवली भगवान जाने ! इसलिए ही सबसे पहले पापके त्याग की भावना का उत्तरोत्तर विकास करना, यह हितावह है ।

जपमाला के १०८ मनके ही इस १०८ आश्रवों के सूचक हैं । हाथ में माला लेकर जप करते समय एक एक मनके पर एक एक आश्रव याद रखना चाहिए । तो एक दिन हमारे लिए भी ऐसा आएगा कि हमारे जीवन में से आश्रव का त्याग होता जायगा और हम संवर भाव से केवली बनेंगे ।

अब अजीवाधिकरण के भेद निम्नानुसार हैं–

उसके चार भेद हैं– १ निर्वतना, २ निक्षेप, ३ संयोग ४ निसर्ग, निर्वर्तना के भी मूलगुण निर्वतना और उत्तरगुण निर्वतना रूप से २ भेद है ।

मूलगुण निर्वतना के भी औदारिक, वैक्रिय, आहारक, तैजस और कार्मणरूप पांच प्रकार का शरीर तथा वचनप्राप्ति, प्राण और अपान रूप हैं । कारण कि शरीर आदि कर्म बंधन का ही कारण हैं ।

उत्तर गुण निर्वर्तना अर्थात् शरीर के अंगोपांग आदि का दुष्टतापूर्वक प्रवर्तन करना । जैसे शरीर पापकर्म को बांधने का कारण है । वैसे हाथ पैर आँख और नाक इत्यादि अंगोपांग से भी पाप की प्रवृति होती है ।

दूसरे भी उत्तरगुण निर्वर्तना के प्रकार इसके अनुसार है ।

लकडी अथवा कपडे का बनावटी पुरुष बनाना । अथवा कपडे का उसी प्रकार का पुतला, नर गुडिया अथवा मादा गुडिया बनाना । तथा चित्र

P. P. Ac. Gunratansuriji M.S. Jin Gun Aaradhak Trust

कर्म करना, ये तीन आश्रव रुप से हमारे लिये या हमारे द्वारा निर्मित कृत्रिम पुरुष, नरगुडीया तथा मादा गुडिया इत्यादि दूसरों को भी पाप कर्म की भावना करने के लिए समर्थ बनेंगे।

अब निक्षेपाधिकरण के चार भेद–

१ अप्रत्यावेक्षित, २ दुष्प्रमार्जित, ३ औद्देशिक और ४ अनाभोगिक। अर्थात् पूर्ण रूप से निरीक्षण किये विना जल्दवाजी से किसी भी वस्तु को विना उपयोग स्वीकार करना तथा त्याग करना। इसे निक्षेपाधिकरण क्रिया कहते हैं। चराचर जीवराशि से परिपूर्ण इस संसार में उसी प्रकार रहना चाहिए। तथा चारों ओर से स्थान का निरीक्षण कर वहाँ इसप्रकार से वैठना चाहिए तथा कोई भी वस्तु लेना अथवा रखना चाहिए जिससे किसी भी जीव की निरर्थक हत्या न हो। हमारे प्रमाद से मरता हुआ जीव प्रायः करके श्राप देता हुआ मरता है। उस पाप या श्रापका फल हमें भवभवांतर में भोगने पडते हैं। वहुधा ऐसा होता है कि जिस मनुष्य के साथ हमारा किसी प्रकार का लेन देन न हो, जाति पाँति से या सगासंबंधी से किसी प्रकार का प्रसंग न हो, फिर भी वह ज़ीव जव हमपर घातक हमला करता है, हमारे गृहस्थाश्रम को कलंकित करता है, हमारी वहन वेटी के सतीत्व को भ्रष्ट करने का कार्य करता है, तब हम परेशान होकर उपरोक्त दृश्य देखते हैं। ऐसे प्रसंगपर हमारे मुखसे सहसा ये शब्द निकल पडते हैं " यह आदमी मेरा किस भव का वैरी है ? "

इसलिए जीवदया–अभयदान जैसा एक भी धर्म नहीं है और जीवहत्या जैसा एक भी पाप नहीं। ऐसा समझकर हमको अपनी प्रत्येक क्रिया में उपयोग रखना चाहिए और निरर्थक जीवहत्या में से अपने मन वचन और शरीर को वचाना चाहिय। यही एक मानवता है। मानव कृत्य है और धर्म प्राप्त करने की पहली सीढी है। इसी वात का रहस्य यह निक्षेपाधिकरण आश्रव समझाता हैं।

संयोजनाधिकरण के दो भेद हैं–

१ भक्तपान संयोजनाधिकरण, २ उपकरण संयोजनाधिकरण। जैन शासन ही आश्रव की गहराई में पहुँचकर तथा साधक मात्र को वहाँसे हटाकर अलौकिक कल्याण कितना कराता है, वह देखने योग्य है। संयम लेना, जितना दुष्कर नहीं है, किन्तु आश्रव को समझना अधिक दुष्कर है।

१ रसास्वादन का त्याग और आहार संज्ञा का मारण।

जीवन में अनादिकाल से पड़ी हूई रसनेन्द्रिय की लोलुपता को लेकर भोजन में टेस्ट (स्वाद) लाने के लिए भिन्नप्रकार के चूर्ण, मेथी, राई, आचार, नमक, मिरच, चटणी, शक्कर, गुड इत्यादि का अधिक मिश्रण करते रहते है। भगवतीसूत्र प्राप्त भोजन में स्वाद की कमी को दूर करने के लिए स्वादजनक पदार्थ का मिश्रण करने की भावना को भी आश्रव मार्ग वताता है। चाय, दूध ठंडा हो जाने पर उनको गरम करने की भावना तथा उसमें शक्कर कम हो या न हो उसको मिलाने की भावना आश्रव मार्ग का प्रकार है। अमुक प्रकार से अमुकपदार्थ ही वने तो गले उतरे। अमुक लडडू तथा दही वैसे प्रकार के हो तो टेस्टपूर्वक खाया जा सकता है। यह तथा इनके जैसी दूसरी लोलुपता में आश्रव का ही चमत्कार प्रत्यक्ष है।

तव उपकरण संयोजनाधिकरण का अर्थ भी ऊपर के (संक्षरे) जैसे ही समझना है। जैसे की विस्तरे की कोर पर, ओघारिया के तथा कंधे की कम्वल पर, एम्ब्रोडरीज का काम होना ही चाहिए। तब सुंदर प्रदर्शन होता है, और शरीर मैं पोजिशन का रंग जमता है। भगवती सूत्रकार इस भावना को भी आश्रवी भावना कहते हैं।

जव मन इन्द्रियों का गुलाम वन जाता है और पोजिशन के सपने में रमण करता हैं। तव उपरोक्त शृंगार सजा जाता है। जो आश्रवों को कारण हैं।

अव निसर्गाधिकरण के भी तीन भेद हैं :– १ मनोनिसर्गाधिकरण'

P. P. Ac. Gunratansuriji M.S. Jin Gun Aaradhak Trust

२ वचन निसर्गाधिकरण, ३ काय निसर्गाधिकरण । गत भव में उपार्जितकी हुई मन पर्याप्ति, वचन पर्याप्ति और शरीर पर्याप्ति को लेकर इस भवमें मन, वचन और काया की प्राप्ति होती है । किन्तु दुर्बुद्धिवश सत्यधर्म समझने में नहीं आता है तब ये तीन योग आश्रव कर्म में रत रहते हैं और महान पुण्य से प्राप्त मनुष्य अवतार में पापकर्म का सेवन करके महान लम्बे काल तक दुर्गति में जाना पड़ता है । मन रूप में परिणमन द्वारा प्राप्त मनो वर्गणा रूप द्रव्य का चिन्तनादि द्वारा त्याग करना, वह मनो निसर्गाधिकरण है ।

यहाँ आश्रव का प्रसंग होने से मन में खराब चिन्तन, दूसरे का द्रोह का चिन्तन समझना है । किन्तु भगवत चिन्तन वगैरह पवित्र चिन्तन समझना नहीं है ।

भाषा के स्वरूप में परिणमित भाषा वर्गणा के पुद्गलों को उपदेश द्वारा त्याग करना, उसे वचन निसर्गाधिकरण कहते हैं । यहाँ पर भी उपदेश का अर्थ स्वछन्द भाषण का त्याग समझना है ।

काय निसर्गाधिकरण अर्थात् गन्दे कार्य करके अपयश के भय से अपने शरीर का नाश करना, अग्नि से जलकर मर जाना, पानी में डूब जाना, गले में फंदा ड़ालना, जहर से मिश्रित भरा हुआ कटोरा पी लेना आदि कारणों से शरीर का त्याग करना पड़ता है, यह आश्रव के आभारी है ।

अधर्म में रत होकर प्रमादवश शरीर को, वचन को, तथा मन को कन्ट्रोल में न रखना, यह निसर्गाधिकरण का अर्थ है ।

P. P. Ac. Gunratansuriji M.S. Jin Gun Aaradhak Trust

कर्म पहले या वेदना पहले ?

इस क्रिया तथा वेदना के प्रश्नोत्तर का सार यह है कि, पहले क्रिया होती है और फिर वेदना होती है। क्रिया निर्ग्रंथों के लियेले भी है। श्रमणों को प्रमाद के कारण और शरीरादिक की प्रवृत्ति के कारण होती हैं। ※ ४२

※ ४२ क्रिया पहले या वेदना पहले ? इस प्रश्नोत्तर में हम सबको नवीनता मालूम होती है। जैसे आवाल गोपाल भी इस बात को जानते हैं। जैसी करनी वैसी भरणी' 'हाथ का किया हैये लगा' 'जो जस करहि वो तस फल चाखा' 'कर्मणो ही प्रधानत्वं' 'तस्मै नमः कर्मणे' 'क्षीणे पुण्ये मर्त्यलोकं विशन्ति' 'यावत् पुण्यमिद सदा विजयते, पुण्यक्षये क्षीयते' इस प्रकार की हजारों लाखों उक्तियां है। उनका एकमात्र सार यह है कि, पहले कर्म (क्रिया) करते हैं और बाद में फल भोगते है। फिर भी छट्ठे गणधर मंडित पुत्र देवाधिदेव भगवान से पूछते है कि, हे प्रभो ! कर्म पहले होता है या वेदना पहले होती है।

इस प्रश्न के मूल में क्या आशय होगा ? इसकी जांच करे ! उसके पूर्व एक बात को जान लेना है कि गणधर भगवंत चार ज्ञान के स्वामी हैं। फिर भी स्वय को ज्ञान उपार्जन करने के आशय से ही समवसरण में बैठे हुए दूसरे भाग्यवंतो को भी ज्ञान उपार्जन करने के आशय से पूछते हैं।

बहुधा जीवविशेष के कर्म अलग और फलादेश अलग अलग मालूम होते हैं। जैसे एक आदमी कसाई का धंधा करता है। फिर भी वह बंगले में रहता है और वैभव पूर्ण जीवन व्यतित करता है। अर्थात् बैठने घूमने के लिए मोटर, टेलीफोन, टेलीविजन, स्त्री, पुत्र परिवार आदि है और पुत्र-पुत्रियों की शादी के अवसर पर हजारों रुपये खर्च करता है।

दूसरा उदाहरण यह है कि गणिका की पुत्री आजीवन गणिका का

P. P. Ac. Gunratansuriji M.S. Jin Gun Aaradhak Trust

कृत्य करती है और मिष्टान्न आदि खान-पान का आनंद लूटती हुई पान चवाती रहती हैं। (खातो रहती है) और वह वैभवपूर्ण जीवन विताती है। जवकि एक गृहस्थ धर्मध्यान करता है। किन्तु दरिद्र है। 'त्रण सांधे त्यां तेर तूटे छे।' गुजरात में प्रसिद्ध इस कहावत को चरितार्थ करता है। ऐसी विकट परिस्थिति में वह अपना विस्तृत गृहस्थाश्रम निभाता है।

एक तो वह गणिका है जो तीसरे मजले पर अमन चमनपूर्ण आमोद प्रमोद करती हुई अपना जीवन सुखमय विताती है। जवकि पुण्यकर्मी पुरुष को सांप डंसता है और वह इस संसार से विदा हो जाता है।

सतित्व धर्म की चरम सीमा का पालन करनेवाली सीता दमयंती तथा द्रौपदी आदि को वनवास भोगना पड़ा है और उनको चिरकाल पर्यंत विलाप करते हुई अपना समय विताना पड़ा है।

जव मौनव्रतधारी सर्वजन हितेच्छु, वाल ब्रह्मचारी भी टी. वी. दमा तथा अन्य भयंकर वीमारियों को भोगता हुआ आयुष्य पूर्ण करता है।

ऐसे हजारों उदाहरण हमें अपने सामने आज प्रत्यक्ष देखते हैं। हमारे अज्ञात मन में भी आज यह प्रश्न उत्पन्न हुए विना नहीं रहता है कि इस प्रकार कैसे और क्यों हो जाता है ? ऐसी स्थिति में जैन शास्त्र ही हमको जानकारी देते हैं, वह इसप्रकार है :– अनादिकाल से संसार में जीव के साथ मिथ्याज्ञान, प्रमाद कषाय और अविरति से उपार्जित किये तथा प्रत्येक भव में मोह तथा माया के सेवन से वढाये हुए कर्म इस तरह से घुल मिलकर एकत्रित हो गये है। जैसे दूध के साथ शक्कर घुलमिलकर एकरूप वन जाती है।

इस कारण से संसार की रंगभूमिपर रखडपट्टी करनेवाली यह जीवात्मा अपने किये हुए शुभाशुभ कर्मों का फल भोगती है।

उदाहरण द्वारा यह विषय इसप्रकार समझाया जाता है कि जैसे आम के पेड़ पर लगा हुआ तथा प्रत्यक्ष दिखलाई देता हुआ नीले रंग का कठोर

P. P. Ac. Gunratansuriji M.S. Jin Gun Aaradhak Trust

कच्चा आम (केरी) आज का आज मीठा नहीं होगा और न तो वह तुरंत पीले रंग में परिवर्तित होगा और न बहुत जल्दी नरम पड़ जायगा। उसी प्रकार गर्भ में पड़ा हुआ जीव न तो आज का आज बड़ा हो जाता है और न संसार के रंग मंडप में आने के लिए समर्थ बनता है।

किन्तु कुछ समय बीतने पर वही कच्चा आम अपनी अनुकूलता वश या विशेष प्रयत्नो से पक जाता है। तब अपने मिठे रस से सबों को तृप्त करता है। उसी प्रकार नौ महिने खत्म हो जाने के पश्चात् जीव अपनी अनुकुलता वश किसी पुरूष विशेष के प्रयत्न के बिना ही अपान वायु की सहायता से संसार के रंगमंचपर आ जाता है। पूर्व भव में उपार्जित कर्मो के अनुसार शुभ अशुभ चेष्टा करने लग जाता है। सांराश यह है कि इस संसार में पर्याप्त समय हुए (*matured*) बिना कोई भी वस्तु उपयोगी (फलदायक) नहीं बनती है। यद्यपि काल तत्त्व में भी भाग्य, नियति, पुरुषार्थ आदि के सहकार की आवश्यकता रहती है।

उसी प्रकार आज किये हुए, कराये हुए और अनुमोदित किये हुए शुभाशुभ कर्म भी आज के आज फलदायक प्रायः करके नहीं होते है। क्योंकि जीवात्मा के प्रति प्रदेश में चार, पांच और दस, संख्यक तथा असंख्यक भवों में किये हुए कर्म संलग्न हैं। तब हमारी समझ में सहज आ सकता है। कि प्रायः करके पुराने किये गये कर्मो का समय पहले पकेगा और आज किये हुए कर्मो का परिपाक समय बीतने के पश्चात् कर्म की स्थिति के अनुसार होगा।

यह नियम किसी को भी मान्य नहीं है कि जो मनुष्य आज कसाई का धंधा करता है। उसने पहिले के भव में भी कसाई का ही धंधा किया हो। शायद उसने दया, दान, पुण्य, तथा धर्म करके अपने लिए धर्मराज की बैंक खूब मजबूत भी बनादि होगी। इस प्रकार उस भव में वह पुण्य कर्मों का संग्रह करता जाता है और दूसरी तरफ हिंसक वृत्ति को भी पोषता जाता है तथा अन्तिम समय में कसाई को भी धर्मध्यान की लेश्या और धनेश्वरी तथा दयालु पुरुष को भी हिंसक भावना की लेश्या बन सकती है। क्योंकि अस्थिर

P. P. Ac. Gunratansuriji M.S. Jin Gun Aaradhak Trust

और अज्ञानी पुरुष की भावनाएं निमित्तानुसार प्रतिक्षण बदलती रहती है। उपरोक्त कारणवश जीवात्मा इस भव में कसाई बना है तथा धनिक भी बना है। मम्मण सेठ के पूर्वभवीय जीव ने मुनिराज को सत्पात्र समझकर लड्डू भी अर्पण किये हैं। उस समय उनकी शुभ लेश्यांएं किस सीमा तक सरल थी। किन्तु निमित्त बदलते ही अशुभ लेश्याएं भी दिखाई देती है और सत्पात्र को दिया हुआ लड्डू वापस प्राप्त करने के लिए मुनिराज के साथ बुरे वर्ताव करते देर नहीं लगी। इसी कारण से पूर्वभव की शुभ लेश्या में जो दान दिया था उससे ही वह मम्मण सेठ श्रीमंत बन गया। किन्तु अशुभ लेश्यां से अशुभ कर्म भी साथ में बांधे थे। इसलिए पूरे जीवन में नरक गति के योग्य ही कर्मों का संग्रह किया है और मरकर नरक का अतिथि बना है। इसप्रकार आज का कसाई तथा गणिका के कार्य को करनेवाले पर भी घटा लेना चाहिए। (लगा लेना चाहिए)

तीन लोक के त्रिकालवर्ती पदार्थो को प्रत्यक्ष करनेवाले केवल ज्ञानी भगवंत ही प्रत्येक पदार्थ की यथार्थता को जानने में समर्थ होते हैं। अतः उनका ज्ञान सम्यग्ज्ञान है।

कर्मों का अवाधा काल

आज के अभी के (वर्तमान) समय में अत्यन्त मोहकर्म में रत हुआ जीव जिस समय मोहाधीन बनकर संसार के भोगविलास में तथा क्रोध, मान, माया और लोभ में अंध बनकर जिस आशय से, जिस तीव्रता से जिन जीवों के साथ कर्म बंधन करता है तब उसी समय बांधे हुए कर्म का "अवाधा" काल भी निश्चित् हो जाता है।

अवाधा काल अर्थात् वांधे हुए कर्म अमुक समय के पश्चात् ही उदय में आते है न कि पहले। इसलिए उदय में न आवे तक तब के काल को 'अवाधा काल' कहते हैं। इसलिए इस प्रश्न के उत्तर में भी भगवान फरमाते है कि वेदना मात्र कर्मजन्य ही होती है। अर्थात् पहले कर्म किये

P. P. Ac. Gunratansuriji M.S. Jin Gun Aaradhak Trust

जाते है। तत्पश्चात् उनकी वेदना भोगनी होती है। हम गत भव को नहीं देख सकते। इसीलिए इस निर्णय पर पहुँचने में देर लगती। किन्तु यह एक सत्य हकीकत है की, कारण पहले और कार्य वाद में होता हैं।

वेदना किस लिए भोगी जाती हैं ? वेदना कहाँ से आयी ? मैंने किसी का विगाड़ा नहीं, फिर भी इस प्रकार मुझे ही क्यों भोगना पड़ता हैं? 'इस में चाहे जो कारण हो किन्तु वेदना तो भोगनी पड़ती है। यह वात प्रत्यक्ष सिद्ध है। तव तो इसका कारण ही तलाश करना रहा। वही कारण कर्म है। जिस कर्म को दूसरे दर्शनकार माया, वासना, अदृष्ट ईश्वर आदि नाम से संबोधित करते हैं। चाहे सो हो, वेदना के मूल में कोई कारण जरुर होता है। इसलिए कहाँ जाता है कि कर्म [कारण] पहले है और वेदना [फल] वाद में ही होता है।

कर्म कैसे वने ? किससे वांधे गये ? इसके जवाव में भी क्रिया जन्य कर्म होता है। अर्थात् शुभ या अशुभ प्रकार से मानसिक, वाचिक और शारीरिक क्रिया से जो किया जाता है। वहाँ अवश्य कर्म बंधन है।

क्रिया जन्य कर्म और कर्मजन्य वेदना होती है। मुनिवेश धारण करने के बाद प्रमादवश होकर मुनिराज भी उपयोग शून्य बनकर खाने, पीने, गमनागमन करने, सोने, उठने आदि क्रियाएं करेंगे तो अवश्यमेव भगवती सूत्र साक्षी देता है कि वे मुनिराज भी कर्म वांधेंगे और उनके लिए भी संसार का चक्र सदैव तैयार ही है।

इस प्रकार वांधे हुए कर्म आत्मा के साथ कितने काल तक रहेंगे और वांधने के वाद कितना समय बीतने के पश्चात् उदय में आवेगें। यह भी जरूरी होने से जानकारी प्राप्त कर लेनी चाहिए।

P. P. Ac. Gunratansuriji M.S. Jin Gun Aaradhak Trust

कर्म के नाम	उत्कृष्ट स्थिति		जघन्य स्थिति	उत्कृष्ट अबाधा	जघन्य अबाधा
ज्ञानावरणीय	३०कोड़ा कोड़ी सा.		१अन्तर्मुहुर्त	३००० हजारवर्ष	१अन्तर्मुहुर्त
दर्शनावरणीय	३० ,,	,,	,,	,,	,,
वेदनीय	३० ,,	,,	१२ मुहुर्त	,,	,,
मोहनीय	७० ,,	,,	१अन्तमुंहुर्त	७०००हजार वर्ष	,,
				अधिक पूर्व कोटि वर्ष का तीसरा भाग	
आयुष्य	३३ सागरोपम		,,	,,	,,
नाम	२०कोडा कोड़ी सा.		८ मुहुर्त	२०००हजार वर्ष	,,
गोत्र	२० ,,	,,	,,	,,	,,
अंतराय	३० ,,	,,	१अन्तर्मुहुर्त	३०००हजार वर्ष	,,

[आर्हत दर्शन दीपिका पेज १०५१]

अबाधा काल अर्थात् क र्मों का अनुदय काल जानना। इस काल के दरम्यान वह कर्म जीव को स्वोदय से हानी नहीं करते है।

पल्योपम और सागरोपम क्या है? उस की जानकारी नीचे के कोष्टक से प्राप्त करनी चाहिए।

१ अविभाज्य सूक्ष्म काल	१ समय
२ नव समय	१ अन्तर्मुहुर्त
असंख्यात समय	१ आवलिका
२५६ आवलिका	१ क्षुल्लक भव
१७।। क्षुल्लक भव	१ श्वासोच्छ्वास [प्राण]
७ प्राण	१ स्तोक
७ स्तोक	१ लव

P. P. Ac. Gunratansuriji M.S. Jin Gun Aaradhak Trust

३८॥ लव	१ घडी
२ घडी	१ मुहुर्त
१ समय न्यून दो घडी	१ उत्कृष्ट अन्तर्मुहुर्त
३० मुहुर्त	१ दिवस
१५ दिवस	१ पक्ष
२ पक्ष	१ महिना
१२ महिना	१ वर्ष
८४ लाख वर्ष	१ पूर्वांग
८४ लाख पूर्वांग याने-	
७०५६०००००००००० वर्ष	१ पूर्व
असंख्य वर्ष	१ पल्योपम
१० कोड़ाकोड़ी पल्योपम	१ सागरोपम
१० ,, सागरोपम	१ उत्सर्पिणी काल
१० ,, ,,	१ अवसर्पिणी काल
२० ,, सागरोपम	१ कालचक्र
अनंत कालचक्र	१ पुद्गल परावर्तन काल

[नदतत्त्व प्रकरण महेसाणा]

एक करोड की संख्या को एक करोड की संख्या से गुणाकार करने से एक कोड़ा कोड़ी बनता है। इस प्रकार दस कोड़ाकोड़ी पल्योपम का एक सागरोपम होता है। इसीप्रकार तीस कोड़ा कोड़ी सागरोपम और ७० कोड़ा कोड़ी सागरोपम जानना चाहिए। १० कोड़ाकोड़ी सागरोपम की एक उत्सर्पिणी और १० कोड़ा कोड़ी सागरोपम की एक अवसर्पिणी होती है। इन दोनों कालों में एक एक चौबीशी तीर्थंकर देवों की होती हैं।

मिथ्यात्व के कारण उपार्जन किया हुआ ज्ञानावरणीय कर्म तीन चौवीशी तक संसार में परिभ्रमण करावेगा और अत्यंत कषायाधीन बन कर उपार्जित किया हुआ मोहनीय कर्म सात चौबीशीतक हमारे कल्याण में

P. P. Ac. Gunratansuriji M.S. Jin Gun Aaradhak Trust

विघ्न–बाधा डालता रहता हैं। इसप्रकार संसार में कर्मवश होकर अनंत पुद्गल परावर्तन हमने पूरे किये हैं।

अबाधा–काल के दरम्यान उत्कृष्ट प्रकार से ७० कोडाकोडी सागरोपम का मोहनीय कर्म बांधा हो तो ७००० हजार वर्षतक यह कर्म किसी प्रकार की हानि नहीं पहुँचा सकता। यह काल पूरा होनेपर ही मोहनीय कर्म उदय में आवेगा। सरल बात यह है कि सात हजार वर्ष बीतने के बाद ७० कोडाकोडी सागरोपम के काल तक की अवधि में चाहे जब ही यह कर्म उदय में आवेगा।

जैसे समुद्र अगाध और अनंत है उसी प्रकार संसार भी अगाध और अनंत है। आज जिस जीवात्मा के साथ कषायों की भयंकर परवशता के कारण अत्युत्कट–वैरानुबन्ध हो गया है, जो जीव हमारे हाथ से मरा है, जिसके साथ राग द्वेष की तीव्र गांठ बंध गई है, अथवा मृषावाद अदत्तादान मैथुन और परिग्रह बढ़ाने के लिए जिन जीवों के साथ हमारे कर्म की गांठ बंध गई है, उन जीवों के साथ हमारा जिस भव में संगम होगा तब उसका फल भोगना पडेगा।

चरमतीर्थंकर महावीर स्वामी का प्रसंग लेकर इस विषय का विवेचन किया जाता है। महान और अन्तिम सत्तावीश भव की अपक्षा से अठारह भव में श्रेयांसनाथ भगवान के शासन में भगवान महावीर स्वामी का जीव त्रिपृष्ठ वासुदेव के अवतार को प्राप्त हुआ था। वहाँ ८४ लाख वर्ष का आयुष्य था। उनमें ८३ लाख और ४९ हजार वर्ष तक उन्होंने वासुदेव पद को भोगा था। उस समय अतिरुष्ट होकर शय्यापालक के कान में गरमा-गरम जस्ता [सीसा] उंड़ेल दिया था। जिससे उस समय निकाचित बांधा हुआ असाता वेदनीय कर्म नव भव के पश्चात् अर्थात् कर्म बांधने के पश्चात् ८० सागरोपम के ऊपर लगभग २ करोड वर्ष बीतने के बाद महावीर स्वामी के भव में ग्वालेने उनके कान में कीले ठोंकी है–उस रूप में यह

P. P. Ac. Gunratansuriji M.S. Jin Gun Aaradhak Trust

कर्म उदय आया है। इस कर्म को बांधने के बाद की हकीकत निम्नानुसार हैं।

१८ वे भव में त्रिपृष्ठ वासुदेव हुए। जहाँ साढे तेरासी लाख वर्ष का उनका आयुष्य था।

१९ वाँ भव सातवी नरक का है। जहाँ उत्कृष्ट ३३ सागरोपम का आयुष्य था।

२० वे भव में सिंह का अवतार प्राप्त किया।

२१ वे भव में चौथी नरक में गये है। जहाँ १० सागरोपम की आयुष्य मर्यादा थी।

२२ वे भव में विमल राजकुमार के रूप में उत्पन्न हुए थे।

२३ वे भव में प्रिय मित्र चक्रवर्ती हुए। जहाँ ८४ लाख वर्ष का आयुष्य था।

२४ वे भव में शुक्र नाम के देवलोक में अवतरित हुए। जहाँ १७ सागरोपम का आयुष्य था।

२५ वे भव में नन्दन राजकुमार के रूप में अवतरित हुए। जहाँ २५ लाख वर्ष का आयुष्य था।

२६ वें भव में प्राणत देवलोक में उत्पन्न हुए। जहाँ २० सागरोपम की आयुष्य स्थिति थी।

महावीर स्वामी के रूप में २७ वां भव हुआ है।

शय्यापालक के साथ बैर के संबंध में जुड़े हुए भगवान महावीर तथा स्वयं शय्यापालक दोनों आत्माएं अपनी अपनी दिशा के प्रति अनंत संसार में भटकते भटकते ८० सागरोपम वीतने के पश्चात् वापस दोनों मिलते हैं। ग्वाले के रूप में अवतरित हुआ शय्यापालक, पतितपावन भगवान महावीर स्वामी को देखते ही प्रत्येक अंग में लगी हुई आग की तरह क्रुद्ध होकर

P. P. Ac. Gunratansuriji M.S. Jin Gun Aaradhak Trust

जीवात्मा की एजनादि क्रिया

जीव हमेशा मापपूर्वक स्फुरित होता है। एक स्थान से दूसरे स्थानपर जाता है। स्पंदन क्रिया करता है। सब दिशाओं में जाता है। क्षोभ प्राप्त करता है। प्रबलतापूर्वक प्रेरणा करता है और उस भाव में परिणित होता है। जबतक जीव की यह क्रिया है तब तक मरण समय में जीव को मोक्ष की प्राप्ति नहीं होती है। क्योंकि जब तक यह क्रिया होती है तबतक यह जीव आरंभ, संरंभ और समारंभ करता है। जब जीव नहीं कांपता है यावत् उस उस भाव को परिणित नहीं होता है, तब उस जीव को मोक्ष की प्राप्ति होती। क्योंकि वह आरंभ, संरंभ और समारंभ आदि क्रिया नहीं करता है। ❋ ४३

भगवान के कान में कीले ठोकता हैं। जबकि संसार की ऐसी विचित्र गति है तो पाप कर्मो से दूर हटकर वीतरागता, समता, दयालुता, सहिष्णुता और परोपकारिता आदि सद्गुणों को अपने हृदय में उतारने के लिए ही प्रयत्न करना चाहिए। जिससे इस जीव के नये कर्मों के द्वार बंद हो जाते है और तपश्चर्या, गुरुसेवा आदि अनुष्ठानों से पुराने कर्म धुलकर साफ हो जाते हैं। तभी हमारी आत्मा शुद्ध होगी।

❋ ४३ शैलीशी अवस्था को नहीं प्राप्त हुआ जीव सक्रिय होने के कारण वीर्यान्तराय कर्मों के क्षयोपशम को लेकर मन, वचन और काया से एजनादि (कंपनादि) अवस्थाओं को प्राप्त करता है और आरंभादि में प्रवृत्ति करने वाला बन जाता है। इस प्रकार भगवान ने गणधर भगवंतो द्वारा पूछे गये प्रश्नों का जवाब दिया है।

जैसे श्रावण मास के घने बादलो से आच्छादित सूर्य अप्रकाशित होता

P. P. Ac. Gunratansuriji M.S. Jin Gun Aaradhak Trust

है। वैसे ही कर्मो की अत्यन्त निकाचित और गाढ़ अवस्था के कारण आत्मा पर भी मिथ्यात्व का आवरण आ जाता है। किन्तु नदी में स्थित जैसे पत्थर गोल बन जाता है वैसे ही पर्याप्त समय बीतने पर यही आत्मा मिथ्यात्व के गाढ़ अंधकार को भेदकर अपने स्वरूप में आ जाता है और विपरीत दिशा में परंपरा से स्वीकार की गई वस्तू के लिए थोड़ासा विचार करते ही उस जीव को सरलता, दयालुता दान तथा पुण्यकर्मिता आदि गुणों पर विश्वास होता है। जैन शासन ऐसी अवस्था को मोक्ष में जाने की योग्यता रूप प्रथम गुण स्थानक के तौरपर संबोधित करता है। यहां थोड़ासा संत समागम और सम्यग् ज्ञान का उपदेश जो मिल जाता हो, तो जीवात्मा में ऐसी अपूर्व और अनिवृत्त शक्ति प्राप्त हो जाती है कि जिसके कारण अनादिकाल से गूढ़ दूर्भेद्य अनंतानुबंधी कषाय तथा आत्मा पर लगा हुआ मिथ्यात्व मोहनाम के दलिकों की गांठ तोडने के लिए सबल पुरुषार्थ करते हुए किसी समय में भी जो नहीं मिला हैं, ऐसे सम्यग्दर्शन को प्राप्त करने के लिए वह समर्थ बन जाता है।

अनंतानुबंधी कषाय

आत्मा की अनंत शक्तियों को रोकनेवाला कषाय है। इस कारण से अनंतानंत भव में अन्य जीवों के साथ संघर्ष करके इस जीवात्मा ने अपने खुद का बहुत ही नुकसान किया है।

'कष्यन्ते-हिंस्यन्ते प्राणिनः परस्परमस्मिन इति कषः' जिसमें जीवों का परस्पर हनन होता है, लूटा जाता है, विंधा जाता है, वह कष यानी संसार है। ऐसा कष अर्थात् संसार की तरफ 'अयन्ते' यानी गमन कराता हैं। जो प्रबल रुप से संसार की माया में फंसाता है उसे कषाय कहते हैं। उसके मूल चार प्रकार हैं। क्रोध, मान, माया और लोभ। इन चार कषाय के अनंतानुबंधी, अप्रत्याख्यानी, प्रत्याख्यानी और संज्वलन रूप में चार चार भेद हैं।

जैसे प्रबल पवन का झपाटा लगने से बादल बिखरने (अस्त-व्यस्त) शुरु हो जाते हैं। तब सूर्यनारायण स्वयं अपनी शक्ति से बादलों को दूर करने

में (हटाने के लिए) समर्थ वन जाता है। उसी प्रकार आत्मा उपरोक्त अनंतानुबंधी कषाय रूपी वादलों को जो एक दफे खिसक जाते हैं, या खिसकने शुरू होते हैं, तब आत्मा स्वयं ही अपनी अनंत शक्ति से कर्मरूपी वादलों को विखरने में समर्थ बन जाती है।

" अनंतान् भवान् (संसार परिभ्रमणान्) आवध्नातीति एवं शीलं यस्य सः अनंतानुबंधी कषायः " अर्थात् जो अनंत भव में रखड़पट्टी कराता है उसे अनंतानुबंधी क्रोध, मान, माया और लोभ रूप कषाय कहते हैं।

कोई भी व्यक्ति, समाज, जाति, गांव तथा देशपर अमुक कारणों से जो क्रोध, रोष, बैर, ईर्ष्या, आदि अपनी आत्मा में लाता है और अन्तिम श्वासोच्छ्वास तक भी उसका अंत नहीं होने देता हैं। उसे अनंतानुबंधी क्रोध कहते है।

मिथ्याज्ञान के कारण जाति, लाभ, कुल, ऐश्वर्य, वल, रुप, तप और श्रुत (शास्त्रीय ज्ञान) का अभिमान आया और वह जीवन के अन्तिम समय तक भी क्षीण नहीं होता है। उसे अनंतानुबंधी मान कहते हैं।

माया प्रपंच तथा वक्रता के वश होकर पूरे जीवन तक संसार में रत (मस्त) वने रहते है और असत्य तथा कपट के जाल में से वाहर नही निकलते हैं। उसे अनंतानुबंधी माया कहते है।

पुत्र लोभ, धन लोभ, परिग्रह लोभ, इज्जत लोभ, प्रतिष्ठा लोभ आदि में फंसकर जो आजीवन लोभांध वन जाय तो वह मानव अनंतानुबंधी लोभ का मालिक वनेगा।

इन चार कषायों के साथ मिथ्यात्व मोहनीय की तीन प्रकृतियां काल लब्धि को पाकर जब शान्त होती है तब आत्मा को सम्यक्त्व की प्राप्ति होती है जिसे चौथा गुणस्थानक कहते हैं।

अविरति को दूर करने के बाद ही विरति नामका पांचवा गुणस्थानक प्राप्त होता है।

P. P. Ac. Gunratansuriji M.S. Jin Gun Aaradhak Trust

सर्वांश रूप से अविरती के अभाव में छठा प्रमत्त गुणस्थानक प्राप्त होता है।

इसप्रकार मोक्ष प्राप्ति के चौदह गुण स्थानक कहे जाते है और आत्मा अपनी शक्ति से ही उसको प्राप्त कर सकता है।

११ वां गुणस्थानक उपशांत नाम का है। जहाँ मोहनीय कर्म की २८ प्रकृत्तियां उपशांत होती है, किन्तु सत्ता में से नष्ट नहीं होती हैं। इसलिए थोड़ा भी प्रमाद इस गुण ठाणे के मालिक को नीचे गिरा देता है। यदि वह आत्मा चरम शरीरी होगा तो नीचे गिरकर भी वापिस क्षयक श्रेणी का आधार लेकर घाती कर्मो का क्षय करने के लिए भाग्यशाली वन जायगा अन्यथा गुण ठाणे का काल पूरा होनेपर जिसका पतन होता है वह प्रथम गुणठाणे तक भी पीछा जा सकता है और आयुष्य क्षय होनेपर पतन हो तो सर्वार्थ सिद्ध विमान में अवतार प्राप्त कर दूसरे भव में मोक्ष में जायगा।

यदि वह साधक चरम शरीरवाला न हो तो कर्मो के नाश के लिए एक ही 'छठ्ठ' तप शेष रह जाता है अथवा सात 'लव' जितना आयुष्य शेष होता है। तभी वह सर्वार्थ सिद्ध विमान में विश्रांति पायेंगे। किन्तु मोक्ष की प्राप्ति नहीं कर सकता।

अब १२ वां गुणस्थानक 'क्षीण मोह' का है। जहाँ अनादिकाल के प्रवाह रूप में आत्मा के साथ संलग्न घाति कर्म भी आत्मा से हाथ जोड़कर कहते है कि, हे भाई! आप से हम हार गये है। अर्थात् घाति कर्मो का क्षय करके आत्मा कर्मो के पिंजरे में से बाहर निकल जाती है और केवल ज्ञान को प्राप्तकर १३ वे गुण स्थान में विराजमान होकर जीव मात्र को सदुपदेश देती है।

मोक्ष प्राप्ति की दो श्रेणियाँ

इस भव में मोक्ष में जाने की योग्यता रखनेवाले २ प्रकार के जीव होते हैं। आत्मा की शक्ति अलग अलग होने के कारण एक जीव उपशम

P. P. Ac. Gunratansuriji M.S. Jin Gun Aaradhak Trust

मार्ग से प्रस्थान करता है। जबकि दुसरा क्षपक मार्ग स्वीकार करता है। जैसे जलती हुई आगवाले चूल्हे पर राख [भस्मी] की राशी उंडेल दी जाय तो तब यद्यपि अग्नि दबा दी जाती है। किन्तु हवा के झोंके से राख उड़ते ही पुनः अग्निदेव अपना कार्य किये बिना नहीं रहेंगे। जब जलती आगवाले चूल्हेपर ठंडा पानी छिड़केंगें तभी अग्नि का अस्तित्व नष्ट हो जायगा और फिर किसी को जलने का खतरा नहीं रहेगा। उसी प्रकार आत्मकल्याण की भावना है, गुरुकुलवास है, स्वाध्याय का बल है, तपश्चर्या की शक्ति है फिर भी खुद की आत्मा की गति शिथिल होने के कारण कर्मों के मूल को दबाते दबाते एक के बाद में दूसरे गुण ठाणे को प्राप्त करते हुए ११ वे तक पहुँच जाते हैं। किन्तु बीच में ही सत्ता में पड़े हुए कर्मों के कारण चित्रविचित्र निमित्त मिलने से आत्मा को विचलित होते देर नहीं लगती हैं। जैसे भगवान नेमिनाथ के भाई रहनेमि ने दीक्षा ग्रहण करली है। फिर भी उनके दिल में बारंबार इसप्रकार का कांटा चुभ रहा था की यदि राजमति ने मेरे साथ शादी की होती तो मुझे आनंद मिलता। फलस्वरूप एकान्तस्थान में राजमति को देखते ही विचलित होने में देर नहीं लगी। प्रसन्नचंद्र राजर्षि भी बाह्य निमित्तों से विचलित हुए हैं और नन्दिषेण मुनि के वैराग्य में कितनी तीव्रता थी? "देवताओं ने यद्यपि आकाशवाणी की, किन्तु मुझे फंसना नहीं है और इन कारणों से हजारों मील दूर रहूँगा।" तदर्थ उग्र तपश्चर्या में अपना रक्त, हड्डीयाँ और मांस आदि सुखा दिये थे। किन्तु यह वेश्या अपने मन में क्या समझती है? इस प्रकार के तपश्चर्या का मद जो मोहराजा का सशक्त सुभट है, उसका उदय होते ही बस, खेल खत्म हो गया। अन्त में वे वेश्यावासी बन गये। शालि भद्रजी के वैराग्य में किसी को भी शंका हो सकती है क्या? किन्तु आज तो 'मेरी माताजी के हाथसे पारणा होगा' और इसप्रकार श्रेणी चूक जाने से वे मोक्ष को प्राप्त नहीं कर सके। इसप्रकार के अगणित उदाहरण शास्त्रो में संग्रहित किये हुए हैं। सबमें एक ही तत्व काम करता है। कि "सत्ता में आये हुए कर्मों के बीज।" जब दूसरा साधक प्रारंभ में कर्मो के बीज जलाते हुए और उनको जड़ मूल से उखेडने में

P. P. Ac. Gunratansuriji M.S. Jin Gun Aaradhak Trust

प्रयत्नशील है। ऐसी स्थिति में कितने ही प्राणघातक निमित्त प्राप्त हो जाय। किन्तु आत्मा को चलायमान करने में कोई भी समर्थ नहीं हो सकते। 'हत रे पतित' संयम लेने के वाद वमन की गई वस्तुओं की भोगने की इच्छा करते आपको शर्म नहीं आती है? इसप्रकार क्षपक मार्गपर चलती हुई राजमती के संयम को हम किस प्रकार भूल सकते हैं। वैसे ही खंदक मुनि तथा कोल्हू में पीले जाते हुए पांच सौ साधु तथा उपशम श्रेणी से नीचे गिरकर वापस ऊपर आनेवाले नन्दिषेण मुनि, अरणिकमुनि और प्रसन्नचन्द्र राजर्षि आदि हमारी आँखो के सामने सदा विद्यमान हैं।

११-१२ में गुण ठाणे के भाग्यशाली तथा १३ में गुणठाणे की शोभा वढ़ानेवाले केवली भगवंतो को भी अपनी भाषा वर्गणा के पुद्गलो को क्षय करने के लिए देशना देनी पड़ती हैं।

इससमय उनके मन वचन और काया सक्रिय होने से ऐर्यापथिकी क्रिया लागू हो जाती है और इस क्रिया के कारण प्रतिक्षण सातावेदनीय कर्म को वांधनेवाले हैं। इस प्रसंग में एक पंक्ति याद आ जाती है। "साताबांधे केवली रे भित्ता! तेरमे पण गुण ठाणे रे!"

ऐसा कहा गया है कि आत्मा में आत्मा से संयमित हुए अणगार उपयोग पूर्वक गमन करनेवाले, खड़े रहनेवाले, सोनेवाले तथा सावधानपूर्वक उपकरणों को ग्रहण करनेवाले तथा छोडनेवाले होते है। इसलिए उनको ऐर्यापथिकी क्रिया होती है। जो प्रथम समय में सातावेदनीय को वांधते हैं। दूसरे समय में अनुवेदते हैं और तीसरे समय में क्षय करते है।

इस प्रकार उपरोक्त विवेचन से जान सकते हैं कि ११-१२-१३ गुण ठाणे के वीतराग भी सक्रिय होते हैं।

उपरोक्त गुणठाणों को प्राप्त नहीं किये हुए अणगार वीर्यान्तराय कर्म के क्षयोपशम के कारण प्रमाणसहित कंपित होते हैं। विविध रूप से कंपित

P. P. Ac. Gunratansuriji M.S. Jin Gun Aaradhak Trust

होते हैं। स्थानान्तर करते है और वापस स्थानपर आते है तथा अनेक विध क्रिया करते है। जब तक उत्क्षेपण, अवक्षेपण, आकुंचन और प्रसारणादि क्रियाओं को मन, वचन तथा काया से करते है। इसलिए उनको अन्तः अर्थात् मुक्ति प्राप्त नहीं होती है। क्योंकि जबतक क्रियाएं है तव तक सरंभ समारंभ और आरंभ रूप में भाव आश्रवों के वे मालिक वन जाते है। इस कारण से पृथ्वी कायादिजीवों को –

'दुक्खावणयाए' मरणरूप अथवा इष्ट वियोगरूप दुःख देते हैं।
'सोआवणयाए' उन जीवों को शोक उत्पन्न करते हैं।
'जूरावणयाए' विशेष रूप से शोक उत्पन्न करते हैं।
जिससे शरीर जीर्ण वन जाता हैं।
'तिप्पावणयाए' उसको रुलाते हैं।
'किलामणयाए' उनको ग्लानि प्राप्त कराते हैं।
'उदावणयाए' त्रास देते है।

सारांश यह है कि उपयोग विना का मुनि सर्व प्राणों को, सर्व भूतों को, सर्व जीवों को और सर्व सत्वों को मारनेवाला होता है। इसप्रकार मानसिक जीवन में से जब सरंभ, समारंभ और आरंभ का त्याग नहीं करता है। तव वह साधक की काया भी 'सातागारव' तरफ प्रस्थान करती है। अर्थात् शरीर के पोषण करनेवाले उन मुनि की सभी क्रियाओं में आलस, प्रमाद और बेदरकारी [लापरवाही] होती है। तब अपने उपयोग में लाने के लिए तय किया हुआ पानी, लघुशंका, पात्र धोने के बाद का पानी कफ आदि इस प्रकार फेंकेंगे, जिससे पृथ्वी कायादि जीवों का हनन होता है। तथा लघुशंका [पेशाब] आदि दूसरे स्निग्ध और क्षारवाले साबु के पानी को नीचे फेंकनेवाले मुनि भावदया रहित बन जाता है। तथा उपयोग रहित होने से नीचे फेंके हुए उन क्षार पदार्थो से पृथ्वी कायिको का हनन होगा। वहाँ रहे हुए चींटी मकोड़ें आदि त्रस जीवों को भी हत्या होगी और पानी फेंकते हुए मक्खी, मच्छर आदि जीवों का घात होगा।

P. P. Ac. Gunratansuriji M.S. Jin Gun Aaradhak Trust

इसके पश्चात् प्रमत्त और अप्रमत्त संयत के संबंध में व
जाता है-प्रमत्त संयम को पालन करनेवाले प्रमत्त संयमी का
मिलकर प्रमत्त संयमकाल एक जीव की अपेक्षा से जघन्य
समय, और उत्कृष्ट देशोनपूर्व कोटि और अनेक जीवों की अपेक्ष
सर्वकाल प्रमत्त समय काल है।

इसप्रकार अप्रमत्त संयम को पालनेवाले अप्रत्तम संयमी
सब मिलकर अप्रमत्त संयमकाल एकजीव को लेकर जघ
अंतर्मुहूत और उत्कृष्ट देशोनपूर्वकोटि और अनेक जीवों को ले
सर्वकाल अप्रमत्त संयम काल है। ※ ३४

अप्काय और अग्निकाय के जीवों के प्रति उपयोगरहित मुनि उन
आरंभ के प्रति भी वेध्यान होता है। शरीर की सुखाकारी चाहनेव
अणगार ठंडी हवा के लिए खास आग्रह रखेगें और सरस, पुष्टिकारक, वी
वर्धक, फल आदि वनस्पति के आरंभ में भी सक्रिय रहेंगे।

मुनिवेष को धारण करने के बाद उन मुनि को स्वाध्याय बल, त
श्चर्या बल, और गुरुकुलवास के प्रति आग्रह रखना चाहिए था। कि
आश्रव के मालिक का स्वाध्याय बल हमेशा कमजीर होता है। तपश्चर्या
भी शिथिल होता है। गुरुकुल वास तो उनको पसन्द नहीं है।

कारण कि तीनों मार्ग संवर धर्मवाले को ही अनुकुल होते है।

※ ४४ कर्मों की दुर्भेद्यग्रन्थि

बांधे हुए कर्म और प्रतिक्षण बंधाते हुए कर्मो के कारण अनंतर
के मालिक आत्मा की अवस्था इतनी कमजोर हो जाती है कि जिस क
से वह अपना स्वरूप भी पहचान नही सकता है और एक गति में से द

P. P. Ac. Gunratansuriji M.S. Jin Gun Aaradhak Trust

गति में भटकता रहता है। विवेक तथा समझ से रहित आत्मा बोलने, चलने, खाने तथा उठने-बैठने में अनेक जीवों के साथ मोह माया की चेष्टाएं किया करता है। इस कारण से अत्यंत मलिन तथा क्लिष्ट बना हुआ आत्मा राग द्वेष की दुर्भेद्य ग्रंथि को तोड़ने में समर्थ नही बनता है।

एक उदाहरण इस प्रसंगपर याद आ जाता है कि एक गांव से दूसरे गांव जाने के लिए तीन मनुष्य घर से निकले। किन्तु गांव के बाहर निकलते ही जंगल, झाडी, नदी-नाले आदि देखने के बाद एक के दिल में ऐसा भय पैदा हुआ कि 'मैं कहीं लूट लिया जाऊंगा तो, इस कारण वह दोनों स्वमित्रों का साथ छोडकर वापस अपने घर में आकर बैठ गया। जबकि दूसरे आदमी ने थोडी हिम्मत की और आगे बढा तो सही किंतु जब सामने से चोर-डाकू आते हुए दिखलाई दिये, तब इतना डर गया कि, यद्यपि तीसरे साथी ने उसे बहुत हिम्मत बंधाई तब भी वह नहीं माना और एबाऊट टर्न (*About Turn*) होकर घर लौट गया। जबकि तीसरा भाई अदम्य साहसपूर्वक चोर-डाकुओं का सामना करता हुआ उनसे लड़ा और उनको भगाकर अपने लक्ष्य स्थानपर पहुंच गया। इसी प्रकार ज्ञान, ध्यान, तप-जप तथा संयम आदि शस्त्रों को धारण करके तीन साधक मुक्तिनगर को लक्ष्य करके मिथ्यात्व नामक अपने घर से निकले किन्तु मोहमाया के गाढ संस्कारों के कारण अपने माता-पिता, स्त्री-पुत्र आदि के द्वारा आक्रन्दन से भरे हुए शब्द तथा अपने प्रति आकर्षित करनेवाली माया-जाल में फंसकर एक भाई इतना शिथिल पड़ गया जिससे स्वयं ने अपने मन में इतना निश्चय कर लिया कि 'संयम मार्गपर चलना तलवार की धार पर चलने के समान कठिन है, यह मेरे लिए संभव नहीं है। मोहमाया से मैं विरक्त नहीं हो सकता। ऐसा मानकर वह अपने लक्ष्य से भ्रष्ट (चूक) हो गया और पुनः 'मूषको भवः' इस उक्ति के अनुसार अनंत मायाजाल से ग्रस्त हो गया।

दूसरे नंबर के साधक ने मोहमाया की तरफ दृष्टिपात नहीं किया और

P. P. Ac. Gunratansuriji M.S. Jin Gun Aaradhak Trust

राग-द्वेष के परिणामों को दबा दिये। इसलिए क्षणभर के लिये अपनी आत्मा का असली स्वरुप तथा ईश्वर का अनंत तेज देखने की समर्थता प्राप्त करने की शक्ति का संचय करता है। किन्तु अभी तक भयंकर से भयंकर कर्मों की बनी हुई ग्रन्थि को तोडने में समर्थ नहीं बनता है।

जहाँ अव्याबाध सुख है। उस मोक्ष स्थान पर पहुँचने के लिये जैन शासन ने १४ गुण ठाणे का यथार्थ वर्णन किया है। उदाहरण स्वरुप ऊपर की मंजिलपर पहुँचने के लिये जैसे सीढ़ी (पगथिया) पर चढना अनिवार्य है। वैसे ही मोक्ष प्राप्ति के लिए एक के बाद एक गुणस्थान रूपी सीढी पार करके अपना ध्येय सिद्ध करना रहता है।

यद्यपि १, २ और ३ गुण स्थानक की आत्मा संसारवर्ती अनंतानंत आत्माओं से श्रेष्ठ होती है। कुछ ना कुछ साहस भी धारण करते है। किन्तु चौथा गुणस्थानक जो मोक्ष का द्वार है। वहाँ तक पहुँचने के लिये जहां तक यह आत्मा पुरुषार्थ प्रकट नहीं करती है वहाँ तक मोक्ष रूपी महल में पहुँचने के लिये सम्यग्दर्शन नाम के द्वार तक पहुँचा नहीं जा सकता। सारांश यह है कि तीन साधको में से पहला साधक द्वार पर पहुँचे बिना ही वापस लौट गया। यहाँ तक उसने अपनी स्थिति बिगाड डाली कि प्रायः करके असंख्य भव तक उस स्थान तक नहीं पहुँच सकता। जबकि दूसरा साधक मोक्ष के द्वार तक पहुँचकर वापस लौट गया। क्योंकि क्रोध कषाय की तीव्रता, विषय वासना की प्रबल माया और प्रबल स्नेहियों के प्रपंच जाल द्वारा आकर्षित होकर राग द्वेष की गांठ तोडने की शक्ति नहीं होने से वापस लौटकर मिथ्यात्व नामक घरपर पहुँच गया।

तीसरे साधक ने अपनी आत्म शक्ति से क्रोध नाम के चोर को तथा कामदेव नाम के डाकू को थोडे समय के लिये परास्त करके सम्यगदर्शन प्राप्त कर लिया। जो चोथा गुणस्थानक कहा जाता है जहाँ आत्मा को बहुत आनन्द प्राप्त होता है। जैसे भूखे मनुष्य को खाना मिलने पर तथा प्यासी

P. P. Ac. Gunratansuriji M.S. Jin Gun Aaradhak Trust

मनुष्य को पानी मिलने पर आनन्द आता है। वैसे ही मोक्ष द्वार पर खडे हुये मनुष्य को भी आनन्द मिलता है।

मानसिक विचित्रता

इसी प्रकार का आनन्द ही आनन्द मिलता रहे। इस संसार की माया पुनः मुझे नहीं सतावे और विशेष हैरान नहीं करे। इसलिए न्याय, नीति थोडी तपश्चर्या और काम क्रोध को रोकने के लिये थोडा व्रत तथा मिथ्यात्व से दूर रहने के लिये वीतराग परमात्मा का दर्शन-पूजन ध्यान करता है और इस प्रकार पांचवा गुणस्थानक प्राप्त करके वहाँ बहुत सा काल व्यतीत करता है। किसी समय में संसार की माया का नाटक दिखलाई देता है। किन्तु दूसरे ही क्षण में वैराग्य की लहर उठते ही भगवान के भजन में मस्त बन जाता है। एक दिन अपने पुत्र पुत्रियों के साथ बैठकर खाद्य पदार्थ को स्वादपूर्वक खाता है। तो दूसरे दिन खाना पिना छोडकर भगवान की माला जपता है। किसी समय संसार के रागरंग को भोगने की भावना जागृत होनेपर उसमें आत्मविभोर हो जाता है। जबकि दूसरे समय में ही विचारधारा बदल जाती है। "यह मैंने क्या किया ?" हृदय सागर में इस प्रकार की तरंग उठते ही पौषध लेकर गुरु के चरणों में दूसरी रात पूरी करता है। इसप्रकार किसी दिन संसार की माया तो दूसरे दिन वैराग्य की माया के झूलों में झूलता हुआ वह भाग्यशाली समय पकने (*Matured*) पर वैराग्य तथा ज्ञान के अभ्यास द्वारा संचित की हुई आत्मशक्ति से संसार का त्याग करता है और मुनिधर्म, मौनधर्म, समिति गुप्ति धर्म पालने के लिये हिंसा का संपूर्ण त्याग करके संयम धर्म स्वीकारता है। तब जैन शासन इस स्थान को छठ्ठा गुण स्थान कहते हैं।

अर्थात् मोक्ष में जाने के लिये यह भाग्यशाली छठी सीढी (पगथिया) पर चढ गया है। वहाँ गुरु के चरणों में रहता है। स्वाध्यायी शक्ति बढाता है। तपश्चर्या धर्म को उत्कृष्ट धर्म समझकर संग्रामभूमि में कर्मराज के सैनिकों के साथ युद्ध क्रीडा करता है। किन्तु हम सब जानते है कि किसी समय

P. P. Ac. Gunratnasuriji M.S. Jin Gun Aaradhak Trust

हमारी सेना की विजय होती है तो दूसरे समय में शत्रुराज की सेना जीत का हार पहन लेती है यानी विजयलक्ष्मी झूलती रहती है। इसप्रकार यह जीवात्मा अनादिकाल से मोहराजा के सैनिको से आक्रान्त है। जबकि वैराग्य राजा की छावणी (राजधानी) तो इस भव में ही प्राप्त हो सकी है। अतः किसी समय मोहराजा के सैनिकों का जोरदार हमला होते ही इस भाग्यशाली साधक को संसार की स्मृति पुनः जागृत हो उठती है। भोगे हुये भोग और उपभोग याद आने लगते हैं। सगे संबंधीयों का स्मरण बेचैन कर डालता है और पुनः उनके साथ धर्म के नामपर राग की वृद्धि करता है। प्रारंभ में उनके साथ एक दो घंटे का समय मधुर संभाषण में बीताता हैं। तत्पश्चात् पत्र-व्यवहार चालू होता है। तदनन्तर गुरुमहाराज से अनुमति लिये बिना कपडे, पात्रें तथा तरपणी वगैरह उनको अपने सगे संबंधी तथा स्वभक्तो के घर पर रखदी जाती है। इस प्रकार किरायेदार की तरह पैर फैलाती माया रूपांतर में बढती जाती है। अन्त में माया का जाल इस मात्रा तक बढ जाता है कि उस माया को धर्म का रूप देकर प्रशस्त प्रकार में उसे व्यवहार में लाने के लिये व्याख्यानों का रंग भी बदल जाता है। इसलिये इस गुणठाणे को बिना पक्षपातवाले जैन शासन ने 'प्रमत्त गुणस्थानक' तरीके संबोधित किया है। प्रमत्त यानी प्रमाद "प्रमाद्यते-मोहवशी क्रियते आत्माऽनेनेति प्रमादः" उसके आठ भेद हैं। उनके नाम इस प्रकार है :- अज्ञान, संशय, मिथ्या-ज्ञान, राग-द्वेष, मतिभ्रंश (विस्मृत), धर्म के प्रति अनादर और योग-दुष्प्रणिधान।

अज्ञान यानी ज्ञान का सर्वथा अभाव रूप अर्थ जैन शासन को मान्य नहीं। किन्तु "कुत्सितज्ञानम् मिथ्यादृष्टेः ज्ञानमित्यर्थः"। यह अज्ञान तीन प्रकार का है। मतिअज्ञान, श्रुताज्ञन और विभंगज्ञान।

कुलीन पुरुष भी नीच मनुष्यों की संगति से नीच माना जाता है। उसी तरह से मिथ्यात्व के रंग से रंगाया हुआ ज्ञान भी अज्ञान ही माना जाता है। इस कारण मनुष्य अज्ञान के नशेमें मस्त बना रहता है। संशय

P. P. Ac. Gunratansuriji M.S. Jin Gun Aaradhak Trust

रहना भी प्रमाद है। क्योंकि सत्य पदार्थ के निर्णय में उसे कभी भी उत्साह नहीं रहता है।

मिथ्याज्ञान–यानी हिंसक, गृहस्थ तथा स्वार्थी मनुष्यों द्वारा बनाये हुए शास्त्रों को ही प्रमाण–मान कर यह उसके अनुसार चलता रहता है। फलस्वरूप हिंसक कर्मों को अहिंसा धर्म मानता है। इसप्रकार मिथ्या बुद्धिकी भ्रांति के नशे में ही जीवन पूरा हो जाता है।

राग–तथा द्वेष के अतिरेक में आत्मा सर्वथा बेभान होकर अज्ञानी की तरह चेष्टाएं करता है, जो प्रत्यक्ष है।

मतिभ्रंश–अस्वाद्य पदार्थों के खाने से तथा अधिक मात्रा में काम और क्रोध के सहवास से मतिभ्रंश हुआ मनुष्य प्रमादी ही होता है।

धर्म के प्रति अनादर

शुद्ध, सात्विक, अहिंसादिधर्म के प्रति और उनके अनुष्ठान के प्रति मनुष्य बेध्यान रहता है और यही अवस्था प्रमाद है।

मन वचन तथा काया के संचालन में हिंसा तथा अहिंसा का ख्याल रखे बिना दुष्प्रणिधान यानी गंदे विचारों में, गंदी भाषा में और गंदे कार्यों में मन, वचन और काया को लगाना, यह भी आत्मा का प्रमाद ही है।

इसप्रकार तारतम्य भाव से प्रमाद का सेवन करता हुआ, मोक्ष का साधक मुनि भी प्रमत्त संयमी कहा जाता है।

जब कि ज्ञान और वैराग्य भाव से दीक्षित हुआ मुनि दीक्षा लेते ही इतना निर्णय करता है कि संसार दुःखों से परिपूर्ण है, इसलिए जब कि मोक्ष प्राप्ति के लिए मैंने अपने भाव से दीक्षा अंगीकार की है तब चाहे जैसे उपसर्ग आवे, परिषह आवे, तथा गुरु द्वारा सारणा–वारणा–चोयणा–पडिचोयणा होवे तथापि मुझे गुरुकुल वास नहीं छोडना है। वैसे ही मुझे स्वाध्याय भी नहीं छोडना है। तप कर्म भी नहीं छोडना है, मेरे अपने

P. P. Ac. Gunratansuriji M.S. Jin Gun Aaradhak Trust

अन्त में लवण समुद्र में चौदश, आठम, (अष्टमी) आमावास्या और पूनम इन दिनों में ज्वार-भाटा क्यों आता हैं, तत्संबंधी जीवाभिगम सूत्र में से जानकारी प्राप्त कर लेनी चाहिए। ※ ४५

संपूर्ण स्वार्थ को छोडकर गुरुदेव के स्वार्थ में ही मेरा समर्पण भाव रहेगा। तब वह मुनि उन्नति कर सकेगा और अंतर्मुहूर्त की मर्यादावाला सातवां गुण स्थानक प्राप्त करने में समर्थ बनेगा। इसप्रकार छठे और सातवें गुणस्थानक में रमण करते हुए साधक को साधन प्राप्त होनेपर आगे बढ कर ८, ९, १०, ११ तथा १२ वां गुणस्थान कभी प्राप्त करने का सौभाग्य मिलेगा। इस प्रश्नोत्तर में तो केवल प्रमत्त संयम और अप्रमत्त संयम का समय ही बताने में आया है जो स्पष्ट है।

※ ४५ लवण समुद्र में प्रतिदिन दो दफे ज्वार आता है, तब समुद्रमें जल की गति तेजी से बढ जाती है और समय बीतने के पश्चात् अपने आप ही कम हो जाती है और समुद्र पूर्ववत् स्थिति में आ जाता है। यह अनुभव सबके लिए एक समान है। किन्तु यह ज्वार क्यों आता है? इस प्रश्न का उत्तर भगवान् महावीर स्वामी देते है कि जिस के मोहकर्म नाश नहीं हुए है वे चर्मचक्षु के मालिक अलग अलग कल्पना भले ही करते हो किन्तु केवल ज्ञान के मालिक ने "करामलकवद्विश्व की तरह अखिल संसार को ज्ञानचक्षु से प्रत्यक्ष किया हुआ होता है।

संसार तथा उसकी माया इतनी अधिक विचित्र है कि जिस कारण से संसार के बड़े बड़े पंडित भी वस्तु की यथार्थता का निर्णय करने में हार मान बैठे हैं। इसलिए जैनागम ही प्रमाण है, जिसकी यथार्थता के लिए किसी की भी शंका नहीं रहती है। सात द्वीप और सात समुद्र में ही संसार की समाप्ति हो जाती है। ऐसा अधूरा ज्ञान चाहे जिसको प्राप्त हो किन्तु केवली भगवान के केवल ज्ञान में तो असंख्य द्वीप और समुद्र हैं। संसार के

P. P. Ac. Gunratansuriji M.S. Jin Gun Aaradhak Trust

अनेक अनेक पदार्थ परोक्ष ही होते हैं। उस से वस्तु की यथार्थता कम नहीं होती है। मतिज्ञान की दुर्बलता, आँख इन्द्रिय की कमजोरी तथा परोक्ष पदार्थ को ग्रहण करने की शक्ति का अभाव और अपने अपने माने हुए ग्रन्थों के प्रति पूर्वग्रह इत्यादि अनेक कारणों से संसार के अनेक पदार्थों का निर्णय जैनागम के अभाव में नहीं हो सकता।

"आगम्यन्ते विविधपदार्थाः द्रव्यगुणपर्यायात्मकाः सत्यस्वरूपेण यत्र स आगमः" संसार के संपूर्ण जीव तथा अजीव–अधोलोक, तिर्यक लोक संबंधि का वर्णन इसप्रकार है।

एक दूसरे से संबंधित असंख्य द्वीप और समुद्रों के ठीक मध्य में जम्बू द्वीप है। जो गोल नारंगी के आकार का सही है किन्तु थाली के आकार जैसा है। उसके चारों तरफ चूडी (बंगडी) के आकार जैसा धातकी खंड है। इसप्रकार चूडीं के आकार को धारण करनेवाले अनुक्रम से लवण-समुद्र, घातकी खंड, कालोदधि समुद्र, पुष्कर द्वीप, पुष्करवरद्वीप, घृतोद समुद्र, इक्षुवरद्वीप, इक्षुवरोद समुद्र, नन्दीश्वर द्वीप, नन्दीश्वर समुद्र, अरुवणवरद्वीप, अरुणवरद समुद्र, इसप्रकार ढाई सागरोपम के जितना समय होता है उतनी ही संख्या प्रमाण में द्वीप और समुद्र जानने चाहिए। सबके अन्त में स्वयंभूरमण समुद्र है। इस समुद्र के बाद भी अल्प प्रमाण में चारों कोने में पृथ्वी है। तत्पश्चात् वातावली है और तिर्यक लोक समाप्त होता है।

इस द्वीप और समुद्र की चौडाई आगे आगे डबल (द्विगुणित) है। जैसें जम्बू द्वीप एक लाख योजन का है। लवण समुद्र उससे डबल यानी दो लाख योजन का है। घातकी खंड चार लाख योजन का है। इसप्रकार अंत तक स्वयंभूरमण समुद्र तक जानना चाहिए।

जम्बू द्वीप चारों तरफ लवण समुद्र से घिरा हुआ हे और लवणसमुद्र घातकी खंड नाम के द्वीप से घिरा हुआ है।

P. P. Ac. Gunratansuriji M.S. Jin Gun Aaradhak Trust

इस प्रकार सबका स्थान नियत है। लाख योजनवाले जम्बू द्वीप की मर्यादा पूरी होते ही दो लाख योजन का लवण समुद्र है और उसकी मर्यादा पूरी होते ही चार लाख योजन का घातकी खंड है। इस प्रकार अंत तक इसी तौर से जानना चाहिए।

एक योजन चार कोस (८ मील) का होता है। किन्तु यह माप उत्सेधांगुल से जानना चाहिए। जब इससे प्रमाणांगुल पांच सौ गुण अधिक होता है, इसलिए प्रस्तुत में १ योजन के २००० कोस समझने चाहिए।

जम्बू द्वीप के ठीक बीच में मेरु पर्वत है। वह गोल है। लाख योजन प्रमाण ऊंचा है। जिनमें से एक हजार योजन का भाग पृथ्वी में है। शेष ९९००० हजार योजन पृथ्वी पर है। नीचे के भाग को अधो लोक कहते हैं। जहाँ ७ नरक पृथ्वी तथा भवनपतियों का आवास होता है। समतलभूमि में असंख्य द्वीप और समुद्र है।

ऊर्ध्व भाग में वैमानिक तथा ज्योतिष्क देव हैं। यह मेरुपर्वत बाकी के मेरुपर्वतों की अपेक्षा बड़ा है। लाख योजन प्रमाणानुसार जम्बूद्वीप में भरत-क्षेत्र, हैमवंत क्षेत्र, हरिवर्ष क्षेत्र, महाविदेह क्षेत्र, रम्यक् क्षेत्र, हिरण्य क्षेत्र और ऐरावत क्षेत्र है।

ये सब क्षेत्र भरत क्षेत्र से उत्तर की तरफ है। और उनको विभक्त करनेवाले वर्षधर पर्वत है। व इस अनुसार हैं हिमवंत पर्वत, महाहिमवंत पर्वत, निषध पर्वत, नील पर्वत, रुक्मि पर्वत, और शिखरी पर्वत है। लाख योजनवाले जम्बू द्वीप में उपरोक्तानुसार सात क्षेत्र और ६ पर्वत स्थित है। उन्हें अनुक्रमानुसार माप सहित निम्नानुसार जानने चाहिए :–

भरत क्षेत्र–५२६ योजन ६ कला है।
हिमवंत पर्वत–१०५२-१२ कला है।
हैमवंत क्षेत्र–२१०५-५ कला है।
महाहिमवंत पर्वत–४२१०-१० कला है।

P. P. Ac. Gunratansuriji M.S. Jin Gun Aaradhak Trust

हरि क्षेत्र–८४२१-१ कला है।
निषध पर्वत–१६८४२-२ कला है।
महाविदेह क्षेत्र–३३६८४-४ कला है।
नील पर्वत–१६८४२-२ कला है।
रम्यक क्षेत्र–८४२१-१ कला है।
रुक्मि पर्वत–४२१०-१० कला है।
हिरण्य क्षेत्र–२१०५-५ कला है।
शिखरी पर्वत–१०५२-१२ कला है।
ऐरावत क्षेत्र–५२६-६ कला है।

यहां एक योजन का १९ वाँ भाग करना है। उनमें से उतने भाग समझने हैं जैसे कि भरत क्षेत्र ५२६ योजन है और ६/१९ कला है, यानी १९ भागमें से ६ भाग लेने, इस प्रकार सबको समझना है।

इस भरत क्षेत्र में पूर्व से पश्चिम तक लंबाईवाला वैताढ्य पर्वत है जिसकी दाढ़ाएं लवण समुद्र तक जाती है। यह पर्वत दक्षिणार्ध भरत और त्तरार्ध भरत दो नामसे इस क्षेत्र का विभाग कर देता है। उस क्षिणार्ध भरत में तीर्थंकर, चक्रवर्ती, वासुदेव, प्रति वासुदेव, बलदेव और ारद जन्म लेते हैं और धर्म की प्रवृत्ति होती है।

इसप्रकार संक्षेप में जान लेने के पश्चात् लवण समुद्र के ज्वारभाटा संबंधी विचार व्यक्त करते हैं क्योंकि प्रश्न का विषय ही यह समुद्र है।

इस समुद्र में चार बड़े पाताल कलश है। अर्थात् कलाशाकार के पदार्थ है। एक एक पाताल कलश लाख योजन का है। दूसरे भी छोटे छोटे अनेक पाताल कलश हैं और दोनों प्रकार के पाताल कलशों में नीचे के भाग में वायु है। बीच में वायु और जल है और ऊपर के भाग में पानी ही है। जिसमें अनेक प्रकार के वायुओं का स्पंदन तथा कंपन होता है। और वायु के कारण से छोटे और बड़े ७८२४ पाताल कलशों का पानी

उछलता है और उछाल मारते हुए उस पानी को ही भरती (ज्वार) कहते है। अष्टमी, चतुर्दशी, अमावस्या और पूनम को भरती (ज्वार) अधिक मात्रा में होती हैं। इसप्रकार ज्वार-भाटे का क्रम चालू रहता है और समुद्र वापस पूर्ववत् हो जाता है। ये सब बातें अनादिकाल से इस संसार की 'लोक स्थिति' के परिणाम से ही होती है।

संसार संचालन में कहीं पर भी गड़बड़ नहीं है। क्योंकि अरिहंत, तपस्वियों, त्यागिओं तथा सतीयों के पुण्यप्रभाव से लोकस्थिति इसप्रकार की नियत है। इसलिए समुद्र में चाहे जितना ज्वार आये तो भी संसार का कोई नुकसान नहीं होता है। ये पाताल कलश लवण समुद्र में ही होते हैं। इसलिए ज्वारभाटा इस समुद्र को ही लागू पड़ता है। जबकि दूसरे समुद्रों में इन कलशों के न होने के कारण वहाँ ज्वारभाटे का प्रश्न ही नहीं रहता है। इसलिए ही तीर्थंकर देवों को "सागरवर गंभीरा....का विशेषण सार्थक है। चाहे जितनी नदियों का पानी इस समुद्र में हिलोरे मारता रहे फिर भी समुद्र अपनी मर्यादा को नहीं छोड़ता।

वैसे ही तीर्थंकर देव भी सागर के तुल्य गंभीर इसलिए है कि बे शत्रु और मित्र, सुवर्ण और पत्थर, मान और अपमान आदि द्वन्दों में एक समान ही होते हैं।

कमठ नाम के अघमदेव ने पार्श्वनाथ भगवान् की हत्या करने हेतु उपसर्ग किये और धरणेन्द्र तथा पद्मावती ने प्रभु की पूजन की तो भी भगवान् दोनों के लिए समदृष्टि रहे हैं।

कौशिक गोत्रवाले चंडकौशिक सर्प ने भगवान् महावीरस्वामी के चरण में डसकर प्राणघातक हमला किया है, और कौशिक गोत्र के इन्द्र महाराजा ने भगवान् के चरणों में अभिवन्दन किया है तो भी ये दयालु देव दोनों के विषय में राग द्वेष बिना के रहे हैं। इसीके कारण ही भगवान् महावीरस्वामी योगियों के भी नाथ हैं।

P. P. Ac. Gunratansuriji M.S. Jin Gun Aaradhak Trust

अंगों में विभूति (राख या भस्मी) लगा लेना, कान फाड़ने तथा पंचाग्नि साधना वगैरे योग के लक्षण नहीं हैं ।

इसप्रकार प्रस्तुत प्रश्न को समाप्त करने के पूर्व रागद्वेष से परिपूर्ण, मोह-माया के जाल में मग्न हुए, विषय वासना की ज्वालाओं से दग्ध हुए, मानरूपी अजगर से डसे हुए, मायारूपी सर्पिणी से बेचैन बने और लोभरूपी राक्षस द्वारा ग्रसित, अपने जीवन में भी पाताल कलश की कल्पना करनी चाहिये जो आशा तृष्णा आदि वायु से युक्त हैं और प्रतिक्षण कषाय और कषायों के वातावरण से हमारे जीवन में अशुद्ध और अशुभ मानसिक विचार धाराओं का ज्वार बढ़ता ही रहता है ।

समुद्र में ज्वार आने पर नुकसान हो या न हो । किन्तु हमारे जीवन के पाताल कलशों में जो तूफान आ गया तो भयंकरतम नुकसान किये बिना नहीं रहता है ।

" पाताल कलशा यत्र भृतास्तृष्णा महानिलैः ।
कषायाश्चित्तसंकल्प-वलावृद्धि वितन्यते ॥ "

॥ तीसरा उद्देशा समाप्त ॥

※ ※ ※

P. P. Ac. Gunratansuriji M.S. Jin Gun Aaradhak Trust

भावितात्मा अनगार की शक्ति

इस प्रकरण में भावितात्मा अनगार देव तथा देव के यान को देखते हैं क्या ? वायुकाय का रूप, बलाहक मेघ का रूप, लेश्या के द्रव्य, भावितात्मा की विकुर्वणाशक्ति, मायी प्रमत्त और अमायी की विकुर्वणाशक्ति वगैरे संबंधी प्रश्नोत्तर हैं। सार इस-प्रकार है:–

भावितात्मा अनगार, यानी संयम और तप से भावित ऐसे अनगार, बहुधा अर्थात् ऐसे अनगार को अवधिज्ञानादिक लब्धियाँ होती हैं।

अनगार वैक्रिय समुद्घात से समवहत हुए और यान रूप से गति करते हुए देव को किस प्रकार देखते हैं ? उनके संबंध में कहा है कि कोई देव को देखता है किन्तु यान को नहीं देखता है। कोई यान को देखता है किन्तु देव को नहीं देखता है। कोई देव और यान दोनों को देखता है और कोई देव और यान दोनों में से किसी को नहीं देखता है।

इसी प्रकार देवी संबंधी, देवीवाला देव संबंधी, पेड के अंदर का और बाहर का भाग देखने संबंधी वृक्ष का फल और बीज

P. P. Ac. Gunratansuriji M.S. Jin Gun Aaradhak Trust

संबंधी भी जान लेना। ऊपर के चार भाग सर्वत्र लागू होते हैं। ※ ४६

※ ४३ अवधिज्ञानादिक लब्धियों की प्राप्ति भावितात्मा अनगार को ही होती है। " न विद्यतेऽगारं गृहं यस्य स अनगारः, " गृहणी गृह मुच्यते, अर्थात् धर्मपत्नी के परिग्रह में संसारभर के परिग्रह को आना सरल होता है। इसलिए जो परिग्रही होते हैं वे गृहस्थ होते हैं किन्तु अनगार नहीं हो सकते। " संयमतपोभ्यां भावितः स्थिरीकृत आत्मा येन स भावितात्मा। " ऐसें संयमी अपने अवधिज्ञान से पदार्थो को ग्रहण करते है और ज्ञान की विचित्रता को लेकर किसी समय में विमान में बैठे हुए देव को देखते हैं। किन्तु दूसरे समय में अकेले विमान को ही देखते हैं। तो किसी समय दोनों को देखते हैं और दूसरे समय में किसी को भी नहीं देखते है। इसीप्रकार किसी समय में पेड़ के मूल को देखते हैं तो किसी समय शाखाओं को देखते हैं। तो किसी समय पेड़ की छाल को, पुष्प को, पत्र को तथा फल को देखते हैं। क्योंकि अवधिज्ञान के तारतम्य से पदार्थों के ज्ञान में भी तारतम्य आता है।

हिंसा, संयम और तप का स्पष्टीकरण

जो भावितात्मा अहिंसा संयम और तप के आराधक हैं, उनको ही लब्धियाँ प्राप्त हो सकती हैं।

'तपश्चर्या की आराधना और उनका शुभ फल तथा अहिंसा धर्म की आराधना यानी वैर और विरोध की निवृत्ति की सफलता किसके आभारी है ? उसे जरा देख लेना चाहिए।

अहिंसा यानी किसी भी जीव को क्रोध, मान माया और लोभ में आकर मन वचन तथा काया से मारना नहीं, मरवाना नहीं, और मारनेवाले का अनुमोदन करना नहीं, यही अहिंसा है।

P. P. Ac. Gunratansuriji M.S. Jin Gun Aaradhak Trust

"रागादीनामुत्पत्ति रेव हिंसा" बाह्य निमित्तों को लेकर आत्मा में राग द्वेष की उत्पत्ति होना, वही हिंसा है। यानी उस राग द्वेष की उत्पत्ति को रोकना, यही अहिंसा है।

शरीर के रस, खून, मांस हड्डी, मज्जा और शुक्रादि धातुओं को तपश्चर्या रूपी अग्नि में खूब तपाने के बाद उसमें रहे हुए तामसिक और राजस वृति के परमाणुओं को भस्म कर देते हैं उसे तपस्या कहते हैं। देह को शुद्ध रखते हैं। मन को पवित्र बनाते हैं और संपूर्ण जीव राशि के साथ मैत्री भाव पैदा करावे, उसे तपश्चर्या कहते हैं। भोगे हुए भोग तथा उपभोग में पाप कर्म की भावना समझाकर तथा शुद्ध भाव से प्रायश्चित कराकर समिति गुप्तिरूप योग मार्ग में स्थिर करना, यही तपश्चर्या है।

अपने मन में हिंसानुवन्धी, मृषानुवंधी और मैथुनानुवंधी आदि विचारों को स्वप्न में भी स्थान नहीं देना, यही तपश्चर्या है।

ऐसे पवित्रतम अहिंसा धर्म और तपोधर्म की प्राति करावे और प्राप्त किये हुए को स्थायी बनावे उसे संयम धर्म कहते हैं।

उसका सरलार्थ यह है कि संयम धर्म की प्राप्ति हुए विना अहिंसा धर्म तथा तपोधर्म भी प्राप्त हो सके, ऐसा नहीं है। साथ ही साथ अहिंसा तथा तप में शुद्धि भी नहीं आ सकती हैं। संयम की आराधना में जितना अंश रागद्वेष और स्वार्थ का होगा, उतने ही अंशों में अहिंसक और तपस्वी राग द्वेष से युक्त बनकर स्वार्थान्ध, मोहान्ध और क्रोधांध बनेंगे। स्वार्थान्ध मनुष्य हजारों लाखों आदमियों के साथ शठतापूर्वक वातावरण को योजना करेंगे, इसलिए वह हिंसक है। मोहान्ध मनुष्य विनय और विवेक विना का होने पर मानव समाज को भी विनय और विवेक विना का बना गे। और क्रोधान्ध मनुष्य का बाह्य वैराग्य अनेक जीवों को वैर विरोध के मार्ग पर ले जायगा।

इसलिए ही संयम के बिना अहिंसा नहीं है तथा तपोधर्म भी नहीं है। बिना संयम के चाहे जितना ही अहिंसक क्यों न हो उसकी आन्तरिक वृत्तियों

P. P. Ac. Gunratansuriji M.S. Jin Gun Aaradhak Trust

में धूर्तता वक्रता और परद्रोह बना होगा। वैसे ही संयम बिना का तपोधर्मी भी आन्तरिक जीवन में खाने पीने की वस्तुओं के प्रति ललचाने के कारण उनकी आभ्यन्तर वृत्तियां गुप्तरीति से भोग मार्ग के प्रति झुकेगी। इसलिए उस साधक की अहिंसा भी अशक्त रहेगी और तपोधर्म भी आधि व्याधि तथा उपाधि को बतानेवाला होगा।

संयम की विशाल समझदारी के बिना मानव षट्काय जीवों की रक्षा में बेदरकार होने से हिंसक हैं। उनमें भी जीवों को रक्षा में बेध्यान रहना वह द्रव्य हिंसा है और असंयमी जीवन स्वतः भावहिंसा ही है। संयम रहित मनुष्य मनपसंद शब्दों मे, रसो में, रूपों में, सुगन्धों में और कोमल स्पर्शों में आसक्त होनेसे वह संयमी नहीं लेकिन भोगी है। संयम के बिना मानव आन्तरिक जीवन में मन दंड, वचनदंड, और काय दंड का मालिक है। उस कारण से तीन प्रकार के दंडों के प्रभाव से उनका मानसिक, वाचिक और कायिक जीवन भी हिंसक बना रहेगा। इसलिए ही मन, वचन और काया के दंड को निग्रह करने के लिए यानी मनगुप्ति से मनदंड को काबू में लेना, वचन गुप्ति और भाषा समिति से वचनदंड को कब्जे में लेना और कायगुप्ति तथा ईर्या समिति द्वारा कायदंड का निग्रह करना, वह संयम है।

ईर्या समिति, भाषा समिति, एषणा समिति, आदान निक्षेप समिति था उत्सर्ग समिति इसप्रकार पांच समिति और तीन गुप्ति में प्रवृत्ति करने वाले को एकेंद्रियादि प्राणियों की पीड़ा का परिहार रूप संयम है। इसी बात को दस वैकालिक सूत्र के दसवें अध्ययन की १५ वीं गाथा से विचारना चाहिए।

हत्थसंजए, पायसंजए, वायसंजए; संजयइन्दिए

अर्थात् हाथ, पैर, वाणी और इन्द्रियों को कंट्रोल करना वह संयम है। ऐसा संयमी ही अहिंसक और तपस्वी होता है।

हाथ का संयम अर्थात् हाथ को संयमित रखना।

P. P. Ac. Gunratansuriji M.S. Jin Gun Aaradhak Trust

अनादि काल से पड़ी हुई बुरी आदतों के कारण दूसरे को मारने या धमकाने के अध्यवसाय से हाथ उठाया जाता है। खराब चेष्टाओं के लिए अंगुलियों से इशारा करता है। दूसरे को डराने के लिए तर्जनी अंगुलि का उपयोग करता है। खोटे तोल माप करना तथा हिसाब की वहियों में खोटे लिखना तथा गलत सही करने में एस प्रकार से हिंसक भाव का ही उपयोग होता है। इस प्रकार के कारणों से बुरी आदतों को दूर करना, 'हत्थसंयम कहलाता है।

पायसंयय–आश्रव द्वारा जो स्थान सेवन किया जाता है और जिससे अपने गुरु, वीतरागदेव, जैन धर्म और अपने चरित्र का द्रोह होता है। ऐसे स्थान में तथा ऐसे कार्यों में पैर का उपयोग नहीं करना। ईर्या समिति का तात्पर्य भी इतना ही है कि संयम की आराधना के लिए ही एक आसन ऊपर बैठने के लिए अभ्यास करना और गुरु की आज्ञा से ही गमनागमन करना, यह पादसंयम है।

वाक्संयम—यानी जिह्वा को जो अच्छा लगे वैसा नहीं बोलना, वैसे ही खाना भी नहीं क्योंकि धर्म विरुद्ध और गुरु की आज्ञा की मर्यादा का उल्लंघन करके किसी को चाहे जैसे बोलना और चाहे जैसे खाना, यह वाक्य असंयम है।

अनादिकाल की कुवासना के कारण चाहे जैसे बोलने की और चाहे जिसके साथ बोलने की आदत पड़ी हुई हो तो उसे कावू में रखने के लिए पुरुषार्थ करना, वह वाक्संयम है।

जहाँ संयम वहाँ संवर है, जहाँ संवर है वहाँ आश्रवमार्ग बंध होने से कर्मबंधन नहीं होते हैं। और जहाँ आते हुए कर्मों को रोक लिये हैं, वहाँ पुराने कर्मों की निर्जरा होते देर नहीं लगती है, और जहाँ निर्जरा है वहाँ अवश्य मोक्ष है और मोक्ष में अव्यावाध तथा अनंत सुख ही है।

संज इन्द्रिय– यानी पांच इन्द्रियों को तथा उपस्थ। (पुरुष चिन्ह

P. P. Ac. Gunratansuriji M.S. Jin Gun Aaradhak Trust

अब वायुकाय एक बडी पताका के आकार जैसा रूप बनाती है और वैसा करके अनेक योजन तक गति करने में वह समर्थ होती है। यह वायुकाय आत्मऋद्धि से गति करता है किन्तु पवन की ऋद्धि तथा शक्ति से गमन नहीं करता है। जैसे आत्मऋद्धि से गमन करता है वैसे आत्मकर्म से और आत्मप्रयोग से भी गति करता है। यह वायुकाय ऊँची पताका या गिरी हुई पताका के सरीका दोनों प्रकार के रूप बनाता हैं, यह पताका एक ही दिशा में होती है, ऐसा रूप बनाकर गति करता है। यह वायुकाय पताका नहीं है लेकिन उसका रूप ऐसा बनता है।

इसीप्रकार बलाहक यानी मेघ के संबंध में भी है–मेघ एक बडा स्त्री रूप करके अनेक योजन तक जा सकता है। इसप्रकार

तथा स्त्री चिन्ह) तथा गुदास्थान को असंयम के रास्ते मे जाते हुए को ज्ञान वैराग्य से रोक लेना, उसे इंद्रियसंपम कहते है।

अनंत भवों से भ्रमण करने में इन्द्रिय संयम सर्वथा दुस्त्याज्य है। थोंकि प्रत्येक भव में इस आत्मा ने संसार बनाया है, सजाया है और भोगा है और पांच इंद्रियों के २३ विषयों में पूर्ण रूप से आसक्त हुआ है। इसलिए पहले भवों की कुवासना तथा कुचेष्टारूपी असंयम के संस्कार इस भव में भी उदय आए विना नहीं रहते हैं और उदय में आये हुए अथवा उदीरणा करके उदय में लाई हुई इन्द्रियों के असंयम को ज्ञान रूपी लगाम से वश में लाया जा सकता है।

शास्त्रों में शरीर को रथ की उपमा दी है। आत्मा रूपी शेठ के हाथ में जो ज्ञान रूपी लगाम, गुरुकुलवासरूपी कवच (बख्तर) और वीतरागदेव की आज्ञा रूपी तलवार होगी ? तो इन्द्रियों के घोड़ों को वश में करते देर नहीं लगती है।

P. P. Ac. Gunratansuriji M.S. Jin Gun Aaradhak Trust

मेघ आत्मऋद्धि से गति नहीं करते हैं। यह मेघ-बलाहक स्त्री नहीं, पुरुष, हाथी घोडो वगैरह भी नहीं किंतु बलाहक है, मेघ है। स्त्री-पुरुष हाथी-घोडा-यह तो इनके रूप हैं। इसी प्रकार यह बलाहक यान का रूप बना करके अनेक योजन तक गति करता है।

यह मेघ-बलाहक इस आकाश में दिखाई देता है। वह है। आकाश में उनके अनेक रूप दिखाई देते हैं। मेघ यह तो अजीव है। स्वभाव से इसका परिणमन होता है। मेघ अपनी शक्ति से-तथा ऋद्धि से गति नहीं करता है किंतु वायु किसी देव की प्रेरणा से

अन्यथा मिथ्याज्ञान, भ्रमज्ञान, बुद्धि विपरीतता रूपी शिथिल लगाम हाथ में आते ही इंद्रियाँ रूपी अश्व भी तूफान मचाये बिना नही रहते। ऐसी अवस्था में कषायों की परिणति अवश्यं भाविनी है। और जहाँ कषाय हैं वहाँ मानसिक विचार अशुद्ध और मलिन ही बने रहते हैं। इसलिए इन्द्रियों के संयम को ही संयम करते हैं।

मोक्ष प्राप्ति के लिए तथा गुण ठाणाओं को एक के बाद दूसरे को प्राप्त करने में संयम की आवश्यकता सर्वथा अनिवार्य है। इस प्रकार संयम और तपोधर्म की आराधना करने वाले अणगार को अवधिज्ञान की लब्धियां प्राप्त होती हैं।

इस प्रकार तो पहले और चोथे गुणठाणे रहनेवाले देव और नारकों को भी अवधिज्ञान होता है किन्तु उस ज्ञान का उपयोग केवल खुद के पुण्य और पाप के फल को भोगने के लिए ही किया जाता है।

सम्यक्त्व के मालिक देवों को अवधि ज्ञान का उपयोग तीर्थंकर देवों के पंचकल्याणक की आराधना के लिए काम में आता है।

P. P. Ac. Gunratansuriji M.S. Jin Gun Aaradhak Trust

ही गमन करता है। इसलिए कहने में आता है कि परऋद्धि से गमन करता है।

अब लेश्या के संबंध में कहा गया है कि जो जीव नैरयिकों में, ज्योतिषिकों में वैमानिकों में उत्पन्न होने योग्य है। वे कैसी लेश्यावालों में स्थित होते हैं? इसके जवाब में कहा है कि जीव जैसी लेश्यावाले द्रव्य को ग्रहण करके मृत्यु को प्राप्त करता है, उसी लेश्यावाले में वह उत्पन्न होता है। ※ ४७

※ ४७ स्थावर नाम कर्म के कारण वायुकाय स्थावर जीव ही है। फिर भी क्रिया की अपेक्षा से एक स्थान से दूसरे स्थान पर गति करते हैं। वायु का आकार ध्वजा के समान है। विकुर्वणा करता हुआ वायु, स्त्री, पुरुष, हाथी आदि आकार से तथा यानादि आकार से विकुर्वणा नहीं करता है। किन्तु बढ़ी पताका के जैसे आकार की विकुर्वणा करते हैं और अनेक योजन तक गति करता है।

स्वतः शुद्ध वायु भी जिन पुद्गलों को स्पर्श करके हम को स्पर्श करता है और उन पुद्गलों में रहे हुए शुभ या अशुभ गंध को हम घ्राणेन्द्रिय द्वारा ग्रहण करते हैं। तब वह वायु भी सुगन्धी या दुर्गन्धी कहा जाता है। और जब पुद्गलों का साहचर्य समाप्त होता है तब वायु भी अपने मूल स्वभाव में आ जाता है।

गुलाब के फूल के मध्य में रहा हुआ पीला रजकण पौद्गलिक होता है और उसमें सुगन्ध रहती है। वायु के साथ अकेला गंध गुण मिश्रित नहीं होता है क्योंकि गुण द्रव्याश्रित होने से गुणी को छोड़कर अकेला नहीं रह सकता। इसलिए गुलाब के फूल में रही हुई सुगंध गुणवाले पौद्गलिक रजकणों को वायु साथ लेता है और सब को सुगन्धित करता है। उसी प्रकार गंदे स्थान में से दुर्गन्ध पुद्गल वायु के साथ मिल जाते हैं तब सबको दुर्ग-

P. P. Ac. Gunratansuriji M.S. Jin Gun Aaradhak Trust

न्धित कर देते हैं। वैसा होने पर हमारी आत्मा सुख दुःख के भाव को प्राप्त करते हैं।

पुद्‌गलों की शक्ति

कोई भी पुद्‌गल हमारी आत्मा को तभी हानि पहुँचाता है जब हमारा मन असंस्कारी और दुर्वासिना का शिकार बना हुआ होता है। तथा मोहराजा का गुलाम होता है। उस समय आत्मा भी इन्द्रियासक्त, अशक्त, कषायाधीन और प्रतिक्षण रति अरति के विचारों में डूबा हुआ होने से आत्मा में पुद्‌गलों के चमत्कार का सर्जन होता है और जीवात्मा मोहराज की जंजीर में बंध जाता है।

जब आत्मा स्वयं सावधान होकर मुनीम के समान मन के आधीन नहीं बनता है और अनादि काल के मोहराजा की राजधानी का त्याग करके वैराग्य राजा की छावणी में प्रवेश करता है। तब एक के बाद एक कर्मों की वर्गणा को अपने आत्म प्रदेशों से बिखेर देता हुआ वह जीवात्मा अपनी अनंत शक्ति के माध्यम से आगे आगे बढ़ता जाता है और यथाप्रवृति, अपूर्व तथा अनिवृत्ति नाम करण यानी अपनी ही शक्ति से अपनी इच्छा से 'सम्यक दर्शन' प्राप्त करने के लिए पूर्ण रूप से तैय्यार हो जाता है, तब आत्मा में नवीन अभूतपूर्व उत्साह आ जाता है। नया ओज आता है। जिससे आत्मा के अध्यवसाय शुद्ध, शुद्धतर और शुद्धतम बनते है। उसी समय यहाँ तक कि मिथ्यात्व गुणस्थानक के अंतिम भाग में और सम्यक्त्व प्राप्त होने के समय पर ही आत्मा यदि आयुष्य कर्म बांधती है तो नीचे के अशुभ स्थानों को नहीं बांधती है, जो अत्यन्त निन्दनीय स्थानक है, वह निम्नानुसार है :-

"नरकायु, नरकगति, नरकानुपूर्वी, एकेन्द्रियत्व, दोइन्द्रियत्व, तीन-इन्द्रियत्व, चतुरिन्द्रियत्व, स्थावर नाम कर्म (पृथ्वी, पाणी, अग्नि, वायु, वनस्पति) सूक्ष्मनामकर्म, अपर्याप्त नाम कर्म, साधारण वनस्पति काय (अनंतकाय) हुंडकसंस्थान, आतपनामकर्म, सेवर्त संघयण, नपुंसकवेद, और मिथ्यात्व मोहनीय कर्म ये १६ प्रकार के अतीव अनिष्ट कर्मो को अनंत

P. P. Ac. Gunratansuriji M.S. Jin Gun Aaradhak Trust

शक्ति की तरफ प्रस्थान करता हुआ आत्मा नहीं बांधता है। क्योंकि मिथ्यात्वकी उपस्थितिमें ही उपर के कर्म बंधते है।

मिथ्यात्व यानी आत्मा का दुःसाध्य रोग, महागाढ अंधकार, परमशत्रु विष और कातिल जहर है क्योंकि रोग, अन्धकार, शत्रु तो एक ही भव में दुख देते हैं किन्तु मिथ्यात्व के कारण जीवात्मा हजारों भव तक दुःखी बनता है। जैसे जात्यन्ध अपने पास रही हुई अच्छी या बुरी वस्तु को देखने में असमर्थ होता है, वैसे ही मिथ्यात्ववासी आत्मा भी तत्त्व-अतत्व, खाद्य-अखाद्य, पेय-अपेय, कृत्य-अकृत्य आदि की जानकारी प्राप्त नहीं कर सकता। अतः त्याज्य वस्तु का त्याग और स्वीकार्य वस्तु को स्वीकार करने का विवेक उनमें नहीं है, इसलिए नीचे के १६ स्थानकों को प्राप्त करता है।

१ एक स्थान से दूसरे स्थान में जाने के लिए मिथ्यात्वी आत्मा सबसे पहिले नरक में जाने के लिए आयुष्कर्म बांधता है। बाद में नरकगति नाम कर्म और वह स्थान प्राप्त हो, उसके लिए नरकानुपूर्वी नाम कर्म बांधता है। जहाँ सुख है ही नहीं।

२ एकेन्द्रियत्व-जहाँ बहुत अस्पष्ट वेदना है।

३ विकलेन्द्रित्व में इन्द्रियों की पूर्णता का अभाव और उन उन प्राणों का अभाव उनके लिए अत्यन्त दुखदायी होता है।

४ स्थावर योनि में उन जीवों पर चाहे जितनी वर्षा, ठंडी या गर्मी पड़े अथवा उनको कोई कांटे, छेदे फिरभी एक स्थान से दूसरे स्थान पर नहीं जा सकते हैं।

५ सूक्ष्म नाम कर्म के कारण उनका सूक्ष्म-अदृश्य शरीर होता है।

६ अपर्याप्त अवस्था-यानी खुदकी पर्याप्तियाँ पूरी किये बिना ही मरना पड़ता है।

७ साधारण वनस्पति काय प्राप्त होनेसे एक शरीर में असंख्य या अनन्तजीव भयंकर वेदना भोगते रहे हैं।

P. P. Ac. Gunratansuriji M.S. Jin Gun Aaradhak Trust

८ हुंड़क संस्थान में मनुष्यत्व प्राप्त करने के बाद भी सब अंगों में थोड़ा बहुत दोष रह जाता है।

९ सेवार्त संघयण-जहाँ हड्डियाँ बहुत कमजोर होती हैं।

नपुंसकों का वर्णन

नपुंसक वेद जिससे स्त्री तथा पुरुष के विषय में मैथुनेच्छा बनी रहती है उसे नपुंसक वेद कहते हैं।

इस नपुंसक वेद को प्राप्त हुए नपुंसक, अत्यन्त पाप से भरे हुए अध्यवसायी होते हैं। उसमें भी दस प्रकार के नपुंसक तो धर्म, कर्म के अयोग्य होते हैं। दीक्षा के लिए सर्वथा अयोग्य होते हैं। उनका सहवास भी पापवर्धक होता है। दुराचार को आमंत्रण देनेवाला होता है। यह नपुंसक महाकषायी सर्वत्र निंदनीय प्रवृत्ति करने वाले और दूसरों को बिगाडने वाले होते हैं।

जैसे बड़े शहर में लगी हुई आग जल्दी से शान्त नहीं होती है वैसे ही पंडक, वातिक, क्लीब, कुंभी, ईर्ष्यालु, शकुनी, तत्कर्म सेवी, पाक्षिका पाक्षिक, सौगन्धिक और आसक्त नाम के दश प्रकार के नपुंसकों का वेदोदय शीघ्रता से शान्त नहीं होता है। इसलिए उनका अध्यवसाय अत्यन्त मलिन होने से उनका सहवास भी निन्दनीय माना है।

पुरुष चिन्ह तथा स्त्री चिन्ह बिना के नपुंसक, शरीरसे नपुंसक होते हैं, इसलिए साध्य है। किन्तु ऊपरोक्त जो १० नपुंसक हैं, वें असाध्य है।

पंडक भी छः प्रकार होते हैं।

(१) पुरुषाकार में जन्म लेने पर भी स्त्री की तरह लटक मटक करने वाला होता है।

(२-३) शरीर का वर्णन, आकार, गन्ध, स्पर्श वगैरह स्त्रीवत् होते हैं।

(४) जिस का मेहन आत्यन्त ही स्थूल होता है।

(५) भाषा मृदु और नम्र होती है।

(६) मूत्रोत्सर्ग (लघुशंका) स्त्री के समान आवाज करता हुआ और बिना फेन का होता है।

(२) वातिक–मेहन (पुरुषचिन्ह) में उत्तेजना होने के बाद खुदके वेद को रोकने के लिए असमर्थ होता है।

(३) कलीब–जो दृष्टि, आलिंगन, शब्द और आमंत्रण चार चार प्रकार के कलीब होते हैं।

(१) पुरुष या स्त्री को तथा बालक या बालिका को नग्न अवस्था में देखतेही क्षुब्ध होने वाले होते हैं।

(२) स्त्री की आवाज सुनते ही क्षुब्ध हो जाता है।

(३-४) स्त्री द्वारा आमंत्रित तथा स्पर्शास्पर्श में जो अपनी मर्यादा से भ्रष्ट हो जाता है।

(४) कुंभी–जिसका वृषण स्थूल (बड़ा) होता है।

(५) ईर्ष्यालु–प्रतिसेव्यमान स्त्री को देखकर खुद ईर्ष्यालु वन जाता है।

(६) तत्कर्मसेवी–मैथुन करने के बाद में वीर्य पतन को कुत्ते के समान अपनी जिव्हा से चाटता है।

(७) पाक्षिका पाक्षिक–जिसको शुक्ल पक्ष में वेद का तीव्र उदय होता है और कृष्ण पक्षमें अल्प।

(८) सौगन्धि–वेदकर्म की उदयता के कारण अपने मेहन को सूंघा करता है।

(९) शकुनी–नर तथा मादा चिड़िये की तरह उत्कट वेद के वशवर्ती होकर बारंवार मैथुन के प्रति ही जो मन रखता है।

(१०) आसक्त–वीर्यपात होने के बाद भी पुरुष स्त्री के ऊपर से दूर नही होता है और स्त्री के अंगो में आसक्त होता हैं।

P. P. Ac. Gunratansuriji M.S. Jin Gun Aaradhak Trust

उपरोक्त नपुंसक चाहे स्त्री हो या पुरुष अपने मोहकर्म को नियंत्रण नहीं कर सकते हैं और असभ्य चेष्टाओं के प्रति ही खूब आसक्त होकर रात दिन उसी में मस्त रहते हैं। इसीलिए ही नपुंसक वेद भयंकर पापजनक है और पूर्वभव के महा भयंकर कर्मों के कारण या इस भव की मोह चेष्टाओं के कारण इस कर्म का उपार्जन होता है।

संसारवर्ती आत्माओं के दो विभाग हैं।

पहले विभाग में सुख की सामग्री प्राप्त किये हुए और उसे भोगने वाले होते हैं।

दूसरे विभाग में सुखसामग्री का सर्वथा अभाव रहता है। इसलिए सुख किसे कहते हैं , उसे नहीं जानते हैं।

सद्गुरु की सेवा करने से हमारे हृदय में यदि सम्यक्त्व का वास होगा तो उसके द्वारा प्राप्त सम्यक् वुद्धि और सद्विवेक द्वारा वहुत ही शुभ कर्म वांधने का अवसर मिलेगा और हृदय मंदिर में मिथ्यात्व का वास होगा तो मिथ्यावुद्धि, असद् विवेक के माध्यम से भयंकर में भयंकर पापस्थानकों सेवन करता हुआ यह जीव अपने संसारको दुःखी वनायगा और भावी में भी दुःख के साधनों के साथ साथ उन स्थानों में ही जन्म लेगा। जहाँ खाने में पीने में रहने में और अन्य संबंधो में कहीं भी सुख नहीं मिलेगा।

स्त्रीवेद का कारण

वुद्धिमान आत्मा को जब समझ आती है और अपने कर्त्तव्य को पहचानता है तब अपनी प्रचंड शक्ति का उपयोग करके धार्मिक जीवन में अपना मन लगायगा' तव मिथ्यात्व स्थानकमें से वाहर आकर सद्वुद्धि, सद्विवेक, ज्ञान, वैराग्य, स्वाध्याय, तपश्चर्या रूपी शस्त्रों को हाथ में लेकर मिथ्यात्व से युद्ध करेगा तब सम्यक्त्व, सम्यक् दर्शन नाम के गुणठाणे प्राप्त करेगा। तब मिथ्यात्व का नाश अथवा उपशम को प्राप्त हो जाने से उपरोक्त अशुभ स्थान, अनार्य कुल, अनार्य मातापिता अथवा अपने शरीर की असुन्दरता को प्राप्त करने की योग्यता

P. P. Ac. Gunratansuriji M.S. Jin Gun Aaradhak Trust

नष्टहो जायगी इसका सरलार्थ यह हुआ कि सम्यक्त्व प्राप्त जीव चाहे मनुष्य हो या स्त्री, गृहस्थ हो या साधु, उसका आत्मबल इतना मजबूत होता है कि अपने शुद्ध अध्यवसाय द्वारा आते हुए भव में नरकगति, विकलेन्द्रिय तथा एकेन्द्रियादि जाति तथा नपुंसक वेद जैसे अत्यन्त पाप वर्धक तथा घृणित स्थान उसे नहीं मिल सकते हैं।

यह है सम्यक्त्व का चमत्कार, जिस कारण से अनंतानुबंधी कषाय दब जाने के कारण ही आत्मा को उन्नत मार्ग पर जाने का रास्ता, उद्घाटित होता है। जब जब कषाय अपना स्वरुप प्रकट करने जाते है तब तब यह समकिती आत्मा उन कषायों को नष्ट कर देता है, भगा देता है अथवा उनको पुनः दबा देता है जिससे कषाय वहाँपर अपना प्रभाव नहीं फैला सकता। ये सब बातें ज्ञान शक्ति को प्राप्त हुई आत्मा में स्वयं जागृत होने के कारण अपने आप होती रहती है।

यह आत्मा शायद दुर्भव्य हो अथवा पांच पच्चीस भव तक संसार में परिभ्रमण करने वाला हो और अभीतक मिथ्यात्व गुणठाणे न पहुँचा हो उस समय भी अर्थात् एक बार सम्यक्त्व को स्वर्श करके शक्तिशाली हुई यह आत्मा यद्यपि सम्यक्त्व से च्युत होगई है, फिर भी अनंतानुबंधी क्रोध, मान, माया, लोभ, बीच के ४ संस्थान के (न्यग्रोध, सादि, वामन और कुब्ज) इस प्रकार चार संघयण (ऋषभनाराच, नाराच, अर्धनाराच, कीलिका) नीच गोत्र, उद्योतन नामकर्म, अशुभविहायोगति, स्त्रीवेद आदि जो निन्दनीय और आर्त ध्यान कराने वाले स्थान हैं। उनको भी नहीं बांधता है। क्योंकि ये स्थान अनंतानुबंधी कषायों के कारण बांधे जाते है। सम्यक्त्व की विद्यमानता में इन कषायों का जोर नहीं चलता है। इसमें के दूसरे स्थान तो कर्मग्रंथ से जानलेने चाहिए। केवल स्त्रीवेद के विषय पर थोडासा विवेचन यहाँ कर लेते हैं।

जैसे पित्त के प्रकोप के कारण विविध जाति के मीठे पदार्थ खाने की इच्छा होती है। वैसेही महापापी भावनाओं के कारण निदानपूर्वक बांधा

P. P. Ac. Gunratansuriji M.S. Jin Gun Aaradhak Trust

हुआ स्त्रीवेद जब स्त्रीलिंग को प्राप्त होता है। तब मानसिक कल्पना में और अनुकूलता मिलने पर अलग अलग पुरुषों को भोगने के लिए यह आत्मा तैयार रहती है अर्थात् पुरुषों के साथ संबंध करने में उनकी तीव्र अभिलाषा बनी रहती है। उसे स्त्रीवेद कहते हैं।

उपरोक्त स्थिति तो स्त्रीलिंग को धारण करने के बाद की है। जब पुरुषलिंग को धारण करने वाले मनुष्य पुरुष वेद के अत्युत्कट उदय के कारण अथवा मोह कर्म की उदीरणा करने पर वैसाही सहवास मिल जाता है। जिससे दूसरी स्त्रियों को भोगने की तीव्र अभिलाषा वाला पुरुष, धन की-शक्ति से, रूप रंग की शक्ति से, वाचालता के माध्यम से, दुष्ट भाव से उन उन स्त्रियों के साथ भोगविलास में रमण करता है। अतः उसके तीव्र परिणाम को प्राप्त हुई यह आत्मा अगले भव के लिए स्त्रीलिंग अर्थात् स्त्री अवतार को प्राप्त करती है।

सार यह है कि समकीत से भ्रष्ट हुई आत्मा भी इतनी अधिक जागृत तथा शक्तिशाली होती है कि जिस कारण से ऊपर के स्थान तथा स्त्रीवेद भी उपार्जन नहीं करता है। क्योंकि जब तक मिथ्यात्व गुणस्थानक नहीं आता है तब तक आत्मा में शुद्ध भाव ही रहते हैं और अपनी शुद्ध लेश्याओं द्वारा दुर्गति को प्राप्त नहीं करता है।

अब इन प्रश्नोत्तर की पूर्णाहुति में आत्मा के साथ जबतक सम्यक्त्व रहता है तबतक आत्मा वायुकी तरह सुगंधित होती है। मिथ्यात्वरूपी दुर्गन्ध पुद्गल के सहवास से आत्मा के धर्म कर्म का आडंबर केवल भारभूत होता है। जिससे खुद बिगड़ता है और दूसरों को भी बिगाड़ता है।

मेघ के आकार

बलाहक यानी मेघ जो अचेतन है। वायु की प्रेरणा से आकाश में भिन्न भिन्न रूप धारण करके अनेक योजन तक जा सकता है। भगवान फरमाते हैं कि आकाश में प्रत्यक्ष रूप से बादल भिन्न भिन्न आकार वाले

P. P. Ac. Gunratansuriji M.S. Jin Gun Aaradhak Trust

होते हैं । वायु के सहयोग से गति करते हैं मेघ के भिन्न भिन्न परिणमन होते हैं । जिन्हें हम सब प्रत्यक्ष रूपसे देख सकते हैं।

विशेष आकार को प्राप्त हुए बादल जब उनका आकार शुभ दिखाई देता है, तब देखने वाले मनुष्य के लिए शुभदायी होते हैं और जब अशुभाकार दिखाई देते हैं तो उसका फल मनुष्य के लिए अशुभ होता है। अर्थात् राक्षस, पिशाच, डाकण, बाघ, ऊंट जैसे भयानक और डरावने आकार के बादल जब जिन पुरुषों को दिखलाई देते हैं, उन दर्शकों को हानि पहुँचाने वाले वे दिन होते हैं ।

एकही पौद्गलिक आकार सबोकों भिन्न भिन्न रूप से दिखाई देता है। इसमें हमारी आंखों का ही चमत्कार होता है । एक ही दृश्य देखते हुए एक की आंख पूरे तौर से खुली होती है जब कि दूसरे की अधूरी खुली होती हैं। उस समय कोई तिरछा देखते हैं और कोई सीधा। इसलिए आकारों के दृश्यों में भी फेरफार होता है। शुभाकार को प्राप्त हुआ बादल एक को देव का आकार दिखाई देता है जबकि दूसरे को राक्षस का आकार दिखाई देता है।

इसका नाम है पुद्गलों का चमत्कार

जब अंधेरे में स्थित पदार्थ या मूर्ति को देखना होता है तब उसको देखने के लिए उसके सन्मुख दीपक रखा जाता है, उस समय उसका आकार भिन्न रूप में दिखाई देता है। जब दीपक टेढा रखा जाता है तब उसके आकार में फेरफार दिखाई देता है। जब दीपक न हो तब आकार भिन्न स्वरुप में, जब सिरपर फूल की माला हो तब भिन्न आकार, अंग रचना की हो तब जुदा आकार, इस प्रकार पुद्गलों के सहवास से ही भिन्न भिन्न आकार दिखाई देता है।

इसमें दैवी चमत्कारों की कल्पना करना वह भी एक अज्ञानता है। यह देखना है कि साधक मात्रको पुद्गलों के सहवास से आपनी आत्मा में प्रतिक्षण

P. P. Ac. Gunratansuriji M.S. Jin Gun Aaradhak Trust

में कौनसे कौनसे चमत्कार उत्पन्न होते हैं। यही अनुभव ज्ञान है। यही तारणहारज्ञान है। बाकी सब मिथ्या है।

लेश्या परत्व के प्रति ये प्रश्नोत्तर हैं ?

लेश्याओं की उत्पत्ति स्फटिक की मूर्ति के पास जिस रंग का पुष्प होगा, स्पटिक में भी वह रंग उतरेगा। उसीप्रकार अनंतानंत कर्म वर्गणा के भार से दबाई गई आत्मा का समय समय पर जैसा जैसा सहकार या साहचर्य होता है। आत्मा को भी वैसे वैसे परिणाम अध्यवसाय होते रहते हैं।

कसाई, शिकारी तथा हिंसक आदि परिवारों में जन्मी हुई संतानों के मुख से प्रतिक्षण इसीप्रकार के शब्द सुनाई देते हैं, "मारो, मारो", इसी प्रकार के शब्द बोलने मात्र से उनकी उसीप्रकार की प्रवृति होती है। भीख मांगने वालों के घर में जन्मी हुई संतानो में भीख मांगने के परिणाम ही बने रहते हैं। परिग्रह परिमाण व्रत को स्वीकार किये बिना तथा धर्माधर्म का विचार किये बिना, व्यापार रोजगार में पूर्ण रूप से मस्त बने हुए जीवो को रात दिन स्वप्न में भी अपनी दुकान व्यापार, ग्राहक तथा कोर्ट कचहरी का अध्यवसाय रहता है। जब धर्मात्मा, शीलसम्पन्न, दयालु, और दानेश्वरी के घर में जन्मे हुए को सब प्रकार के संयोग मिलते हैं। मित्रमंडळ भी वैसा ही मिलता है आंशिक रूप में सत्य सदाचार के संस्कार भी वैसे ही मिलते हैं। इसप्रकार पूर्व भव में जैसे जैसे नियाणें (निदान) कर्म उपार्जित हुए हैं, उस उस प्रकार के ही मनुष्य मात्र को वातावरण मिलता है और यह वातावरण ही मनुष्य के अध्यवसायों को बदलने का कारण बन सकता है। एक समय में हम अपने दुश्मन को देखते हैं तब हमको भी वैर भाव की लेश्या उद्भव होती है। दूसरे समय में परममित्र को देखकर पहले समय की वैर लेश्या अदृश्य हो जाती हैं और मैत्री लेश्या के मालिक हम बन जाते हैं।

इसीप्रकार गंदे विचार वाले, आचरण वाले, असत्य बोलने वाले

मनुष्य के सहवास से हमारे पवित्र अध्यवसायों को भी धक्का पहुँचता है। जब 'खंधक मुनि की सज्झाय' सुनते ही तथा मौनधारी मुनियों का सहवास करते हुए, हमको भी उसीप्रकार की धर्म की लेश्या प्राप्त होती है। इसप्रकार एक क्षण में कृपण, एक क्षण में व्रत लेने की भावना और दूसरे ही क्षण धर्म को छोड देने की भावना (लेश्या) बन जाती है। इसप्रकार भिन्न भिन्न समय में जो लेश्याए बदल जाती हैं, उसमें पूर्व भव के कारण को मान्य किये बिना छुटकारा नही मिलता है। इसकारण लेश्याओं की उत्पत्ति में पूर्वाचार्यों का भी मतभेद है। फिर भी अनेक प्रामाणिक आचार्यों का यह कथन भी बराबर है कि लेश्याएं कर्म स्वरूप नहीं, क्योंकि कर्मों की संख्या आठ की है और लेश्याएं किसी भी कर्म के या उसके अवान्तर विभाग में समाविष्ट नही हैं। तब लेश्या क्या होगी ? उसके जवाब में यही कह सकते है कि कम संस्कार के या सर्वथा संस्कारों को नहीं प्राप्त किये हुए मन महाराज के ये सब खेल तमाशे हैं।

अनादि काल से कुसंस्कारों को प्राप्त करने के कारण मन मर्कट हमेशा बहुत चंचल रहता हैं। इसीलिए हमारे अध्यवसाय स्थिर नहीं रहते हैं। बल्कि प्रतिक्षण बदलते रहते हैं। मोहकर्म को उपशांन्त करने की प्रबलशक्ति का व्यवस्थित रूप से विकास नहीं होता है, तब उसके परिणाम अस्थिर ही रहते हैं। इसलिए संसार के उन उन रागद्वेषजन्य दृश्यों को देखते ही अस्थिर मन को क्षायोपशमिक भाव में से निकल कर औदयिक भाव में प्रवेश करते देर नहीं लगती है। इसप्रकार मानसिक व्यापार को लेकर प्रतिक्षण बदलते हुए आत्मा के परिणामों को लेश्या शब्द से संबोधित करते हैं। इन लेश्याओं के कारण ही आत्मा कर्मों के साथ संलग्न होजाती है और नये नये कर्म बांधती ही जाती है।

महाभयंकर वैरी को देखते ही हमारी लेश्या बिगड जाती है। फिर हमारे मन में कषाय का उद्भव होता है। आर्त्तध्यान, रौद्रध्यान होते ही फिरसे भयंकर कर्मों को बांधने की परिस्थिति बनती है।

थोड़े समय के पहले हम धर्म की चर्चा में थे। हसमुखी स्त्री को देख कर हमारी लेश्या में विकार आ जाता है। उसके साथ बातचीत करने और गप्पे मारने में हमारे वेद कर्मों के संस्कार उदय में आते हैं। और पुनः मोहनीय कर्म को बांधने का समय आ जाता हैं।

इस प्रकार सब प्रसंगों में कल्पना कर लेनी चाहिए।

लेश्याओं का स्वभाव-

अब हम लेश्याओं का स्वरूप और उनके मालिकों के संबंध में विवेचन करते हैं।

कृष्ण लेश्या-अत्यन्त रौद्र स्वभाववाली, रोम रोम में क्रोध की उत्पत्ति करानेवाली, दूसरे जीवों के साथ सीमातीत ईर्ष्याभाव को बढाने वाली, धर्म और ज्ञान संज्ञा को विदाय देनेवाली तथा मानसिक, वाचिक और कायिक व्यापार में वैरभाव करानेवाली कृष्णलेश्या है। जिन की प्राप्ति में आदमी भी वैसा ही बन जाता है। उसका जरा विस्तार से विवेचन करते हैं। इस लेश्या की उत्पति में मानव का स्वभाव अत्यंन्त रौद्र बन जाता हैं। जिससे उसकी आँखों में खुनश बढ़ता है। जीभ पर कड़वापन आ जाता है। शरीर की आकृति बहुत ही रौद्रता को धारण कर लेती हैं। धर्म का स्वभाव और धार्मिक जीवन भी पूर्ण रूप से हिंसक बन जाता है। मातृ स्वरुपा दया देवी का सर्वथा ह्रास होता है। वैर की आग बढ़ जाती है। इस लेश्या के ये लक्षण हैं।

इसप्रकार दूसरी लेश्याओं में भी घटा लेना चाहिए।

नील लेश्या-अत्यन्त आलसी, जड बुद्धि, स्त्रियों में आसक्त, दूसरों को ठगनेवाला भयभीत और अहंकार की मूर्ति। यह स्वभाव नीललेश्या का है।

कपोत लेश्या-अत्यन्त शोकातुर रहने वाला, क्षणक्षण पर दूसरों की निंदा और अपनी प्रशंसा, दूसरे के जीवन को खतरे में डाल

P. P. Ac. Gunratansuriji M.S. Jin Gun Aaradhak Trust

कर स्वयं जीवित रहने वाला, जीवात्मा इस लेश्या का मालिक समझना चाहिये।

पीत लेश्या–विद्या प्राप्त करने में रुचि रखने वाला, करुणा से पूर्ण, कार्य और अकार्य में विचारक तथा लाभ और अलाभ में सदा खुश रहने वाला, इस लेश्या के मालिक है।

पद्मलेश्या–क्षमा को धारण करनेवाला, प्रशिक्षण त्याग के प्रति गति करनेवाला परमात्माता का पूजक, इन्द्रियों का दमन करनेवाला, आत्मिक जीवन में पवित्र, हमेशा प्रसन्न चित्त, पद्मलेश्या के मालिक हैं।

शुक्ललेश्या–राग–द्वेष रहित, शोक–संताप तथा निंदा रहित, परमात्मपद का इच्छुक शुक्ल लेश्यावाले होते है।

आगम में लेश्याओं का स्वभाव

अब उत्तराध्ययन सूत्र के अनुसार भी लेश्याओं के मालिक कैसे होते हैं। उसे जान लेना चाहिए।

कृष्ण लेश्या–पांचों आश्रव में प्रवृति करने वाला, तीन गुप्ति रहित, छः काय जीवों का हिंसक, आरंभ की तीव्रता वाला, क्षुद्र, साहसिक, निर्दय, दुष्ट, इन्द्रियों का गुलाम, दुराचारी पुरुष, इस लेश्या के मालिक हैं।

नील लेश्या–ईर्ष्यालु, कदाग्रही, असहिष्णु, तपश्चर्या रहित, अज्ञानी, मायावी, बेशरम, विषयी, द्वेषी, रसलोलुप, आरामचाहक, आरंभीक, क्षुद्र, दुःसाहसी इस लेश्या के परिणामवाले ऐसे होते है।

कापोत लेश्या–वक्र, विषम चरित्र वाला, कपटी, अपने दोषों को छिपाने वाला, मिथ्यादृष्टि, अनार्य, असंस्कारी, मर्मभेदक दुष्टभाषाभाषी, और ज्वलनशील मनुष्य इस लेश्या से ग्रसित होता है।

तेजोलेश्या–नम्र, अचपल, निष्कपट, अकुतुहली, विनयी, इन्द्रियों का

P. P. Ac. Gunratansuriji M.S. Jin Gun Aaradhak Trust

संयमी, स्वाध्याय और तप करनेवाला, धर्म प्रेमी, दृढ धर्मी, पापभीरु, और हितेच्छु इस तेजोलेश्या के स्वामी हैं।

पद्मलेश्या–कषायों की अल्पता, प्रशान्त चित्तवाला मन को वश में करनेवाला, ज्ञान–ध्यान तथा तप में शूरवीर, अल्पभाषी, जीतेन्द्रिय वगैरह लक्षण इस लेश्या के हैं।

शुक्ललेश्या–धर्मध्यान तथा शुक्लध्यान में मन को लगानेवाला, प्रशान्तचित्त, आत्मा को दमन करनेवाला, समिति गुप्ति का धारक, सरागी, वीतरागी इसप्रकार के जीव शुक्ल लेश्याके अधिकारी है।

मानव जीवन की सार्थकता–

पहले की तीन लेश्याएं आत्मा के परिणाम में अशुभता और अशुद्धता लानेवाली तथा वढ़ानेवाली होने से भवान्तर में दुर्गति को प्राप्त कराती है।

बाद की तीन यानी तेजोलेश्या, पद्मलेश्या और शुक्ल लेश्याएं आत्मा के परिणामों में शुभता, शुद्धता, तथा सब जीवों के साथ वैरमुक्त कराकर जीव मात्रके अपराधों के प्रति क्षमा तत्त्व को प्राप्त कराने वाली होने से भवान्तर में सद्गति देनेवाली है तथा इस भवमें भी जीवन को प्रसन्न रखनेवाली है।

मानवमात्र इतना समझ लें कि 'संसार असार है,' माया नागन के तुल्य है, काया काचकी चूड़ी के समान है, श्रीमंताई बिजली के चमत्कार के समान है, सत्ता पानी के बुदबुदे के समान है, इसलिए थोड़े जीवन में किसी के भी साथ मुझे लडाई या झगडा क्यों करना चाहिए, किसी की भी हत्या या मारकाट किसलिए करना। दूसरे के साथ लड़ने झगडने का परिणाम क्या होगा ? मैं जिस वस्तु के लिए लडाई करता हूँ, क्या वह वस्तु मेरे साथ मेरी ठठरी के साथ आनेवाली है ? इसप्रकार का विचार रखते हुए सबके साथ एकता पूर्वक रहना चाहिए। असार संसार की एक या

P. P. Ac. Gunratansuriji M.S. Jin Gun Aaradhak Trust

बहुत सी बातों के लिए संघर्ष करना, क्रोध के सामने क्रोध, वैर के सामने वैर और भूल के सामने भूल करना, यह शैतान का धर्म है। जब दूसरे को क्रोध आवे तब हसना सीखना वैर के सामने मौन धारण करना, दूसरों की भूल के वदले में कभी भी भूल नहीं करना, बस यही जैन धर्म का सार है। यही मोक्ष मार्ग है। मोक्ष धर्म की आराधना भी यही है। धार्मिक जीवन बीताने के लिए इससे दूसरा कोई सरल मार्ग नही है। सबके अपराधों को क्षमा करना यही जीवित प्राणी के जीवन का अमर फल है। यह समझकर उपरोक्तानुसार जीवन बीताना चाहिए जिससे आगामी भव बिगडने पायगा नहीं।

हमको यह समझलेना चाहिए कि बुरा बनकर दूसरों का चाहे जितना द्रोह करे उससे संसार का कुछ भी विगाड होने वाला नहीं है।

उत्तम कुल में जन्म लेने पर भी रावण, दुर्योधन और शूर्पणखा तामसिक (वैर रूपी विष वाले) और राजसिक (क्रोध, मान, माया और लोभ वाले) बने। परस्त्रियों का हरण करने में और दूसरों को मौत के घाट उतारने में अपना संपूर्ण जीवन खपा दिया, फिर भी संसार का कुछ विगाड़ नहीं सके। यहाँ तक कि संसार का तो कुछ भी नहीं बिगड़ा प्रत्युत दूसरों के द्वारा अपना वध करवाकर स्वयं नरक के प्रति प्रस्थान कर गये। अन्य लोगों को सुधारने के लिए ही यह मनुष्य अवतार हमें नहीं मिला है किन्तु खुद की आत्मा को परमात्मा की तरफ प्रस्थान कराने के लिए यह मनुष्य अवतार मिला है।

अतः परमात्म पद का चिंतवन करके आत्मा का विकास और उसकी प्रतिदिन प्रगति होवें यही जीवन हितावह है।

मेट्रिक उत्तीर्ण करना, वकील, डाक्टर या प्रिन्सीपल बनना बहुत ही सरल है किन्तु जीवन बनाने की कला को हस्तगत करना बहुत ही कठिन है।

P. P. Ac. Gunratansuriji M.S.　　　　Jin Gun Aaradhak Trust

भावितात्मा अनगार की शक्ति के संबंध में कहा गया हैं कि भावितात्मा अनगार बाहर के पुद्‌गलों को ग्रहण करके वैभार पर्वत को लांघ सकते हैं।

और कहा गया है कि-मायी (प्रमत्त) मनुष्य विकुर्वण करता है किन्तु अमायी मनुष्य विकुर्वण नहीं करता है। इसके कारण के संबंध में उनके खान-पान के विषय में यहाँ जानकारी दी जाती है।

मायी स्वयं के द्वारा की गई उन प्रवृत्तियों का आलोचन और प्रतिक्रमण किये बिना मरता है। इसलिए उसको आराधना नहीं है और अमायी, स्वयं के द्वारा की गई भूलों की प्रवृत्तियों का आलोचन-प्रतिक्रमण करके मरता है, इसलिए उसको आराधना है। ※ ४७

※ ४७ इस भव को समाप्त करके अगले भव में जो देव होने वाले हैं, वे द्रव्य देव कहे जाते हैं। ऐसे द्रव्य देव अणगार वैक्रिय विकुर्वण करके वैभारगिरि पर्वत को लांघ सकते है। इसप्रकार पूछे गये प्रश्न का जवाब भगवान् ने दिया है। वैक्रियशक्ति का उपयोग मायावान्-प्रमत्त मुनि करेंगे किन्तु अमायी-अप्रमत्त साधु नही करते हैं क्योंकि वह अप्रमत्त होने के कारण अपनी भूलों का आलोचन और प्रतिक्रमण करेगा।

अपराधों की आलोचना ही आत्मकल्याण के लिए मुख्य है। हमने जो भूलें कीं हैं उनकी बारंवार आलोचना करने से आत्मा में जागृति आती है और इसप्रकार की जागृति साधक को आगे बढ़ने का अवसर देती है। प्रतिक्रमण, परघर-विभावदशामें से आत्मा को बाहर निकाल कर स्वघर-स्वभाव दशा में लाता हैं। जो आत्म शुद्धि के लिए प्रथम और सशक्त सोपान

P. P. Ac. Gunratansuriji M.S. Jin Gun Aaradhak Trust

है। इसका आलंबन लेने के (अतिरिक्त) सिवाय कोई भी मुनि भाव संयम का मालिक नहीं बन सकता।

अनादिकाल से यह जीवात्मा कर्मों के भार से भारी बनी हुई है। इसका अर्थ यह हैं कि अनादिकाल से एकही कर्म जीवात्मा के नहीं होते हैं। क्योंकि बांधे हुए कर्म अपनी मर्यादा पूरी होने के बाद उदय में आते हैं, और अपना शुभाशुभ फल बता कर आत्म प्रदेशों से छूटे हो जाते हैं और अज्ञान अवस्था होने के कारण पुनः नये नये कर्म बंधाते जाते हैं। इस-प्रकार पुराने कर्म (खरखर होते) टपाटप गिरते जाते हैं और प्रवाह रूप नये कर्म आते जाते हैं। इसलिए ऐसा कहा जाता है कि आत्मा अनादि काल से कर्मों के भारसे भारी बनी हुई है।

जैन शासन की अद्वितीयता—

भव परंपरा में अनंत दुःखों को देने वाले ऐसे इन कर्मों के भार को हल्का करने के लिए अन्य शासन (धर्म) की अपेक्षा जैन शासन (जैन धर्म) विशेष रूप से उपयुक्त है। यद्यपि दूसरे धर्मों में ध्यान, धारणा, जप ईश्वर–प्रणिधान आदि सदनुष्ठानों का वर्णन है, तथापि प्राथमिक भूमिका का स्पष्टीकरण वहाँ देखने में नहीं आता है। जबकि जैन शासन में लक्ष्य सेद्ध करने के लिए प्राथमिक भूमिका की नींव इतनी पक्की है कि जिस-कारण मनुष्य मात्र अपने कल्याण के मार्ग पर आगे आगे बढ सकता है। जिसके लिए दो प्रक्रियाओं की ही आवश्यकता है। पहली प्रक्रिया में नये पापों का द्वार बंध करना और दूसरी प्रक्रिया में पुराने पापों को समूल नाश करना। इसप्रकार ये दोनों प्रक्रियाएं—' प्रतिक्रमण ' क्रिया में ही समा जाती हैं। इसलिए ही तत्त्वार्थसूत्र में तीर्थंकर गोत्र को बांधने की चर्चा करते हुए उमास्वातिजी ने " आवश्यकापरिहाणि " कहा है अर्थात् आवश्यक प्रति-क्रमण करनेवाले ही गुणठाणे की तरफ प्रस्थान करने की योग्यतावाले होते है। जहाँ तीर्थंकर नामकर्म की निकाचना सुलभ बनती है।

प्रतिक्रमण आत्मा के लिए शुद्ध भाव क्रिया है। इसलिए उसे आव-

P. P. Ac. Gunratansuriji M.S. Jin Gun Aaradhak Trust

श्यक कहा जाता है। इस प्रतिक्रमण जैसी शुद्ध क्रिया के लिए प्रारंभ में सामायिक, चतुर्विशतिजिनस्तवन, तथा गुरुवन्दन करने का होता है। तत्पश्चात् प्रतिक्रमण और इसके बाद कायोत्सर्ग तथा प्रत्याख्यान इसप्रकार ये अनुष्ठान भी अवश्यमेव करने हैं।

इससे हम जान सकते हैं कि प्रतिक्रमण का अनुष्ठान कितना महत्व-पूर्ण हैं।

सामयिक-यानी अनादिकाल से भव में भ्रमण करने के कारण थकीं हुई आत्मा को दो घडी के लिए शान्ति मिले, वह सामायिक है। क्योंकि 'अतति सततं गच्छति-इति आत्मा' इसव्युत्पत्ति से एक भव से दूसरे भव में जाने के लिए निरन्तर जिसका प्रयाण निराबाध है। अतः मनुष्य अवतार में उस आत्मा को शांति दी जा सकती है। जहाँ जघन्य से २ घडी तक और उत्कृष्ट से जिन्दगी के अन्तिम श्वास तक।

नये पापों का द्वार (अश्रवमार्ग) बंध कर देना चाहिये क्योंकि नये पापों को रोकने के बाद में ही पुराने पापों का ऱ्हास होता जाता है।

मानसिक जीवन में स्फूर्ति रहे, इसलिए यह सामायिक अरिहंत, सिद्ध और आचार्य भगवान् की साक्षी में की जाती है। वहाँ साधक स्वयं ऐसी प्रतिज्ञा करता है कि मैं अपने नियम तक—

१. मन, वचन और काया से
२. मन और वचन से
३. मन तथा काया से
४. वचन तथा काया से
५. केवल मन से
६. केवल वचन से
७. केवल काया से, किसी प्रकार का पाप नहीं करूँगा.

इसप्रकार साधक मात्र अपनी आत्मा की शक्ति पहचान लें और

P. P. Ac. Gunratansuriji M.S. Jin Gun Aaradhak Trust

मानसिक परिस्थिति का निर्णय करके ऊपर के सात भेदो में से स्वयं किस-प्रकार पापों का द्वार बंध कर सकता है, उसका निश्चय करके, ऐसी प्रतिज्ञा स्वीकार करता है, वह इसप्रकार :—

अपने नियम तक में किसी प्रकार के पाप की, द्वेष की, राग की, मोह की और भुगतनें हुए भोगों की भावना नहीं करूँगा। पांच इंद्रियों का मौन रखूंगा, अर्थात् स्पर्शेन्द्रिय द्वारा किसी का भी स्पर्श नहीं करूँगा। जीभ इन्द्रिय द्वारा खाना, पीना और बोलना बंद कर दूंगा। नाक इन्द्रिय को किसी भी सुगन्ध या दुर्गन्ध के प्रति समभाव में रखूंगा। आँख इन्द्रिय को बंद रखूंगा। कान द्वारा किसी प्रकार की होती हुई बात नहीं सुनूंगा। सुनने की इच्छा नहीं करूंगा। इसप्रकार पाचों इन्द्रियों को मौन में रखकर वह साधक अपनी आत्मा में निश्चय कर लेता है कि यैं किसी का नहीं। मेरे नियम तक संसार की कोई भी जड या चेतन वस्तु मेरी नहीं है। मैं किसी का पिता नहीं, पुत्र नहीं, सैठ नहीं, पति नहीं, पत्नी नहीं है, परंतु सम्यग्दर्शन ज्ञान चारित्र यही मेरा व्यापार है। मैं शुद्ध हुँ, अरिहंत स्वरूप हूँ। इसप्रकार दो घडी के लिए आत्मा के ध्यान में तदाकारता प्राप्त करके भवभवांतर की थकावट उतारेगा (दूर करेगा)

इसप्रकार नियम करके तथा दृढतापूर्वक पालन करके अत्यन्त श्रद्धा और सावधानी पूर्वक सामायिक धर्म में स्थिर रहनेवाले साधक के लिए हम निश्चयपूर्वक कह सकते हैं कि इन भाग्यशालियों ने पाप आने के स्थानों को प्रयत्नपूर्वक बंद कर दिया है। इसलिए ऐसी व्यावहारिक क्रिया जैन शासन को छोड़कर दूसरे स्थानपर कहींपर भी दृष्टिगोचर नहीं होती है। जबतक सामायिक द्वारा पापों का द्वारा बंद करने मे नहीं आवे तवतक चाहे जैसा भी आध्यात्मिक मनुष्य, माला के द्वारा जप करनेवाला और तत्वों की चर्चा करनेवाला भी जीवन के रहस्य को प्राप्त नहीं कर सकता।

जो आध्यात्मिक जीवन की चरम सीमापर पहुँच गये हैं, ऐसे तीर्थंकर

देव भी जब दीक्षा लेते हैं तब सबसे पहले " करेमि सामाइअं " यह सूत्र को बोलकर सामायिक शुरू करते है। उससे अनुमान किया जाता है कि तीर्थंकर देवों का शासन ही परमहितकारी और जीव मात्र को पापों से बचाने वाला है।

(२) चतुर्विंशति जिनस्तवन

पापों का द्वार बंध करने के लिए सामायिक में प्रवेश की गई आत्मा को जब इसप्रकार का अनुभव होता है कि मैंने नये पापों की रोक लिए हैं किन्तु पुराने पापों को धोने के लिए आत्मा में पावर (इच्छाशक्ति) की आवश्यकता है । तब वे भाग्यशाली 'लोगस्स.....' सूत्र के एक एक शब्द के प्रति ध्यान रखकर मन की प्रसन्नतापूर्वक एक एक तीर्थंकर देव को नाम-पूर्वक मनवचन काया से नमस्कार करते हैं।

मनुष्य मात्र अधूरी शक्ति का मालिक है। और तीर्थंकर पूर्ण शक्ति के स्वामी है, इसलिए श्रद्धापूर्वक तीर्थंकर परमात्माओं को नमस्कार करने-वाले अपनी आत्मा में शक्ति का संचार करते हैं और इसप्रकार अपने जीवन में एक अभूपूतर्व इच्छाशक्ति (*Will Power*)–जन्म लेती है।

(३) **गुरुवन्दन**–तत्पश्जात् जैन धर्म तथा तीर्थंकर देवों की पहजान करानेवाले गुरदेवों की वन्दना करने के लिए वे साधक तैयार होते हैं और सम्यक् श्रुत तथा चारित्र सामयिक को देनेवाले परम कृपालु गुरु भगवान् के चरणों में सिर रखकर वन्दना करते हैं।

हम इस वात को स्वीकार कर लेते हैं कि प्रत्येक जीव को जैन शासन प्राप्त करानेवाले अलग अलग एक–दो ही गुरु होते हैं। इस कारण से उसी गुरु को मान कर दूसरे आचार्य, उपाध्याय या अन्य मुनियों को नहीं मानना इसप्रकार का तात्पर्य गुरुवन्दन का नहीं हो सकता।

अपनी आत्मा के कल्याण के लिए ही मनुष्य धर्म करता है। जब एक

P. P. Ac. Gunratansuriji M.S. Jin Gun Aaradhak Trust

ही गुरु के प्रति दृष्टिरागी बन कर दूसरे गुरुओं का अपमान करते मनुष्य धर्म प्राप्त नहीं कर सकता है।

यदि धर्म प्राप्त करने का कोई रहस्य सच्चा हो तो अढाई द्वीप में रहनेवाले आर्हत मुनिमात्र हमारे गुरुदेव हैं।

गुरुवन्दना करते यह पवित्र भावना यदि अपने मन में होगी तो साधक के जीवन में आत्मीय गुणों को प्राप्त करने के लिए नया ही चमत्कार प्राप्त होगा।

व्यक्तिगत रागी बनने से मोक्ष के द्वार बंद होते हैं। ऐसा साधक जैन शासन का रागी नहीं बनता है। किन्तु अवसर आनेपर जैन शासन का द्रोही बनता है। गुरु संस्था का तथा खुद की आत्मा का भी द्रोही बनता है। क्योंकि हम जिस व्यक्ति के प्रति रागी बन जाते हैं तो हमारे माने हुए व्यक्ति के हजारों शत्रु भी संसार में विद्यमान हैं। इस स्थिति में हमारे गुरु के शत्रु वे हमारे भी अर्थात् व्यक्तिगत रागी के भी शत्रु सिद्ध होंगे। अतः एक गुरु को वन्दन करता हुआ साधक दूसरे गुरुओं का अपमान करेगा। तब वह साधक सिद्धचक्र भगवान का भी आराधक किस प्रकार बनेगा? क्योंकि सिद्धचक्र भगवान में हमारे खुद के माने हुए आचार्य, उपाध्याय और मुनिमहाराज विराजमान नहीं है किन्तु अढाई द्वीप में रहे हुए सब आचार्य, उपाध्याय और साधुओं से सुशोभित सिद्धचक्र यंत्र है।

इन सब तत्त्व की बातों के प्रति ध्यान रखकर तथा इस रहस्य का मनन करके साधक मात्र व्यक्तिगत रागी बनने की अपेक्षा जैन शासन का रागी बनें, यही पवित्र मार्ग है और आत्म कल्याण के लिए सरल मार्ग है।

प्रतिक्रमण :–इसप्रकार तीन आवश्यकों के माध्यम से आत्मा में अपूर्व तेज लाकर साधक प्रतिक्रमण के सूत्र बोलने के पूर्व सामान्य से चोरासी लाख जीवायोनि के जीवों से 'मिच्छामिदुक्कडं' करने के बाद अपने आत्मगत पापों का मन वचन काया से पश्चाताप करके अपने पांच आचारों में, व्रतों में, गुणव्रतों में शिक्षाव्रतों में जो कोई अतिचार लगा हो

P. P. Ac. Gunratansuriji M.S. Jin Gun Aaradhak Trust

तो एक एक को याद करके उन अतिचारों की निंदा करता है। गर्हा करता है। तथा जिनेन्द्र भगवान् द्वारा प्रतिषिद्ध कार्य किये हो और अनुमत कार्य प्रमादवश न किये हो, उसके लिए बारंबार गुरु की साक्षी लेकर अपनी आत्मा की भर्त्सना करता है।

आत्मा को परमात्मा बनाने के लिए यही सरल मार्ग है। जब हम मैले (गंदे) वस्त्रों को धोबी को धोने के लिए देते हैं तब हम उसे इस प्रकार कहते हैं कि "कपड़े उज्ज्वल करके लाना" इसप्रकार कहने पर भी मूर्ख धोबी उक्त वाक्य के अर्थ का मर्म नहीं समझता है और कपडोंपर सफेदा लगा कर वापस लौटा दे तो...क्या होगा ? जब सावधान और चालाक धोबी इस वाक्य के अर्थ का मर्म बराबर समझ लेता है कि कपडोंपर लगे हुए मैल को सर्फ पाऊडर द्वारा दूर करना और नये मैलको नहीं लगाना। इसप्रकार कपडा मूल स्थिति में आवेगा और लगे हुए मैल से मुक्त होगा।

"इसीप्रकार आत्म कल्याण करना" इसका अर्थ नहीं समझनेवाला साधक चाहे जितने अनुष्ठान करके संतोष मान लेता है। जब गूढ रहस्य को जाननेवाला साधक 'आत्मकल्याण' यानी "आत्मा को शुद्ध स्वरूप प्रति ले जाना" यह अर्थ करके उससे संबंधित क्रियाएं करेगा जिसप्रकार कपडे के मैल को साफ करने के लिए सर्फ अथवा तिजाब की भट्टी काम में आती है। इसीप्रकार आत्मापर लगे हुए कर्मों के पापों को दूर करने के लिए प्रतिक्रमण ही सहायता करेगा। प्रायश्चित, पश्चाताप, आत्मनिंदा स्वयं के पापों को गुरुसमक्ष निवेदनकर देना, यही प्रतिक्रमण का गूढार्थ है। इसप्रकार नये पापों को रोकता हुआ और पुराने पापों को धोता हुआ साधक ही परमात्मा बनता है।

कायोत्सर्ग-धोये हुए कपड़े को विशेष उज्ज्वल बनाने के लिए उस कपडेपर नीली तथा इस्त्री की जाती है। उसीप्रकार प्रतिक्रमण करने

P. P. Ac. Gunratansuriji M.S. Jin Gun Aaradhak Trust

के बाद एक बात याद आती है कि अबतक जो पाप किये हैं, शरीर उन पापों का मुख्य कारण है। इसलिए इस शरीर को दंड देने के लिए खड़े खड़े अथवा बैठे बैठे एकाग्रचित होकर काया की माया घटाने के लिए कायोत्सर्ग करेगा। प्रत्याख्यान और अन्त में आहार, भय, परिग्रह और मैथुन की संज्ञा में कटौती करने के लिए अमुक नियम लेकर अमुक समय तक आहार, पानी, दोषपूर्ण (खोटा) व्यापार, परिग्रह और मैथुन न करने के लिये प्रत्याख्यान (पच्चखाण) करेगा और भावपूर्वक त्याग करके अपने पापों को धोने के लिए तैयार हुए देश विरति श्रावक मुनिमहाराजों का साहचर्य स्वीकार करेंगे और श्रमणो पासक बनेंगे।

जब जिन्दगी के अन्तिम श्वास तक सामायिक व्रत लेने वाला मुनि दिन प्रति दिन इन आवश्यकों में मस्त बनकर आगे आगे बढ़ेगा। ऐसी स्थिति में अमायी अर्थात् अप्रमत्त मुनि को वैक्रिय शरीर बनाने के लिए कोई भी प्रयोजन नहीं है।

अब यहाँ प्रतिक्रमण के सबंध में थोड़ा विचार करते हैं जो आत्म कल्याण के लिए सर्वश्रेष्ठ साधन है।

प्रतिक्रमण में बोलते हुए सूत्र पर अक्षरशः ध्यान देना चाहिए। यथाशक्ति अर्थ के प्रति खयाल रखना चाहिए। संघ के साथ ही प्रतिक्रमण करना। जिससे संघ में संप बना रहे और अनुकूल समय आनेपर शत्रुओं के साथ भी क्षमा लेने देने का लाभ प्राप्त होगा।

संघ में सार्धमिक वात्सल्य का अपूर्व लाभ मिलता है।

धार्मिक वातावरण उत्पन्न होता है

गुणवंत पुरुषों का सहवास मिलता है।

सूत्र का उच्चारण शुद्ध बनता है।

P. P. Ac. Gunratansuriji M.S. Jin Gun Aaradhak Trust

अपनी संतान में भी जैन धर्म के प्रति राग पैदा होता है। प्रभावना करने का लाभ मिलता है। इन सब बातों का ध्यान रखकर सभी भाग्यशालियों को प्रतिक्रमण करना चाहिए। तभी हमारी आत्मा थोडी आगे बढ़ेगी और भव का चक्र समाप्त होगा।

॥ चतुर्थ उद्देशा समाप्त ॥

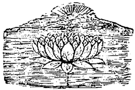

P. P. Ac. Gunratansuriji M.S. Jin Gun Aaradhak Trust

भावितात्मा अणगार का विकुर्वण

इस उद्देशक में भावितात्मा अनगार भिन्न-भिन्न प्रकार के रूपों का अभियोग और विकुर्वणा करता है या नहीं ? तथा इस-प्रकार मायी साधु या आमायी साधु करते हैं या नहीं ? इस संवंध में प्रश्नोत्तर है, सार यह है :–

भावितात्मा अनगार बाहर के पुद्गलों को लेकर बडी स्त्री के रूप को बना सकते है और ऐसे रूप से वैक्रिय संमुद्घात करके पूरे जंबूद्वीप को आकीर्ण–व्यतिकीर्ण कर सकते हैं। इतना कर सकते हैं परंतु वैसा किसी समय किया नहीं, करते नहीं, और करेंगे भी नहीं। परंतु शक्ति जरूर होती है।

इसीप्रकार भावितात्मा अनगार तलवार और ढाल से सज्जित पुरुष की तरह एक हाथ में पताका लिए हुए पुरुष की तरह, एक तरफ जनेऊ पहनकर चलनेवाले पुरुष की तरह, एक तरफ आसन जमाकर बैठे पुरुष की तरह, एक तरफ पर्यंकासन करके बैठे हुए मनुष्य की तरह, इसप्रकार भिन्न भिन्न जाति के स्वरूप बनाकर आकाश में उड सकते हैं। ऐसी इसकी शक्ति है, परंतु इसप्रकार का विकुर्वण हुआ नहीं है, न होता है और न होगा।

इसीप्रकार भावितात्मा अनगार बाहर के पुद्गल सहित घोडा, हाथी, सिंह, वाघ, शेर, दीपडा (तेंदुआ) रींछ, छोटा शेर

P. P. Ac. Gunratansuriji M.S. Jin Gun Aaradhak Trust

और शरभ के रूप को बना सकता है। वैसा रूप करके अनेक योजन तक जा सकता है। वह स्वयं की आत्मऋद्धि से हो जाता है। परऋद्धि से नहीं। स्वयं के कर्म से जाता है, दूसरे के कर्म से नहीं। स्वयं के प्रयोग से जाता है, नहीं कि दूसरे के प्रयोग से। यह सीधा भी जा सकता है और वक्र भी जा सकता है।

ऐसे घोडे हाथी आदि के रूप में आये हुए अनगार को घोडे हाथी इस संज्ञा से नहीं पुकारे जाते हैं। वह अनगार ही कहलाता है।

इस प्रकार का वह विकुर्वण मायी-अनगार कर सकता है। अमायी नहीं करता है। इसप्रकार का विकुर्वण करने के बाद उसकी अलोचना और प्रतिक्रमण करने के सिवाय ही वह साधु काल करें तो वह एक प्रकार के आभियोगिक देवलोक में देव रूप से उत्पन्न होता है।

जब अलोचना और प्रतिक्रमण करके जो अमायी साधु काल करता है तो वह किसी एक जाति के अनाभियोगिक देवलोक में देव रूप से उत्पन्न होता है। ※ ४८

※ ४८ मंत्रादि प्रयोग मायावी को होते हैं

वैक्रियशक्ति धारण करनेवाले मुनि राजों के लिए ये प्रश्नोत्तर है। जो अत्यन्त स्पष्ट है। यहाँपर इतना समझलेना हैं कि अमायी-अप्रमत साधु वैक्रियशक्ति का प्रयोग नहीं करते हैं किन्तु मायावी-प्रमत्त मुनिराज इस शक्ति का प्रयोग करते हैं। किसलिए करते हैं ?

(१) चतुर्विध संघ के योगक्षेम के लिए कोई भी प्रयोजन ही तब

P. P. Ac. Gunratansuriji M.S. Jin Gun Aaradhak Trust

वैक्रिय शक्ति का उपयोग करते हैं और बाद में उस कर्म की अलोचना तथा प्रतिक्रमण कर लेते हैं।

(२) वैषयिक सुखके लिए, स्वादिष्ट भोजन के लिए, तथा मंत्र साधना तथा भूति कर्म का आयोजन करते हैं।

(३) जिसके आदि में 'ॐ' और अंत में स्वाहा होता है, उसे मंत्र प्रयोग कहते हैं।

(४) साधना अथवा औषधि संयोग को अयोग कहा जाता है।

(५) मनुष्यों की, पशुओं की और घर की रक्षा के लिए भस्म मृतिका तथा सुतर द्वारा किये गये प्रयोग को और भभूति डालना, मंत्र पढ़कर धूल तथा राख डालना, (डोरा) धागा करना, ये सब भूति कर्म कहे जाते हैं।

इसप्रकार जो साधु मंत्र, अयोग और भूतिकर्म को अपने अंगन लाभ के लिए स्वादिष्ट आहार के लिए, अच्छे वस्त्रों की प्राप्ति तथा विषयवासना के सुख के लिए करते हैं। वह साधु काल करके 'आभियोग' देव बनता है, जहाँ बड़े देवों की आज्ञा में रहने का काम होता हैं।

अर्थात् देवलोक में भी दास स्वरूप जीवन पूरा करते हैं।

॥ पांचवा उद्देशा समाप्त ॥

P. P. Ac. Gunratansuriji M.S. Jin Gun Aaradhak Trust

गांव तथा नगर का विकुर्वण

इस प्रकरण में भी विकुर्वण संबंधी हकीकत है। सार यह हैं:- मिथ्यादृष्टि और मायी-कषायी भावितात्मा अनगार वीर्य-लब्धि से और विभंगज्ञान लब्धि से राजगृह में रहकर वाराणसी नगरी का विकुर्वण कर सकते हैं और तद्गत रूपों को जानते हैं और देखते हैं, परंतु वे तथाभाव से न जानतें हैं और न देखते हैं। अन्यथा भाव से याने जैसा है इसके विपरीत जानता है और देखता है। इसका कारण यह है कि--इस साधु के मन में ऐसा होता है कि बनारस का निवासी मैं राजगृह नगरी की विकुर्वणा करके तद्गत रूपों को जानता हूँ और देखता हूँ। इसप्रकार उसका दर्शन विपरीत होता है।

इसीप्रकार उपरोक्त अनगार जो बनारस में रहकर राजगृह नगरी का विकुर्वण करता है तो भी उल्टा ही देखता है। क्योंकि वह स्वयं राजगृह में रहकर विकुर्षण करता हो, ऐसा दिखता है।

इसीप्रकार राजगृह और बनारस के बीच में किसी बडे जनपद वर्ग की विकुर्वणा करता हो और उसके बाद उस बनारस नगरी और राजगृह नगर के बीच में बडे जनपद वर्ग को जानता है और देखता है। परंतु उनको तथा भाव से नहीं जानता है और नहीं देखता है। अन्यथा भाव से जानता है और देखता है।

P. P. Ac. Gunratansuriji M.S. Jin Gun Aaradhak Trust

क्योंकि उसके मन में ऐसा होता है कि यह वाराणसी नगरी है और यह राजगृह नगर है। तथा इन दोनों के बीच में आया हुआ एक जनपद वर्ग है किन्तु वह मेरी वीर्य लब्धि, वैक्रीय लब्धि या विभंग लब्धि नहीं है। ऐसा उस साधु को विपरित दर्शन होता है।

इसप्रकार विपरीत-उल्टा ज्ञान मिथ्याद्दष्टि, मायी, अभावितात्मा अनगार के लिए कहा है। परंतु कोई अमायी, सम्यग्द्दष्टि, भावितात्मा अनगार के लिए उपरोक्त अनुसार जो बनाता है वह तथा भाव से ही जानता है और देखता है। अन्यथाभाव से नहीं जानता और नहीं देखता।

जब कोई भावितात्मा अनगार बाहर के पुद्गले का मिश्रण विना बडे गांव के रूप को, नगर के रूप को या संनिवेश के रूप को बनाने के लिए समर्थ नहीं है। किन्तु बाहर के पुद्गलों को मिश्रण करके विकुर्वण के लिए समर्थ है। इसीप्रकार इसकी शक्ति है। किन्तु उसप्रकार हुआ नहीं, होता नहीं और होगा भी नहीं।

चमर के आत्मरक्षक देव-

चमर के आत्मरक्षक देव २५६००० है। ※ ४९

※ ४९ दक्षिणार्ध पति चमर इन्द्र के अंगरक्षक देव कितने हैं ?

इसप्रकार के प्रश्न में भगवान फरमाते हैं-कि सामान्यतः अंगरक्षक देव अपने मालिक इन्द्र महाराज की रक्षा के लिए तैयार रहते हैं। बख्तर धारण किये हुए, धनुष बाणों से सज्जित, गले में आभूषण पहने हुए, भिन्न भिन्न जाति के शास्त्रों को पास में रखे हुअे ढाल और तलवार से युक्त, इंद्र

P. P. Ac. Gunratansuriji M.S. Jin Gun Aaradhak Trust

महाराज का बाल भी बांका न हो, ऐसे मनोरथवाले परस्पर एकता सूत्र में बंधे हुअे और वारी वारी से चौकीदारी करनेवाले, अत्यन्त विनययुक्त, विवेकी और सुन्दर होते हैं।

प्रत्येक इन्द्र के जितनी संख्या में सामानिक देव होते हैं उससे चार गुणी संख्या में अंगरक्षक देव होते हैं। उनकी संख्या निम्न कोष्ठक के अनुसार जानना चाहिए।

इन्द्र महाराज	सामानिक देवोंकी संख्या	अंगरक्षक देवों की संख्या
१ चमरइन्द्र	६४ हजार	२,५६०००
२ वलीन्द्र	६० हजार	२,४००००
३ शेष भवनपतिइन्द्र	६ हजार	२४०००
४ शक्रेन्द्र	८४ हजार	३,३६०००
५ ईशानेन्द्र	८० हजार	३,२००००
६ सनत्कुमार	७२ हजार	२,८८०००
७ माहेन्द्र	७० हजार	२,८००००
८ ब्रह्मेन्द्र	६० हजार	२,४००००
९ लान्तकेन्द्र	५० हजार	२,०००००
१० महाशुक्र	४० हजार	१,६००००
११ सहस्त्रार	३० हजार	१,२००००
१२ प्राणत	२० हजार	८००००
१३ अच्युत	१० हजार	४००००

॥ छठवा उद्देशा समाप्त ॥

P. P. Ac. Gunratansuriji M.S. Jin Gun Aaradhak Trust

शक्र के लोकपाल—

इस प्रकरण में इन्द्रों के लोकपाल, उनके विमान आदि संबंधी हकीकत है :–

ये प्रश्नोत्तर राजगृह में हुए है। सार यह है :–

शक्र के ४ लोकपाल हैं--सोम, यम, वरुण और वैश्रमण। इनके ४ विमान हैं, संध्याप्रभ, वरशिष्ट स्वयंजवल और वल्गु। सोम का संध्या प्रभ नाम का विमान जंबूद्वीप के मंदर पर्वत के दक्षिण में, रत्नप्रभा पृथ्वी के रमणीय भूमिभाग से ऊँचा, सौधर्म कल्प से असंख्य योजन जाने के बाद 'संध्या प्रभ' नाम का विमान आता है।

यम का वरशिष्ट नाम का महा विमान सौधर्म कल्प से असंख्य हजार योजन छोडने के बाद आता है।

वरुण का स्वयंजवल नाम का महाविमान सौधर्म कल्प से असंख्य हजार योजन छोडने के बाद आता है।

वैश्रमण का वल्गु नामक महाविमान सौधर्मावतंसक विमान के उत्तर में है।

इस प्रकरण में लोकपालों का आयुष्य और उनकी दूसरी समृद्धि का भी वर्णन आता है ※ ५०

※ ५० । ३२ लाख विमानों का अधिपति शक्रेन्द्रके ४ दिशाओं के रक्षक सोम, यम, वरुण और कुबेर नाम के ४ लोकपाल हैं। उनमें से

P. P. Ac. Gunratansuriji M.S. Jin Gun Aaradhak Trust

सोमदेव का विमान कहाँ आया हुआ है ? उसका उत्तर इसप्रकार है ।

सूर्य, चन्द्र, ग्रह, नक्षत्र और ताराओं के विमान से बहुत योजन उँचा जाने के बाद अशोकावतंसक, सप्तवर्णावतंसक, चंपकावतंसक, पतावतंसक और सौधर्मावतंसक नाम के महाविमान के पूर्व में सौधर्म देवलोक है। उनमें असंख्य योजन दूर जाने के बाद देवराज शक्रेन्द्र का लोकपाल सोम नाम के महाराजा का 'संध्याप्रभ' नाम का महाविमान आया हुआ है ।

सोम लोकपाल की आज्ञा में नवग्रह

यह सोम नाम के लोकपाल की आज्ञा में सोमकायिक, सोमदेव-कायिक, विद्युत्कुमार, विद्युत्कुमारियों, चन्द्र, सूर्य, ग्रह, नक्षत्र, तारा तथा दूसरे भी देव हैं ।

तथा मेरुपर्वत के दक्षिण में उत्पन्न होनेवाले, ग्रह द्वन्द्व, ग्रहमूसल, ग्रहगर्जित, ग्रहयुद्ध, उल्कापात, दिग्दाह, गर्जारव, बिजलियाँ, धूल की वृष्टियाँ, चन्द्र ग्रहण, सूर्य ग्रहण तथा सूर्यचन्द्र के परिवेष इंद्रधनुष आदि जो होता है और मानव जाति पर जिसकी असर स्पष्ट दिखाई देती है। वह इस सोम नाम के लोकपाल से अविदित नहीं है । तथा मंगल, ग्रह, शनैश्चर, चन्द्र, सूर्य, शुक्र, बुध, गुरु और राहु देव भी इस लोकपाल के अभिमत है । सार यह है कि यह सब ग्रह मनुष्यजाति तथा पशुजाति के प्राणक्षय, जन-क्षय, कुलक्षय आदि करनेवाले हैं और इस लोकपाल की आज्ञा में रहते हैं अर्थात् पुत्र के जैसे हैं ।

तीर्थंकर देवों का अनन्य चरण भक्त इन्द्र महाराज के आज्ञापालक सोम नाम के लोकपाल की आज्ञा में ग्रहों का निवास है । इसलिए ग्रह भी जिनेन्द्र प्रभुके भक्त होने के कारण प्रतिष्ठा आदि विधानों में उनको इसके अनुसार अंजलि अर्पित करते हैं ।

ॐ सूर्य–सोमाङ्गारक–बुध–गुरु–शुक्र–शनैश्चर – राहु – केतु प्रमुखाः

P. P. Ac. Gunratansuriji M.S. Jin Gun Aaradhak Trust

ग्रहाः सुपूजिताः सन्तु, सुग्रहाः सन्तु, पुष्टिदाः सन्तु, तुष्टिदाः सन्तु, मंगलदाः सन्तु, समहोत्सवदाः सन्तु।

इसप्रकार कहकर ग्रहों की पुष्प आदि से पूजा करते हैं।

यम का वर्णन

यम नामक दूसरे लोकपाल के लिए इसप्रकार जानना। सौधर्मावतंसक महाविमान के दक्षिण भाग में सौधर्म कल्प है। वहाँ से असंख्य हजार योजन छोड़ने के बाद इन्द्र महाराज की आज्ञा में रहनेवाले इस लोकपाल का विमान आता है। जिस विमान की लम्बाई, चौडाई १२।। लाख योजन की है। इस लोकपाल की आज्ञा में यमकायिक, यमदेवकायिक, प्रेमकायिक, (व्यन्तर विशेष) प्रेतदेवकायिक, असुरकुमार असुरकुमारियाँ, कंदर्प नरकपाल आदि दूसरे भी देव हैं। जो नीचे लिखे अनुसार विघ्नों, उपद्रवों, कलह, एक दूसरे क सामने विरोधात्मक वार्तालाप, दूसरे के प्रति वैर, महायुद्ध, संग्राम, महापुरुषों का मरण, रुधिरपात, गांव-देश मंडल नगर के रोग, सिरदर्द, आँख में पीडा होना, कानकी वेदना, नख का रोग, दाँत की पीडा होना, झगडा करना, यक्ष भूत की पीडा, एकांतर (बारी का) बुखार आदि उद्वेग, खांसी, दम, अजीर्ण, पांडुरोग, हरस, भगंदर, छाती (वक्षस्थल) सिर, योनि और काख आदि का शूल, मरकी रोग, तीड, मच्छर, जू, माकड आदि के उपद्रव आदि दूसरे भी रोग हैं। यम देव की आज्ञा में रहनेवाले १५ प्रकार के परमाधामी नारक जीवों को इसप्रकार (दर्द) पीडा देते हैं।

१५ परमाधामी देव

(१) अंब-नारक जीवों को ऊपर से नीचे फेंकता है।

(२) अंबरीष-असुर कैंची से नारकों के टुकडे करके वर्तन (भाड) में पकाने योग्य बनाता हैं।

(३) श्याम-नारकों को शामन-पीडा देते है और छीलते हैं।

P. P. Ac. Gunratansuriji M.S. Jin Gun Aaradhak Trust

(४) शबल-नारकों की आँतें और हृदय बाहर निकालते हैं और दूसरी भी पीडाएं देते हैं।

(५) रौद्र-बरछी और भालेद्वारा नरक के जीवों को पिरोने का काम करते हैं।

(६) उपरौद्र-नारकों के अंग तथा उपांगों लो आरियां की तरह चीर डालने का काम करता है।

(७) काल-कडाई में डालकर नारकों को पकाते हैं।

(८) महाकाल-नारक जीवों के चिकने मांस के टुकडों को कूटते हैं और स्वाद लेते हैं।

(९) असिपत्र-तलवार की धार के जैसे पत्तों का वन (जंगल) बनाकर नारक जीवों को उसमें फेंक देते हैं।

(१०) कुंभ-घडे में नारकों को डालकर बांधते हैं।

(११) धनुष्य-धनुष्य के बाणों से बींधने का काम करते हैं।

(१२) वालुक-गरम रेत में डालते हैं।

(१३) वैतरणी-पीप, खून आदि दुर्गन्धित पदार्थों से ओत प्रोत (परिपूर्ण) नदी में नारक जीवों को फेंकने (डालना) का काम करते हैं।

(१४) खरस्वर-शाल्मली (वज्र के समान तीखे कांटेंवाले) पेडपर नारक जीवों को चढ़ाते हैं।

(१५) महाघोष-भय पाये हुए नारकों को वाडे (घर का घिरा हुआ पिछवाडा) में भरकर रखते हैं।

वरुण का वर्णन-

अब तीसरे वरुण नाम के लोकपाल का इसप्रकार वर्णन है।

वरुण राजा का स्वयंजल नाम का महाविमान सौधर्मावतंसक महाविमान के पश्चिम में है। इस लोकपाल की आज्ञा में वरुणकायिक, वरुण-

देवकायिक, नागकुमार, नागकुमारिकाएं, उदधिकुमार, उदधिकुमारिका, स्तनितकुमार और स्तनितकुमारिकाएं आदि दूसरे भी बहुत से देव रहते हैं। जैसे—

अतिवृष्टि–वेगपूर्वक वर्षा करना।
मंदवृष्टि–मन्द मन्द वर्षा आना।
सुवृष्टि–ऐसी वर्षा होना जिससे अनाज आदि सब पक जाय।
दुर्वृष्टि–ऐसी वर्षा जिससे अनाज आदि नहीं पके।
उदकोद्भेद–पहाड की तलेटी से पानी की उत्पत्ति।
उदकोत्पील–तालाव आदि में भरा हुआ पानी का समूह।
अपवाह–पानी का थोडा थोडा रेला (वहना)
प्रवाह–पानी का वेगपूर्वक वहना।

उपरोक्त वर्षा हानि तथा लाभ करनेवाले होते हैं। इस लोकपाल के कर्कोटक, कर्दमक, अंजन, शंखपालक, पुंड्र, पलाश, मोद, जय, दधिमुख, अधंपूल और कातरिक जैसे देव अपत्य समान है।

इसमें कर्कोटक यानी लवण समुद्र के ईशान कोने में अनुवेलंधर नाम नागराज का कर्कोटक नाम का पहाड है। वहाँ रहनेवाले नागराज भी कर्कोटक कहलाते हैं। इसप्रकार दूसरे देवों के लिए भी समझना।

वरुण का आधिपत्य

जैनशासन का भक्त श्री वरुणदेव कुआ, वावडी, तालाव, नदी, नाले आदि में रहे हुए पानीपर वर्चस्व रखता है। इसलिए अरिहंत देवों के अभिषेक के लिए शान्तिस्नात्र, अष्टोतरी स्नात्र पूजन के लिए पानी को बहुमान और सविधि लाने में आता है। जिसके लिए अट्ठाई महोत्सव करने में आता है और चतुर्विध संघ स्तवन आदि गाते हुए और बाजे आदि बजाते हुए जलयात्रा का वरघोडा (जिस में सैंकडों, हजारों रुपये खर्च होते हैं) निकालते हैं और जलाशय (पानी का स्थान) पर जाते हैं। वहाँ अभिषेक के लिए लेते हुए पानी की विधि इसप्रकार की जाती है। विधि-

P. P. Ac. Gunratansuriji M.S. Jin Gun Aaradhak Trust

कारक अष्ट प्रकारी पूजा की सामग्रीद्वारा वरुणदेव का मंत्र इसप्रकार बोलते हैं। " ॐ बं वं वं नमो वरुणाय, पाशहस्ताय, सकल–यादोधीशाय, सकल जलपक्षाय, सकल निलाभाय, सकल समुद्र नदी सरोवर पल्लव निर्झर कूप-वाप स्वामिनेऽमृतकाय देवाय अमृतं देहि देहि अमृतं स्रावय स्रावय, नमोस्तु ते स्वाहा। "

यह मंत्र बोलकर वरुण देव की अष्ट प्रकार की पूजा करते है। कूए आदि से पानी निकालकर यह मंत्र बोलते हैं, " ॐ ह्रीँ अमृते अमृतोद्भवे, अमृतवर्षिणी अमृतं स्रावय स्रावय सेँ सेँ क्लीँ क्लीँ ब्लूँ ब्लूँ द्रूाँ द्रूाँ द्रीँ द्रीँ द्रावय द्रावय ह्रूाँ जलदेवी देवा अत्र आगच्छत आगच्छत स्वाहा। "

बाद में अमुक अमुक मंत्र बोलकर अष्ट प्रकार की पूजा होती है और कलश भरकर गाते बजाते हुए मन्दिर में रख देते हैं। मंत्रों द्वारा पवित्र कराया हुआ पानी अरिहंत देव के अभिषेक के लिए काम में आता है।

कूए या बावडी के किनारेपर वरुण देव को आमंत्रित करने के लिए आठ स्तुति देव वंदन के लिए बोली जाती है। जिसमें आठवीं स्तुति के प्रारंभ में " जलदेवाय करेमि काउ० अन्नत्थ० १ " इसप्रकार का कायोत्सर्ग और इसप्रकार की स्तुति–

" मकरासनसमासीनः कुलिशाङ्कुशचक्र पाशपाणिशयः,
आशामाशापालो, विकिरतु दुरितानि वरुणो वः ॥ "

इसके बाद हाथ जोड़कर यह श्लोक बोलते हैं, वह इसप्रकार :–

करोतु शान्ति जलदेवताऽ सौ, मम प्रतिष्ठा विधिमाचरिष्यतः
आदास्यते वा मम वारि तत्कृते, प्रसन्नचिता प्रदिशत्वनु ज्ञाम् ॥

दशदिक्पाल के पाटला पूजन में भी वरुणदेव को इसप्रकार सादर आमंत्रित करते है।

" ॐ नमो वरुणाय पश्चिमदिगधिष्ठायकाय, मकर वाहनाय, पाश-हस्ताय, सपरिजनाय, अमुकगृहे वृद्धस्नात्रमहोत्सवे आगच्छ आगच्छ स्वाहा। "

P. P. Ac. Gunratansuriji M.S. Jin Gun Aaradhak Trust

इसप्रकार समंत्र, आलेखन तथा आह्वान कर, स्थापित करके। तत्पश्चात् निमंत्रण देने के बाद अष्ट द्रव्य अर्पण किया जाता है और हाथ जोड़कर इसप्रकार विनती की जाती है।

य: प्रतीची दिशो नाथो–वरुणो मकरस्थित: ।
सङ्घस्य शान्तये सोऽस्तु, वलिपूजां प्रतीच्छतु ॥

कुवेर का वर्णन

अब चोथा लोकपाल वैश्रमण कुवेर का विमान सौधर्मावतंसक नाम के पश्चिम भाग में है। उसकी आज्ञा में वेश्रमणकायिक वैश्रमणदेव कायिक सुवर्णकुमार, सुवर्णकुमारियें, द्वीपकुमार तथा कुमारियें, दिक्कुमार और कुमारियें, वाणव्यंतर और व्यंतरियें आदि दूसरे भी देव हैं। जो लोह सुवर्ण, रजत, हीरा, मोती, माणक, सीसा और दूसरे भी कपडे, फल, पुष्प आदि की वर्षा करनेवाले हैं। चाहे जिस स्थानपर गड़े हुए धन आदि को जाननेवाले हैं और उन उन स्थानों से धन लेकर तीर्थंकर देवों के जन्मादि समय में उस धन को वितरण करने का काम करते हैं।

ये लोकपाल, ग्रहदेव, जैन शासन को मान्य है। इसलिए ही शांति–स्नात्र, अंजनशलाका, प्रतिष्ठा आदि विधि में नवग्रह, दश दिक्पाल पूज्य है, सन्मान्य हैं और वड़ी शांति में प्रतिदिवस स्मरण किये जाते है। वह इसप्रकार है।

" ॐ ग्रहाश्चन्द्रसूर्याङ्गारक बुधवृहस्पति–शुक्र–शनैश्चर—राहु – केतु सहिताः सलोकपालाः सोमयमवरुण कुवेर वासवादित्य–स्कंद विनायक– उपेताः (युक्ताः) ये चान्येऽपि ग्राम–नगर–क्षेत्र देवता आदयः सर्वे प्रीयन्तां प्रीयन्तां, अक्षीण कोशकोष्ठागारा नरपतयश्च भवन्तु स्वाहा ।

॥ सातवा उद्देशा समाप्त ॥

P. P. Ac. Gunratansuriji M.S. Jin Gun Aaradhak Trust

आधिपत्य भुगतनेवाले देव

ये प्रश्नोत्तर राजगृह में हुए।

इस प्रकरण में असुरकुमारादि देव पर आधिपत्य भुगतने वाले देवों का वर्णन है सार यह है :-

असुरकुमार देवोंपर आधिपत्य भुगतने वाले दस देवेन्द्र हैं। वें यें हैं :-चमर, सोम, यम, वरुण, वैश्रमण, बलि, सोम, यम, वरुण, वैश्रमण,

नागकुमार पर आधिपत्य रखने वाले देव :-धरण, कालवाल, कोलवाल, शैलपाल शंखवाल, भूतानंद, कालवाल, कोलकाल, शंखवाल, और शैलपाल।

सुवर्णकुमार के अधिपति वेणुदेव, वेणुदाली, चित्र, विचित्र, चित्रपक्ष और विचित्रपक्ष

विद्युत्कुमार के अधिपति हरिकान्त, हरिसिंह, प्रभ, सुप्रभ, प्रभाकान्त और सुप्रभाकान्त।

अग्निकुमार के अधिपति अग्निसिंह, अग्निमानव, तेजस, तेजसिंह, तेजकान्त और तेजप्रभ।

द्वीपकुमार के अधिपति पूर्ण, विशिष्ट. रूप, रूपांश, रूपकान्त और रूपप्रभ,

P. P. Ac. Gunratansuriji M.S. Jin Gun Aaradhak Trust

उदधिकुमार के अधिपति देव :—जलकान्त, जलप्रभ, जल, जलरूप, जलकान्त और जलप्रभ ।

दिक्कुमार के अधिपति, अमितगति, अमितवाहन, त्वरितगति क्षिप्रगति, सिंहगति, और सिंह विक्रमगति,

वायुकुमार के अधिपति :— वेलंब, प्रभंजन, काल, महाकाल, अंजन और रिष्ट ।

स्तनितकुमारों के अधिपति—घोष, महाघोष, आवर्त्त, व्यावर्त्त, नंदिकावर्त्त और महानंदिकावर्त ।

दक्षिण भवनपति के इन्द्रों के प्रथम लोकपाल ये हैं :—सोम, कालवाल, चित्र, प्रभ, तेजस, रूप, जल, त्वरितगति काल और आयुक्त ।

पिशाचकुमारों के अधिपति दो दो हैं :— काल-महाकाल, सुरूप-प्रतिरूप, पूर्णभद्र-मणिभद्र, भीम-महाभीम, किंनर-किंपुरुष, सत्पुरुष, महापुरुष; अतिकाय-महाकाय, गीतरति-गीतयश ये सब वाणव्यन्तर देव के इन्द्र हैं ।

ज्योतिषिक देवों के अधिपति दो दो हैं :—सूर्य और चंद्र ।

सौधर्म और ईशानकोण के अधिपति :—शक्र, सोम, यम, वरुण, वैश्रमण, ईशान, सोम, यम, वरुण और वैश्रमण ।

इंन्द्रियों के विषय

ये प्रश्नोत्तर राजगृह में हुए हैं ।

इन्द्रियों के विषय कितने प्रकार के होते हैं, यह इस

P. P. Ac. Gunratansuriji M.S. Jin Gun Aaradhak Trust

प्रकरण में बताया गया है। उस संबंध में कहा गया है कि-इन्द्रियों के विषय पांच प्रकार के हैं। श्रोत्रेन्द्रिय का विषय यावत् स्पर्शेन्द्रिय का विषय।

इस संबंध में जीवाभिगम सूत्र के ज्योतिषिक उद्देश निरीक्षण करने की सिफारिश की है। ※ ५१

※ ५१ पांच इन्द्रियों की विषद व्याख्या

"स्वस्वविषय ग्रहण नियतानि-इन्द्रियाणि स्युः इस व्युत्पत्ति के अनुसार गतभव में उपार्जित पंचेन्द्रिय जातिनाम कर्म को लेकर इस वर्तमान भव में मानव को इन्द्रियों की प्राप्ति होती है।

पहले वर्णन किया गया है कि आत्मा को जिसके द्वारा ज्ञान की प्राप्ति होती है उन इन्द्रियों की रचना स्वयं आत्माने ही की है।

इन इन्द्रियों का विषय ग्रहण सर्वथा नियत होता है। इसलिए उसमें किसी भी ईश्वर या देवी देवता का हस्तक्षेप नहीं होता है।

महाभयंकर अंधकार में एक फल हमारे हाथ में आता है। उसका स्पर्श करने से ही उसके आकार विशेष को ध्यान में रखकर हम इस निर्णय पर पहुँच जाते हैं कि "यह आम है" उसको दबाने से यह मालूम होता है कि "यह पक गया है।" सूंघने से यह मालूम होता है कि इसका रस मीठा है किन्तु अंधेरे में आँख अपना काम करने में असमर्थ होने पर भी हम यह कल्पना कर लेते हैं कि इस आम का रंग "पीला" है। इस प्रकार आम के पीले रंग की कल्पना में ईश्वर का साक्षात्कार नहीं किन्तु 'अवग्रह, ईहा, अपाय और धारणा, इन चार प्रकारके मतिज्ञान में से 'धारणा' नाम के मतिज्ञान का ही चमत्कार है। किसी भी पदार्थ के ज्ञान में 'धारणा' शक्ति से जिन पदार्थों का रूप, रंग, आकार आदि हमारे मस्तिष्क में स्थिर हुआ होगा उसीके अनुसार धारणा भी उतनी ही तीव्र रहती है। और इस लब्धि

के कारण ही कोई भी अवधारित पदार्थ जब सामने आता है तब उसका निर्णय करने में देरी नहीं लगती है ।

अवधान प्रयोगों में दैवीशक्ति का चमत्कार नहीं किन्तु धारणा शक्ति का ही चमत्कार होता है ।

हाथ की सफाई का प्रयोग करते हुए जो धारणा दृढ होती है, उससे जादूका सा चमत्कार होता है ।

इन्द्रियाँ पांच है ।

स्पर्श, रस, घ्राण, चक्षु और श्रवण ।

इन पांचों में कर्तृ साधन और करण साधन से विग्रह किया जाता है । उदाहरणार्थ "स्पृशति–स्पृश्यतेऽनेनेति स्पर्शनम्" अर्थात् दूसरे पदार्थों को जो स्पर्श करता है अथवा आत्मा के उपयोग से जो पदार्थ स्पर्श किये जाते है, अथवा जिसके आश्रय से शीत उष्णादि पर्याय जानने में आते हैं । उसे स्पर्शेन्द्रिय कहते हैं । इसीप्रकार 'रसति–रस्यतेऽनेन । जिघ्रति–जिघ्रिताऽनेन । चष्टे वा चेष्ट अनेन । श्रृणोति श्रूयतेऽनेन वेति रसनम्, घ्राणम्, चक्षुः तथा श्रवणं ।"

इस प्रकार इन इन्द्रियों के माध्यम से आत्मा को ज्ञान की प्राप्ति होती है । ये इन्द्रियाँ नियत विषय को ही ग्रहण करने वाली होने से स्पर्शेन्द्रिय पदार्थों में रहा हुआ कठिन, कोमल, भारी, हलका, ठंडा, गरम, स्निग्ध और रुक्ष, ये आठ स्पर्श ग्रहण करने की शक्ति रखते हैं । पदार्थ मात्र में आठ स्पर्श ही होते हैं ।

रसनेन्द्रिय–पदार्थों में रहा हुआ तीखा, कडवा, कषायला, खट्टा और मीठा रस ग्रहण करती है ।

चक्षुरिन्द्रिय–काला, सफेद, नीला, पीला, और लाल रंग ग्रहण करती है ।

श्रवणेन्द्रिय–**सचित्त** यानी जीवित मनुष्य के मुख से निकला हुआ

P. P. Ac. Gunratansuriji M.S. Jin Gun Aaradhak Trust

शब्द, **अचित्त** यानी जड़ पदार्थों के घर्षण से उत्पन्न शब्द, सचित्ताचित्त यानी संगीत मण्डली में गाते हुए मनुष्यों के मुख से निकले हुए शब्द सचित्त और वाद्य यंत्र द्वारा निकला हुआ शब्द अचित्त है।

इस प्रकार आत्मा के प्रयोग से–उपयोग से इन्द्रियाँ कार्यरत बनती है। अनादि काल के प्रवाह रूप कर्मों के भार से आत्मा को प्रतिक्षण राग द्वेष का उदय होने के कारण किसी समय इस जीवात्मा को सफेद वस्त्र पसंद आता है। दूसरे क्षण में उसे वह वस्त्र एकदम पसंद नहीं आता है। एक समय में मीठा रस पसंद आता है और दूसरे ही क्षण मीठे रस के प्रति इतनी अरुचि हो जाती है जिससे खट्टा रस प्रिय लगता है, इसीप्रकार एक क्षण में ही जिस मनुष्य के साथ अत्यंत रागपूर्वक मैत्री संबंध रखा जाता है जबकि दूसरे ही दिन उसी मनुष्य के साथ शत्रुता हो जाती है।

इसीप्रकार पदार्थों के विषय को ग्रहण करने में आत्मा का स्वभाव ही भिन्न भिन्न होता है। उससे पदार्थ मात्र एक समय में सुन्दर और दूसरे समय में बुरा नही बन जाता है। पदार्थ अपने मूल स्वभाव में पूर्ववत् ही होता है। किन्तु हमारी आत्मा स्वयं राग द्वेष के वश होकर पदार्थों के विषय को ग्रहण करने में जिसप्रकार के उपयोग में परिणत होती है उसीप्रकार ग्रहण कराते हुए पदार्थों के विषय का परिणमन भी वैसाही होता है।

पदार्थ स्वतः खराब नहीं होता है। वैसे ही सरस भी नहीं। किन्तु मोह माया के कुसंस्कारों से कुवासित हुई आत्मा को एक समय में जिस पदार्थ के प्रति राग होता है दूसरे ही क्षण उसी पदार्थ के प्रति द्वेष उत्पन्न हो जाता है, अतः किसीने इस संबंध में सच्च ही कहा है, 'कोईक समय राग में तो कोईक समय द्वेष में अनंत काल गंवायो रे."

जब वही आत्मा ज्ञान–ध्यान के सुसंस्कारों से संस्कारित हो जाती है। तब प्रत्येक पदार्थ के प्रति वह समान बुद्धिवाली बनजाती है। उस स्थिति में पुण्योदय के कारण मनोवांछित पदार्थ और पापोदय के कारण मन

को अरुचिकर (नापसंद) पदार्थ के प्रति एक समान भाव रखकर अपनी आत्मा को दूषित नहीं करता है।

चारित्रयोग का स्पष्टीकरण

"चारित्रं स्थिरतारूपम्" आत्मा में पूर्ण रूप से स्थिरता लाना, उसे सम्यक् चारित्र कहा जाता है, और उस स्थिरत्व को टिकाने के लिए निवृत्ति लक्ष्या प्रवृत्ति अर्थात् प्रवृत्ति में भी निवृत्ति का रंग लगता जाय, वैसी प्रवृति में राग द्वेष विना का जीवन जीना, वह स्थिरता है, जो चारित्र है।

चित्तवृत्ति के रोध को योग कहना इसलिए ठीक नहीं है कि आत्मा में स्थिरता विनाकी चित्तवृत्ति का रोध तो 'मछलियाँ पकड़ने की भावना रखने वाला बगुला, मक्खियों को पकड़ने वाली छिपकली' मृग (हरिण) का वध करने के लिए उद्यत हुआ शिकारी आदि में भी चित्त और शरीर का रोध स्पष्ट दिखाई देता है।

अमुक स्वार्थ के कारण भी वचन का रोध सुलभतम बन जाता है। जैसे :–हमको अभी गरज है, अथवा अमुक प्रकार के विरोधी वचन कहने पर हमारे स्वार्थ को हानि पहुँचेगी। इसलिए "मौनं सर्वार्थ साधनम्" ऐसा योग शायद दांभिकता को भी आमंत्रित कर सकता है तथा माया मृषावाद के प्रति भी प्रस्थान करा सकता है।

"अतः मानसिक, वाचिक और कायिक योग में पापों की तथा पाप भावनाओं की निवृत्ति लाना, वह चारित्र योग है।

आत्मा के द्वारा ही आत्मा का निरीक्षण करना अर्थात् अपनी आत्मा की निर्बलता तथा दूषणों को वैसे ही रागद्वेषात्मक जीवन का आत्मा द्वारा निरीक्षण करना, अनुभव करना और उनके त्याग में ही प्रयत्न करना, वह भी सम्यक् चरित्र है।

आत्मा जब अपने स्वरूप को भूल जाता है तब रागद्वेष की वृद्धि होती है।

P. P. Ac. Gunratansuriji M.S. Jin Gun Aaradhak Trust

जबतक द्रव्य और पर्यायों की शक्तियों का विश्लेषीकरण करने की शक्ति आत्मा में व्यवस्थित रूप से विकसित नहीं होती है तब तक आत्मा रागद्वेष से बाहर आने में समर्थ नहीं होता है।

ऐसी स्थिति में अशुभ स्पर्श, रस, गन्ध, वर्ण और शब्द को स्पर्श करते हुए, स्वाद लेते हुए सूंघते हुए, देखते हुए और सुनते ही मन महाराजा १०८ डिग्री के पारे पर चढ़ जाता है।

गटर का पानी दुर्गन्ध फैलाता हुआ बहता है, उसी समय उसे देखते ही हमारे मन, वचन और काया में चंचलता उत्पन्न होते देर नहीं लगती है। 'चंचलता असंयम है. और स्थिरता चारित्र है।" ऐसा समझते हुए भी गटर के पानी की दुर्गन्धता देखकर नाक पर रुमाल रखना पड़ता है। फिर भी हम स्वयं ऐसी दुर्गन्धि में कितने ही बार जन्मे हैं, मस्ती में झूमते रहे और ऐसे पदार्थ खाये हैं, सूंघे हैं, स्पर्श किये है और देखे हैं। फिर भी संसार से ऐसे दुर्गन्धित पदार्थ (पुद्गल) किसी भी समय में न तो नष्ट हुए है, और न उनका नाश होगा। तब ऐसी विकट स्थिति में हमारे शुभ तथा अशुभ कर्मों के उदय के कारण प्राप्त होने वाले शुभाशुभ पुद्गलों में हमें किस प्रकार रहना? इस प्रकार का शिक्षण ही आध्यात्मिक शिक्षण है।

शुभ पुद्गल यानी मनो नुकूल पुद्गलों में राग की परिणति, और अशुभ यानी नापसंद पुद्गलों में द्वेष, तिरस्कार और धिक्कार की प्रवृत्ति. इन दोनों परिणतियों के समय में साम्य परिणति विकसित हो जानी चाहिए।

मन को पसंद आने वाले शब्द. रूप, गन्ध, रस और स्पर्श को भोगने वाली हमारी आत्माने रागाधीन बनकर उन–उन पुद्गलों की माया के चक्र में बेभान होकर सद्विवेक को तिलांजलि अर्पित कर दी है और अहंकार के भार से दबकर कर्त्तव्यमूढ़ बन गयी है।

मन को नापसंद आनेवाले शब्द, रूप, गन्ध और स्पर्श में इस आत्माने द्वेष वश होकर बहुतों के साथ वैर कर लिया है और

P. P. Ac. Gunratansuriji M.S. Jin Gun Aaradhak Trust

दुर्गति में पड़कर उनके कड़ुवे फल भुगतने के पश्चात् भी अभी तक पुद्गल द्वारा उत्पन्न हुए राग द्वेष की परिणति को बदलने की ट्रेनिंग प्राप्त नहीं कर सकी है। बस, यही हमारे जीवन की और शिक्षा की करुणता है। भगवती सूत्र का प्रश्नोत्तर स्पष्ट है, श्रोत्रेन्द्रिय के विषय संबंधी पुद्गल का परिणाम शुभ या अशुभ रूप होता है। उसीप्रकार चक्षु इन्द्रिय भी सुन्दर और कुरुप को ग्रहण करती है, घ्राणेन्द्रिय भी सुगंध और दुर्गन्ध के पुद्गलों को ग्रहण करती है, रसनेन्द्रिय भी सरस और कुरस को ग्रहण करती है, स्पर्शेन्द्रिय भी सुहावने और बुरे स्पर्श के परिणाम को ग्रहण करती है। सूत्रका गूढार्थ स्पष्ट होते हुए भी 'व्याख्यानतो विशेष–प्रतिपत्तिः "' विवेचन से विशेष ज्ञान होता है।' इस न्याय के अनुसार प्रत्येक मानव के जीवन को स्पर्श करता हुआ विषय होने के कारण जरा इसपर विशेष रूप से विवेचन करते हैं।

पुद्गलों का चमत्कार

रसोईघर में चतुर रसोईये के हाथ से 'उडद की दाल' पौद्गलिक होने के कारण खानेवाले के लिए अमृततुल्य या विषतुल्य नहीं है। अर्थात् इस दाल को खानेवाला समयपर आनेवाली अपनी मौत से नहीं बचा वैसे ही उक्त दाल को खानेवाला कोई भी तत्काल नहीं मरा, नहीं मरता है और नहीं मरेगा। यानी उडद की दाल न तो अमृत है और न विष है। फिर भी पौद्गलिक वस्तु को लेकर मानव के मन में एक राग की परिणति, यानी इस दाल का नाम सुनते ही 'जम्प' लेने लग जाता है और प्रसन्नचित्त एवं हर्षित होकर उसे अत्यन्त स्वादपूर्वक खाता है।

जबकि कोई अन्य पुरुष उसीं दाल का नाम सुनते ही स्तब्ध हो जाता है और पूर्ण रूप से रोष में आकर दाल बनानेवाले को कितनी ही गालियाँ देता है। दोनों के लिए दाल एकसी है फिर भी दोनों जीवों में रागद्वेष की परिणति के फल भी सर्वथा पृथक् हैं।

P. P. Ac. Gunratansuriji M.S. Jin Gun Aaradhak Trust

मनुष्य को दुःखी–महादुःखी बनानेवाला परपदार्थ नहीं है। फिर भी असंस्कारी; कुसंस्कारी, मिथ्या संस्कारी मन, जीवन का अज्ञान, मोहवासना का भयंकर अंधकार, मिथ्याकल्पना की माया, शरीर को पुष्ट बनाने का विपरीत ज्ञान, आदि कारणों से ही अपने हाथों से पैर पर कुल्हाड़ी चलाता है यानी दुःख की परंपरा स्वीकार कर लेता है। जब जीव इन्द्रियों का भोग और उसकी लालसा ही जीवन का सर्वस्व मानकर जीवन बीताता है। तब पुद्गल पदार्थ भी अपना प्रभाव डालने के लिए तैयार हो जाते हैं। एक बार यदि मनमहाराज आत्मा पर सवारी कर गये तो यह समझ लीजिये कि हमारी आत्मा कभी भी सुखी नहीं बनसकती है। तत्पश्चात् संपूर्ण जीवन सुख की छाया की तलाश में ही पूर्ण होगा।

मनुष्य मात्र को इतना ज्ञान है कि उडद की दाल खाने से वह नहीं मरेगा, वैसेही अमरत्व को भी प्राप्त नहीं होगा। फिर भी उडद की दाल हमारे जीवन में कितना तूफान मचा रही है।

हमें तो यह विचार करना है कि इसप्रकार के तूफान कराने में, दाल का प्रभाव है या असंस्कारी हमारा मन महाराज सब कुछ कराता है, क्योंकि दाल खाने वाले हजारों मनुष्य आज भी टेस्ट पूर्वक दाल खाते हैं जबकि मुझे दाल के प्रति इतनी प्रबल नफरत क्यों है ?

यदि हमको उस समय सद्बुद्धि उपजती है या ज्ञान–नेत्र खुलते हैं तो हमारी अन्तरात्मा ही जवाब देगी कि दाल तो बिचारी जड़ पदार्थ है, पुद्गल है. रोटी के साथ खाने मात्र का ही साधन है। इसमें बुरा भला करने की शक्ति नहीं हैं। तब दाल का दोष नहीं किन्तु मैं स्वयं ही इन्द्रियों का गुलाम हूँ। इसी कारण से संसार मेरे लिए क्लेश का कारण बन गया है। मित्र दुश्मन बन गया है। परिवार के बीच में मैं मिजाजी बना। ज्ञान विज्ञान प्राप्त करने पर भी मेरी आत्मा स्वच्छंदी बनी रही। फेशन में रहता हूँ। फिर भी मेरी आत्मा भोग रूपी कीचड़ में रमण करती है।

P. P. Ac. Gunratnasuriji M.S. Jin Gun Aaradhak Trust

यें प्रश्नोत्तर राजगृह में हुए ।

इसमें चमर की सभा संबंधी प्रश्न हैं। अर्थात् चमर की तीन सभाएं बताई हैं । शमिका (शमिता) चंडा और जाता । ❁ ५२

मास्टर से उत्तरोत्तर उन्नति की सोढी पर चढ़ता हुआ प्रोफेसर बना किन्तु मेरे मन और इन्द्रियों को संयम की शिक्षा न दे सका ।

कभी डाक्टर बना किन्तु मेरे आत्मा की दवा और मेरे दुख का निदान मैं स्वयं नहीं कर सका।

कभी वकील बना किन्तु मेरे जीवन की वकालत करने में समर्थ नहीं हो सका। इसलिए ही मैं श्रीमन्त हूँ किन्तु हृदय का दरिद्र हूँ। सत्ताधारी हूं फिरभी आन्तरिक जीवन का दानव हूं। तब इस प्रकार के पदाधिकारी बनने से क्या लाभ?

पुद्गल एक है किन्तु मेरे जीवन के राग द्वेष के कारण मैं दुःखी हूं।

इन दुखों से छुटकारा पाने के लिए मेरे खान पान में, रहन–सहन में क्रिया करने में, उठने बैठने में और व्यापार व्यवहार में संयम लाना यही एक परम सुख का, शांति का समाधि का मुख्य कारण है ।

पुद्गल छोड़ने के नहीं है किन्तु उनमें रही हुई है लाससा छोड़नी है । स्त्री नहीं छोड़नी है किन्तु उनके प्रति बनी हुई दुराचार की भावना छोड़ने की है । वैसे ही श्रीमंत पना और सत्ता नहीं छोड़नी है किन्तु उनके प्रति साध्य भावना को त्यागकर साधन भाव पैदा करना है ।

❁ ५२ तीसरे शतक का यह अन्तिम प्रश्न है । राजगृही नगरी में समवसरण की रचना हुई है । और गौतमस्वामी द्वारा पूछे गये प्रश्न का उत्तर देते हुए भगवान ने फरमाया है कि दक्षिणाधिपति असुरराज चमरेन्द्र की तीन प्रकार की सभाएं होती हैं ।

P. P. Ac. Gunratansuriji M.S. Jin Gun Aaradhak Trust

इन्द्रलोक की तीन सभा

१. शमिता २. चंडा ३. जाता

१. **शमिता**–यानी स्वयंकी उत्तमता के कारण स्थिर स्वभाववाली होने से समतावाली है। अथवा अधिपति के वचनों को मान्य करने वाली होनेसे सबको शान्त कर देने वाली है। अथवा जिस सभा में उद्धताई नहीं वैसी यह आभ्यन्तर सभा है। जो अत्यन्त गौरववंती है। अर्थात् इन्द्र तथा दूसरे बड़े देव भी इस सभा को मान देते हैं। चाहे जितना बड़ा समाज भी संविधान सभा को ध्यान में रखकर ही अपने आधिपत्य का गौरव सुरक्षित रख सकता है।

२. **चंडा**–उसप्रकार का बडपन (गौरव) न होने से साधारण कार्य आदि में भाग लेने वाली है। यानी इसका महत्व पहली सभा से कम है। फिर भी इन्द्र को मान्य है।

३. **जाता**–बडपन (गौरव) का स्वभाव न होने से सर्व साधारण सभा कही जाती है।

इन तीनों में पहली आभ्यन्तरा, दूसरी मध्यमा और तीसरी बाह्य सभा कहलाती है।

पहली सभा का प्रयोजन इस प्रकार है। बडे अधिकारी को कोई भी प्रयोजन हो तो आदर पूर्वक वह इस सभा को बुलावे तभी इस सभा के सभ्य आते हैं। उनको इन्द्र महाराज ऐसा कहकर सूचित करते हैं कि यह मेरा स्वयं का कार्य है।

मध्यमा सभा में बडपन (गौरव) कम है। इसमें वह वार्तालाप बताया जाता है जो बड़े अधिकारियों की आभ्यन्तर सभा में हुआ है और प्रस्ताव नक्की (निश्चित) कराता है।

बाह्य सभा साधारण कोटि की है, अतः उसके सदस्य बिना बुलाये

P. P. Ac. Gunratansuriji M.S. Jin Gun Aaradhak Trust

भी उपस्थित हो जाते हैं। हम इतना जान सकते हैं कि ये तीन सभाएं एक दूसरे की पूरक हैं और परस्पर एक दूसरे को मान देकर इन्द्रलोक का गौरव बढाती हैं।

किस सभा में कितने सभासद हैं और उसमें भी कितने देवता और कितनी देवियाँ हैं ? अब यह बात जीवाभिगम सूत्र के अनुसार लिखी जाती है।

पहली सभा में सभासद २४००० देव हैं।

मध्यम सभा में २८००० देव हैं।

अन्तिम सभा में ३२०० देव हैं।

देवियों की संख्या अनुक्रमनुसार ३५०, ३०० और २५० है।

पहली सभा के सभासदों की आयु मर्यादा २।। पल्योपम की है। मध्य में २ पल्योपम और बाहय सभा में १।। पल्योपम है। देवियों की आयुष्य मर्यादा अनुक्रम के अनुसार १।।, १, ०।। पल्योपम का है। इस-प्रकार उत्तराधिपति वलिइन्द्र के लिए भी समझना चाहिए।

केवल देवों की संख्या में चार चार हजार की संख्या कम करनी है। जबकि देवियों की उपरोक्त संख्या में १०० की संख्या की वृद्धि करनी है।

अब वैमानिक देवों की सभा, तथा सभासदों की संख्या नीचे लिखे अनुसार समझनी है।

सभा तो उपरोक्तानुसार तीन प्रकार की ही समझना। जबकि निम्नानुसार यह संख्या है :—

देवलोक के नाम	आभ्यन्तरा	मध्यमा	बाहृया
१ प्रथम देवलोक	१२००० देव	१४००० देव	१६००० देव
सौधर्म	७०० देवी	६०० देवी	५०० देवी
२ द्वितीय देवलोक	१०००० देव	१२००० देव	१४००० देव
ईशान	९०० देवी	८०० देवी	७०० देवी

P. P. Ac. Gunratansuriji M.S. Jin Gun Aaradhak Trust

देवियों की उत्पत्ति यहाँ तक ही है। आगे के कल्पों में देवियाँ नहीं हैं।

३ सनत्कुमार	८०००	१००००	१२०००
४ माहेन्द्र	६०००	८०००	१००००
५ ब्रह्मलोक	४०००	६०००	८०००
६ लांतक	२०००	४०००	६०००
७ शुक्रदेवलोक	१०००	२०००	४०००
८ सहस्त्रार	५००	१०००	२०००
९-१० आनत-प्राणत	२५०	५००	१०००
११-१२ आरण-अच्युत	१२५	२५०	५००

इसप्रकार इससे संबंधित दूसरा साहित्य जीवाभिगम सूत्र से जानना।

यद्यपि इन्द्र महाराज सबसे ऊपर और सम्पूर्ण सत्तावान् होते हैं। फिर भी अपने सभासदों को मान देकर उनसे अपना प्रयोजन सिद्ध करा लेते हैं। सभासदभी अपने अधिकारी का नाम रखते हैं। देवलोक में देवताओं के लिए जिसप्रकार सभासद पद का उल्लेख होता है उसी प्रकार देवियाँ भी सभासद पद को सुशोभित करती हैं। भगवती सूत्र और जीवाभिगम सूत्र हमको यह जानकारी देते हैं कि इन्द्रों की सभा में देवियों का भी बहुमान है, अतः नारियों का मान करना शास्त्रमान्य है तो फिर मनुष्यलोक में स्त्रियों का अपमान क्यों किया जाता है ?

मातृस्वरूपा स्त्री का अपमान पाप है

स्त्रियोंको हीन मानने में हमारा प्रयोजन क्या है ? क्या बुद्धिबल में स्त्रियाँ पुरुषों से हीन हैं ? इन सब और दूसरी भी कल्पनाओं में पुरुष जाति केवल यह चाहती है कि स्त्रियें पुरुषों की आज्ञा का पालन करें, इसके अतिरिक्त और कोई तत्त्व नहीं।

महिलाओं का अपमान करके पुरुष जाति ने सब बातों में अपने पतन

P. P. Ac. Gunratansuriji M.S. Jin Gun Aaradhak Trust

को ही आमंत्रित किया है। आज के पुरुषों में जो मानसिक कमजोरी, वाचिक दुर्बलता और शारीरिक दृष्टी से जो अधःपतन दृष्टिगोचर होता है, उसका एकमात्र कारण स्त्री शक्ति का अपमान करना है। स्त्री में मातृत्व-भाव का व्यवस्थित रूप से विकास तथा शक्ति होते हुए भी आज का पुरुष उस शक्ति का बहुमान करने से सर्वथा दूर रहा है, इसीलिए पुरुष के जीवन में व्यापार क्षेत्र में राक्षसीय स्वभाव, कौटुंबिक जीवन में स्वार्थांधता, सामुदायिक जीवन में वैरग्रस्त, पारस्परिक जीवन में ईर्ष्यान्ध और व्यक्तिगत जीवन में असहिष्णु बनकर हम एक दूसरे के शत्रु बन बैठे हैं।

आज का धार्मिक जीवन दांभिकता पूर्ण है। मायामृषावादग्रस्त है। वैर विरोध की आग से संतप्त है, मनुष्यों की आंखों में विष है, जीभ में कड़वापन है। मस्तिष्क में स्वार्थ साधकता है। उपदेश में हठाग्रह है और लालसाओं से भरा हुआ हृदय है। इसलिए आजका पंडित वक्ता, आचार्य, उपाध्याय, संगीतकार, श्रीमंत, सत्ताधीश आदि में परस्पर एक दूसरे के साथ मैत्री भाव नहीं है। क्योंकि सबके हृदय में भिन्न भिन्न लालसा है। आँखों में पूर्वग्रह का अंजन है। अतः एक दूसरे की आँख एक दूसरे के साथ मिलती नहीं है। तो फिर हाथ से हाथ मिलाने की आशा कैसे रखी जाय? और जब कि आँख से आँख या हाथ से हाथ नहीं मिलता है तो एक दूसरे का हृदय एक दूसरे से कैसे मिलेगा? इस कारण से इन लोगों का धार्मिक जीवन, पंडिताई, श्रीमंताई और सत्ता केवल समाज, संप्रदाय, संघ, नगर, देश को आपस में लड़ाने के सिवा दूसरे काम में नहीं आ सकती। आज के अखिल भारतवर्ष की दशा ही इसका स्पष्ट उदाहरण है। ये सब पुरुष जाति के आन्तरिक दोष स्त्री में मातृत्व भावना के ह्रास का कारण बना है। फल स्वरूप मानव अपने हृदय में दिव्य गुणों की ज्योति प्रगट नहीं कर सका है।

आज मानव मानव का शत्रु है। एक जाति दूसरी जाति की

P. P. Ac. Gunratansuriji M.S. Jin Gun Aaradhak Trust

विरोधी है। एक संप्रदाय दूसरे संप्रदाय को समूल नेस्तनाबूद करने में पूर्ण प्रयत्नशील है।

मास्तिष्कशक्ति यदि उल्टे मार्गपर न गई हो तो यह समझना सरल है कि हम सबने पृथ्वीपर जन्म लिया है। जबतक जीवित रहेंगे तबतक महाजन को सुतार, लोहार, घांची, भंगी, दर्जी, धोबी, नाई, ब्राह्मण और राजपूत आदि बिना एक पल भी नहीं चल सकता। मकान बनाने के लिए सुतार, रसोई करने के साधन तैयार करने के लिए लोहार, तेल प्राप्त करने के लिए घांची, संडास साफ करने के लिए भंगी, कपडे सीने के लिए दर्जी और उनको धोने के लिए धोबी, दाढी बनाने के लिए नाई, विद्या सिखाने या विवाह कराने के लिए ब्राह्मण और जान माल की रक्षा के लिए राजपूत की जरुरत रहेगी। किसी को उपरोक्त पेशेवाले लोगों से सम्पर्क रखे बिना नहीं चल सकता। यह सर्वथा सत्य हकीगत होने से सर्वथा उपादेय है। यह सीधा सादा अमुल्य मानवीय तत्त्व है जिसने यदि जीवन में नहीं उतारा है तो हम एक दूसरे के कट्टर दुश्मन बन कर एक दूसरे का नाश करने के लिए सदा तत्पर रहेंगे। यदि इसप्रकार बन गया तो हमारे जीवन में राक्षसीय गुण के सिवा और कोई गुण शेष नहीं रहेगा।

माता के तीन गुण

धर्म तथा शास्त्र के गहरे तत्त्वों तक पहुँचे उसके पहले अपने आध्यात्मिक जीवन के प्रारंभ काल में ही पुरुषों को अपने हृदयमंदिर में मातृ-स्वरूपा स्त्री का चित्र अंकित कर देना चाहिए था। तभी हमारे जीवन के प्रारंभ काल से तीन गुण आ सकते थे।

१. जीव मात्रपर दयाभाव रखने की उदात्त भावना।
२. जीव मात्र को रोजी तथा रोटी देने की पवित्र भाववा।
३. संपूर्ण जीवों के अपराधों को क्षमा करने की पवित्र भावना।

P. P. Ac. Gunratansuriji M.S. Jin Gun Aaradhak Trust

उपर्युक्त तीन गुण मानवता की सीमारेखा के समान है। जिसकी प्राप्ति राक्षस, दानव और असुरवृत्ति के मालिक को नहीं होती है। अत एव राक्षस, दानव और असुर संपूर्ण संसार के पूरे कट्टर शत्रु हैं । जब इन तीनों गुणों से युक्त माँ होती है । पुत्र पर दया करने वाली पुत्र को रोटी देने वाली तथा पुत्र के चाहे जैसे अपराधों को क्षमा कर देने मे पूर्ण क्षमता रखने वाली माँ है ।

जैसे मोक्षकी प्राप्ति के लिए सम्यक्त्व की अत्यंत आवश्यकता है वैसे आध्यात्मिक जीवन बनाने के लिए उपर्युक्त ३ गुणों की नितांत आवश्यकता है। उनको धारण किये बिना आध्यात्मिक जीवन की कल्पना निरा दंभ है। झाँसापट्टी है और परमात्मा की अनंत शक्तियों का भयंकर अट्टहास है।

इन गुणों को स्वार्थपूर्ति के ध्येय से भले ही विकसित करें किन्तु इसका फलादेश हमारे जीवन में दंभ पोषक ही रहेगा। इसलिए यह स्वीकार किये बिना नहीं रहा जाता कि आज के पुरुष में ये तीन गुण विकसित हुए बिना केवल सत्ता रूप में ही पड़े हैं। अन्यथा पशुओं के लिए पांजरापोल का निर्माण करने वाले, कुत्तों के लिए रोटी और कबूतरों के लिए चने डालने वाले पुरुष वास्तव में यदि दयालु होते तो आज का मानवसमाज भूखा एवं नंगा न रहता और नउनको दुःखों का महसूस होता। दूसरी तरफ समाज के कथित धार्मिक, धर्म के अनुयायी और उपदेशक मालमसाला खाते हैं। श्रीखंड पूरी उडाते हैं, दूध के कटोरे के कटोरे भरे हुए पी जाते हैं। सूंठ पीपरामूल और खिचडी में घी डालकर खाते हैं। ये दयालू और दानेश्वरी के लक्षण नहीं हैं किन्तु निदर्यी तथा निध्वंस परिणामी के हैं। हमें अच्छी तरह से यह समज लेना है कि:—'धम्मस्स जणणी दया' धम्मस्स जनकोविवेक:।" धर्म की माता दया है और बाप (पिता) विवेक है, जिसके अभाव में चाहे जितनी श्रद्धा हो और चाहे जितने श्लोकों का ज्ञान प्राप्त कर लिया हो व्यर्थ है।

P. P. Ac. Gunratansuriji M.S. Jin Gun Aaradhak Trust

अपनी स्वयं की संतान को डॉक्टर तथा वकील बनाने के लिए तथा दूसरे प्रकार के ज्ञान विज्ञान में चतुर बनाने के लिए अमेरिका, लंडन और जर्मन आदि में भेजकर ऊँची डिग्री दिलाने के लिए कहीं पर भी और किसी को भी पाप और अधर्म की कल्पना लक्षित नहीं होती है। तब समाज के बच्चों के लिए कोई स्कूल या कालेज की व्यवस्था करने और करवाने में ही पाप की कल्पना किस लिये? उसके लिए अवरोध किस लिए किया जाता है?

इसमें एक मात्र कारण यह है कि दूसरे जीवों को रोटी और रोज़ी देने की भावदया हमारे जीवन में नहीं है।

तीर्थंकर भगवान् जो वार्षिक दान देते हैं वह उत्कृष्टतम भावदया के परिणामों का कारण है।

वह भावदया भी दो तीन भव पूर्व की आराधित होती है।

तीर्थंकर पद का इच्छुक मानव तो भावदया से परिपूर्ण होता है। वह दूसरे जीवों को रोटी और रोजी देने के लिए किसी काल में भी विरोध नहीं कर सकता।

यदि तीसरा गुण हमारे हृदय रूपी मन्दिर में विराजित होता तो दूसरों के सब अपराध क्षन्तव्य समझकर सबके साथ मैत्री भाव कर सकते थे।

आज के धनिक लोगों में, सत्ताधीशों में पंडितों में और उपदेशकों में जो वैर विरोध दिखाई देता है उससे हमें यह जानकारी मिल सकती है कि हमारा जीवन दूसरों को दुःख देने के लिए होता है। इसी कारण कोई किसी की भूल सहन नहीं कर सकता। अतएव पृथक् मंडल, पार्टी और संस्थाओं में हमारा मानव समाज विभक्त होकर रहा हुआ है।

आज हम विभक्त हैं। इसीलिए हमारा जीवन दूषित है, मायामृषा-वादपूर्ण है।

P. P. Ac. Gunratansuriji M.S. Jin Gun Aaradhak Trust

अंग्रेजी में धर्म शब्द का पर्याय 'रिलीजन' शब्द है। जिसका अर्थ है, विभक्त मानव, यानी जुदा हुआ मानव दूसरों के साथ एकीकरण में अर्थात् परस्पर विचारों की समझौती करके एक झंडे के नीचे आ जावे। संपूर्ण समाज आसुरी वृत्तियों के कारण दैवसंपत्ति सम्पन्न परमात्मा से अलग है। इसीलिए वह जुदाई, दया, दान, क्षमा आदि परमात्मा के आदेशों को जीवन में उतारकर वापस अरिहंत देव के मार्गपर आकर दूर करें। यानी क्रोध, मान, माया, लोभ और प्रपंच आदि का त्याग करें।

उपर्युक्तानुसार माता के हृदय में रहे हुए तीन गुण अपने जीवन में उतारने के लिए हमको भी माताकी तस्वीर प्रतिक्षण सामने रखनी चाहिए। जिससे मानवता का विकास करने के लिए हम समर्थ बन सकें,

मानवता रहित हमारे आधुनिक जीवत में उल्टी गंगा बह रही है। फिर भी हम सही मार्ग नहीं देख सकते हैं और न समझ सकते हैं। उसका कमाल कारण यही है कि 'मातृत्व हृदया स्त्री शक्ति का बहुमान हम नहीं र सके हैं।

अद्भुतशक्ति संपन्ना, क्षमाशील, प्रेममूर्ति स्त्री को पहचानने में हम असमर्थ रहे हैं। यदि स्त्री को हमने पहचानी है तो केवल स्वार्थ पूर्ति तक ही। अतएव स्त्री शक्ति के साथ दूषित और पापसे परिपूर्ण भावना (वासना) के कारण ही हमारे जीवन में बड़ी से बड़ी खोट (दोष) रह गई है, जो पूरे संसार में किसी भी पदार्थ से तथा ऊंचे से ऊंचे ज्ञान विज्ञान से दूर नही हो सकती। इसप्रकार पुरुष जाति के जीवन में स्थित मूल खोट ही हमको आगे बढ़ने नहीं देती, उसीसे हमारा ज्ञान विज्ञान उल्टे रास्तेपर चढ़ गया और मानव मात्र का शत्रु बना तथा हम सबने सम्मिलित होकर संसार को हिंसा, झूठ, चोरी, मैथून और परिग्रह की बकसीश देकर कडुवे जहर के तुल्य बना दिया।

इस माया चक्र से उद्धार पाने के लिए स्त्री शक्ति का बहुमान ही आध्यात्मिक जीवन के लिए अद्वितीय शक्ति है, पावर है तथा उन्नत

P. P. Ac. Gunratansuriji M.S. Jin Gun Aaradhak Trust

जीवन के प्रति कदम बढ़ाने के लिए निष्कंटक मार्ग है। इन कारणों से हमारे हृदय रूपी मन्दिर में सबसे पूर्व माता का चित्र ही अंकित करना विशेष रूप से उपयुक्त है।

इसी सत्य हकीकत को ध्यान में रखकर ही " स्त्रियाँ भी बहु मान्य है " इस भावना के वश होकर ही इन्द्र महाराज जो सम्यक्त्वी और निकट भविष्य में मोक्षगामी होते हैं। वे अपनी सभाओं में देवियों को बहुमानपूर्वक सभासद का पद देते हैं। देवता भी जब स्त्री शक्ति की इस-प्रकार प्रतिष्ठा करते हैं तब मनुष्य का यह कर्तव्य है कि ' महाजनो येन गतः स पन्थाः। इस न्याय के अनुसार स्त्रीजाति का बहुमान करना, इसी में ही उनका हित समाया हुआ है। इससे सामाजिक दूषण दूर होगा। व्यक्तिगत जीवन सशक्त बनेगा। धार्मिक मर्यादाओं की पवित्रता का पालन होगा और हमारा आन्तरिक जीवन उच्च बनने के साथ व्रत, नियम और पच्चक्खाण निर्दंभ बनेंगे।

दश उद्देशाओं के साथ तीसरा शतक संपन्न हुआ।

P. P. Ac. Gunratansuriji M.S. Jin Gun Aaradhak Trust

" तीसरे शतक का समाप्ति वचन "

अज्ञानियों के अज्ञानरूपी अंधकार को हटाने के लिए जाज्वल्यमान सूर्यसमान, संयम और ब्रह्मचर्य की अराधना से चमकते हुए शुक के तारे के सदृश, उपदेशामृत से सब जीवों के काषायों को शांत करने में चन्द्रमा के तुल्य, जर्मन, फ्रांस, इटली, अमेरिका, यूरोप आदि पाश्चात्य विद्वानों को जैनधर्म का परिचय कराने में ब्रह्मा के जैसे, स्याद्वाद नयादि तत्वज्ञानद्वारा भारतीय प्रचंड विद्वानों की रक्षा करने में विष्णु के सदृश, अज्ञान, मिथ्या भ्रम और रुढिवाद का समूल नाश करने में शंकर स्वरूप शास्त्रविशारद, महान् विभूति, जैनाचार्य, श्री १००८ श्री विजय धर्मसूरीश्वरजी महाराज भगवान महावीर स्वामी की ७४ वीं पाट परंपरा को देदीप्यमान करके जगत में अमर बन गये हैं।

उनके शिष्य शासनदीपक मुनिराज श्री विद्या विजयजी महाराज ने अपने स्वाध्याय के लिए भगवती सूत्र के ६ शतक तक संक्षेप में वर्णन किया था। उसको सुधार कर तथा बढ़ाकर उनके सुशिष्य न्याय, व्याकरण, काव्य तीर्थ, पंन्यासपदविभूषित श्री पूर्णानंद विजयजी (कुमार श्रमण) ने विस्तृत टिप्पण द्वारा स्पष्ट करके पुस्तकारूढ किया है।

" शुभं भूयात् सर्वजीवानाम् "

॥ शतक तीसरा संपूर्ण ॥

P. P. Ac. Gunratansuriji M.S. Jin Gun Aaradhak Trust

शतक चौथा उद्देशक-१ से ८ तक

ईशानेन्द्र का परिवार

यह बात राजगृह नगरी की है। ईशानइन्द्र का परिवार, यह इस प्रकरण का विषय है। उसका सार इसप्रकार है। :-

ईशानेन्द्र के चार लोकपाल हैं, सोम, यम, वैश्रमण और वरुण। उनके चार विमान हैं, सुमन, सर्वतोभद्र, वल्गु और सुवल्गु। सोम नाम के लोकपाल का बडा विमान मंदर पर्वत के उत्तर में ईशानावतंसक महाविमान के पूर्व में तिरछा असंख्येय हजार योजन पार करने के बाद सोम का महाविमान है।

इसी प्रकार राजधानी के विषय में जानकारी प्राप्त करनी है:-- ४ राजधानी, उनके ४ उद्देशक समझने हैं। आठ उद्देशा पूर्ण ※ ५३

※ ५३ इन्द्रलोक का वर्णन

इन्द्र, इन्द्राणी देव तथा देवी के पर्यायवाची शब्द तथा सर्वसामान्य विवेचन तो सबों के धर्म शास्त्रों में तथा काव्यों में जानने को मिलता हैं। परन्तु सर्व प्रकार से व्यवस्थित देवलोक का तथा उसमें रहने वाले देवों का, इन्द्रों का, उनकी राजधानीयों का, ऋद्धि, समद्धि रुपरंग, शरीर तथा विमानों का वर्णन जैनागम में और प्रकरण सूत्रों में जितना मिलता है, उतना तलाश करने पर भी दूसरे ग्रन्थो में कहीं भी नहीं मिलता है।

देव और इन्द्र भी संसारी जीव हैं। उनको भी पुण्य - पाप, सुख दुख संयोग वियोग का अनुभव होता है।

जन्म लेते हैं, च्यवन होता है और संसार के सुखों को भुगतते हैं। खाते

P. P. Ac. Gunratansuriji M.S. Jin Gun Aaradhak Trust

हैं। पीते हैं, और सब प्रकार का आनंद लूटते हैं। चलते हैं, घूमते हैं और पृथक् पृथक् क्रीडाएं करते हैं। जब मौत नजदीक आती है तब आक्रन्दन करते हैं। तथा दुःखी भी होते हैं। विषय वासना में तथा वैराग्यरस में मस्त रहते हैं। जिस प्रकार मनुष्य लोक में राजा, प्रधानमंत्री, कोतवाल, फोजदार, सेनापति, सैनिक तथा नगर सेठ होते हैं वैसे ही देवलोक में भी होते हैं। इन विषयों का खूब विस्तृत स्पष्टीकरण जैन–आगमों में है। यद्यपि देवलोक में चोरी करनेवाले तथा लूटपाट करनेवाले अपराधी नहीं होते हैं। तो भी पुण्यकर्म की सत्ता विद्यमान होने के कारण पुण्य के साम्राज्य को सूचित करनेवाले, प्रत्येक विमान में देव १० प्रकार के होते हैं। उनका वर्णन निम्नानुसार है :–

इंद्र की अगाध शक्ति

(१) इन्द्र :– यानी देवगति नामकर्म के उदय को लेकर अपने विमानवासी देवोंपर जो आधिपत्य भुगतते हैं, उनको इन्द्र कहते हैं। इस इन्द्र महाराज की शक्ति कितनी है ? इसका उत्तर शास्त्रों में इसप्रकार मिलता है।

१० पुरुषों के बराबर की शक्ति १ बैल में होती है।
१० बैलों के बराबर १ घोडा
१२ घोडों के बराबर १ पाडा
१५ पाडों के बरासर १ हाथी
५०० हाथी बराबर १ सिंह
२००० सिंह बराबर १ अष्टापद
१० अष्टापद बराबर १ बलदेव
२ बलदेव बराबर १ वासुदेव
२ वासुदेव बराबर १ चक्रवर्ती

इन चक्रवर्ती महाधिराज के पास निम्नानुसार वैभव, सत्ता और सेना होती है :–

P. P. Ac. Gunratansuriji M.S. Jin Gun Aaradhak Trust

७२ हजार शहर, ३२ हजार मुकुट बंधी राजा, १४ देवाधिष्ठित रत्न, ९ महानिधि, ६४ हजार अन्तःपुर स्त्री, ८४ लाख घोडा, ८४ लाख हाथी, ८४ लाख रथ, ९६ करोड गांव के अधिपति होते हैं।

१० लाख चक्रवर्ती बराबर १ नागकुमार देव,

१ करोड देव बराबर १ इंद्र होता है।

(२) सामानिक :– यानी इन्द्र स्वरूप नहीं किन्तु इन्द्र के सदृश अधिकार तथा ऋद्धिवाला होता है।

(३) त्रायस्त्रिंश :– वे देव जो इन्द्र महाराज के प्रधानरूप या पुरोहित रूप होते हैं।

(४) पार्षद्य :– इन्द्र महाराज के मित्र रूप देव।

(५) लोकपाल :– देवलोक की रक्षा करनेवाले देव।

(६) आत्मरक्षक :– इन्द्र महाराज के शरीर की रक्षा करनेवाले देव।

(७) अनिक :– इन्द्र की सेना रूप देव।

(८) प्रकीर्णक :– इन्द्र की प्रजा रूप देव।

(९) अभियोगिक :– इन्द्र महाराज के दास रूप देव।

(१०) किल्विषिक :– देव विमानों में अन्त्यज (हरिजन) के सदृश काम करनेवाले देव।

उपर्युक्तानुसार दश भेद में से केवल व्यंतर और ज्योतिष्क देवनिकाय में त्रायस्त्रिंशक और लोकपाल देवता नहीं होते हैं। इसप्रकार देवों का वर्णन अत्यन्त बिस्तारपूर्वक है जिसमें आयुष्य का, शस्त्रों का प्रवीचार का, इन्द्राणी के आयुष्य का और उनके रहने आदि का वर्णन है।

इस चौथे शतक के १–२–३–४ उद्देशाओं में ईशान देवलोक के इन्द्र महाराज के चार लोकपालों का वर्णन है और ५–६–७–८ उद्देशों में उनकी राजधानी का वर्णन संक्षेप में होने से इस शतक के आठ उद्देश एक साथ पूरे हो जाते हैं।

॥ आठ उद्देशा समाप्त ॥

नैरयिक नरक में जाते हैं ?

इसमें नैरयिक की हकीकत है। अर्थात् जो नैरयिक होते हैं वे नरको में उत्पन्न होते हैं या जो अनैरयिक होते हैं वे नरक में उत्पन्न होते हैं ?

भगवान ने इसका उत्तर दिया है कि जो नैरयिक होते हैं वे नरको में उत्पन्न होते हैं। और अनैरयिक नरको में उत्पन्न नहीं होते हैं।

यह विषय विचारणीय है। साधारणतया हम जानते हैं कि मनुष्य, पशु आदि नरक में उत्पन्न होते हैं। तब इसमें इसप्रकार कहा गया है कि नैरयिक जो नारकी होता है वह नरक में उत्पन्न होता है यह अपेक्षाकृत वचन है। ऋजुसूत्रनय की दृष्टि से इस प्रकार कहा गया है। अर्थात जीव के पास जिस गति के योग्य आयुष्य की हाजरी है वह उस गति का गिना जाता है। मनुष्य भव में या पशु भव में नरक का आयुष्य कोई बांधकर मरता है तो उस समय उस जीव के पास नरक का आयुष्य है। परन्तु मनुष्य या पशू का आयुष्य नहीं। इस कारण से वह नैरयिक है। और नैरयिक नरक का आयुष्य वाला होने से वह नैरयिक ही कहलाता है। और वह नरक में जाता है। ※ ५४

※ ५४ चार गति में जन्म मरण अनिवार्य है चार गति रूप ससांर में सात नरकभुमि के सब नरकजीव, चार निकाय के संपूर्ण देव, असुर,

इन्द्र, सूर्य, चन्द्र आदि देव । सूक्ष्म बादर निगोद के अनंतानंत जीव, पृथ्वी-काय, अप् काय, अग्निकाय, वायुकाय तथा साधारण और प्रत्येक वनस्पति काय के अनंतजीव, दो इन्द्रिय, तीन इन्द्रिय और चतुरिन्द्रिय के सब जीव, आर्यदेश, अनार्यदेश में जन्मे हुए विद्वान विज्ञानी, डॉक्टर, सत्ताधीश, श्री-मंत, साधु, दोषयुक्त मनुष्य, रूपरंग से परिपूर्ण मानव, उर्दू, फारसी, जर्मन, अंग्रेजी, संस्कृत तथा प्राकृत भाषा के जानने वाले, धर्म के उपदेशक, संगीत कार, परमात्मा से साक्षात करने वाले, ध्यानी, योगी, हठाग्रहि, हठयोग को जाननेवाले, आदि सब जीवों के लिए एक ही नियम है कि "जो जन्म लेता है, वह मरता है ।" जन्म लिया हुआ मनुष्य अमर नहीं रह सकता है ।" हजारों लाखों देवता भी जन्म लेकर अमर नहीं बन सकते । संसार में या देवलोक में ऐसा एक भी पदार्थ नहीं है कि जिसको खाने से मानव अमर बन जाता हो । 'अमृतभोजिनो देवा अमराः स्युः' यह उक्ति तो कवियों के मस्तिष्क से निकली हुई कल्पना है । इसमें वास्तविकता इतनी ही है कि प्रलोभनवश भी मानवमात्र सत्कर्मों का आचरण करे जिससे देवलोक में अमर रूप से उत्पन्न हो सके । बाकी तो "क्षीणे पुण्ये मर्त्यलोकं विशन्ति" यानी पुण्य कर्म क्षय हो जाने पर अर्थात् देवलोक का आयुष्य पूर्ण हो जाने पर अमृत का भोजन करने वाले देवता तथा इन्द्रों को भी दुबारा अवतार धारण करना पडता है । अतः जन्म लिये हुए का मरण निश्चित है । "जातस्य हि ध्रुवं मृत्युः' इस कारण से भगवान महावीर स्वामी ने इन्द्र महाराज को कहा है कि "भो इन्द्र' आंख की पलक मारे,उतना भी अधिक जीवित रहना किसी के हाथ में नहीं है ।

भवान्तर किसलिए ?

जिसके कारण "भोगयतनं शरीरं" उपार्जित शुभा योग्य शुभ कर्मों को भुगतने के लिए भवभवान्तर करने ही पडते हैं। उसके शरीर ग्रहण किया जाता है । जिसको ग्रहण किया जाता है उसे त्या-गना भी पडता है । जन शासन में भवान्तर करने की मर्यादा इसप्रकार है । जो अगला भव प्राप्त करना हो उसके लिए उस भव का आयुष्यकर्म पहले

P. P. Ac. Gunratansuriji M.S. Jin Gun Aaradhak Trust

बांधना पड़ता है । तत्पश्चात उस गति के लिए नामकर्म और उस गति में ले जाने वाले आनुपूर्व्वि नामकर्म उपार्जन करना पड़ता है । शेष सात कर्म (ज्ञानावरणीय, दर्शनावरणीय, वेदनीय, मोहनीय, नाम गोत्र ओर अन्तराय) के 'बंन्धन' यह जीवात्मा प्रति समय करता है, क्योंकि ', जहाँ क्रिया है वहाँ कर्म है" । मन की विचारधाराओं में और खास करके अनेक भवों के अपने सहयोगी भावमन में एक समय के लिये भी स्थिरता नहीं है । क्योंकि गत भवों में भुगते हुए पदार्थों की स्मृति और इस भव में पदार्थों को प्राप्त करने के लिये तत्परता इन दोनों कारणों से मन में स्थिरता नहीं रहती है । अनुभव तो यहाँ तक कहता है कि "पवन की गांठ बांधना सरल है, नदियों के वेग को रोकना सरल है, आकाश से तारे उतारने सरल हो सकते हैं, सर्प बिच्छु, व्याघ्र, सिंह, भूत, प्रेत, आदि योनियों के जीवों को हमारे गुलाम बनाना सरल हैं किन्तु मन - मर्कट में स्थिरता लाना बहुत कठिन है । "

मन जिन लेश्याओं में रमण करता है उनसे संबंधित कर्मों को बांधे तवा छुटकारा नहीं है । तथा मन जब चंचल होता है तब शरीर में चंचलता आये विना नहीं रहती है । मन के विचारों में डूबे हुए अपने शरीर के प्रत्येक अंग उपांग भी स्थिर नहीं रह सकते हैं, इसलिए " चंचलता यह गति है और गति यह क्रिया है । और क्रिया यह कर्म है"। उसको स्वाधीन बनाने के लिए ही सालंबन ध्यान उत्तमोत्तम साधन स्वीकार करने के पश्चात् भी हमारा भावमन दूसरे संसार में अर्थात भुगते हुए भोगों की स्मृति में किस प्रकार सरक जाता है (चलायमान हो जाता है) । मानो हमारे साथ हाथ ताली ही खेल खेलता हो, इसलिए कहा जाता है कि द्रव्य मन थोड़े समय के लिए स्वाधीन रहता होगा ? फिर भी भाव मन की स्थिरता दुःसाध्य है ।

इस कारण से मन की अस्थिरता के कारण सात कर्मो का बंधन प्रतिसमय होता है अतः जैनागम कहता है कि जीवात्मा कर्म बंधन के विना

P. P. Ac. Gunratansuriji M.S. Jin Gun Aaradhak Trust

नहीं रहता है । जब आयुष्यकर्म के लिए ऐसा नियम है कि वह कर्म अन्तिम क्षण तक भी जीवन में एक ही बार बंधाता है। अर्थात् भवांतर करने के लिए इस वर्तमान भव के अन्तिम क्षण में भी आयुष्य कर्मका बंध पडता है । उसके बिना हजारों प्रयत्न किये जाने पर भी वर्तमान शरीर नहीं छूट सकता है ।

आयुष्य कर्म को बेडी (बंधन) की उपमा दी जाती है । उसकी यथार्थता इस प्रकार है कि जिस प्रकार जेल में स्थित अपराधी को एक स्थान से दूसरे स्थान पर ले जाने के लिए उसके हाथ-पैर में बेडी डालनी पड़ती है उसीप्रकार इस वर्तमान भव की आयुष्य कर्म रूपी बेडी के टूटते ही अगले भव को बेड़ी उसके हाथ में पड़ जाती है । ड्युटी पर आने वाले सैनिक को अपराधी का पूरा पूरा चार्ज सौंपने के पश्चात् ही पहले वाले सैनिक का छूटकारा होता है। इसीप्रकार बेडी की तरह आयुष्य कर्म का भी समझना चाहिये ।

जिसप्रकार विविध शस्त्रों को अपने पास रखने वाला अपराधी अभूत पूर्व शक्तिशाली होते हुए भी जब वह सैनिकों द्वारा गिरफतार किया जाता है और उसके सब अंग जंजीरों से जकड जाते हैं अथवा सैनिकों के प्रबल शस्त्रों के मुकाबले में अपराधी जब हताश हो जाता है, उस समय कोई भी शक्ति सशक्त अपराधी को स्वयं की रक्षा करने में काम नहीं आती है, उसी प्रकार भव भवान्तर से उपार्जित कर्मों के कारण यह जीवात्मा कर्मराज की वेड़ी में इस प्रवार जकड जाता है कि राग-द्वेष की माया के कारण वह सर्वथा परवश बन जाता है ।

हम इस भव में अपने से अत्यधिक महान् बलवान् शत्रु को मारने में समर्थ नहीं बन सकते हैं. तब उसको मारने की कृष्ण लेश्या, नील लेश्या, और कापोत लेश्या हमको इसप्रकार द्वेष की माया में जकड देती है जिससे हमारी आत्मा अन्त में निरूपाय होने पर भी ऐसा संकल्प करनी

P. P. Ac. Gunratansuriji M.S. Jin Gun Aaradhak Trust

है कि " इस भव में नहीं तो अगले भव में भी तुझ से बदला लिये बिना नहीं रहूंगा।

सुन्दर और मनपसन्द किसी युवती को देखकर रागवश मूढ़ बनी हुई आत्मा उसे प्राप्त करने में जब सफल नहीं होती है तब अगले भव में उसी युवती को प्राप्त करने के लिए संकल्पपूर्वक तपश्चर्यादिक का सहारा लेता है और बाद में "इस भव में तुझे प्राप्त नहीं कर सका किन्तु अगले भव में मैं तुझे अपनी पत्नी बनाऊँगा। इसप्रकार की लेश्या के मालिक के साथ अगले भव में भी वही लेश्या उसके साथ संलग्न हो जाती है। पुण्य कर्म की मेहरबानी से खूब ही मीठे बने हुऐ संसार की माया में ओत प्रोत हो जाने के पश्चात् यह जीव खुद के प्रेम पात्र जीव को मृत्यु से नहीं बचा सकता। तब अनंतानंत मोह कर्म की ग्रान्थियों के वश बना हुआ अन्त में प्रेम पात्र जीव के साथ इतना तो निश्चय करता है कि अगले भव में तू मेरी स्त्री बनना। तब सामने से दुःखी हृदय से भी जबाब मिलता है कि भवोभव में आप ही रे पति बनना और प्रेम पात्र जीव को बहुत ही दुःख से भरे हुए हृदय से त में विदा देता है। ऐसे और अन्य इस प्रकार के अनेक प्रसंगों को क्षी बनाकर हमारी आत्मा अगले भव को मीठा बनाने के लिए मोह कर्म के मदिरा पान में मस्त बनने के बाद भव भवान्तर के भ्रमण का त्याग नहीं कर सकती।

हमको जिसके लिए भवान्तर करने का मोह उत्पन्न होता है, वह सन्मुख खडा हुआ शत्रु, सुंदर स्त्री, अथवा नायिका आदि मुख्य कारण है? या दूसरा कोई?

उपरोक्त विषय में हमारा अनुभव यह बताता है कि हम स्वयं ही अत्यन्त दुस्त्याज्य माया के वश में आकर सामने वाले के साथ बंध जाते हैं। प्रायः ऐसा भी होता है कि सामने वाले को हम स्वयं ही शत्रु समझ लेते हैं अथवा तो हमारे मन की निर्बलता के कारण सामने वाले

P. P. Ac. Gunratansuriji M.S. Jin Gun Aaradhak Trust

को शत्रु मान लेते हैं, और वैर कर्म में बंध जाते हैं। सुंदर स्त्री को वश में करने के लिए अनेक प्रयत्न करके हम स्वयं ही अगले भव के लिए कर्म बांधते हैं। नायक-नायिका के खयालों में हमारा मन ही अज्ञान के नशे में मस्त हुआ अपने स्वरूप को भूल जाता हैं। इसप्रकार भवभवान्तर के लिए कर्मों को करनेवाला मनुष्य आनेवाले उन उन भवों को प्राप्त करने के लिए उन उन भवों का आयुष्य कर्म वांधेगा और बेड़ी के तुल्य यह कर्म जीव मात्र को उस उस स्थानपर ले जायगा।

अब इस स्थिति में व्यवहार की भाषा क्या कहती है? उसे देखें जिस किसी क्षेत्र का मनुष्य उपार्जित किये हुए कर्मों के कारण अपना जीवन समाप्त करके मर जाता है और नरक, तिर्यंच मनुष्य या देवगति में जाता है। तिर्यंच जीव चाहे चतुष्पद, दो पैरवाला, आकाश में उडनेवाला, रेंगनेवाला, पानी में रहनेवाला (जलजीव) हो तो भी वह मर कर उपर्युक्त चार गति में से किसी एक गति में जायगा।

जब नरकगति का जीव वापस तत्काल नरकगति और देयगति को प्राप्त नहीं कर सकता है, उसीप्रकार देवगति का जीव वापस तत्काल दवगति और नरकगति को प्राप्त नहीं कर सकता। क्योंकि नरक के जीव को तत्काल नरकगति में उत्पन्न होने की योग्यता नहीं है। वैसेही सत्कर्मों के अभाव में देवगति भी नहीं मिल सकती है। उसीप्रकार देवगति के जीव को तत्काल देवगति प्राप्त करने के लिए सत्कर्म और नरकगति को प्राप्त करने के लिए असत्कर्म नहीं होने के कारण इन दोनों गतियों को देव का जीव प्राप्त नहीं कर सकता। जब मनुष्य और तिर्यंच के पास सत्कर्म उपार्जित हो तो देवगति और असत्कर्म हो तो नरकगति, तथा माया प्रपंच हो तो तिर्यंचगति वैसे ही सदाचारादि गुण हो तो मनुष्य अवतार को प्राप्त कर सकता है।

वर्तमान भव में जीव निम्नलिखित कर्मों को उपार्जित करके नरक-

P. P. Ac. Gunratansuriji M.S. Jin Gun Aaradhak Trust

गति के लिए आयुष्य का बंधन इसप्रकार करता है।

नरकगति के कारण–पंचेन्द्रिय जीव का वध करने से

महारंभ–यानी (विस्तृत मात्रा में समारंभ करना), बड़ी बड़ी पेढ़ियें, मीलें, कारखाने और मशिनें चलाना तथा इसप्रकार का व्यापार करना जिसमें असंख्य और अनंत जीवों की हत्या हो।

महापरिग्रह–यानी (अनेक प्रकार की चीजें एकठ्ठी करना), उनके उत्पादन के साधनों का संग्रह करना, उनमें अत्यंत आसक्ति रखना। इससे काम, क्रोध को उत्तेजना मिलती है और जन्म-मृत्यु को बढ़ाता है।

निर्दयता–मांस भोजन, स्थिरवैर, रौद्रध्यान, मिथ्यात्वसेवन, अनंतानुबंधी कषाय, कृष्ण, नील और कापोतलेश्या, परघातक, झूठ आचरण, परद्रव्य का अपहरण करना, मैथुन कर्म में तीव्र आसक्ति और इन्द्रियों की परवशता आदि कारणों से मनुष्य नरकगति के प्रति प्रस्थान करता है।

तिर्यंचगति–उन्मार्ग का उपदेश, सन्मार्ग का नाश, मूढहृदय, आर्तध्यान, मायानिदानादि शल्यसेवन, मायावी, आरंभ और परिग्रह में मस्त रहना, सद्व्रतों में अतिचार लगाना, नील तथा कापोतलेश्या, त्यागने योग्य वस्तुओं को नहीं त्यागना आदि कारण तिर्यंच अवतार को प्राप्त करानेवाले हैं।

मनुष्यगति–परिग्रह और आरंभ की अल्पता, सहज मृदुता और सरलता, कापोत और पीतलेश्या, धर्मध्यान में आसक्ति, कषायों को मन्द रखने के भाव, मध्यम परिणाम, प्राप्त वस्तु का त्याग, देव–गुरु का पूजन, सबके साथ प्रिय बोलना, दूसरों के सुख के लिए तत्पर, जीवन व्यवहार में तटस्थता आदि सत्कर्मों के कारण मनुष्यभव प्राप्त होता है।

देवगति–सराग संयम, देशविरति, अकामनिर्जरा, कल्याणकारी मित्र

P. P. Ac. Gunratansuriji M.S. Jin Gun Aaradhak Trust

संबंध, धर्म का विषय सुनने की इच्छा, सत्पात्र को दान, तप कर्म के प्रति श्रद्धा, मृत्यु के समय पद्म और पीत लेश्या, बालतप, आदि कर्म देवगति प्राप्त कराते हैं।

इस प्रकार शुभाशुभ कर्मों को करने वाली व्यक्ति अन्य जीवोंके साथ स्वयं ही कर्मों की जाल में बंध जाता है।

जैसे कि दूसरो को मारनेवाला, धमकानेवाला, रूलानेवाला व्यक्ति मरनेवाला के, खामोशो खानेबाले के, तथा रोनेवाले के साथ वैर बंधन में बंध जाता है।

स्वस्त्री का त्याग परस्त्री का इच्छुक पुरुष परस्त्री के सगे संबंधीं के साथ वैर से वंधता है।

झूठ बोलनेवाले या झूठी साक्षी देनेवाला था जिसके विषय में झूठ बोलता है उसका शत्रु बनता है। जब दान–पुण्य–संयम तथा अहिंसा आदि धर्म का सेवन करनेवाला संख्यात-असंख्यात जीवों के साथ मित्र संबंध संबंधित होता है। ऐसे हो सर्वत्र समझना चाहिये, सारांश कि अपने अपने किये हुए कर्मों का भार मस्तवपर लेकर जीवमात्र चारगतिरूप संसार में भ्रमण करता है।

उपर्युक्त सब बाते व्यवहार नय की भाषा में बोली जाती है, और समझी जाती है। परंतु ऋजु सूत्रनय की भाषा कुछ निराली होने से तथा इस प्रश्नोत्तर का कथन भी ऋजु सूत्र नय के अनुसार होनें से, अब इसी प्रश्न को ऋजुसूत्रनय किस भाषा में कहता है यह जानना अभी शेष है।

ऋजुसूत्र का भाषाव्यवहार

भूत तथा भविष्य के पर्यायों के प्रति आँख बन्द करके यह नय केवल शुद्ध वर्तमान समय को ही स्पर्श करता है।

P. P. Ac. Gunratansuriji M.S. Jin Gun Aaradhak Trust

जैसे कि दूसरे को मारनेवाला या धमकाने वाला व्यक्ति मरनेवाले जीव के साथ वैर से बंध जाता है।

स्वस्त्रीका त्याग करके परस्त्रीका इच्छुक पुरुष परस्त्री तथा उनके सगे संबंधियों के साथ राग तथा वैर से बंध जाता है।

इसके अनुसार सर्वत्र घटालेना है। सार यह हैं कि मनुष्य मरकर नरक में जा सकता हैं। किन्तु नरक का जीव मरकर नरक में नहीं जाता हैं।

घड़ा पहले था और भविष्य में भी उसका अस्तित्व रहेगा, तथापि वर्तमान समय में यह घड़ा जीवात्मा के लिए क्या काम का ? अतः जिस समय प्यास सताती है, और जिस घडे से पानी पीने को मिल जाता है, वैसे घड़े को ही घड़ा कहते हैं।

पहले अनंतभव हुए हैं। भविष्य में भी अनंत भव होंगे, किन्तु ऋजुसूत्र इन सब बातों को मानने के लिए उत्साहित नहीं है। अर्थात् इस बातपर बेध्यान रहता है, इस ऋजूसूत्र का मानना निम्नप्रकार है :— भूतकाल चाहे जितना व्यतीत हुआ हो वह अब क्या काम का ? भविष्यकाल चाहे जितना होगा, इस समय में इस बात को मानने की क्या जरुरत ? इसलिए वर्तमान समय में जो वर्तता हो जीव भी उसी रिति से संबोधित होगा जैसे जिस समय जीव में क्रोध वर्तता है उस समय जीव क्रोधी कहलाता है। किन्तु संयमी नहीं। मैथुनभाव में वर्तता है तब जीव मैथुन कर्मी है किन्तु व्रती नहीं। जब समताभाव रहता है तब जीव औपशमिक भाव का मालिक है। किन्तु औदयिक भाव का नहीं। जब जीवात्मा को कृष्ण लेश्या वर्तती है तब जीव द्रव्यसंयमी है। किन्तु भाव संयमी नहीं और जब शुद्धतर पद्मलेश्या वर्तती है तब जीव भावसंयमी है।

प्रस्तुत प्रश्न में भी हैं भगवान् नैरयिक होते हैं वे नरक में उत्पन्न होते हैं या जो अनैरयिक होते हैं वे ?

P. P. Ac. Gunratansuriji M.S. Jin Gun Aaradhak Trust

उत्तर निम्नानुसार है :-

भगवान् ने यावत् ज्ञानों की हकीगत तक प्रज्ञापना सत्र में रहे हुए लेश्या-पदका तीसरा उद्देशा देखने के लिये कहा है। वह निम्नानुसार है :-

"नारक ही नरक में उत्पन्न होते हैं, और नरकमें से नारक बाहर नहीं आते हैं।

भाषा का आशय नयवादान्तर से ही समझने का होता है। क्योंकि प्रश्नकर्त्ता और उत्तरदाता की बात पुरी तौर से सुनने के बाद और उसका आशय समझने के पश्चात् ही प्रत्येक बात का विचार करके जवाब देना चाहिए। बगैर समझे किसी बात का जवाब दिना जाता है तो उसको परिणाम शून्य निकलता है। और वैर विरोध विशेष रूप से खड़ा हो जाता है।

प्रकरण ग्रन्थ में हमने इसप्रकार पढ़ा है कि मनुष्य या तिर्यंच नरक में जन्म लेते है और नारक नरक में नहीं जन्म लेते हैं। चार ज्ञान के मालिक गौतमस्वामी का पूछने का आशय व्यवहार नय को अनुलक्ष्य करके नहीं किन्तु ऋजु सूत्रनय को अनुलक्ष्य करके है।

वह इसके अनुसार है :-

मनुष्य या जानवर के जीव ने जिस नरकगति में जाने के लिये तैयारी करली है अतः नरकगति का आयुष्य कर्म बांधे वगैर मनुष्य अवतार से छुटकारा नहीं प्राप्त कर सकता और ऐसा करते हुए मनुष्य आयुष्य जिस समय पूर्ण होगा, उसी समय नरक की आयुष्य बेड़ी उसके हाथ में पड़ जायगी। अर्थात् नरकायुष्य लेकर ही जीव नरक में जाता है। इसलिए चार समय तक नरकगामी जीव नारक ही कहलाएगा। मनुष्य या तिर्यंच नहीं। क्योंकि जब तक मनुष्य का आयुष्य चलता है तब तक हरहालत में भी जीव मनुष्य की आयु लेकर नरक में नहीं जाता है। इसी प्रकार नारक नरक में से बाहर नहीं आता है। क्योंकि जब तक नरक गति का

आयुष्य अन्तिम समय तक शेष रहता है तब तक वह नरक जीव ही कहा जाता है। ऐसी स्थिति में नारक का जीव नरक में से किस रीती से वाहर आयेगा? इसीलिए कहा गया है कि "नारक जीव ही नरक में जाता है और नारक नरकमें से वाहर नहीं आता है।" प्रश्नकर्ता गौतमस्वामी महा-ज्ञानी है और उत्तरदाता महावीरस्वामी पूर्ण ज्ञानी हैं।

यहाँ निरय निरक आदि शब्द नरक भूमी की सूचना देने वाले हैं। तथा नैरयिक और नारक शब्द नरक में जाने वाले जीवों के लिए है।

छठ्ठे गुण ठाण में भी चार ज्ञान

अव इस चालु प्रश्न में कृष्ण लेश्या में वर्तते हुए जीव को कितने ज्ञान होते हैं? इसका उत्तर भगवान इस प्रकार देते हैं कि – दो, तीन और चार ज्ञान भी कृष्ण लेश्या के मालिक को होते हैं।

१. मतिज्ञान – श्रुतिज्ञान २. मतिज्ञान – श्रुतज्ञान– अवधिज्ञान ३ मतिज्ञान–श्रुतिज्ञान और मनः पर्यव ज्ञान ४. मतिज्ञान–श्रुतिज्ञान, अवधि-ज्ञान और मनःपर्यवज्ञान, श्रुतज्ञान की उपस्थिति में मतिज्ञान की आवश्यकता अनिवार्य है। तत्पश्चात् अवधिज्ञान होता है। अथवा इस ज्ञान के बगैर भी मनः पर्यवज्ञान हो सकता है। क्योंकि उन उन कर्मों के आवरणों की क्षयोपशम सामग्री ज्ञान के प्रति विचित्र प्रकार की होती है। अर्थात् आमर्षौषधि आदि लब्धियों में से कितनी ही प्राप्त हुई लब्धियों के मालिक मुनि को उसीप्रकार के अध्यवसायादि लक्षणवाली मनः पर्यव ज्ञानावरणी की ही क्षयोपशमसामग्री प्राप्त होती है। किन्तु अवधिज्ञानावरणीय की क्षयोपशम सामग्री प्राप्त नहीं होती है। इसलिए उनको अवधिज्ञान विना ही मनः पर्यव ज्ञान प्राप्त हो जाता है।

प्रश्न–अतिविशुद्ध परिणामवाले मुनि को ही मनपर्यवज्ञान होता है, तब कृष्णलेश्या तो विशुद्ध स्वरूप नहीं। इसलिए इस लेश्या के मालिक को मनः पर्यवज्ञान कैसे उत्पन्न होगा?

P. P. Ac. Gunratansuriji M.S. Jin Gun Aaradhak Trust

उत्तर–लेश्याओं का अध्यवसाय स्थान लोकाकाश के प्रदेश जितना असंख्य है। उसमें किसी समय कृष्ण लेश्या अति मंद भाव के परिणामवाली भी हो जावे अर्थात् कृष्ण लेश्या में वर्तते हुए जीवका अध्यवसाय किसी समय में अतीव शुद्ध होते हुए प्रमत्त संयमी को भी मनःपर्यवज्ञान की संभावना का निषेध नहीं हो सकता ।

अध्यवसायों की विचित्रता एकसी नहीं होती है। इसलिए कृष्ण, नील और कापोत लेश्या प्रमत्तसंयम गुणस्थानक तक भी होती हे। यद्यपि मनःपर्यवज्ञान अप्रमत्त मुनि को ही होता है तो भी कदाचित् छठ्ठेगुण स्थानक के प्रमत्त संयमी को इस चोथे ज्ञान की उत्पत्ति हो सकती है।

इसी बात की—वीरविजयजी महाराज की पूजा की ढाल और शेठ कुंवरजी आनंदजी का विवेचन साक्षी रूप में–जानकारी प्राप्त कर लेते हैं।

" क्षय उपशम पदेरे मुनिवरने साते गुणढाण "

(ज्ञानावरणीय कर्म की पांचवीं ' ढाल ')

इस विषय में कुंवरजीभाई का विवेचन इसप्रकार है :—

" यह ज्ञान (मनःपर्यवज्ञान) क्षयोपशमभाव में होता है। उस से इस भव में वर्तनेवाले छठे से बाहरवें तक के सात गुणठाणे के मालिक को वह होता हैं। परंतु ज्ञानावरणीय कर्म का क्षायिक भाव किये विना मोक्ष जाना नहीं होता है। "

इस ढाल में सात का अर्थ सातवां गुणस्थानक नहीं करना है। किन्तु छठे गुणस्थानक से लेकर बारहवें गुणस्थानक तक सात गुणस्थानक मुनिराज को होते हैं और इन सात गुण स्थानकों में तारतम्य भाव से मनःपर्यवज्ञान की हाजरी की संभावना हो सकती है।

विपुलमतिमनपर्यव ज्ञान तो केवल ज्ञान प्राप्त कराकर निवृत्त हो जाता है। जबकि ऋजुमतिज्ञान, बिजली के माफिक आता है और जाता है।

P. P. Ac. Gunratansuriji M.S. Jin Gun Aaradhak Trust

सत्य बात इतनी ही है कि :–

आत्मलब्धियों को प्राप्त करने के लिए,

निश्रेयस (मोक्ष) के मार्ग में आगे कदम बढ़ाने के लिए ।

क्षायोपशमिक भाव में से निकल कर क्षायिक भाव के दर्शन करने के लिए ।

अनादिकाल के जन्म और मृत्यु के चक्र को टालने के लिए ।

मुनिधर्म को दीपाने के लिए और अपनी आत्मा को ही अरिहंत बनाने के लिए ।

साधक मात्र को अप्रमत्त भाव में विकास करना चाहिए अथवा इस अवस्था को सुधारने के लिए ही प्रयत्नशील रहना चाहिए ।

॥ नवाँ उद्देशा समाप्त ॥

P. P. Ac. Gunratansuriji M.S. Jin Gun Aaradhak Trust

लेश्या विचार

इस में लेश्या का वर्णन है। अर्थात् कृष्ण लेश्या नील लेश्या का संयोग पाकर उस रूप में और उस वर्ण में परिणमन होती है। क्या ? इस संबंध में 'प्रज्ञापना' सूत्र के लेश्या पद का चोथा उद्देकश कहना है।

टीकाकार ने विस्तार से स्पष्टींकरण किया है। मतलब यह है कि - कृष्णलेश्या का परिणाम वाला जीव नील लेश्या के योग्य द्रव्यों को ग्रहण करके मर जाता है तब उन नील लेश्या का परिणाम वाला बनकर उत्पन्न होता है। अर्थात् जिस लेश्या को ग्रहण करके जीव मरता है तब उस लेश्या वाला बन कर दूसरे स्थान पर उत्पन्न होता है।

इसके पश्चात टीका में लेश्या का रंग, रस आदि का वर्णन है। ※ ५५

※ ५५ **लेश्याओं के परिणमन के लिए स्पष्टीकरण**

कृष्णलेश्या, नीललेश्या में परिणत होती है या नहीं ? इसके उत्तर में भगवानने प्रज्ञापना सूत्र का चोथा उद्देशा पढ़ने के लिए कहा है। वह इस-प्रकार है :—कृष्णलेश्या के योग्य द्रव्य जब नीललेश्या के योग्य द्रव्यों को

P. P. Ac. Gunratansuriji M.S. Jin Gun Aaradhak Trust

प्राप्त करते हैं। तब नील लेश्या को स्वभाव क प्राप्त करते हैं। अर्थात् नील लेश्या का वर्ण, रस, गंध तथा स्पर्श को प्राप्त करते हैं। कृष्णलेश्या का स्वामी मरते समय यदि नील लेश्या में परिणमता है तो इस लेश्या में ही मरता है।

मनुष्य और तिर्यंच का जीव दूसरे भव को प्राप्त करने की इच्छावाले होते हुए नीललेश्या के योग्य द्रव्यों के संपर्क से कृष्णलेश्या के योग्य द्रव्यादि, सहकारी कारण को लेकर तथारूप जीव के परिणाम से नीललेश्या के रूप में परिणमन को प्राप्त होगा और नीललेश्या के योग्य द्रव्यों के सहकार से इस लेश्या में परिणत होता हुआ यह जीव इस लेश्या को लेकर भवान्तर करेगा। इन दोनों गति के जीव वर्तमान भव में कृष्ण लेश्या में विद्यमान होते हुए भी नील लेश्या के भाव परिणमित होते हुए कृष्ण लेश्या का द्रव्य भी नीललेश्या में परिणत होगा।

जैसे छाछ (मन्ठ्ठा) रूप को प्राप्त होते हुए दूध के पर्याय, छाछ के पर्याय, वर्ण, रस और गंध को प्राप्त करते हैं।

जैसे शुद्ध वस्त्र (सफेद वस्त्र) लाल रंग के कारण उस रंग को प्राप्त करता है। अर्थात् लालरंग के परिणम को प्राप्त करता है।

यहाँ कृष्णलेश्या नीललेश्या के परिणमन को प्राप्त करती है। नील-लेश्या कापोतलेश्या के संपर्क से कापोत लेश्या बनती है। कापोतलेश्या तेजोलेश्या में और तेजोलेश्या पद्मलेश्या में तथा पद्मलेश्या शुक्ललेश्या में परिणमती है।

जैसे उस उस वर्ण (रंग) को धारण करनेवाले द्रव्यों के संपर्क से वैडूर्य मणि में भी रंग का फेरफार (परिवर्तन) हो जाता है। फिर भी वैडूर्यमणि अपने स्वभाव को नहीं छोडता हैं। उसीप्रकार कृष्णलेश्या के योग्य द्रव्य भी अपने मूल स्वभाव को छोडे विना ही नीलादिद्रव्यों के संपर्क मात्र से इस लेश्या के आकारादि को प्राप्त करता है। यह बात देव

P. P. Ac. Gunratansuriji M.S. Jin Gun Aaradhak Trust

और नारकों के लिए समझने की है। क्योंकि उनके भव के अंत तक रहनेवाली लेश्याएं द्रव्यान्तर के संपर्क से चाहे अलग आकार प्राप्त करलें फिर भी अपने स्वभाव का सर्वथा त्याग नहीं करती है। "तभो तो कहा जाता है कि देव और नारकों की द्रव्यलेश्या अवस्थित है। जब भावना के परावर्तन से उनको भी छः लेश्याओं के संभावना हो सकती है।

इसी कारण से वह नारक जीव भी तेजोलेश्यारुप द्रव्यसंबंध से तेजो लेश्या में जब परिणत हो जाता है तब सम्यक्त्व को प्राप्त कर सकता हैं। और तेजोलेश्या की संभावनावाले वैमानिक संगम देव को कृष्णलेश्या का परिणाम होनेपर पतितपावन भगवान् महावीर स्वामी को प्राणघातक उपसर्ग करने की वृत्ति जन्म लेती है। जब मनुष्य और तिर्यचों की लेश्या सर्वांश में परिवर्तन प्राप्त कर लेती है, इसलिए ही उस की लेश्मा की उत्कृष्ट स्थिति अन्तर्मौहूर्तिक होती है। प्रसन्नचन्द्र राजर्षि को कृष्णलेश्या आने में देर नहीं हुई और शुक्ललेश्या भी आते हुए देर नहीं लगी, इसलिए मनुष्य की लेश्या प्रतिक्षण निमित्तवश बदलती रहती है,

द्रव्य और भावलेश्या किसे कहना ?

पदार्थ (द्रव्य) के निमित्त को लेकर लेश्या का उद्भव होता है, उस निमित्त से द्रव्य लेश्या है, जैसे पांच मिनिट पूर्व सामायिक व्रत द्वारा समता रस में गोते लगानेवाले साधक के पास में बैठे हुए हाडवैरी को देखते ही समता भाव छोड़ते देर नहीं करता है। इसलिए वह द्रव्य-लेश्या है। और निमित्त को लेकर आत्मा में जो भाव उठता है उसे भावलेश्या कहते हैं।

शुलेश्याके प्रति प्रस्थान करने की तैय्यारीवाले राजर्षि प्रसन्नचन्द्र को दुर्मुख से निकले हुए शद्व निमित्त बने, वह द्रव्यलेश्या है। और आन्तर जीवन में रणमैदान अंकुरित हुआ वह भावलेश्या है। और बाद में शस्त्र लेने के लिए सिर पर हाथ रखा वह द्रव्य शुक्रलेश्या

P. P. Ac. Gunratansuriji M.S.　Jin Gun Aaradhak Trust

है। और भाव की परिणतिवश वापस भान में आगये ऐसी भाव शुक्लेश्या प्राप्त होते ही केवल ज्ञान प्राप्त कर सके।

अब लेश्याओं का वर्ण, गंध, रस, स्पर्श कहते हैं, वह इस-प्रकार है :—

' कृष्णलेश्या '

वर्ण-वर्षा ऋतु के मेघ, कज्जल, भैंस के सींग, कोयल, हाथी के बच्चे और काले भ्रमर जैसे काले रंग की होती हैं अर्थात् कृष्णलेश्या प्राप्त होते ही आत्मा के परिणाम भी काले रंग के जैसे बन जाते है।

रस-कडवी तुंबी, नीम के फल, छाल, जैसी कडवी रस की होती है, अर्थात् इस लेश्या के मालिक का रस कडवी तुंबी के जैसा कडवा बन जाता है।

गंध—मरी हुई गाय के समान दुर्गन्धवाली।

स्पर्श—अयंत ठंडा और रूखा सूखा होता है।

' नीललेश्या '

वर्ण-भृंग, चास, तोता, और उसकी पांखे, कबूतर तथा मोर की गर्दन जैसा वर्ण होता है।

रस-पीपर, अदरक, मिर्च आदि के स्वाद जैसा होता है।

गंध-मरे हुए जीव के कलेवर जैसी गंध होती है।

स्पर्श—अत्यन्त ठंडा होता है।

' कपोतलेश्या '

वर्ण—अलसी तथा वृतांक के फल जैसा होता है।

रस- कच्चे बीज तथा बोर के जैसा रस होता है।

P. P. Ac. Gunratansuriji M.S. Jin Gun Aaradhak Trust

गंध-दुर्गन्ध आती है।

स्पर्श-अधिक ठंडा और रूखा होता है।

'तेजोलेश्या'

वर्ण-माणिक्य, उदय होता सूर्य, संध्या तथा परवल के अंकुर जैसा होता है।

रस-आम के रस के जैसा होता है।

गंध-सुगन्धी।

स्पर्श-गरम और स्निग्ध होता है।

"पद्मलेश्या"

वर्ण-सुवर्ण, चंपा आदि के वर्ण जैसा होता है।

रस-द्राक्ष तथा खजूर जैसा होता है।

गंध-सुगन्धी

स्पर्श-गरम और स्निग्ध।

'शुक्ललेश्या'

शंख के जैसी श्वेत, गुड के जैसी मधुर, अच्छे गंधवाली, स्निग्ध और उष्ण है।

पहले की ३ लेश्याएं, अत्यन्तसंक्लिष्ट, आर्तध्यान तथा रौद्रध्यानवाले अध्यवसायों का कारण रूप होने से अप्रशस्त है, और अन्तिम तीन शुद्ध तथा धर्मध्यान शुक्लध्यान के अध्यवसायों को करानेवाली होने से प्रशस्त है।

लेश्याओं के परिणाम

लेश्याओं के परिणामों की जानकारी निम्नानुसार है, कृष्णलेश्या' जघन्य, मध्यम और उत्कृष्ट रूप तीन परिणामवाली होती है। जैसे जघन्य

P. P. Ac. Gunratansuriji M.S. Jin Gun Aaradhak Trust

परिणामों को लेकर जघन्य कृष्णलेश्या, मध्य परिणामों को लेकर मध्यम कृष्णलेश्या, और उत्कृष्ट परिणामों को लेकर उत्कृष्ट कृष्णलेश्या होती हैं । अब जघन्य में भी तीन प्रकार के अध्यवसाय इसप्रकार बनेंगे । जघन्य से जघन्य, मध्यम जघन्य और उत्कृष्ट जघन्य, इसप्रकार लेश्या का परिणाम जीव मात्र के भिन्न भिन्न होंगे । इसलिए लेश्याओं के परिणाम स्थान अनेक होते हैं । जैसे क्लिष्ट, क्लिष्टतर और क्लिष्टतम तथा सुन्दर, सुन्दरतर और सुन्दरतम परिणाम होने में जीव के पूर्व भव के कर्मों का कारण होने से उन जीवों का संस्कार उसी रूप के बन जाते हैं । इसलिए प्रायः करके ज्ञान विज्ञान होते हुए भी संस्कारों की विचित्रता दुस्त्याज्य है ।

पाप तथा पुण्य के भेदों की जानकारी होते हुए भी पडे (जमें) हुए संस्कार अमिट होते हैं ।

आश्रव संवर के भेदों को अंगुलियों पर गिनते हुए भी खाने पीने बोलने में पडी हुई आदत छोड़ना अति मुश्किल है । इसलिए बाह्य जीवन सुन्दर दिखलाई देते हुए भी आन्तर जीवन क्लिष्ट हो सकता है । और बाह्य जीवन में भद्दा दिखाता हुआ भी मनुष्य का स्वभाव, सरल, पवित्र और अहिंसक भी होता है । ये और इसके समान हजारों कारणों को लेकर परिणामों की विचित्रता अनुभव गम्य है ।

" दश उद्देशों के साथ चौथा शतक पूर्ण हुआ "

P. P. Ac. Gunratansuriji M.S. Jin Gun Aaradhak Trust

" चौथे शतक का समाप्ति वचन "

जगन्मान्य, विद्वत्पूज्य, दीर्घद्रष्टा, स्यादवादनयनद्वय धारक, शास्त्र विशारद जैनाचार्य श्री विजय धर्मसूरीश्वरजी महाराज के शिष्यरत्न अप्रतिम लेखक, प्रवंध कुशल, निर्भीक वक्ता सिंधादि देश में अहिंसा धर्म के प्रवल प्रचारक पूज्य, गुरुदेव श्री १००८ श्री विद्याविजयजी महाराज ने अपने स्वाध्याय के लिए भगवती सूत्र के छः शतक तक का विवरण लिखा था। उस अंश को सुन्दर रूप से सजाकर बढाकर प्रत्येक प्रश्न का विस्तार-पूर्वक स्पष्टीकरण करके यह पुस्तक उनके शिष्य, न्याय व्याकरण काव्य तीर्थ, पन्यास पद विभूषित मुनिराज श्री पूर्णानन्द विजयजी (कुमार श्रमण) ने तैय्यार की है।

सर्वे सुखिनः सन्तु।

॥ शतक चौथा संपूर्ण ॥

P. P. Ac. Gunratansuriji M.S. Jin Gun Aaradhak Trust

शतक – पांचवां

शतक पांचवें का संपादकीय पुरोवचन

चंपानगरी

इस शतक का प्रथम तथा दशवॉ उद्देशा चंपानगरी में वर्णित है। इस ऐतिहासिक नगरी की महत्ता की जानकारी हम सबको होनी चाहिए।

यह नगरी अंगदेश की राजधानी है। बारहवें तीर्थंकर श्री वासुपूज्य स्वामी के पांच कल्याणक यहाँ हुए हैं।

जब अतिशय पुण्यशाली तीर्थंकर परमात्मा का जन्म होता है, तब इन्द्र का आसन कम्पायमान होता है और इंद्र अवधिज्ञान के उपयोग द्वारा उसे जानता है। तथा तीर्थंकर भगवान का जन्म हुआ जानकर सभी इंद्र और देव वहाँ आते हैं और भगवान् को मेरुपर्वतपर लेजाकर जन्माभिषेक करते हैं। इसप्रकार पांच कल्याणक का जन्मोत्सव इंद्र तथा देवों द्वारा मनाया जाता है। इसलिए कल्याणक कहे जाते हैं। केवलज्ञान के मालिक होनेपर तीर्थंकर नाम कर्म का उदय होता है, और देवों द्वारा रचित समवसरण में विराजमान होकर तीर्थंकर परमात्मा उत्कृष्टतम भावदया के कारण तथा भाषा वर्गणा के पुद्गलों को क्षय करने के लिए भी देशना देते हैं।

तीर्थंकृत्-स्वामिनो वाचः कतकक्षोदसोदराः ।
जयंति चिजगच्चेतो जल नैर्मल्यकारणम् ॥

P. P. Ac. Gunratansuriji M.S. Jin Gun Aaradhak Trust

भगवान् की वाणी रागद्वेष के मेल से संपूर्ण दूर होने के कारण कतक नाम के चूर्ण जैसी होती है। कतक वनस्पति में यह गुण है कि चाहे जितना खराब पानी हो लेकिन वह उसे शुद्ध बना देती है। उसीप्रकार तीर्थकर परमात्माओं की वाणी भी तीन जगत के प्राणियों के चित्त को निर्मल करनेवाली होती है। ऐसे वासुपूज्य स्वामी का

१ च्यवन कल्याणक   २ जन्म कल्याणक

३ दीक्षा कल्याणक   ४ केवलज्ञान कल्याणक

और निर्वाण कल्याणक, इन पांच कल्याणकों से यह चंपानगरी पवित्रतम बनी हुई है।

इस नगरी में दूसरी महत्वपूर्ण घटना यह हुई कि यहाँ सती सुभद्रा के शील की परीक्षा हुई है "देवावि तं नमंसंति जस्स धम्मे सया मणो" इस उक्ति को चरितार्थ करनेवाली सुभद्रा नाम की कुल वधू पर उसकी सासने झूठा आरोप लगाया था। किन्तु यह सती स्त्री द्रव्य और भाव मन से शीलवती होने के कारण देवों ने इस नगरी के चार द्वार बंद कर दिये। तत्पश्चात् चारों तरफ से बंद नगरी में राजा सहित सब प्रजा घबराने लगी और पशु भी अत्यन्त आकुल व्याकुल होने लगे तब इसप्रकार देववाणि हुई कि" यदि कोई सती नारी कच्चे सूत के धागों से बंधी हुई चलनी द्वारा कूएं में से जल निकाले और उस जल को दरवाजे पर छिड़के तब दरवाजा खुल जायगा।" तब सती सुभद्रा ने अपने शुद्ध शील व्रत के प्रभाव से तदनुसार कुए में से जल निकालकर

P. P. Ac. Gunratansuriji M.S. Jin Gun Aaradhak Trust

दरवाजे पर छिटका तब तीन दरवाजे खुलगये। इसप्रकार शील व्रत पालन करने की महिमा बढ़ी।

उस सती नारी को अपने शील व्रत पालने का अहंकार न आ जावे और दूसरी भी शील व्रती नारियों का सन्मान हो, इसलिए तीनं दरवाजे पर पानी छिडका और दरवाजें खुल गये किन्तु उन चारों में से एक द्वार पर पानी न छिडकने के कारण वैसे का वैसा बंद रहा।

लक्षणवती नगरी के राजा हम्मीर और सुलतान समदीने वि. सं. १३६० में चिरकाल पर्यन्त बंद रहे हुए दरवाजे को तोडा और उसमें से सुंदर पत्थर निकालकर ले गये।

अत: प्रातः काल के मंगल प्रभात में सभी सतियों के साथ सुभद्रा सती का भी गुणगान निम्नप्रकार की पंक्तियों द्वारा गाया जाता हैं :-

" काचे तांतणे चालणी बांधी, कुआ थकी जल काढीयुंरे,
कलंक उतारवा सती सुभद्राए, चंपा बार उघाडी यारे।"

इसप्रकार यह नगरी सुभद्रा के शील व्रत की परीक्षा के कारण स्मरणीय है!

तीसरी महत्त्वपूर्ण घटना कौशाम्बी नगरी में चंदनबाला के हाथ से भगवान् महावीर स्वामी का महान् अभिग्रह पूर्ण हुआ था और १७५ दिन के उपवासी भगवान् महावीरने पारणा किया था। घटना इसप्रकार है।

एक समय की बात है कि दधिवाहन नाम का राजा चंपा नगरी में राज्य करता था। उसकी पत्नीका नाम धारणी था। उसके एक वसुमती (चंदनबाला) नाम की कन्या थी।

वैशाली गणतंत्र के मुख्य नायक तथा भगवान महावीर स्वामी के सगे मामा चेडा नामक महाराजा की ७ (सात) पुत्रियां थीं। उनमें से एक धारिणी नाम की पुत्री का विवाह दधिवाहन राजा के साथ हुआ था। तथा उनकी दूसरी पुत्री मृगावती नाम की कन्या की शादी शतानिक राजा के साथ हुई थी। इसप्रकार संबंध में ये दोनों साढु हुए। फिर भी अहंकार वश दोनों में लड़ाई छिडी और उसमें दधिवाहन राजा हार गया। रानी धारिणीने अपने शील व्रत की रक्षा के लिए प्राण छोड़ दिये। किन्तु उसकी पुत्री वसुमती कौशाम्बी नगरी में भरे बाजार में बेची गई। उसको धनावह नाम के सेठ ने खरीदी। उसकी भाषा चंदन के समान शीतल होने से उसका नाम चंदनबाला रखा। वहाँ भी उस सेठ की स्त्री मूलाने क्रोध में आकर चंदनबाला के सिरके बाल मुंडवा दिये। तथा उसके हाथ पैर में बेडी डालकर उस बालिका को मकान के तहखाने में कैद कर दी। तीन दिन के पश्चात् सेठ ने उसे बाहर निकाली और उडदके बाकुले (उबाला हुआ दलहन) सूप (छाज) में रखकर उसे खाने के लिए दिये। तत्पश्चात् सेठ स्वयं लुहार को बुलाने के लिए चला गया।

उसी वक्त वहाँ भ. महावीर स्वामी आये और मानो चंदनबाला के हाथ से स्वयं का अभिग्रह पूरा हो गया। तब चंदनबालाने उत्कृष्ट भक्तिवश होकर उडद के (बाकुला) दहलन भगवान् को वहोरा दिये (भोजन के लिए अर्पण किये)। तब सर्वत्र जय जयकार की ध्वनि हुई। तथा उधर चंदनबाला का भी दिव्य स्वरूप बन गया।

किसी कविने चंदनबाला के विषय में गुजराती भाषा में निम्नानुसार पंक्तियाँ लिखी हैं:-

P. P. Ac. Gunratansuriji M.S. Jin Gun Aaradhak Trust

" चंदनबाला बालपणाथी, शियलव्रती शुद्ध श्राविकारे
अडदना बाकुले वीर प्रति लाभ्या, केवल लहीव्रत भाविकाएं। "

भ. महावीर स्वामीनें पृष्ठ चंपा के साथ इस नगरी में तीन चतुर्मास किये। तथा पांडवकुल भूषण महादानेश्वरी राजा कर्ण भी इसी नगरी का राजा था।

पितृहत्या के महापाप से अतिशय संतप्त हुए राजा कोणिक ने इस नगरी को मगध देश की राजधानी बनाई थी।

शय्यंभवसूरी ने अपने पुत्र मनक मुनिराज की सुलभ आराधना के लिए इस नगरी में ही दशवैकालिक सूत्र की रचना कीथी।

नवपद के महान् आराधक महाराजा श्रीपाल का जन्म भी इसी नगरी में हुआ था। कर्मवश कोढी बने हुए श्री पाल के लग्न सती मयणासुंदरी के साथ होने से और सिद्ध चक्रयंत्र की आराधना के प्रभाव से उनका कोढ दूर हुआ। महान् ऋद्धिसमृद्धि के भोक्ता बनने के साथ दूसरी आठ राजकुमारियों के साथ शादी की। अंतमें अपने काका अजितसेन को हराकर पुनः चंपा का राज्य प्राप्त किया। श्रीपाल का रास प्रतिवर्ष आश्विन और चैत्र की ओलियाँ में भावपूर्वक पढा जाता है।

इसप्रकार अनेक ऐतिहासिक प्रसिद्ध घटनाओं के कारण यह चंपानगरी एक समय वैभव के चरम सीमा तक पहुँच गई थी उसकी पवित्रता और महत्ता के गुणगान इतिहासज्ञों ने खूब किया है। जैन आगमों में भी उनका उल्लेख अनेक स्थलोंपर किया गया है।

※ ※ ※

P. P. Ac. Gunratansuriji M.S. Jin Gun Aaradhak Trust

सूर्य विचार

इस उद्देशक में खास करके सूर्य संबंधी हकीकत है। ये प्रश्नोत्तर चंपानगरी के बाहर पूर्णभद्र नाम के चैत्य (व्यन्तरायतन) में हुए है। गौतम इन्द्रभूतिने ये प्रश्न भगवान् से पूछे हैं।

जैनसूत्रों में जंबू द्वीप में दो सूर्य बताये गये हैं। यद्यपि वास्तविकतया सूर्य लोगों के समक्ष हमेशा होता है, परंतु इसके सामने कोई रुकावट (पर्दा) आ जाती है, तब अमुक देश के भाग के लोक उसके दर्शन नहीं कर सकते। इसीलिए सूर्य डूब गया है, सूर्य उदय हुआ है। इसप्रकार बोला जाता है।

इस संबंध में भगवती की टीका में बहुत विस्तारपूर्वक लिखा है किन्तु यहाँ तो मूल के ही प्रश्नोत्तर का सारांश लेना है। उसका सार इसप्रकार है :–

सूर्य जंबूद्वीप में ईशान कोण में उदय होकर अग्नि कोण में अस्त होता है। अग्नि कोण में उदय होकर नैऋत्य में अस्त होता है। नैऋत्य में उदय होकर वायव्य कोण में डूबता है, और वायव्य कोण में उदय होकर ईशान कोण में अस्त होता है।

जब जंबूद्वीप के दक्षिणार्ध में दिन होता है तब उत्तरार्ध में भी दिन होता है और जब उत्तरार्ध में भी दिन होता है, तब मंदर पर्वत के पूर्व पश्चिम में रात्रि होती है।

P. P. Ac. Gunratansuriji M.S. Jin Gun Aaradhak Trust

अब जब कि मंदर पर्वत के पूर्व में दिन होता है तब पश्चिम में भी दिन होता है। तथा जब पश्चिम में भी दिन होता है तब जंबू द्वीप में मंदर पर्वत की उत्तर दक्षिण में रात्रि होती है।

जब जंबूद्वीप के दक्षिणार्ध में अधिकाधिक बड़े मुहूर्त का दिन होता है। तब उत्तरार्ध में भी अधिक से अधिक अठारह मुहूर्त का ही दिन होता है और जब उत्तरार्ध में भी अठारह मुहूर्त का दिन होता है तब जंबू द्वीप में मंदर पर्वत के पूर्व पश्चिम में छोटी से छोटी बारह मुहूर्त की रात्रि होती है।

अब जब जंबूद्वीप में मंदर पर्वत के पूर्व में बडे से बड़ा अठारह मुहूर्त का दिन होता है। तब जंबूद्वीप में पश्चिम में भी अठारह मुहूर्त का दिन होता है और जब पश्चिम में बडे से बडा अठारह मुहूर्त का दिन होता है तब उत्तरार्ध में छोटी से छोटी बारह मुहूर्त की रात्रि होती है।

इस उपरोक्त सिद्धान्त से दिन और रात के समय की क्षयवृद्धि का हिसाब भी गिन लेना चाहिए। उदाहरणस्वरुप–सत्तर मुहूर्त का दिन होता है तब तेरह मुहूर्त की रात्रि, सत्तर मुहूर्त से थोडा कम लंबा दिन हो तब तेरह मुहूर्त से थोडी अधिक लंबी रात समझनी चाहिए।

जंबूद्वीप में दक्षिणार्ध में छोटे से छोटा बारह मुहूर्त का दिन होता है तब उत्तरार्ध में भी वैसा ही होता है। जब उत्तरार्ध में वैसा हो तब जंबूद्वीप में मंदर पर्वत के पूर्व पश्चिम में बडी अठारह मुहूर्त की रात्रि होती है।

P. P. Ac. Gunratansuriji M.S. Jin Gun Aaradhak Trust

इसप्रकार जंबूद्वीप में मंदर पर्वत के पूर्व में छोटे से छोटा बारह मुहूर्त का दिन होता है, तब पश्चिम में भी वैसा ही होता है और पश्चिम में वैसा होता है तब मंदर पर्वत के उत्तर दक्षिण में बडे से बडी अठारह मुहूर्त की रात्रि होती है।

इसीप्रकार ऋतुओं के संबंध में भी समझ लेना है। उदाहरण स्वरूप-जंबूद्वीप में दक्षिणार्ध में वर्षा की मोसम का प्रथम समय होता है तब उत्तरार्ध में भी वैसा ही होता है और उत्तरार्ध में भी वर्षा ऋतु का प्रथम समय होता है तभी जंबूद्वीप में मंदर पर्वत के पूर्व पश्चिम में तुरंत ही दूसरे समय में वर्षा की शुरूआत होती है।

इसीप्रकार अन्य ऋतुओं के संबंध में भी समझ लेना चाहिए। वर्षा के प्रथम समय के लिए कहा है। उसीप्रकार आन-पान, स्तोक लव, मुहूर्त, अहोरात्र, पक्ष मास आदि तत्संबंधी सर्व समझ लेना चाहिए। उसीप्रकार संवत्सर, युग, वर्षशत, वर्ष सहस्र, वर्षशत रहस्र, पूर्वांग पूर्व, त्रुटितांग, त्रुटित, अटटांग, अटट, अववांग, अवव, हूहूकांता, हूहूक, उत्पलांग, उत्पल, पद्मांग, पद्म, नलिनांग, नलिन, अर्थनूपुरांग, अर्थनूपुर, अयूतांग, अयुत, नयूतांग, नयुत, प्रयुतांग, प्रयुत, चूलिकांग, चूलिका, शीर्षप्रहेलिकांग, शीर्ष-प्रहेलिका, पल्योपम और सागरोपम ये सब तत्संबंधी भी समझ लेने चाहिए।

इसीप्रकार अवसर्पिणी और उत्सर्पिणी संबंधी भी जानकारी प्राप्त कर लेनी चाहिए। परंतु ध्यान में रखना चाहिए कि जंबू-

P. P. Ac. Gunratansuriji M.S. Jin Gun Aaradhak Trust

में मंदर पर्वत के पूर्व पश्चिम में अवसर्पिणी या उत्सर्पिणी नहीं है। वहाँ अवस्थितकाल बताया गया है।

इसप्रकार लवण समुद्र में सूर्य संबंधी तथा उत्सर्पिणी अवसर्पिणी काल संबंधी जानकारी प्राप्त करनी है। ऐसे ही घातकी खंड कालोद और अभ्यंतर पुष्करार्ध संबंधी जानकारी प्राप्त करनी है।

वायुविचार

इसमें मुख्यतया वायु के संचालन संबंधी तथा ओदनादि पदार्थों में कौन कौन से जीव हैं, तत्संबंधी वर्णन है। ये प्रश्नोत्तर राजगृह में हुए हैं। सार यह है :–

वायु, थोडा आर्द्र, थोडा स्निग्ध और वनस्पति वगैरह हितकर ऐसा पथ्य वायु चलता है। वैसे ही महावायु भी चलता है। इसप्रकार का ईषत् पुरीवात, पथ्यवात, मंदवात और महावात। ये पूर्व, पश्चिम, उत्तर, दक्षिण, ईशान, अग्नि, नैऋत्य, और वायव्य कोन में हैं। यह वात पूर्व में चलता है, तब पश्चिम में भी चलता है और उसीप्रकार दूसरी दिशाएं तथा कोनों की भी जानकारी प्राप्त करनी है।

ये वायु द्वीप और समुद्र में भी होते हैं। परंतु द्वीप का वायु चल रहा हो तब समुद्र का नहीं और जब समुद्र का चल रहा हो तब द्वीप का नहीं। इसका कारण यह है कि ये द्वीप

P. P. Ac. Gunratansuriji M.S. Jin Gun Aaradhak Trust

और समुद्र के वायु व्यतास से संचरण करते हैं। इसलिए पृथक् पृथक् संचरण करते हैं और वायु लवण समुद्र की वेला का उल्लंघन नहीं करते है।

यह ईषत पुरोवात, पथ्यवात, मंदवात और महावात जब वायुकाय अपने स्वभाव से गति करते हैं तब चलते है, वैसे ही वायुकाय, उत्तरक्रियापूर्वक यानी वैक्रिय शरीर बनाकर गति करते हैं। तथा वायुकुमार-कुमारिकाएं स्वयं के लिये, परके लिये तथा दोनों के लिये जब वायुकी उदीर्णा करते है तब वायु चलायमान होता है और वायुकुमार तथा वायुकुमारियें स्वयं के लिये दूसरों के लिये या दोनों के लिए वायु को उदीरते हैं तब तो वह चलता है।※ ५६

※ ५६ वायु के लिए ये प्रश्नोत्तर हैं। उसके चार प्रकार हैं :-

१) ईषत् पुरोवायु यानी थोडा ओसयुक्त थोडा आर्द्र और थोडा (मंद) स्निग्धवायु

२) पथ्यावात-वनस्पति वगैरे को लाभ पहुँचानेवाला वायु

३) मन्दवात-मन्द मन्द (धीरे धीरे) वहता हुआ सुखदायक वायु

४) महावात-आँधी तुफान वायु

ये चारों वायु द्वीप में होकर चलते हैं तब उष्ण होते हैं। वैसे ही जब समुद्र में होकर चलते हैं तब ठंडे होते हैं। इसीलिये गरमी की ऋतु में जो वायु समुद्र में होकर आता है, वह शीतवायु होता है, और उसे समुद्र वायु कहते हैं। जब द्वीप के ऊपर से होकर आनेवाला वायु उष्ण होता है।

ये वायु कहाँ से आते हैं? इन वायु को कौन प्रेरित करता है? सामान्य रीति से पेड और लताएं कम्पती हैं (हिलती डुलती है) तब हम

P. P. Ac. Gunratansuriji M.S. Jin Gun Aaradhak Trust

ओदनादि काय

अब ओदन, कुल्माष और मदिरा ये तीन द्रव्य किस जीव के शरीर कहे जाते हैं. इसके संबंध में प्रश्न हैं। इसका स्पष्टीकरण इसप्रकार है।

ओदन और कुल्माष, इसमें जो कठित पदार्थ हैं, वह पूर्वभाव प्रज्ञापना की अपेक्षा वनस्पति जीव के शरीर हैं। जब वह ओदन आदि द्रव्य शस्त्रों द्वारा कूटे जाते हैं, नये आकार में आते हैं, अग्नि से उनका वर्ण बदला जाता है, अग्नि द्वारा पूर्व भव के स्वभाव को छोड देते हैं, तब वह द्रव्य अग्नि का शरीर कहा जाता है। मदिरा में जो प्रवाही पदार्थ है, वह पूर्व भाव की अपेक्षा से पानी के जीव का शरीर है। जब वह प्रवाही भाग शस्त्र द्वारा कूटा जाता है, अग्नि द्वारा अलग रंग को धारण करता है, तब वह भाग अग्निकाय का शरीर कहा जाता है।

कहते हैं कि हवा चलती है। किन्तु पेड को हिलानेवाला वायु कहाँ से आता है ? इसका उत्तर भगवान् ने इसप्रकार दिया है :–

"भवनपति देव के वायुकुमार और वायुकुमारिकाओं को जब अपने लिए दूसरों के लिए तथा दोनों के लिए वायु की उदीरणा करनी होती है, तब वायु चलता है।"

वायु एकेन्द्रिय जीव है उसका शरीर औदारिक है। उससे इस शरीर की स्वाभाविकी गति कही जाती है। और उत्तर अर्थात् वैक्रिय शरीर से गति करता है तब उत्तर वैक्रिय कहा जाता है।

P. P. Ac. Gunratansuriji M.S. Jin Gun Aaradhak Trust

लोहा, तांबा, कलई, सीसा, कोयला और काट ये सब पूर्वभाव प्रज्ञापना की अपेक्षा से पृथ्वी के जीव के शरीर कहे जाते हैं। तत्पश्चात् शस्त्र द्वारा कूटे जाने के बाद अग्नि जीव का शरीर कहा जाता है।

हड्डी, चमडा, रोंए (बाल) खुर और नख ये त्रस जीव के शरीर है जला हुआ चमडा, रोमवाला आदि पूर्वभाव प्रज्ञापना की अपेक्षा से त्रस जीव के शरीर है तत्पश्चात् बाद शस्त्रद्वारा संघटित होने के बाद अग्नि जीव के शरीर कहे जाते हैं।

अंगारा (जला हुआ कोयला), राख, भूसा, छाण (कंडा) पूर्वभाव प्रज्ञापना की अपेक्षाए एकेन्द्रिय जीव के शरीर और यथासंभव पंचेन्द्रिय जीव के शरीर कहलाते हैं और बाद में शस्त्र द्वारा संगठित होने के बाद अग्नि जीव के शरीर हैं। ※ ५७

---

५७ ※ परिग्रह पाप किस लिए ?

सामान्य मनुष्त भी समझ सकता है कि चावल खेत में पैदा होते हैं, और वह एकेन्द्रिय जीव का शरीर है। "चमडा" गाय, भैंस, बकरी, ऊंट हरिण, सिंह आदि पंचेन्द्रिय जीव के शरीर का होता है। 'राख' लकडी की या छाणा (कंडे) की बनती है। लकडी एकेन्द्रिय वनस्पति का कलेवर है जबकि छाणा तिर्यंच स्थलचर जीवों की विष्टा है। तांबा सीसा, सोना, चांदी वगैरह धातु भी पृथ्वी के गर्भ में से निकलते हैं और एकेन्द्रिय है। 'शराव' गुड या जव आदि पदार्थों में से बनता है, और वह वनस्पति है। 'हड्डी' मनुष्य या पंचेन्द्रिय जीव को ही होती है, इसलिए पंचेन्द्रिय का अंग कहा जाता है। 'कपडा' कपास से बनता हैं, और वह एकेन्द्रिय जीव होता

P. P. Ac. Gunratansuriji M.S. Jin Gun Aaradhak Trust

है। शंख या कोडी स्थापनाजी में रखे हुअे (स्थापनाचार्य) पानी में रहने वाले दो इन्द्रिय जीवों की हड्डी है।

इसप्रकार सब बातें सुगम और स्पष्ट समझ में आने योग्य हैं, फिर भी गणधर भगवान् केवली भगवान से पूछते हैं, और भगवान् इसप्रकार जबाब देते हैं :–

हमको जानना चाहिए कि 'प्रयोजनमनुदिश्य मन्दोऽपि न प्रवर्तते' प्रयोजन विना मूर्ख मनुष्य भी प्रवृत्ति नहीं करता है। तो फिर दिव्य ज्ञानियों की इस प्रवृत्ति के लिए कौनसा आशय होगा ? जिससे सहज बुद्धि गम्य भी प्रश्न किया और जबाब दिया। इसलिए सबसे पहले जानना चाहिए कि संसारवर्ती सब जीव एक समान नहीं होते हैं। स्कूल में जैसे अलग अलग वर्ग होते हैं उसीप्रकार किसी जीव को ज्ञानावरणीय कर्म अधिक होते हैं तो दूसरे को मोहनीय कर्म की तीव्रता अधिक होती है। तब तीसरे को वेदनीय कर्म अधिक होता है, और चौथे को अंतराय कर्म अधिक होता है। इससे एक जीव को किसी बात समझने में देर लगती है। दूसरे के आचरण करने में देर लगती है। तीसरा वेदनीयवश आचरण नहीं कर सकता। और चौथे को अंतराय की बाधा होती है। इसलिए प्रश्न सुगम होते हुए भी पूछे हुए प्रश्न का उत्तर भगवात उसीप्रकार देते हैं। समवसरण में प्रायः करके अपुनर्बन्धक जीव और भव्य जीव ही अथवा इस अवस्था को प्राप्त करने की तैय्यारी वाले जीव ही खास करके आते हैं। जो व्रतों को ग्रहण करके पालन करके और आराधना करके मोक्षोन्मुख बनते हैं। फिर भी परिग्रह की मात्रा जीव मात्र को अपनी तरफ आकर्षित करती है। तथा व्रतधारी बनने पर भी प्रकारान्तर से परिग्रह संग्रह करने के लिए ललचाते हैं।

परिग्रह मात्र द्रव्य से जीव हिंसा है। जो आत्मपरिणामों में भाव-हिंसा को उत्तेजित किये विना नहीं रहते हैं। क्योंकि पदार्थ मात्र की उत्पत्ति में जीवहिंसा रहती है।

P. P. Ac. Gunratansuriji M.S. Jin Gun Aaradhak Trust

पुण्योदयी व्यक्तिओं को भुगतने योग्य सर्ववस्तुएं हिंसोत्पादक ी होती हैं। हिंसा के वगैर एक भी पदार्थ नहीं बनता है। तथा बना हुआ पदार्थ अथवा उसका सहवास जीव मात्र के परिणाम में राग अथवा द्वेष लाय वगैर रहते नहीं हैं इसलिए तीर्थंकर देव सर्वथा निष्परिग्रही होते हैं। यहाँ तक की अपनी काया का भी सर्वथा त्याग करनेवाले होते हैं। इसप्रकार के तीर्थंकर देवों के अनुयायी भी निष्परिग्रही या अल्पपरिग्रही होते हैं। अथवा सर्वथा अनिवार्य रूप से परिग्रही हो वह इच्छनीय है।

इसी कारण जैन धर्म मानव मात्र को कल्याण के पथ पर प्रस्थान कराकर सिद्ध शिला प्राप्त कराने में अद्वितीय है। इसप्रकार का उत्कृष्टतम जैन धर्म मुनिराजों के लिए सर्वथा अपरिग्रह धर्म की और गृहस्थों के लिए परिग्रह परिमाण व्रत की प्रतिपादना करता हैं। जिससे जीव सिद्धि सोपान के ऊपर चढकर निकट भव में मोक्षगामी बन जाता है।

जहाँ तक मनुष्य के पास परिग्रह है, वहाँ तक वह हिंसक है। क्योंकि कपडा, भोजन, जल, चश्मा, घडी, कम्बल, फाउन्टेनपेन आदि पदार्थों में उन उन जीवों की हत्या अवश्य निर्णीत है।

जब वस्तुओं की खरीदी करनेवाले ग्राहक उपस्थित होते हैं तभी दूकानदार अपनी दुकान चलाता है, और जब दुकानदार होगा तभी पदार्थों का उत्पादन होगा। अर्थात् उत्पादक कपड़ा, घडा, चश्मा, घडी, फाऊन्टनपेन आदि चीजे तभी बनाएगा जबकि बाजार में माल की बिक्री होगी।

जिन जीवों को जैन धर्म का अनुयायी बनने का सौभाग्य प्राप्त नहीं हुआ है, उनकी बात छोडिये। किन्तु जैन धर्म की आराधना करनेवाले व्रतधारी श्रावक श्राविका के संबंध मे यदि बात करनी हो तो उनको व्रतका पालन तथा आश्रव के मार्ग का त्याग करने के लिए तथा संवर, निर्जरा और मोक्ष मार्ग प्राप्त करने के लिए येन केन प्रकारेण परिग्रह का त्याग

P. P. Ac. Gunratnasuriji M.S. Jin Gun Aaradhak Trust

अथवा प्रमाण करना आवश्यक है। क्योंकि परिग्रह में जो दोष हैं उनका विवरण निम्नानुसार है :–

१) परिग्रह शान्ति, समाधि और समता भाव का कट्टर शत्रु है।

२) धैर्य वृत्तिका नाश करने के लिए परिग्रह मुख्य कारण है। क्योंकि धैर्य वृत्ति के विना महाव्रतों का तथा अणुव्रतो का पालन करना असंभव है।

३) मोह कर्म को विश्रान्ति मिलनेका स्थान परिग्रह है।

४) अठारह पाप और पाप के भावों को उत्तेजना देनेवाला परिग्रह है।

५) आधि–व्याधि और उपाधि का सहचारी परिग्रह है।

६) आर्तध्यान और रौद्रध्यान परिग्रह के आभारी है।

७) मानसिक जीवन में चंचलता की वृद्धि करनेवाला यह परिग्रह । क्योंकि परिग्रह कामोत्पादक है और कामदेव का नाश किये विना चलता नहीं मिटती है।

८) अहंकार की मात्रा कों बढ़ानेवाला परिग्रह है।

९) शोक संताप का मूलकारण परिग्रह है।

१०) क्लेश, कलह, शत्रुता और मारकाट आदि दोषोंका उत्पादक परिग्रह है।

११) त्यागियों को संपूर्ण प्रकार से छोड़ने लायक है बाह्य तथा आभ्यन्तर परिग्रह है।

इस के अनुसार हम समझ सकते हैं कि महावीर स्वामी का "निष्परिग्रही धर्म" किस लिए और कितना उपयुक्त है।

अब महावीर स्वामी के अनुयायी गृहस्थाश्रमियों के लिए भी विचारणीच है "गृहे तिष्ठतीति गृहस्थः गृहणी गृह मुच्यते" अर्थात् धर्मपत्नी का

P. P. Ac. Gunratansuriji M.S. Jin Gun Aaradhak Trust

परिग्रह स्वीकार करने के पश्चात् अन्य परिग्रहों की भी आवश्यकता अनिवार्य हैं।

गृहस्थाश्रमी-

निम्नलिखित कार्य गृहस्थी के लिए अनिवार्य है जैसे व्यापार, व्यवहार, भोजन, कपडा, हाट हवेली, लग्नप्रसंग, जन्मप्रसंग और मरण प्रसंग इत्यादि किन्तु निरर्थक पाप, ऐसा व्यापार जिसके लिए बहुत पाप करना पड़े जैसे १५ कर्मादान २२, अभक्ष्य, ३२ अनंतकाय (कंदमूल) आदि जैसे बने वैसे समझकर और गुरुओं से व्रत अंगीकार कर छोड़ देना चाहिए।

आज कल के जमाने में व्यवहार में आनेवाली चीजों के संबंध में विचार करना योग्य है। यद्यपि गृहस्थ के लिए चमडे का उपयोग अनेक प्रसंगों में निश्चित है तथापि यदि मृत जानवर का चमड़ा हो, वहाँ तक आपत्तिजनक नहीं है। किन्तु जिन्दे जानवरों को मारकर उत्पादित नरम मुलायम चमड़े के बने हुए पदार्थ, जैसे जूतें, हैण्डबेग, मनीबेग, चमडे का बिस्तर, घडीयाल, कमर और टोपी का पट्टा, नरम चमडे का बना हुआ ब्लाउज और कोट इत्यादि काम में लेने की वस्तुएं त्याज्य ही हैं। महावीर स्वामी के श्रावकों के लिए तो अवश्य त्याज्य है। क्योंकि इस चमडे की उत्पत्ति इस प्रकार है।

जीवित (जिन्दी) गायों को एक पंक्ति में खड़ी की जाती हैं। उनके पैर लोहे के स्तंभ से दृढतापूर्वक बांधे जाते हैं। तत्पश्चात् उनके शरीर पर गरमागरम पानी उँडेल दिया जाता है। बेत की छोटी स्टिक (लकडी) से धीमे हाथ पीटी जाती है। तत्पश्चात् गाय का चमडा उसके मांस से उभर जाता है। फिर से गरम पानी उंडेला जाता है। दुबारा बेंत की छडी से पीटी जाती है। तत्पश्चात् मशीन द्वारा सम्पूर्ण चमडा उसके शरीर से

अलग कर दिया जाता है। जिन्दे जानवर का यह चमडा मुलायम होने के कारण उससे (चमडे से) बना पदार्थ भी नरम होता है। और हमारी चर्म चक्षु को सुन्दर लगता है।

छोटी उम्र की गायों को इसप्रकार परेशान करके जो चमड़ा निकाला जाता है, वह अधिक नरम होता है।

बछडे का चमड़ा उससे भी अधिक नरम होता है। और गर्भगत बछडे का चमड़ा सबसे अधिक नरम होता है। आजकल इस चमड़े का प्रचार उत्तरोत्तर बढ़ता जाता है। जो महाहिंसक तथा निर्ध्वंस परिणामों का उत्पादक हैं। वीतराग परमात्मा की पूजा करनेवाले, सोने चांदी के वरक से (पत्तो से) प्रभु के अंग को सजाने वाले, सामायिक, प्रतिक्रमण करने वाले भाग्यशालि पुरूष किसी काल में उन पदार्थो का उपयोग न करें।

रेशमी वस्त्र त्याज्य –

इसी प्रकार गृहस्थ के लिए वस्त्र का परिधान अनिवार्य है। फिर भी रेशम का वस्त्र सर्वथा त्याज्य इसलिए है कि वह वस्त्र त्रस जीवों की हत्या विना तैयार नहीं होता है। जबकि सूती वस्त्रों के तैयार करने में एकेन्द्रिय जीवों का उपयोग होता है। गृहस्थ मात्र के लिए एकेन्द्रिय (स्थावर) जीवो की हत्या न होना, संभव नहीं है क्योंकि प्रत्येक स्थिति में गृहस्थाश्रम को सुचारू रूप से चलाने के लिए यह अनिवार्य हो जाता है। जबकि त्रस जीवों की हत्या करके बना हुआ रेशमी वस्त्र इसलिए त्याज्य है कि त्रस जीवों का नाश करने के पश्चात् बना हुआ रेशमी वस्त्र निर्ध्वंस परिमाणों को करनेवाला है। तथा धीरे धीरे आत्मा को भी कठोर तथा निर्दयी बनाता है। पूजा के लिए बनी हुई स्नान विधी भी जब अहिंसक और निर्दोष बताई गई है तब फिर त्रस जीवों की हत्या से बने हुए वस्त्रों का परिधान जैनाचार्यों को सम्मत नहीं हो सकता।

P. P. Ac. Gunratansuriji M.S. Jin Gun Aaradhak Trust

थोडासा विवेक रखें और विवेक से विचार करें तो यद्यपि जीव हत्या पाप है। फिर भी गृहस्थ या साधु को अनिवार्य रूप से भी उन पदार्थों का उपयोग किये बिना नहीं चल सकता। फिर भी अहिंसक बनने का दावा करनेवाले भाग्यशाली एकेन्द्रिय जीवों से उत्पादित पदार्थों का त्याग करके जब त्रस जीवों की हत्या से बने वस्त्र के लिए आग्रह रखते हैं, ममत्व रखते हैं, और 'उनमें से भाव शुद्धि होने के कारण प्रभु पूजा में आनन्द आता है, ऐसे खयालों के प्रति आसक्ति रखते हैं,' तब सहसा मुखसे ये शद्ब निकल जाते हैं कि वे भाई जैन धर्म के मर्म को नहीं समझ सके हैं।

अहिंसक बनने के लिए ही वीतराग की पूजा होती है। क्योंकि वीतराग देव स्वयं सम्पूर्ण अहिंसक हैं। अत: त्रस जीवों का वध करके बना हुआ रेशमी वस्त्र जिसप्रकार त्याज्य है, उसीप्रकार वनस्पती से बना हुआ बनावटी रेशम का वस्त्र भी इसीलिए त्याज्य है कि उससे इन्द्रियों की गुलामी बढ़ती है। जो कि भाव हिंसा है। इन सब कारणों को मद्देनजर रखते हुए जैन धर्म के अनुयायियों को अहिसक बनने के लिए तथा इन्द्रियों को स्वाधीन करने के लिए ही प्रयत्नशील बनना चाहिए। जो मोक्ष प्राप्ति के लिए ट्रेनिंग है।

प्रश्नोत्तर का सारांश यही है कि परिग्रह की ममता माया धीरे धीरे छोडते रहना चाहिए। अन्यथा इन्द्रियों की गुलामी बढ़ेगी। कषायों की वृद्धि होगी। मानसिक परिणाम खराब रहेगा। शुद्ध और शुभ भावना रहित मन रहेगा। आत्मा के परिणामों में जैनत्व की चमक नहीं आवेगी। परिणाम स्वरूप दुर्गति के भाजन बनेंगे।

P. P. Ac. Gunratansuriji M.S. Jin Gun Aaradhak Trust

लवण समुद्र का विष्कंभ

लवण समुद्र का चक्रवाल विष्कंभ दो लाख योजन है। उसका घेराव पंद्रह लाख, इक्याशी हजार, उनचालीस सौ योजन से कुछ अधिक है। ※ ५८

※ ५८. लवण समुद्र का आकार गोतीर्थ, नौका, सीप का संपुट या अश्वकंध जैसा है। उनका चक्रवाल विष्कंभ दो लाख योजन का है। पंद्रह लाख, इक्याशी हजार और एक सौ उनचालीस योजन उपरांत थोड़ा ज्यादा अधिक कम परिक्षेप है। एक हजार योजन उद्वेध है और सोलह हजार योजन उत्सेध है। सत्तर हजार योजन सर्वाग्र है। इतना महान् लवण समुद्र जम्बूद्वीप को क्यों नहीं डूबा देता है ? अर्थात् ज्वार के कारण से जम्बू द्वीप को भी प्लावित कर सकने के लिए समर्थ होते हुए उसप्रकार इस लिए नहीं करता है ?

अरिहंतो का प्रभाव –

इसके उत्तर में भगवान ने फरमाया है कि इस द्वीप में आये हुए भरत और ऐरवत क्षेत्रों में अरिहंत, चक्रवर्ती, वलदेव, वासुदेव, चारणमुनि विद्याधर, श्रमण, श्रमणियें, श्रावक श्राविकाएं और धार्मिकवृत्ति वाले मनुष्य रहते हैं। जो स्वभाव से भद्र, विनीत और उपशान्त होते हैं। उनके क्रोध कषाय मन्द होते हैं। जो सरल और कोमल होते हैं। तथा जीतेन्द्रिय, भद्र और नम्र होते हैं। ऐसे महापुरुषों के प्रभाव से लवण समुद्र इस द्वीप को डुबाता नहीं हैं।

(जीवाभिगमसूद्र पृष्ठ – ३२८)

जीव मात्र को यथायोग्य, अनंत दुख सें परिपूर्ण संसार में

P. P. Ac. Gunratansuriji M.S. Jin Gun Aaradhak Trust

से से बाहर निकालकर अनंत सुख के प्रति प्रस्थान
और और सशक्त जैनशासन की मान्य अरिहंत, च
वासुदेव है । जो इस भव में और तीसरे भव में अव
हैं । ये पुण्यपुरूष अत्यन्त दयापूर्ण होने से उनका
जीवों के लिए ही होता है । सब जीव दया धर्म को प्र
को नाश करे और खुद की अनंत शक्ति का विकास
भाव दया से परिपूर्ण अरिहन्त देवों के नाम का उच्च
पापों का नाश करता है । उनका शरीर (मूर्ति)
शान्ति और समाधि देता है । उनका जन्म संसारवर
शोक—संताप—दुःख, दारिद्रय, वैर तथा विरोध का
अलौकिक प्रकाश देता है ।

चक्रवर्ति, वासुदेव बलदेव भी 'जैनतत्व' को
होने से संसार में अहिंसा तथा दया धर्म का प्रचार अ
होने से शान्ति के प्रवर्तक होते हैं । संयम तथा त
से लब्धिवंत मुनियों का जीवन कल्याणकारी ही होत

मुनि धर्म की आराधना करनेवाले श्रमण
परहित में तत्पर होते हैं । क्योंकि उनके स्वयं के जी
के साथ मैत्रीभाव ही होता है । श्रावक और श्रावि
के ३५ गुण तथा श्रावक धर्म के २१ गुण स्व
करनेवाले होने से दूसरे जीवों के साथ दया भाववाले
परमात्मा के भजन में रत होते हैं । ५६ अन्तर्द्वी
तथा देव कुरू और उत्तर कुरु के युगलिक भी
प्रकृति से भद्रक होते हैं । अतः इन सब महापुरुषों
समुद्र मर्यादा में रहकर किसी को भी नहीं स
और वैताढ्य पर्वत क्षुल्लहिमवान, शिखरिणी व

P. P. Ac. Gunratansuriji M.S. Jin Gun Aaradhak Trust

देवताओं के प्रभाव से भी लवणसमुद्र मर्यादा में रहता है।

इस समुद्र में पाताल कलश होने के कारण ज्वार के समय जो पानी उछाल मारता है उस ज्वार के पानी को उपरोक्त महापुरुषों के पुण्य प्रभाव से देवतालोग मर्यादा में रखते हैं। इस कारण से लवण समुद्र जम्बू-द्वीप को किसी प्रकार की हानि नहीं पहुँचाता है।

॥ दूसरा उद्देशा समाप्त ॥

P. P. Ac. Gunratansuriji M.S. Jin Gun Aaradhak Trust

जीवों का आयुष्य-

इस प्रकरण में एक समय में जीव इस भव परभव का आयुष्य बांधते हैं क्या ? उसीप्रकार नैरयिकादि और आयुष्य संवंधी हकीकत है। सार इसप्रकार है :-

एक जीव एक समय में एक ही आयुष्य का अनुभव करता है या पर भव का आयुष्य अनुभव करता है। जिस समय इस भव के आयुष्य का अनुभव करता है उस समय परभव के आयुष्य का अनुभव नहीं करता है। तथा जिस समय पर भव के आयुष्य का अनुभव करता है उस समय इस भव के आयुष्य का अनुभव नहीं करता। तथा इस भव के आयुष्य का वेदन करते परभव का आयुष्य नहीं वेदा जाता है। तथा परभव के आयुष्य को वेदता हुआ इसभव का आयुष्य नहीं वेदा जाता है।

नरक में जाने योग्य जीव यहाँ से आयुष्य सहित होकर ही नरक में जाते हैं किन्तु आयुष्य विना नहीं जाते हैं। इस जीव ने यह आयुष्य पूर्वभव में बांधा होता है।

जो जीव जिस योनि में पैदा होने योग्य होता है वह जीव उसी योनि संवंधी आयुष्य बांधता है ※ ५९

※ ५९ क्रीडाङ्गण (खेल के मैदान) में फूट बॉल की तरह यह जीवात्मा चार प्रकार के गति रूप संसार में एक क्षण के लिए भी स्थिर

P. P. Ac. Gunratansuriji M.S. Jin Gun Aaradhak Trust

नही है। प्रति समय उसके अध्यवसाय वदलते रहने के कारण सतत कर्मों के करनेवाले और उसकर्मों के कारण भवभ्रमण करनेवाले ये जीव स्वयं के वर्तमान भव को छोड़ते हुए पहले नये अवतार को ग्रहण करने के लिए आयुष्य कर्म बांधने के पश्चात् मरता है।

"यमराज मृत्यु के समम आता है, और जीवात्मा को पकड बांधकर जीव द्वारा किये गये कर्मों के अनुसार दूसरी योनि में छोड़ देता है।"

जैन शासन उपरोक्त वात को इसलिए मान्य नहीं करता है, जिसका कारण निम्नानुसार है :-

आयुष्य कर्म ही भवान्तर का कारण है जीव स्वयं ही अनंतशक्ति का मालिक होने से अपने किये गये कर्मों के अनुसार स्वयं ही भवभवान्तर करने में समर्थ होता है।

तीव्रतम शुभाशुभ लेश्याओं में प्रवर्तमान जीव जिन भावों में रहता उस भावना के अनुसार आगामी भव निश्चित होता है, और कर्मराज की बेडियों में जकड़ा हुआ जीव उस भव में जाता है। अर्थात् आगामी भव की प्राप्ति के लिए इस वर्तमान भव में ही आयुष्य कर्म बांधना आवश्यक है। तथा मृत्यु के पश्चात् वहीं जन्म लेना पड़ता है। तथा शुभाशुभ कर्म भोगने ही पड़ते हैं। मोक्ष अवस्था प्राप्त करने की काल लब्धि और खुद के सबल पुरूषार्थ से प्राप्त की गई भाव लब्धि जब तक इस जीवात्मा को प्राप्त नहीं होती है तब तक अनेक चिकने, चिरस्थितिवाले और कटु, कटुतर और कटुतम रस से पूर्ण कर्मो को बांधते हैं। और भवान्तर में भुगतने हैं।

उदाहरण स्वरूप तुले हुए चार शेर नींव के रस में जो कटुता होती है उसकी अपेक्षा इस चार शेर रस को चूल्हे पर रख कर जब उबलता हुआ २ शेर रस शेर रस शेष रह जावें तब उसमें कटुता की वृद्धि होती है।

P. P. Ac. Gunratansuriji M.S. Jin Gun Aaradhak Trust

तथा १ शेर रस शेष रह जाने पर कटता में विशेष वृद्धि होती है।

उसी प्रकार अत्यन्त तीव्र मोह माया–वैर के भयंकर आवेश में अंध बना हुआ जीव पर हत्या झूठ, चोरी मैथुन और परिग्रह के पाप करने के पश्चात् ही हर्षित होता है, और किये गये पाप कर्मों की प्रशंसा करता है, कृष्ण लेश्या की इतनी अधिक वृद्धि होने देता है कि जिस कारण से यह जीव भयंकर से भयंकर, अशुभ, अशुभतर और अशुभतम कर्मों का बंधन करता है। जैसे शिकार के लिए धनुष्य बाण से सुसज्जित होकर वन में पहुँचा हुआ शिकारी हरिण पर बाण फेंकता है और गर्भवती हरिणी के पेट पर गिरते ही उस बाण से उस (हरिणी) का पेट विदर्ण हो जाता है, और उसका गर्भपात हो जाता है। उधर उसी समय शिकारी वहाँ आकर अपनी शूरवीरता की ढींग हांकता हुआ कहता है कि "देखा मेरा बाहुबलका प्रभाव, एकही बाण से दो जीवों का वध कर दिया है।

देखो मेरी वाग्पटुता, "मैंने ऐसी रामबाण साक्षी दी है कि जिससे मेरे विरोधी शत्रु को कारावास में जाना पड़ा" मोह जाल में फंसाई गई इस स्त्री को छुडाने के लिए यदि स्वयं इसका पति भी विरोध करेगा तो मैं अपनी तलवार की एक चोट से उसके दो टुकड़े करके उसको तुरंत मृत्यु के द्वार पहुँचा दूंगा।"

इसप्रकार पाप कर्म की लेश्या बढ़ती है, और दुर्गति के लिए क बांधता जाता है। उसके विपरीत उदाहरण स्वरूप जैसे इक्षु के चार शेर रस में जो मधुरता होती है उसकी अपेक्षा उस रस को चूल्हे पर रख कर उबाला जाय, जब दो शेर रस बच जाता है तब उसमें मधुरता और बढ़ती हैं, और तीन शेर पानी जलने के बाद एक शेर बचे हुए रस में पहले की अपेक्षा मधुरता विशेष रूप से बढ़ जाती है। उसीप्रकार पाप वश अशुभ कर्म करने के बाद जीवात्मा में इसप्रकार का परिवर्तन आ जाता है कि अरे! अरे! असत्य साक्षी देने की मुझे क्या जरूरत थी? परस्त्री

P. P. Ac. Gunratansuriji M.S. Jin Gun Aaradhak Trust

तो माता के समान होती है, तब मैंने यह क्या कर दिया ? इत्यादि शुभभावनाएं जागृत होने पर इस जीव की लेश्याएं शुभतर बन जाती है । पहले बांधे हुए अशुभ कर्मों का क्षय करके शुभ कर्म उपार्जन करता है । और सत्कर्मों के प्रति रुचि रखनेवाला बनकर असत्कर्मों से हमेशा के लिए डर जाता है । तथा शुभ कर्मों का संचय करके सद्‌गति को प्राप्त करता है । अब चार गतियों में भवभवान्तर करता हुआ जीव वर्तमान भव में कैसे कैसे कर्म करता है । उनको देखते हैं ।

चार नरक के कारण

नरक गति के लिए योग्यता प्राप्त करनेवाला जीव :–
मदमत्सर लोभी अतिविषयी जीवतणो हणनार, सांभल विशरामी.
महारंभी मिथ्यात्वी रौद्री चोरी नो करनार, सां.
घातक जीव अणगार सां. व्रतनो भंजन हार, सां.
मदिरा मांस आहार सां.
भोजन निशि अंधार सा. गुणी निंदाजो ढाल, सां.
लेश्या धुर अधिकार सां.
नार की मां अवतार सां. ए लक्षण निरधार सां.
अवगुणनो नहीं पार सां.
(वीर विजयकृत आयुष्य कर्म नी सातमी पूजा)

तिर्यंच गति के लिए योग्यता प्राप्त करनेवाला जीव

अज्ञानी, शियल रहित, परवंचक मिथ्योपदेश कूटतोल, क्रूकर्मकी भाषा बोलनेवाला उत्तम वस्तु में सेलमेल कर के बेचनेवाला, माया छल कपट करनार, खोटी साक्षी देनार, चोरी करणार आर्तध्यान करनार, अविवेकी कलंक देनार, नील और कापोत लेश्या का मालिक (वीर विजय कृत पूजानी पांचमी ढाल ।

मनुष्यगति के लिए योग्यता प्राप्त करनेवाला जीव विवेक पूर्वक

P. P. Ac. Gunratansuriji M.S. Jin Gun Aaradhak Trust

जिनराज की पुष्प पूजा करनेवाले, व्रतधारी पंडितों का संसर्ग करनेवाले सत्शास्त्र को पढ़नेवाले, न्यायनीतिवान, न्यायसंपन्न विभव से युक्त उपयोग-पूर्वक रहनेवाले, मुनिराज को दान देनेवाले, भद्रिक परिणामी, आरंभ के त्यागी, परनिन्दा के त्यागी, परोपकारी, इन्सान मनुष्य अवतार को प्राप्त करता है।

(वीर विजय कृत पूजा की तीसरी ढाल)

देवगति के लिए योग्यता प्राप्त करनेवाला जीव वीत राग प्रभु की श्रद्धापूर्वक जलपूजा करनेवाले छोटी बड़ी आशातना का त्यागी, परमात्मा का पूजक, समता प्रधान, शोक संताप के स्थानों का त्यागी, साधु साध्वी को गोचरी अर्पित करनेवाले गुणीजनों से प्रेम रखनेवाले, व्रतों को अंगीकार कर पालनेवाले, सम्यक्त्व की उन्नति करनेवाले, संयम पूर्वक रहनेवाले अनुकंपा रखनेवाले, त्रिकाल गुरुवंदन करनेवाले, पंचाग्नि का साधन करने वाले, बाल तपस्वी आदि जीव देवगति के लिए योग्य है। इसप्रकार बांधने के बाद ही अपना वर्तमान भव समाप्त करके ही दूसरे अवतार को यह जीवात्मा प्राप्त करता है। नरक गति का आयुष्य बांधने के बाद सक्त नरक में से चाहे जिस नरक में चला जायगा।

तिर्यंच का आयुष्य बांधने के बाद यथायोग्य एकेन्द्रिय, दो इन्द्रिय तीन इन्द्रिय, चार इन्द्रिय वाले और पंचेन्द्रिय तिर्यंच से चाहे जहाँ जाएगा। मनुष्य गति का आयुष्य बांधने के बाद संमूच्छिम अथवा गर्भज मनुष्य अवतार को प्राप्त करेगा।

मनुष्य और तिर्यंच का जन्म दो प्रकार का १ गर्भज. .... , २ संमूच्छिम

पहले प्रकार के जन्म में गर्भ की आवश्यकता रहती है। इसलिए माता पिता के तथा स्त्री पुरुष के मैथुन कर्म के कारण मिश्रित हुए शुक्र-शोणित में जीव जब गर्भ में आता है, और वृद्धि को प्राप्त करके

P. P. Ac. Gunratansuriji M.S. Jin Gun Aaradhak Trust

यथायोग्य समय में जन्म लेता है, वह गर्भज कहलाता है। यह एक प्राकृतिक नियम है, उसके अनुसार तीर्थंकर परमात्मा वासुदेव चक्रवर्ती आदि को जन्म लेने का यही प्रकार है। इसका अर्थ यह होता है कि इस प्राकृतिक नियम के विरुद्ध किसी का जन्म नहीं हो सकता।

"अमुक के वीर्यकण वैकारिक भाव से स्खलित होकर धूल में मिलने के बाद उसमें से अनेक मनुष्य जन्मे," प्रकृति से विरुद्ध इन बातों को जैन शासन नहीं मानता है।

गर्भज जीवों के ३ प्रकार

१ जरायुज, २ अंडज तथा पोतज

गर्भ में आते ही जीव आहार पर्याप्ति द्वारा आहार को ग्रहण करता है बाद में अनुक्रम से शरीर, इन्द्रिय, श्वासोश्वास भाषा और मन का निर्माण वतः करता है, और नव माह की अवधि समाप्तकर जीव जन्म लेता है।

कुक्षि में स्थित जीव चारों तरफ से 'जरायु' से लिप्त होने के कारण 'जरायुज' कहलाता है।

१. जरायु–अर्थात् रक्त (खून) का बना हुआ जाल उसमें जीव रहता है, और पोषण पाता है। तथा जरायु के साथ बाहर आता है। तत्पश्चात् नाल छेद की क्रिया के बाद वह जीव जरायु से मुक्त हो जाता है। मनुष्य, गाय, भैंस, बैल, बकरी, भेड़, घोडा, गधा, ऊँट, हरिण, चमरीगाय, सूअर, नीलगाय, सिंह, बाघ, रींछ, गेंडा, कुत्ता, शृंगाल, बिल्ली आदि जीव 'जरायुज होते हैं।

अंडज–अर्थात् माता पिता के रजवीर्य से नाखून की चमड़ी के जैसी कठिन बने हुए को अंडा कहते हैं। जब वह फूट जाता है, तब उसमें से जो जीव, जन्मता है वह अंडज होता है। सर्प, गोह छिपकली, मछली,

P. P. Ac. Gunratansuriji M.S. Jin Gun Aaradhak Trust

कछुआ, मगर आदि जीव तथा पक्षियों में हंस, तोता, गृद्ध, बाज, कबूतर, कौआ, मोर, गिलहरी, बगला, वदक आदि जीव अंडज होते हैं।

३. पोतज-अर्थात् शरीर की रचना पूर्ण होने के बाद जीवों को चलने फिरने की शक्ति प्राप्त होती है, उनको पोतज कहते हैं। जिनमें हाथी, खरगोश, नेवला, चूहा तथा चर्म पक्षवाले भारंड पक्षी आदि जीवों का समावेश होता है।

संमूर्च्छिम-अर्थात् जिसमें पृथ्वीकाय, अप्काय, अग्निकाय, वायुकाय वनस्पतिकाय, विकलेन्द्रिय यानी चार इंद्रिय तक सब जीव संमूर्च्छिमज होते हैं।

जब मनुष्य के शरीर से बाहर आते हुअे मल मूत्रादिक में जीव उत्पन्न होता है, वह संमूर्च्छिम पंचेन्द्रिय होता है। उसके भी १४ स्थान हैं।

१ विष्टा में, २ मूत्र में, ३ कफ में, ४ श्लेष्म में, ५ वमन में, ६ पित्त में, ७ खून में, ८ शुक्र में, ९ मृतकलेवर में, १० पीप (मवाद) में, ११ स्त्री पुरुष के संयोग में, १२ वीर्यस्राव में, १३ शहर नाली में, १४ सर्वत्र अपवित्र स्थलों में, इन उपरोक्त स्थानों में संमूर्च्छिम पंचेन्द्रिय जीव जन्म लेते हैं। ये पदार्थ जिनके शरीर सत्व होंगें, प्रायः जीव हत्या भी उनको लगेगी।

॥ तीसरा उद्देशा समाप्त ॥

P. P. Ac. Gunratansuriji M.S. Jin Gun Aaradhak Trust

शब्द

इस प्रकरण में शब्द संबंधी छद्मस्थ और केवली के हंसने और सोने संबंधी' गर्भापहरण संबंधी, अतिमुक्तक की सिद्धी संबंधी, देवों के मौनप्रश्न संबंधी, देवों की संयतासंयत संबंधी, देवों की भाषा संबंधी, केवली के ज्ञानसंबंधी, देवों के ज्ञानसंबंधी, और चौदह पूर्वी की शक्ती संबंधी प्रश्नोत्तर हैं। सारांश यह है।

छद्मस्थ मनुष्य (शंख आदि को) बजाने से निकले हुए सभी प्रकार के शब्द सुन लेता है। ये शब्द किनके किनके ? तत्संबंधी कितने ही नाम हैं। शंख, सिंग, डाहली, पोया, परिपिरिया, पणव, पडह, भंभा, होरंभ, दुंदुंभि, तत, वितत, घण. ये शब्द कान से टकराने पर सुनाई देते हैं जिनको इन्द्रियाँ ग्रहण कर सकती हैं वे शब्द नजदीक से सुनाई देते हैं। परन्तु केवली तो दूर या नजदीक के अर्थात् सब प्रकार के शब्दों को पहचान लेता है और सुन लेता है। क्योंकि केवली तो सर्वकाल में सर्व पदार्थों को भावों को पहचान लेता है। केवली को अनंत ज्ञान और अनंतदर्शन प्राप्त है। ※ ६१

※ ६१ **हास्य मोहनीय कर्म**

ज्ञानावरणीय, दर्शनावरणीय मोहनीय और अंतराय नाम के घाती कर्मों का भार जिन को होता है वे 'छद्मस्थ' कहलाते हैं। उनके ये दो भाव

P. P. Ac. Gunratansuriji M.S. Jin Gun Aaradhak Trust

हैं हंसना और उतावला होना। जबकि केवल ज्ञानी में हंसना और उतावला होना नहीं पाया जाता है। कारण बिना कार्य नहीं होता है। अनादिकाल से प्रवाहरुप चारित्रमोहनीय कर्म के कारण छद्मस्थ मनुष्य को हंसी आति है, और प्रत्येक प्रसंग पर शीघ्रता करनेका मन होता है।

हमने ऐसे अनेक उदाहरणों का अनुभव किया है कि हंसने की क्रिया का आध्यात्मिक जीवन के साथ कट्टर वैर है। और बोलने में, चलने में, खाने में तथा कामकाज करने में शीघ्रता (उतावले) दोष के कारण लाभ कुछ नहीं होता है। अतः वृद्धों का यह कहना है कि "रोग का मूल खांसी और कलह का मूल हांसी"।

आत्मा की अनन्त शक्तियों का विकास होने में हास्य कर्म अंतराय रूप में आता है, जो चरित्र मोहनीय कर्म के कारण होता है। आत्मा का दर्शन होने में दर्शन मोहनीय कर्म और आत्मा के विकास में चारित्र मोहनीय कर्म रुकावट डालता है। "चरित्रं मोहयतीति चारित्रमोहनीयकर्मः"।

इस मोहनीय कर्म के २५ प्रकार नीचे लिखे अनुसार हैं।

४– अनंतानुबंधी कषाय यथार्थ श्रद्धानुरुप आत्मिक गुण को रोकने वाला अनन्त संसार में व्यर्थ भटकाने के लिए मूल कारण भूत कर्म है जिससे अनन्त-मोह, क्रोध, मान, माया, और लोभ का उदय बना रहता है।

४- अप्रत्याख्यानी कषाय जिसके कारण त्याग करने योग्य वस्तु का त्याग की भावना से त्याग नहीं होता है। इसलिए भक्ष्याभक्ष्य, पेयापेय कृत्याकृत्य आदि में हेय उपादेय का विवेक नहीं रहता है।

४- प्रत्याख्यानी कषाय जिसके कारण थोडे व्रतों को पालने की भावना जागृत होती है। किन्तु सर्वथा छोडने लायक संपूर्ण पापों को नहीं छोड सकता है।

४-१६. संज्वलन कषाय –जो आत्मा के मूल भूत (यथाख्यात) चरित्र

P. P. Ac. Gunratansuriji M.S. Jin Gun Aaradhak Trust

को रोकने वाला और मुनिराजों को भी परिषहादि प्रसंगों में चलायमान करके चारित्र को स्खलित करने के प्रसंग लाने वाला है।

इन प्रत्येक के क्रोध, मान, माया, लोभ रूप से चार चार भेद हैं।

१७. हास्य मोहनीय कर्म से सकारण अथवा अकारण हंसी आती हैं।

१८. रति मोहनीय से शद्ब, गंध, रस, स्पर्श और रूप रंग के प्रति सुनने, सूंघने, चखने और स्पर्श करने और देखने की भावना उत्कट रहती है।

१९. अरतिमोहनीय जिससे अप्रिय पदार्थों के कारण अरुचि भाव बना रहता है।

२०. शोक मोहनीय से रोने का, आक्रन्दन करने का और विलाप करने आदि प्रसंगों के कारण शोक संताप बना रहता है।

२१. भयमोहनीय से सर्वत्र भय की भावना उत्पन्न होती रहती है।

२२, जुगुप्सा मोहनीय से शुभाशुभ द्रव्यों की प्राप्ति में जुगुप्सा घृणा का भाव बना रहता है।

२३. पुरुषवेद विविध स्त्रियों के साथ विषय वासना के भाव उद्भव होते रहते हैं।

२४. स्त्रीवेद–विविध पुरुषों के साथ भोग विलास करने की अभिलाषा होती रहती है।

२५. नपुंसकवेद–स्त्री के साथ भोग करू ? या पुरुष के साथ भोग करू ? इसप्रकार की भोग विषय की भावना ही तीव्रतम बनी रहती है।

इन २५ भेदों के चरित्र मोहनीय कर्म के कारण जीव मात्र को हंसना आता है। और प्रत्येक कार्य में उताल करने की प्रेरणा मिलती रहती है। जो आत्म कल्याण के लिए बाधक रूप है।

P. P. Ac. Gunratansuriji M.S. Jin Gun Aaradhak Trust

हास्य मोहनीय कर्म की तीव्रता

क्रोधाग्नि में जलता हुआ पुरुष अपने शत्रु को दांवपेंच में फंसने के पश्चात् उसे अपनी बुद्धि पर, हंसता ही रहता है।

१. अभिमानी पुरुष जाति मद के कारण हीन जाति के मनुष्यों पर हंसता ही रहता है।

२. लाभ मद में चूर होने के कारण मनुष्य को गरिबों के प्रति और कम आय वालों पर हंसी आये बिना नहीं रहती।

३. कुल के मद में अंधा हुआ पुरुष दूसरे भिखारी लूले लंगडे, रोगी शोकातुर को हंसता ही रहता है।

४. ऐश्वर्य मद में मस्त हुआ पुरुष अपने धनी होने के भाव में मगरूर होने के कारण थोडी कमाईवाले अपने भाई बंधु, जाति पातिवाले तथा निकट के सगे संबंधियों पर हंसता ही रहता है।

५. बलमद के मालिक भी दुर्बल मनुष्ययों को देखकर हंसते रहते है।

६. ज्ञानी भी दूसरे अज्ञानी पर हंसता रहता है।

७. रूप का घमंडी काले रंग के मनुष्यों को देखकर अपनी मूंछ में हंसता रहता है।

८. तपश्चर्या का मद रखनेवाला भी दूसरों पर हंसता रहता है।

इन्द्रजाल की विद्या जाननेवाला पुरुष अपनी मायाजाल में दूसरों को फंसाकर अपनी मित्र मंडली में जोर से खुलकर हंसता रहता है।

लोभी मनुष्य जब ग्राहकों को ठगता है तब वह ग्राहकों पर तथा अनेक दूसरे व्यापारियों पर हंसने में ही मस्त रहता है।

अपनी हंसी मजाक की चेष्टाओं द्वारा दूसरों को हसाकर तथा मोहितकर खुद हंसता हंसता कहता है, "दुनिया झुकती है झुकानेवाला चाहिए,"

पुरुषवेद के नशे में मस्त और मन पसंत चाहिए जितनी मौज मजा लूटने के बाद संसार सुख में मंद मनुष्य पर हंसते देर नहीं करता है। स्त्री वेद में मस्त स्त्री बांझ तथा विधवा स्त्री को देख हसती ही रहती है।

नपुंसक वेद में रहा हुआ पुरुष दूसरों को अपनी तरफ आकर्षित करने के लिए हंसता रहता है, तालियाँ बजाता रहता है और हाव–भाव से अपने मन के भाव प्रकट करता हैं।

हंसना अच्छा है या बुरा ?

स्वाभाविक हसना शारीरिक दृष्टि से शायद अच्छा हो सकता है। किन्तु आध्यात्मिक दृष्टि से यह ठिक नहीं है। क्योंकि संसार के ऐसे बहुत से कार्य हैं कि जिसमें हमको लाभ और हानि तथा राग और द्वेष होता ही रहता है। जैसे सामायिक में समभावस्थ और विरती के प्रति अभिलाषुक भावितात्मा जब अपने पुत्र या मुनिम द्वारा "अमुक व्यापार में पांच लाख का फायदा हुआ है" अमुक केस हमारे फेवर में आगया है, ये समाचार सुनने के पश्चात् माला जपते हुए भी भावुक मुस्कराये वगैर नहीं रह सकता, और हंसने का अर्थ इतना ही है कि पांच लाख के फायदे में और केस हमारे पक्ष में आ गया, उसका अनुमोदन प्रकट करने स्वरूप हंसना अर्थात् अनुमोदन करना।

यद्यपि · · · · · दुविहं तिविहेणं · · · · · पाठ के कारण श्रावक को अपने व्रत में अतिचार भले ही न लगे, फिर भी हंसने से दो घडी तक आध्यात्मिक जीवन में चंचलता तो जरूर लाएगा।

हमारा अंगत मित्र किसी परस्त्री अथवा स्वस्त्री के साथ घूमने गया और हमारा साक्षात्कार होने पर मित्रता के राग से अपनी आँखों में हंसी झलकती है। इस हंसी का तात्पर्य यह सूचित करता है कि मित्र की प्रक्रिया के लिए अनुमोदन किसी ने हमारे शत्रु पर हमला किया, यह बात जिसके

P. P. Ac. Gunratansuriji M.S. Jin Gun Aaradhak Trust

द्वारा सुनते हैं तब 'कांटे से कांटा निकलता जाता हैं। इस न्याय से हमको हंसी आये बिना नहीं रह सकती। शत्रु के प्रिति द्वेष होने के कारण यह हंसी द्वेषात्मक है इत्यादि अगणित प्रसंगों में हम सब छद्मस्थ कहीं राग से, कहीं द्वेष से, कहीं लोभ से और कहीं कुतूहलवश होकर हंसते हैं। इसप्रकार हंसना भले ही स्वाभाविक और अनिवार्य हो किन्तु हमारा शान्त चित्त विचलित हुए बिना और घडी आध घडी विकथा कराये बिना नहीं रहता है। जबकि दूसरे प्रकार के हास्य में वैकारिक भाव होता है। जिससे हंसी में कहीं क्रूरता, वैरभाव, व्यंग, मस्करी, निर्दयता, लुच्चाई और शत्रु का नाश करने इत्यादिक हास्य प्रकार में लेश्याओं की खरावी ही काम करती है। तथा आत्म परिणाम क्लिष्ट, द्वेषात्मक तथा वैरात्मक होता है। इसलिए ही हसनेवाला और प्रत्येक क्रिया में जल्दी करनेवाला आठ प्रकार के कर्म बांधता है। इन दोनों प्रकार के हास्य में सम्यग्ज्ञान का अथवा समिति गुप्तिधर्म का अभाव निश्चय तौर से होता है। इसीलिए प्रश्न के उत्तर में भगवान ने फर्माया है कि छद्मस्थ इन्सान हसता है और जल्दी करता है। ये दोनों भाव जबतक हैं तबतक छद्मस्थता का नाश कैसे हो सकता है?

संसार का कोई पदार्थ हमारे वैकारिक भाव को न बढ़ा सके, अनंत पदार्थ भुगते हुए होने के कारण कोई भी पदार्थ कुतूहल पैदा नहीं करा सके, इसलिए साधक सर्वथा निष्परिग्रही ही होने का आग्रह करता हैं और संसार तथा संसार की माया से दूर रहता है।

तथा तथा योग्य बारह प्रकार के तप और स्वाध्याय से अपने भुगते हुए भोग और उपभोगों को भूलाने का ही प्रयत्न करता है।

केवलज्ञानी को न तो हंसी आती है और न उतावलापन रहता है। संसार के अनंत पदार्थ चक्षु गोचर होते हुए भी केवलज्ञानी को हंसा नहीं सकता। क्योंकि जब हास्य मोहनीयादि कर्मों का समूल नाश हो जाता है

P. P. Ac. Gunratansuriji M.S. Jin Gun Aaradhak Trust

केवली को नींद होती है ?

छद्मस्थ मनुष्य खडा खडा भी नींद लेता है और वह जिस-प्रकार नींद लेता है उसके अनुसार केवली नींद नहीं लेता है। क्योंकि छद्मस्थ तो दर्शनावरणिय कर्म के उदय से नींद लेता है; किन्तु केवली तो कर्म के अभाव से नहीं लेता है।

नींद लेता हुआ या खडा खडा ऊंगता हुआ जीव सात या आठ कर्म बांधता है। ※ ६२

तब केवल ज्ञान होता है। अतः उनको जीवन में कुतूहल, राग, मोह, काम और द्वेष लेश मात्र भी नहीं होता है।

हम छद्मस्थ को भी इस छद्मभाव को दूर करने की ही भावना रखनी चाहिए और उसके लिए ही प्रयत्नशील रहना चाहिए। यही श्रेयस्कर है।

※ ६२ नींद आने का मूल कारण दर्शनावरणीय कर्म होता है। दर्शनावरणीय कर्म की उपार्जना तब होती है जबकि गत भव में मोहवश मूढ बनी हुई आत्मा दूसरे जीव की दर्शन शक्ति का, दर्शन के साधनों का अन्तराय, निन्हव, मात्सर्य, आसादन और उपधान करते हैं। इसी कारण से इस भव में उस साधक को चक्षु - अचक्षु अवधि तथा केवल दर्शन में कमी हती है। और सामान्य ज्ञान प्राप्त करने में भी चक्षु तथा मन सहित दूसरी इन्द्रियों में पदार्थ ज्ञान के प्रति कमजोरी रहती है।

दर्शनावरणीय कर्म के कारण ये पांच प्रकृतियां होती हैं - (१) निद्रा, (२) निद्रानिद्रा (३) प्रचला, (४) प्रचला प्रचला और (५) स्त्यानर्धि जो आत्मा के लिए सर्वघातीरूप काम करती हैं। अर्थात् आत्मा की मूल शक्ति पर आवरण ला देती है : जब इस जीव को सुन्दर काम करने का

P. P. Ac. Gunratansuriji M.S. Jin Gun Aaradhak Trust

अवसर मिलता है तब निद्रा घेर लेने से वह जीवात्मा कार्य करने से वंचित रह जाती है । और निद्रादेवी की शरण लेकर अपना अमूल्य जीवन बरबाद करती है । आलस्य और तन्द्रा के वशीभूत होकर मनुष्य जान बूझकर निद्रा को आमंत्रित करता है ।

निद्रा- जिससे मनुष्य सुखपूर्वक जग जाता है ।

निद्रानिद्रा-जिसके प्रभाव से सोता हुआ मनुष्य बहुत कठिनाई से जगता है । और उसे जगाने के लिए बहुत प्रयत्न करना पडता है ।

प्रचला–जिससे खड़े खड़े अथवा बैठे बैठे नींद आती है ।

ऐसा देखा जाता है कि बहुत से भाग्यशालियों को बैठे बैठे या माला जपते जपते नींद आ जाती है । वे मनके गिनते रहते हैं और सोते रहते हैं । किसी समय में आत्मा में पुरुषार्थ जगता है तब खड़े खड़े माला जपने का भाव हो जाता है । किन्तु पुरुषार्थ कम अथवा चेतना जागृत नहीं होने के कारण खड़े खड़े भी निंद लिये बिना नहीं रह सकते हैं ।

प्रचला प्रचला–चलते चलते नींद आ जाती है, जैसे चक्रवर्ती के घोड़े को ।

स्त्यानर्द्धि–यह नींद इतनी प्रबल होती है कि दिन में सोचे हुए कार्य नींद में से जगकर करता है किन्तु इन भाई साहब को काम करने की खबर तक नहीं पड़ती । इस नींद में प्रथम संघयण के अनुसार और वासुदेव से आधे बल के अनुसार शक्ति होती है । और वर्तमान काल में जो बल होता है उससे सात या आठ गुना अधिक बल इस नींद में होता है ।

इसप्रकार की निद्रा छद्मस्थ को होती है किन्तु केवल ज्ञानी को नहीं होती है । क्योंकि उनका दर्शनावरणीय घाती कर्म समूल नष्ट होता है । जबकि छद्मस्थ मनुष्य के पास किसीप्रकार का काम नहीं है । तथा दूसरे के लिए उसे काम करने की तनिक भी इच्छा नहीं है । परोपकारी जीवन

P. P. Ac. Gunratansuriji M.S. Jin Gun Aaradhak Trust

"भगवान का गर्भापहरण"

गर्भ का संहरण करने वाला, एक के उदर में से दूसरे के उदर में रखने वाला हरिणी गमेषी देव अपने हाथ से गर्भ को इस-प्रकार अधर लेता है। जिससे गर्भ को पीडा न हो, इस प्रकार योनि द्वारा बाहर निकालकर दुसरे गर्भाशय में रख दिया जाता है।

का शिक्षण नाममात्र भी नहीं है। आत्मतत्त्व को पहचानने में दूर रहता है। ईश्वर की अनंतशक्ति के प्रति भी जो बेदरकार है। संसार की मोहमाया में पूर्ण आसक्त है। इसलिए खाना पीना और मौजशौक करने के अतिरिक्त इस जीवात्मा के पास दूसरा कोई भी व्यापार नहीं है। अतः उस जीवात्मा के लिए निद्रादेवी ही एक 'आराध्या' है। ऐसे लोगों के मस्तिष्क में जड़ता भरी रहता है, बुद्धि में तामसिकता होती है। स्वभाव में राजसिक वृत्ति होती है। दूसरों के सुख की परवाह नहीं करते हैं। अतः ऐसे जीव देवदुर्लभ मनुष्य अवतार को भी पापमय बना देते हैं।

यद्यपि सम्यक्त्वधारी मनुष्य को निद्रा का सर्वथा अभाव नहीं होता है, फिर भी आत्मा में जागृति होती है। नये तत्त्व को प्राप्त करने की भावना है, आध्यात्मिक जीवन को प्रेक्टीकल (व्यवहार) बनाने की लालसा तथा 'परोपकार, यही बड़ा स्वार्थ है' ऐसा समझकर वें भाग्यशाली शरीर की थकावट दूर करने हेतु उतनी मात्रा में ही निंद लेवे तथा समय पर जागृत हो जावें। ऐसी नींद में आत्मा जागृत रहेगी। अपने शरीर को संयम की मर्यादा में रखेंगे। करवट बदलते समय अहिंसा की आराधना ध्यान में रखेंगे। ऐसा अभ्यास करते करते ही केवल ज्ञान का मार्ग हस्तगत करने में देरी नहीं लगेगी।

P. P. Ac. Gunratansuriji M.S. Jin Gun Aaradhak Trust

देवानंदा ब्राह्मणी की कुक्षि में आये हुये भगवान महावीर स्वामी को हरिगी गमेवी देव देवानंदा की कुक्षि में से लेकर त्रिशला क्षत्रियाणी के उदर में रखता है। उसी प्रसंग के संबंध में यह प्रश्न है। और उसीके कारण हरिणी गमेषी का नाम दिया गया है।

गर्भ को फेरफार करने के चार प्रकार हैं:-

१. गर्भाशय में से गर्भ लेकर दूसरे गर्भाशय में रखना।
२. गर्भाशय में से गर्भ लेकर योनि द्वारा दूसरे गर्भाशय में रखना।
३. योनि द्वारा गर्भ बाहर निकालकर दूसेर गर्भाशय में रखना।
४. योनि द्वारा गर्भ को बाहर निकालकर योनि द्वारा ही दूसेर गर्भाशय में रखना।

इसमें से तीसरी रीति गर्भ को फेरफार करने के लिए उपयोगी सिद्ध हुई है। ॐ ६३

ॐ ६३ गर्भ परिवर्तन के संबंध में मेरा स्वयं का यह मत हैं के संसार के किसी डॉक्टर को या सब डॉक्टरों को एकत्रित करने पर भी सफलता नहीं मिली है, नहीं मिलती है और नहीं मिलेगी। क्योंकि प्राकृतिक वस्तु का परिवर्तन अशक्य है।

भगवान महावीर स्वामी के लिए जो बना है वह देवकृत है। जन्म लेनेवाले महावीर स्वामी अतिशय पुण्यवान् हैं। असंख्य ज़ीवों के उद्धारक हैं। संसार को सुखशान्ति और समाधि देने के लिए पूर्ण समर्थ हैं। इसलिए ऐसे तीर्थंकर देवों की भक्ति के वश होकर इन्द्र जो तीर्थंकर देवों की अपेक्षा कम पुण्यवाले होते हैं, तीर्थंकर देवों के चरण सेवक होते हैं।

P. P. Ac. Gunratansuriji M.S. Jin Gun Aaradhak Trust

तीर्थंकर भगवान की आत्मा संसार के संपूर्ण भोग विलास तथा राज-वैभव को त्यागकर केवल ज्ञान के मालिक बनते के लिए ही सर्जित हुई है। इसलिए जगदुद्धारक, पतितपावन, दया के सागर ऐसे देवाधिदेव क्षत्रिय वंश में ही जन्म लेते हैं। स्वार्थ का संपूर्ण बलिदान देकर अपना लक्ष्य सिद्ध करने के लिए क्षत्रियवंश सर्वश्रेष्ठ है।

ब्राह्मण वंशोत्पन्न विद्वान, महाविद्वान तथा वणिक् जाति में उत्पन्न चालाक, महाचालाक हो सकता है। किन्तु केवल ज्ञान प्राप्त कर तीर्थंकर होने की शक्ति उनके रक्त में नहीं है। स्वार्थ का बलिदान दियेविना दूसरी कोई भी तपश्चर्या सर्वार्थसिद्ध लक्ष्य को प्राप्त नहीं करा सकती।

उपरोक्त कारणवश तीर्थंकर क्षत्रिय वंश में ही जन्म लेते हैं। ऐसा होते हुए भी कर्मसत्ता अतीव बलीयसी होने के कारण कदाचित् क्षत्रियवंश को छोडकर तीर्थंकर दूसरे वंश में आते हैं किन्तु जन्म नहीं लेते हैं। इस कारण से इन्द्र महाराजा अपने दूत द्वारा भगवान महावीर स्वामी को परि-वर्तित कराते हैं।

सतावीश भव की अपेक्षा तीसरे भव में भगवान के जीव ने मदवश बनकर हीन जाती का कर्म बांधा था। क्योंकि कर्मसत्ता सर्व जीवोंपर एक सी होती है। जब **मरिचि को भरत चक्रवर्ती** ने वन्दना की और कहा, हे मरिचि, मैं तेरे परिव्राजक वेश को वन्दना नहीं करता हूँ किन्तु आप इस चौबीशी में अन्तिम तीर्थंकर बनोगे, वासुदेव बनोगे और चक्रवर्ती बनोंगे।" आप इन अमुल्य तीन उपवियों के भोक्ताहैं। इसलिए मैं आप-को वन्दन करता हूँ। यह बात सुनकर जातिमद तथा कुलमद की चरमसीमा को प्राप्त होने पर वहाँ हीन जाति का कर्म बंधन होता है। इस कर्म के विपाक के कारण ही महावीरस्वामी को अन्तिम भव में थोडे समय के लिए ही हीनजाति में आना पड़ता है। किन्तु उन सब कर्मों का नाश हो जाने

P. P. Ac. Gunratansuriji M.S. Jin Gun Aaradhak Trust

पर ही हरिण गमेषी इन्द्र की आज्ञा से भगवान को परिवर्तित कर त्रिशला-राणी की कुक्षि में लाकर रख देता हैं ।

सारांश यह है कि ऋषभदेव के शासन में बांधे हुए कर्म चौवीस में भव में उदय में हैं वीच में जो समय बीता है वह निम्नानुसार है:-

ऋषभदेव से अजितनाथ भगवान	५० लाख करोड सागरोपम
अजितनाथ से संभवनाथ	३० लाख करोड सागरोपम
संभवनाथ से अभिनंदन स्वामी	१० लाख करोड सागरोपम
अभिनंदन स्वामी से सुमतिनाथ	९ लाख करोड सागरोपम
सुमतिनाथ से पद्मप्रभु	९० हजार करोड सागरोपम
पद्मप्रभु से सुपार्श्वनाथ	९ हजार करोड़ सागरोपम
सुपार्श्वनाथ से चन्द्रप्रभु	नव सौ करोड सागरोपम
चन्द्रप्रभु से सुविधिनाथ	९० करोड सागरोपम
सुविधिनाथ से शीतलनाथ	९ करोड सागरोपम
शीतलनाथ से श्रेयांसनाथ	एक सौ सागरोपम तया छासठ लाख छब्बीस हजार वर्ष कम ऐसे एक करोड सागरोपम
श्रेयांसनाथ से वासुपूज्य	५४ सागरोपम
वासुपूज्य से विमलनाथ	३० सागरोपम
विमलनाथ से अनंतनाथ	९ सागरोपम
अनंतनाथ से धर्मनाथ	४ सागरोपम
धर्मनाथ से शान्तिनाथ	०।।। मल्योपम न्यून ३ सागरोपम
शान्तिनाथ से कुन्थुनाथ	०।। पल्योपम
कुन्थुनाथ से अरनाथ	०। पल्योपम
अरनाथ से मल्लीनाथ	१ हजार करोड वर्ष
मल्लीनाथ से मुनिसुव्रतस्वामी	५४ लाख वर्ष

P. P. Ac. Gunratansuriji M.S. Jin Gun Aaradhak Trust

अतिमुक्तक

ये भगवान के शिष्य बन गये। वे कुमार श्रवण थे। एक समय की बात है कि ये हाथ में पात्रा तथा बगल में ओघा लेकर बाहर गये। बहते हुए पानी का छोटा (गर्त) खड्डा दिखलाई पडा। उन्होंने उक्त खड्डे पर एक मिट्टी की पाल (छोटी दीवार) बनाकर उसपर पात्रा रख दिया। यह "मेरी नाव है।" यह मानकर उसी में मशगूल होकर रमण करने लगे। स्थविरों ने इस बाल चेष्ठा को देखी और उन्होंने भगवान से पूछा, "कितने भव करने के बाद अतिमुक्तक सिद्ध बनेंगे ?"

भगवान ने उत्तर दिया, यह भव पूरा करने के बाद ही सिद्ध बनेंगे। इसलिए आप में से कोई उनकी निंदा मत करना, उनकी

मुनिसुव्रतस्वामी से नमिनाथ	६ लाख वर्ष
नमिनाथ से नेमिनाथ	५ लाख वर्ष
नेमिनाथ से पार्श्वनाथ	८३ हजार वर्ष
पार्श्वनाथ से महावीरस्वामी	२५० वर्ष

(लब्धिसूरी ग्रन्थ माला पुष्प - १५)

उपरोक्तानुसार इतना लम्बा काल पूरा हो जाने पर भी २० कोडा कोड़ी सागरोपम की स्थितिवाला गोत्र कर्म सत्तीवीशवें भव में उदय होता है, और संपूर्ण रीति से क्षीण होने की तैयारी में था, इसलिए भगवान महावीरस्वामी का गर्भ परिवर्तन भगवतीसूत्र, आचारांगसूत्र, कल्पसूत्र तथा त्रिषष्टिशलाका पुरुष चरित्र को मान्य है।

P. P. Ac. Gunratansuriji M.S. Jin Gun Aaradhak Trust

सार संभाल लेते रहना, और सेवा करना सब भगवान के वचन के अनुसार करने लगे। ※ ६४

※६४, अतिमुक्तक नाम का राजकुमार बहुत सुन्दर था। तथापि अत्यन्त सरल और गंभीर होते हुए भी उनको गौतमस्वामी अपने से भी अधिक सुंदर दिखलाई दिये। तत्पश्चात् समवयस्क मित्रों के साथ खेल रहे थ, उस खेलमें से मन हटाकर गौतमस्वामी से पूछते हैं :—

हे प्रभो। इस भंयकर गर्मी में मध्याह्न के समय नंगे पैर, आप क्यों घूमते हैं ?

गौतमस्वामी ने जवाव दिया, निर्दोष भिक्षा लेना, यही हमारा धर्म है। तब अतिमुक्तक बोला, आप मेरे घर चलिये। इसप्रकार सविनय आमंत्रणपूर्वक गौतमस्वामी को अपने घर ले गया। अपने पुत्र का इस प्रकार का धर्मप्रेम देखकर उनकी माता वहुत खुश हुई और गोचरी दी। झोली में बहुत भार देखकर स्वाभाविक और बहुमानपूर्वक विनय से कुमार कहते हैं कि आपके पास भार अधिक है, अतः झोली मुझे दे दीजिये। गौतमस्वामी ने जवाब दिया, 'उस व्यक्ति को झोली दी जाती है जबकि वह व्यक्ति ीक्षित हो जाता है। इससे प्रभावित होकर राजकुमार दीक्षा लेते हैं। तत्पश्चात् स्थविर मुनियों के साथ वाहरभुमी चलते हुए रास्ते में छोटा सरोवर देखा तब उसमें अपनी पात्री को छोटी नाव की तरह चलाने लगे। जब पीछे मुडकर साधुओंने उपरोक्त दृश्य देखा तो उन्होंने बालमुनिको उपालंभ दिया और कहा कि मुनिधर्म को छ' कायजीवों की विराधना अच्छी नहीं लगती है। इतना सुनते ही बालमुनि लज्जित हुए और उनके मन में यह विचार आया कि 'मैं कुलीन पुत्र हूँ मैं अपने को वैराग्य होने के कारण दीक्षित हूआ हूँ। अतः मुझे शुद्ध मन से ही दीक्षा का पालन करना चाहिए। इस प्रकार शरमाते हुए वे महावीर स्वामी के समवसरण में आये और हृदय

P. P. Ac. Gunratansuriji M.S. Jin Gun Aaradhak Trust

देव के मौन प्रश्नोत्तर

एक समय की बात है कि महाशुक्र नामक देवलोक से बड़े ऋद्धिवाले दो देव भगवान की सेवा में प्रादुर्भूत हुए। उन्होंने मन से ही भगवान को वन्दन-नमन आदि किया तथा मनसे ही प्रश्न किया कि आपके कितने शिष्य सिद्ध होंगे ?

भगवान भी नहीं बोले सौर मन से ही जवाब दिया, 'सात सौ शिष्य सिद्ध बनेंगे।'

यह उत्तर सुनकर देवताओं को बडी खुशी हुई। और पर्युपासना करने लगे।

इन्द्रभूति गोतम को यह शंका हुई कि ये देव किस कल्प से आये हैं ? यह मैं नहीं जानता हूँ। किस विमान से आये हैं और किसलिये आये हैं ? कोई खबर नहीं हुई। महावीर ने गौतम को यह संकल्प कह दिया। और बताया कि देव ही तेरा खुलास करेंगे।

से पश्चात्ताप पूर्वक 'इरियावही ....' सूत्र के परिशीलन में अपनी भुलोको पश्चातापकरके उन्होंने संपूर्ण कर्मों का नाश कर वहीं केवल ज्ञान को प्राप्त किया। महावीर स्वामी से निर्णय मिलने के पश्चात् स्थाविर मुनियों द्वार बारंबार याद दिलाया गया कि भविष्य में किसी मुनि की अवहेलना नहीं करना। इसके अनुसार वें वृद्धमुनि निश्चय करते हैं। मुनिधर्म स्वीकार करने के बाद किस समय में कुलीन मुनि भी पुनः सावधान हो जायगा ? इस संबंध में कुछ नहीं कहा जा सकता। अतः तात्कालिक दूषण देखकर किसी भी समय उसकी निन्दा करने में भाग नहीं लेना चाहिए। यही इस प्रश्न का सरलार्थ है।

P. P. Ac. Gunratansuriji M.S. Jin Gun Aaradhak Trust

गौतम उस देव केपास जाते हैं। देव उनका स्वागत करते हैं। गौतम द्वारा पूछे बिना ही उन्होंने कहा कि महाशुक्र नाम के कल्प से महासर्ग विमान से हम आये हैं। हमने मन में ही भगवान से वन्दना की और मनमें ही प्रश्न किया - भगवान ने भी हमारे मनोगत भाव को समझ कर मन से ही जवाब दिया कि " मेरे सात सौ शिष्य सिद्ध बनेंगे ?।

फिर भगवान को वन्दना तथा नमन कर वें जिस दिशा से प्रकट हुए थे उसी दिशा में चले गये। अन्तर्धान हो गये। ※ ६५

※ ६५ गुरु शिष्य संबंध

गुरु और शिष्य का संबंध ऐसा होना चाहिए जैसा कि माता और पुत्र का होता है। तभी उसमें से सुगंध आवेगी और समाज का अभ्युत्थान होगा। तत्काल जिसको प्रसूति होती है उस माता को चाहिए कि अपने बच्चे को स्तनपान करावें जिससे वह माता स्वयं रोगी न हो। बच्चा स्वयं बगैर आहार के नही रह सकता, इसलिए पैदा हुए बालक को स्तनपान करने की गरज है। इसप्रकार दोनों को पारस्परिक एक दूसरे की आवश्यकता रहने ही इस क्रिया में से अमरतत्व और माता पुत्र का अगाध स्नेह रूपी सागर उमड़े बिना नही रहता। उसीप्रकार स्वयं के समान अथवा खुद से अधिक शिष्य बने और गुरु शिष्य का हित रखे इसप्रकार दोनों के पारस्परिक संबंध की एक दूसरे की जरुरत रहती है। मैं महान् विद्वान बनूं और आत्मकल्याण करूँ, इसीलिए गुरु के प्रति विनय-विवेक रखूं। जैसी शिष्य को गुरु की आवश्यकता होती है, वैसी ही गुरु को शिष्य की होनी चाहिए, इसप्रकार की दोनों को एक दूसरे की पारस्परिक जरुरत महशूस होगी, तभी समाज और सामाजिक जीवन का कल्याण होगा। अब इन आव-

P. P. Ac. Gunratansuriji M.S. Jin Gun Aaradhak Trust

श्यकताओं में जितने दोष होंगे उतने ही वैकारिक भाव जगेंगे और प्रछन्नरूप से भी समाज को हानि हुए बिना नहीं रहेगी। महावीर स्वामी गुरु थे और गौतम स्वामी शिष्य थे। दोनों निष्परिग्रही तथा मोक्षगमन की तत्परतावाले थे। अतः गुरु शिष्य की जोड़ी ने संसार को अमरतत्व दिया है। गुरु और शिष्य दोनों को एक दूसरे की आवश्यकता के बिना समाज को उनसे लाभ नहीं मिलेगा बल्कि दोनों के क्लेशों से समाज और संसार को भयंकर हानि पहुँचेगी, ऐसी संभावना है।

मुनियों के संयम धर्म से देवों के विमान और समुद्र की मर्यादा स्थिर रहती है। तो मुनिराजों के संघर्षमय जीवन से संसार को "अतिवृष्टि, अनावृष्टि, जानमाल की हानि तथा रोग शोक को वृद्धि होती है। तथा राजाओं तथा राज्यकर्ताओं में वैर विरोध भडकता है। परिणाम स्वरूप देश को भयंकर हानि हुए बिना नहीं रहती है। देश की हानि से समाज को भी हानि पहुँचती है। समाज की हानि अर्थात् सामाजिक जीवन में वैर-विरोध तथा क्लेश से जैन धर्म को भयंकर नुकसान हुआ है, होता है, और भविष्य में भी होगा। उस क्षति की पूर्ति शताब्दियाँ बीत जाने पर भी नहीं होगी।

"चिरंजीयात् चिरंजीयात् देशोऽयं धर्मरक्षणात्"

यह शिलालेख साक्षी देता है कि धर्म की रक्षा से यह भारत देश चिरकालपर्यन्त आबाद और आजाद (समृद्धिशाली और स्वतंत्र बना रहे)

धर्म किसे कहते हैं ? और धार्मिक कौन है ?
धार्मिकता और सांप्रदायिकता

"धर्म चरतीति धार्मिकः"

अर्थात् अहिंसा, संयम और तपोधर्म का आचरण जो करता है वह धार्मिक है। ऐसे धर्म में आत्मा का आनंदरूपी सागर उमडत है, वहाँ दुःख

P. P. Ac. Gunratansuriji M.S. Jin Gun Aaradhak Trust

या चिंता का नाम भी कोई नहीं जानता है। भय या विषाद धार्मिक को स्पर्श भी नहीं कर सकते। प्रलोभनों से धार्मिक हजारों कोश दूर रहता है। विषम प्रसंगों में भी धार्मिक को आवेश नहीं आता है। ऐसा धर्म आत्मा के गुणों पर आधारित है। इसीलिए धार्मिक, सदाचार-सद्विचार और सत्य भाषण को ही महत्व देता है। जब संप्रदाय संघाडावाद गुणवृद्धि और चारित्र विकास के प्रति बेदरकार रहकर विधि विधानों को ही गधे की पूछ की तरह पकड़े रखता है। धर्म मनुष्य मात्र को नम्र बनाता है जब कि संप्रदाय मनुष्य को मिथ्याभिमानी तथा ऐंठू बनाता है।

धर्म मानव जाति में स्थित भेदभाव की दिवाल को तोड़ देता है। जबकि संप्रदाय भेदभाव को बढ़ाता है। धर्म मनुष्य को बंधनों से मुक्त करता है जबकि संप्रदाय बंधन में फंसाता है।

महावीर स्वामी और गौतम स्वामी वास्तव में सच्चे धार्मिक होने के कारण ही क्षत्रिय, वैश्य, ब्राम्हण, कुंभार, लोहार, घांची, नाई, भंगी, मेहतर और चंडाल तथा चंडकौशिक जैसे विषैले जीव को, सतियों को, असतियों को, कामियों को, क्रोधियों को, कसाइयों को, हिंसकों को शिकारियों को मांसाहारियों को भी (उद्धार) तार सके हैं। सबको संप्रदाय की श्रृंखला में नहीं किन्तु धर्म की श्रृंखला में जोड़कर एक झंड़े के नीचे लाये हैं। इसी कारण धार्मिकता अमृत है और सांप्रदायिकता विष है। अतः अरिहंत देव का उपकार विस्मरणीय नहीं है, सात सौ की संख्या में जीव मोक्ष गये हैं। वह अरिहंत के शासन के आभारी हैं। इतनी ही संख्या में सूक्ष्म निगोद में से बाहर निकले हुए जीव व्यवहार राशि में प्रवेश कर चुके हैं। संसार का कोई भी जीव उस उपकार को नहीं भूल सकता।

महावीर स्वामी के शासन में सात सौ जीव सिद्ध हुए। तथा अनेक जीव मोक्ष जाने के योग्य बन गये। जिस कारण से निकट भविष्य में वे जीव मोक्ष जाएंगे और सुलसा आदि नव भाग्यशालियों को आगामी चौबीसी में तीर्थंकर पद प्रदान किया है।

P. P. Ac. Gunratnasuriji M.S. Jin Gun Aaradhak Trust

देवों की भाषा और छद्मस्थ का ज्ञान

गौतम स्वामी के प्रश्न के उत्तर में भगवान कहते हैं कि देवों को नोसंयत कहना चाहिए। उनको संयत, असंयत, या संथतासंयत नहीं कहना चाहिए। किन्तु नोसंयत कहना चाहिये।

देव अर्धमागधी भाषा में बोलते हैं। उनकी वातचीत की भाषाओं में भी अर्धमागधी भाषा ही विशेष स्थान रखती है। ※ ६६

वे भावी तीर्थंकर असंख्य जीवों को मोक्ष देनेवाले बनेंगे। इस कारण से ही हमको याद रखना चाहिए कि अरिहंतों का उपकार अमूल्य होता है।

※ ६६. सर्व जीवों के परम हितकारी भगवान महावीर स्वामी की भाषा कितनी मात्रा में संयमी होती हैं। उसकी जानकारी लेनी चाहिए। गौतमस्वामी स्वामी द्वारा किये गये प्रश्न के उत्तर में भगवान इसप्रकार फरमाते हैं :–

१. देव संयत (महाव्रतधारी) नहीं होते हैं।
२. देव संयतासंयत (श्रावकव्रती) नहीं होते हैं।
३. देवों को असंयमी भी नहीं कहना चाहिए।
४. देवों 'को नोसंयत' कहना चाहिए।

वस्तुतः देव असंयमी ही होते हैं। फिर भी 'काणे को काणा' नहीं कहना चाहिए। इसप्रकार भगवान देवों को असंयमी न कहकर 'नो संयमी' फरमाते हैं। क्योंकि असंयमी शब्द जरा कठोर है। अतः ऐसे शब्द का प्रयोग न करके भगवान ने 'नो संयमी' शब्द से उनको संबोधित किये हैं।

P. P. Ac. Gunratansuriji M.S. Jin Gun Aaradhak Trust

केवली अंतर को या चरमशरीरवाले को जानते हैं और देखते हैं। उसप्रकार छद्मस्थ न तो जानते हैं और न देखते हैं। किन्तु सुनकर या प्रमाण से छद्मस्थ भी अंतकर को या चरम-शरीरवाले को जानते हैं और देखते हैं। अर्थात केवली के पास से, या केवली के श्रावक, श्राविका, उपासक या स्वयंबुद्ध के पास से

देव कौनसी भाषा बोलते हैं ?

भगवात ने फरमाया है कि देव अर्धमागधी भाषा बोलते हैं। कलि-काल सर्वज्ञ श्री. हेमचंद्राचार्य महाराजश्रीने संस्कृत के अतिरिक्त दूसरी भाषाओं का भी संकलन किया है।

(१) मागधी भाषा–वर्तमान में काशी में बहती गंगा नदी के सामने के किनारे के प्रदेश को मगध देश कहते हैं। इस प्रदेश में जो भाषा बोली जाती है उसे मागधी कहते हैं।

(२) पिशाची भाषा–पिशाच देशों में बोली जाती हुई भाषा पैशाचि की भाषा कही जाती है। पिशाच देश निम्नलिखित हैं :—

पांड्य, कैकय, वाल्हीक, सिंहल, नेपाल, कुन्तल, सुदेष्ण, गांधार, हैय, और कन्नोज।

(३) चुलिका भाषा.

(४) शौरसेनी भाषा–पूर्व समय में शूरसेन देश को राजधानी का नाम मथुरा था। वहां यह भाषा बोली जाती थी। वर्तमान में वहां बोली जाती हुई भाषा को 'व्रजभाषा' कहते हैं।

(५) अर्धमागधी भाषा में ज्यादा शब्द मागधी भाषा के होते हैं और

P. P. Ac. Gunratansuriji M.S. Jin Gun Aaradhak Trust

अथवा स्वयंबुद्ध के श्रावक, श्राविका, उपासक या उपासिका से सुनकर जानते हैं और देखते हैं। ※ ६७

शेष शब्द अन्य भाषा के होते हैं। उस मिश्रित भाषा को अर्धमागधी भाषा कहते हैं।

(६) अप्रभंश भाषा–प्राकृत भाषा से बिगडी हुई भाषा अपभ्रंश भाषा है। देवाधिदेव भगवान महावीर स्वामी ने अर्धमागधी भाषा में ही देशना दी है, अतः देवता भी यह भाषा बोलते हैं।

※ ६७. क्या यह व्यक्ति 'अंतकर' होगा ?" छद्मस्थ मनुष्य केवली भगवान् से यह बात मालूम कर सकते हैं। क्योंकि छद्मस्थ पुरुष चाहे जितना विद्वान हो, सूत्रकार हो, टीकाकार तथा भाष्यकार हो तो भी पूर्ण ज्ञानी नहीं होता है। जैसे उदाहरण स्वरूप हीरे पर जबतक थोड़ा बहुत मेल शेष रह जाता है तब तक उसमे चमक नहीं है। दूसरा एक और उदाहरण है कि जब तक सूर्य के ऊपर बहुत बादलों का आवरण शेष रह जाता है तब तक वहाँ प्रकाश पूरा नहीं फैलता है। उसी प्रकार ज्ञानावरणीय कर्म भले थोडा ही शेष रह गया हों फिरभी वह व्यक्ति पूर्ण ज्ञानी नहीं हो जाता है। इसीलिए वह छद्मस्थ ही होता है।

केवल ज्ञान की प्रप्ति होते ही आँखों पर बंधी हुई पट्टी के समान ज्ञानावरणीय कर्म संपूर्ण और समूल नष्ट हो जाता है। जिससे केवल ज्ञानी भगवान् संपूर्ण पदर्थो को प्रत्यक्ष कर सकते हैं। छद्मस्थ केवली से सुनकर जान लेता है कि यह व्यक्ति अंतिम शरीरवाला है।

P. P. Ac. Gunratansuriji M.S. Jin Gun Aaradhak Trust

'प्रमाण' चार प्रकार के हैं :- प्रत्यक्ष —, अनुमान, उपमान और आगम। (इस संबंध में अनुयोगद्वार सूत्र में विशेष कहा है। ※ ६८

※ ६८. पदार्थों का निश्चयार्थ करने के लिए प्रमाण ही सबल साधन है। "प्रकर्षेण संशयादि राहित्येन मीयते ज्ञायते मत यत् प्रमाणम्।" अर्थात् प्रमाण वह है कि जिससे संशयादि रहित पदार्थ मालूम हो जाय। सम्यग् ज्ञानं प्रमाणम्-यथार्थ ज्ञानं प्रमाणम्-तथा स्वपरव्यवसायि ज्ञानं प्रमाणम् यह और दूसरे भी प्रमाण का लक्षण करने वाले सूत्रों का अभिप्राय एक ही है कि मिथ्या ज्ञान-संशयज्ञान-विपरीत ज्ञान, इन्द्रिय सन्निकर्ष ज्ञान प्रमाण नहीं हो सकते। क्योंकि उन लक्षणों से लक्षित प्रमाण में पदार्थ के सत्य स्वरूप का निर्णय करने की किंचिन्मात्र भी शक्ति नहीं है। और लक्षण यदि अपने लक्ष्य को सिद्ध करने में असमर्थ हो तो लक्षण एकवार नहीं किन्तु सहस्रवार असत्य है।

जिस प्रमाण से सत्य और सम्यग् ज्ञान नहीं होता है वैसे प्रमाण अनुमान और वितंडावाद और तत्संबंधी शास्त्र हमारे जीवन को सत्यज्ञान का प्रकाश नहीं दे सकते।

(१) इसी कारण से आत्मा का भी साक्षात्कार नहीं कर सकते।

(२) आत्मा को पहचाने बिना परमात्मा की पहचान असंभव है।

(३) उसके बगैर हिंसा, असत्य, चोरी, कुकर्म और परिग्रह के पापों से मुक्त नहीं हुआ जाता।

(४) वैसा होता हुआ अर्थात् पापों में लिप्त हुआ जीव मोक्ष को प्राप्त नहीं कर सकता।

(५) तथा हजारों शास्त्र-वितंडावाद भी हमारा कल्याण नहीं कर -

P. P. Ac. Gunratnasuriji M.S. Jin Gun Aaradhak Trust

सकते हैं जो मोक्ष प्राप्ति योग्य पुरुषार्थ को देने में असमर्थ हैं।

इन सब बातों को ध्यान में रखकर जैनागम ही सम्यग्ज्ञान को प्रमाण मानता है, क्योंकि वह यथार्थज्ञान है। उसीप्रकार (वैसे ही) स्व तथा पर का निर्णय करने में पूर्ण समर्थ है।

स्व यानी अपना और पर यानी पर पदार्थों के साथ संसार भरके प्रत्येक पदार्थ का निर्णय करने के लिए सम्यग्ज्ञान की अत्यन्त आवश्यकता है।

पदार्थ में रहे हुए (स्थित) भिन्न भिन्न आकार–नाम–गुण आदि विशेष प्रकार जिससे जाने जाते हैं उसको ज्ञान कहते हैं। और वही प्रमाण है। जबकि वही पदार्थ नाम जाति गुण रहित केवल सामान्य प्रकार से जाना जाता है, वह दर्शन है। यद्यपि जैन सूत्र मान्य यह दर्शन है तो भी अप्रमाण है। लक्षण सूत्र अकेले ज्ञान को ही प्रमाण नहीं मानते हैं। किन्तु सम्यग् यथार्थ–अथवा स्वपर व्यवसायी विशेष से विशेषित ज्ञान को प्रमाण मानते हैं, यद्यपि संशय, विपरीत और अनध्यवसाय ज्ञान है, फिर भी यह ज्ञान पदार्थ का सत्य निर्णय करा नहीं सकता। प्रत्येक पदार्थ का स्वरूप नियत होता है। गुण और पर्याय नियत होते हैं। इसलिए गुण बिना का द्रव्य और द्रव्य बिना का पर्याय किसी भी काल में नहीं हो सकता।

तब संशयज्ञान से पदार्थ का निर्णय नहीं होता है। जैसे–अंधकार में रही हुई 'रस्सी' या तो यह रस्सी ही है अथवा सर्प ही है। फिर भी यह ज्ञान निर्णय नहीं देता है कि यह रस्सी है या सर्प है और हमेशा के लिए यह संशय बना रहता है। 'संशयात्मा विनश्यति' इस न्याय से संपूर्ण जीवन संशय में ही खत्म हो जाता है। संशयज्ञान में यह, शक्ति नहीं है कि जीवन में थोड़ा भी निर्णय करा सके, इसलिए वह प्रामाणिक नहीं है।

जब सम्यग्ज्ञान पदार्थ में रही हुई 'कोटी' को स्पष्ट रूप से स्पर्श करता है और इसीके अनुसार एक ही मनुष्य में अपने पुत्र को लेकर

P. P. Ac. Gunratansuriji M.S. Jin Gun Aaradhak Trust

'पितृत्व' धर्म रहा हुआ है, और पिता की अपेक्षा से 'पुत्रत्व' धर्म भी विद्यमान है, इसप्रकार एक ही पदार्थ अनेक धर्मों से (गुणों से) पर्यायों से युक्त होता है।

'घडा' मिट्टी द्रव्य का पर्याय है। और पर्याय रूप घड़े में मिट्टी यह द्रव्य है। कंठी सुवर्ण द्रव्य का पर्याय है। इस प्रकार प्रत्येक पदार्थ में द्रव्यात्मक और पर्यात्मक अवस्थाएं होते हुए भी संशयज्ञान, द्रव्य और पर्याय के मिश्रण रूप पदार्थ का निर्णय नहीं करा सकता हैं।

विपरीत ज्ञान भी प्रामाणिक नहीं है क्योंकि पदार्थ का जो स्वरूप है उससे दूसरे प्रकार का ज्ञान होना, वह विपरीत ज्ञान है।

जैसे आत्मा 'चैतन्यस्वरूप, परिणामी, कर्ता, साक्षाद् भोक्ता, स्वदेह परिमाण, प्रति शरीर भिन्न और पौदगलिक अदृष्टवान् है। फिरभी विपरीत ज्ञान के कारण नैयायिक आत्मा को जड़ स्वरूप मानते हैं। कूटस्थ नित्यवादी सांख्य आत्मा को अपरिणामी मानते हैं। कर्ता और भोक्ता नहीं मानते हैं। नैयायिक आत्मा को शरीरव्यापी नहीं मानते हैं। अद्वैतवादी व्यापक मानते हैं। नैयायिक अदृष्ट और पौद्लिक नहीं मानते।

जब पदार्थ निर्णय करने की क्षमता नहीं है। तब वह अनध्यवासाय कहलाता है जो अप्रमाण है।

पदार्थ के परिज्ञान में सबसे पहले 'अवग्रह ज्ञान' होता है। जिससे इतना निर्णय होता है कि सन्मुखस्थित पदार्थ ठूंठा 'शुष्क काष्ठ' नहीं है किन्तु मनुष्य है। तत्पश्चात 'ईहा' ज्ञान में सन्मुख स्थित मनुष्य राजस्थानी है ऐसा निर्णय होता है। किन्तु 'अवग्रह' और 'ईहा' के बीच में मतिज्ञानावरणीय कर्म के कम क्षयोपशम के कारण संशय होता है कि यह कौन होगा ? राजस्थानी होगा या गुजराती होगा ?

जिह्वा पर रहा हुआ रस 'नींबू' का होगा या मोसम्बी का होगा।

P. P. Ac. Gunratansuriji M.S. Jin Gun Aaradhak Trust

इत्यादिक संशय ज्ञान होने के कारण पदार्थ एक कोटि का भी निर्णय नहीं किया जा सकता है ।

जब विपरीत ज्ञान मिथ्यात्व मोह तथा पूर्वग्रह को लेकर होता है और अनध्यवसाय ज्ञान इन्द्रियों की पटुता को तथा लब्धिभावेन्द्रिय के क्षयोपक्षम के अभाव में होती है । इसलिए पदार्थ का ज्ञान नहीं करवाने के कारण संशयादि प्रमाण नहीं हो सकते इससे सम्यग्. यथार्थ और स्वपरव्यवसायी विशेषण सार्थक है ।

आत्मा के सब गुणों में सूर्य के समान स्वपर प्रकाशक गुण कोई है तो ज्ञान गुण ही है जो खुद को तो प्रकाशित करता ही है किन्तु संसार के सब द्रव्य और पर्यायों को भी प्रकाशित करता है । अतएव जैन दर्शनकारों ने सम्यग्ज्ञान को ही प्रमाण के तौर पर स्वीकार किया है । पौद्गलिक पदार्थ कोई भी ऐसा नहीं है जो स्वपर प्रकाशक हो । हमारे शरीर के साथ लगी हुई आँख में तेज का अभाव भी हो सकता है अथवा मोतीबिंदु और पीलिया आदि रोग लग जाने के कारण चक्षुज्ञान बराबर नहीं हो सकता । अतः चक्षु स्वतः जड़ होने के कारण किसी पदार्थ का ज्ञान कराने में समर्थ नहीं है ।

आत्मा के उपयोग से चक्षु के द्वारा प्राप्त ज्ञान भी अमुक कारणों को लेकर चक्षु जब नष्ट हो जाती है तब भी पहले का चक्षु ज्ञान आत्मा में स्मरण होता रहता है, जो अनुभव गम्य है । अतः ज्ञान में आत्मा का उपयोग ही मुख्य कारण है । किन्तु चक्षु आदि इन्द्रियाँ नहीं । यह निश्चित है कि पदार्थ के परिज्ञान में अनंत शक्ति का स्वामी और चैतन्य गुण विशिष्ट आत्मा खुद चक्षु की प्रेरक बन जाती है । तब ही चक्षु रूप को ग्रहण करने में, कान सुनने में, जिह्वा स्वाद लेने में, नाक सूंघने में और स्पर्शेन्द्रिय स्पर्श करने में समर्थ बनेती है ।

जैसे मकान में झरोखे (खिड़कियां) होते हैं, उनके द्वारा

P. P. Ac. Gunratansuriji M.S. Jin Gun Aaradhak Trust

सचेतन मनुष्य बाह्य दृश्यों को देख सकता है, उसी प्रकार शरीर एक मकान है, उसमें रही हुई पांच इन्द्रिय खिड़की के समान हैं, जो जड़ है। जड़ में जड़त्व धर्म ही होना स्वाभाविक है। किसी भी काल में और किसी समर्थ की सहायता से भी जड़ में चैतन्य धर्म नहीं आ सकता। उसी-प्रकार नाक, कान, जिह्वा और स्पर्शेन्द्रियाँ भी जड़ हैं। आत्मा के उपयोग के बिना विषय का ज्ञान प्राप्त करने में समर्थ नहीं है। उसीप्रकार मन भी जड़ होनेके कारण आत्मा से प्रेरणा मिलने पर ही प्रवृत्ति करता है। अतः इन्द्रियों के सन्निकर्ष से प्राप्त ज्ञान प्रमाण नहीं है। इसलिये विद्वत्परिषद् में सम्यग् ज्ञान ही प्रमाणभूत बनता है। क्योंकि ज्ञान की हाजरी में ही आत्मा को इन्द्रियाँ द्वारा प्राप्त ज्ञान ही यथार्थ ज्ञान है, और वैसा होते हुए अभिमत (इच्छित) पदार्थों को स्वीकार करने की शक्ति और अनभिमत पदार्थों की त्यागने की शक्ति भी आत्मा में प्राप्त होती है।

जबतक आत्मा में सम्यग् ज्ञान नहीं हो जाता तबतक ही वह त्यागने योग्य पदार्थों को तथा क्रियाओं को करता रहता है और स्वीकार करने योग्य पदार्थों से और क्रियाओं से दूर भागता है।

जब जड़ पदार्थ खुद का भी प्रकाशक नहीं बन सकता है तो पर-प्रकाशक किस प्रकार बनेगा ? और वैसा होने पर चक्षु संयोग से प्राप्त ज्ञान प्रमाण है ? या अप्रमाण ? इसका निर्णय करने में अनवस्था दोष से नहीं बच सकते। अतएव सन्निकर्ष प्रमाण नहीं हो सकता।

बौद्धों का निर्विकल्प ज्ञान भी इस प्रमाण से खंडित हो जाता है। क्योंकि नाम, जाति और गुण बिना का ज्ञान अव्यवहार रूप होने से किसी काल में भी व्यवहार करने योग्य नहीं। अतः नाम तथा जाति से प्रसिद्ध हुआ सविकल्प यथार्थ ज्ञान ही प्रमाण है।

ज्ञानाद्वैतवादियों का मन्तव्य है कि अखिल संसार में ज्ञान को छोड़ कर परपदार्थ की विद्यमानता नहीं है, जो है वह ज्ञान ही है। जो बाह्य

P. P. Ac. Gunratansuriji M.S. Jin Gun Aaradhak Trust

पदार्थ दृष्टिगोचर होते हैं वे ज्ञान के ही आकार विशेष हैं ।

उपरोक्त मान्यता में प्रत्यक्ष रूप दृष्टिगोचर होता हुआ, अनुभव कराता हुआ, स्पर्शीभूत होता हुआ, सुनाई देता हुआ और उनके द्वारा प्राप्त हुआ आनन्द–अनुभव अकिंचित्कर ही सिद्ध होगा । व्यवहार में प्रत्येक मनुष्य को इसप्रकार अनुभव होता है कि " मैं हूँ, मेरा शरीर है, मेरे आँख हैं, नाक है, कान है, भुख लगती है, भोजन करता हूँ, प्यास लगती है, पानी पीता हूँ, विषय वासना होती है, स्त्री–सहवास करता हूँ उससे आनंद अनुभव करता हूँ, स्त्री को गर्भ रहता है, फिर बड़ा होता है, बच्चा जन्मता है, समयपर उसका विवाह होता है, उसके भी संतान होती हैं " इस सब अनुभव को गलत कैसे किया जा सकता है ? इसलिए परपदार्थ शशश्रृंग की तरह असत् नहीं है । किन्तु सर्वथा विद्यमान है । इस कारण से सम्यग ज्ञान खुद के स्वरूप को प्रकाशित करता है । उसीप्रकार संसार के पदार्थ मात्र को भी यथार्थ रूप से प्रकाशित करता हैं ।

जो इसप्रकार मानता है उससे हमारा प्रश्न यह है कि 'चक्षुस्संयुक्तो घटः', इसके अनुसार चक्षु और घड़े का संबंध होने पर घड़े का ज्ञान कहाँ से आ गया ? समवाय संबंध से ? अर्थात् यह घड़ा है । इसका ज्ञान समवाय के कारण से होता है । किन्तु यह मान्यता प्रत्यक्ष से बाधित है । जैसे आंख खुली और घड़ा देखा, तब तुरंत ही घड़े का ज्ञान होता है । इसमें समवाय कहाँ से आया ? अतः यह सब दुस्तरा अनवस्था दोष की नदी सामने आती है । जैसे चक्षु संयोग से घड़ा दृष्टिगोचर हुआ, तब आप घड़े में 'घटत्व' को समवाय संबंध से सिद्ध करने की कोशिश करोगे तो फिर 'घटत्व' को सिद्ध किसप्रकार करोगे ? यह सिंहनी (शेरणी) के जैसी अवबस्था आपको किसी प्रकार विश्राम नहीं करने देगी । जब घड़े में स्वतः ऐसी शक्ति है कि खुद ही अपना 'घटत्व' रूप सामान्य का और 'लाल रंग' वगैरे विशेष का बोध कराता है । जो सबको अनुभव गम्य है । उसीप्रकार ज्ञान आत्मा का ही गुण बनकर अनादिकालीन है । सूर्य

P. P. Ac. Gunratansuriji M.S. Jin Gun Aaradhak Trust

को या दीपक को प्रकाशित कराने के लिए दूसरे और सूर्य की या दीपक की आवश्यकता नहीं है। उसीप्रकार यह ज्ञान भी सूर्य के जैसे स्वयं प्रकाशित है।

इस प्रमाण के ४ (चार) भेद हैं।

१ प्रत्यक्ष, २ अनुमान, ३ उपमान, ४ आगम,
इनमें से प्रत्यक्ष प्रमाण दो प्रकार के हैं।

१ सांव्यवहारिक प्रत्यक्ष, २ पारमार्थिक प्रत्यक्ष

पहले में इन्द्रियावरण कर्म के क्षयोपशम से स्पर्शेन्द्रिय स्पर्श को, रसनेन्द्रिय रस को, घ्राणेन्द्रिय गन्ध को, चक्षुरिन्द्रिय रूप को और श्रवणेन्द्रिय शब्द को ग्रहण करती है। उसके मतिज्ञान और श्रुतज्ञान रूप से दो भेद हैं। पारमार्थिक प्रत्यक्ष को आत्मा के साथ सीधा संबंध होने से अवधिज्ञानावरणीय कर्म के क्षयोपशम से अवधिज्ञान होता है। मनः पर्यवज्ञानावरणीय कर्म के क्षयोपशम से मनः पर्यव ज्ञान होता है और केवल ज्ञानावरणीय कर्म के क्षय से केवल ज्ञान होता है अवधिज्ञान देव और नारक को लेकर भव प्रत्ययिक है। जब तपश्चर्या और सम्यग्दर्शनादि को लेकर मनुष्य तथा तिर्यंच प्राणी को गुण प्रत्ययिक अवधिज्ञान होता है।

जो रूपवान द्रव्यों को ही ग्रहण कर सकता है। जिनको वर्ण-गंध-रस और स्पर्श होता है वे रूपी पदार्थ कहलाते हैं। संयम की विशुद्धि को लेकर इस कर्म के आवरण का क्षयोपशम प्राप्त होते ही मनोद्रव्य तथा उसके पर्यायों को ग्रहण करनेवाला मनः पर्यव ज्ञान होता है। इस ज्ञान में संयमशुद्धि मुख्य कारण है, और संपूर्ण कर्मों की क्षय करने की सामग्री विशेष से ज्ञानावरणीय कर्मों के क्षय होते हुए द्रव्य तथा उनके अनंत पर्यायों को साक्षात्कार करनेवाला केवल ज्ञान ही है।

इस ज्ञान की उत्पत्ति में मोह कर्म का संपूर्ण आवरण सर्वथा नष्ट

P. P. Ac. Gunratansuriji M.S. Jin Gun Aaradhak Trust

हो जाता है। तत्पश्चात् ज्ञानावरणीय, दर्शनावरणीय और अंतरायकर्म के आवरणों को विच्छेद करने पर केवल ज्ञान होता है।

जिनको केवल ज्ञान होता है, वे अर्हत्, सर्वज्ञ और वीतराग कहलाते हैं। ये अरिहंत भगवान ही सर्वथा निर्दोष होते हैं। उनका वचन प्रमाणा-बाधित होता है। इस केवल ज्ञान को कवलाहार के साथ विरोध नहीं है। क्योंकि जब हम खाते हैं तब ही हमारा ज्ञान स्फुरायमान रहता है तो फिर केवल ज्ञान को कवलाहार के साथ किसलिए विरोध हो?

इसप्रकार प्रत्यक्ष प्रमाण की बात करने के पश्चात् अब आगम प्रमाण के लिए भी विचार करते हैं। यथार्थ वक्ता यानी जो वस्तु जिस प्रकार की है उसको उसीप्रकार कहनेवाला व्यक्ति रागद्वेष से संपूर्ण मुक्त होता है।

राग-द्वेष-हिंसा और असत्य का पालन करनेवाले तथा अपनी धर्म-पत्नी के साथ रहनेवाले वानप्रस्थाश्रमी, जो स्नान आदि करते हैं तथा पुष्पों की माला पहन कर मस्त रहनेवाले योगी हैं, वे हिंसा में लिप्त होने से मोहकर्मी हैं। जहाँ मोहकर्म हैं वहाँ यथार्थ वक्तृत्व संभव नहीं है। अतः सत्ध्यानरूपी पवन से उत्तेजित हुई तपश्चर्या रूपी अग्नि में मोह कर्म जल जाने के पश्चात् केवल ज्ञान होता है। उनके मालिक अरिहंत देव ही यथार्थ वक्ता हो सकते हैं। अतः उनके वचन 'आगम' कहलाते हैं। जो प्रमाणभूत हैं। जिससे मनुष्य मात्र को तत्त्वज्ञान की प्राप्ति होती है। अतःएव उपचार से आप्त वचन ही आगम कहे जाते हैं। कथनीय वस्तु की यथार्थता को समझना और तदनुसार कहना, उसे ही आप्त कहते हैं और उनका वचन ही अविसंवादी होता है। क्योंकि उनके वचनों में कहीं पर भी रागद्वेष नहीं होता है। विसंवाद नहीं है, केवल जीव मात्र कर्म-बंधन से मुक्त हो जाय तथा मोक्ष अवस्था को प्राप्त करे, यही एक तथ्य है।

P. P. Ac. Gunratansuriji M.S. Jin Gun Aaradhak Trust

विसंवादि वचन, रागात्मक और द्वेषात्मक ही होते हैं। अतः प्रामाणिक नहीं हो सकते। अयथार्थ वचन स्वप्रकाशक नहीं होते हैं तो पर प्रकाशक किस तरीके से हो सकते हैं ? ऐसी अवस्था में मनुष्य मात्र जो अनादिकालीन कर्म वासनाओं से लिप्त है उसकी हिंसा, असत्य, चोरी, मैथुन और परिग्रह तथा मांस भोजन, सुरापान, परस्त्रीगमन, वेशागमन आदि पापजनक कर्मों से कौन रक्षा कर सकता है ? अतः अविसंवादी वचन बोलनेवाला ही आप्त कहलाता है। आप्त दो प्रकार के होते हैं, १ लौकिक तथा २ लोकोत्तर। लौकिक आप्त में पिता, माता, गुरु आदि का समावेश होता है। जबकि लोकोत्तर आप्त में तीर्थंकर परमात्माओं का समावेश होता है आप्त मात्र शरीरधारी ही होते हैं, जहाँ शरीर हैं वहाँ मुख, नाक, ओठ (होठ), दांत और कंठ की विद्यमानता है। उसीसे शब्द, पद तथा वाक्यों की सुंदर रचना से उपदेश दिया जा सकता है। शरीर के बगैर मनुष्य किसप्रकार से उपदेश दे सकता है ? क्योंकि उसके मुख, दांत आदि नहीं होनेसे वैसी अवस्था में शब्दोच्चारण भी किस प्रकार होगा ! उसके बगैर उपदेश भी किस बात का ! इसलिए अपौरुषेय वचन संभव नहीं हो सकता !

शब्दों की उत्पत्ति पौरुषेय ही होती है। किसी समय में भी नगारे से, अथवा वीणा या डमरु में से स्पष्ट भाषा निकलना संभव नहीं है, इस कारण से शब्द पौरुषेय और पौद्‌गलिक हैं।

देवनिकाय के देव भी राग द्वेषवाले होने के कारण उनकी भाषा भी प्रामाणिक नहीं होती है। क्योंकि देवताओं के ज्ञान की भी अवधि होती है। यानी अधुरापन होता है, अतः ऐसा अधुरा ज्ञानी ब्रह्माण्ड के सब पदार्थों को प्रत्यक्ष नहीं कर सकता। इस कारण अरिहंत देवों के श्रीमुख द्वारा प्रकाशित वचन ही सम्यग्ज्ञान है। आगम के तीन प्रकार हैं।

१ आत्मागम, २ अनंतरागम,, ३ परंपरागम,

P. P. Ac. Gunratansuriji M.S. Jin Gun Aaradhak Trust

अर्थ की अपेक्षासे तीर्थंकरों को आत्मागम होता है। गणधरों को अनन्तरागम होता है।

गणधर के शिष्यों को परंपरागम होता है।

सूत्र की अपेक्षा गणधरों को आत्मागम होता है।

गणधर के शिष्यों को अनंतरागम होता है और उनके शिष्यों को परंपरागमन होता है।

अब अनुमान और उपमान प्रमाण भी अनुयोगद्वारसूत्रसे जान लेना।

॥ चौथा उद्देशा समाप्त ॥

P. P. Ac. Gunratansuriji M.S. Jin Gun Aaradhak Trust

वैमानिकों का ज्ञान

केवली अन्तिम कर्म को या अन्तिम निर्जरा को जानते हैं और देखते हैं। केवली प्रकृष्ट मन को या प्रकृष्ट वचन को धारण करते हैं। केवली के इस प्रकृष्ट मन को या प्रकृष्ट वचन को वैमानिकों में से कितने ही जानते हैं और देखते हैं।

और कितने ही नहीं जानते और देखते हैं जो मायि मिथ्यादृष्टि से उत्पन्न हुए है। वे नहीं जानते हैं, और नहीं देखते हैं और जो अमायी सम्यकृदृष्टि से उत्पन्न हुए हैं, वे जानते हैं और देखते हैं

अब अमायी सम्यग्दृष्टि में भी जो परंपरोपन्नक हैं, वे ही जानते हैं और देखते हैं। जो अनन्तरोपन्नक है वे नहीं जानते और देखेत। परंपरोपन्नक में भी जो पर्याप्ता हैं, वे जानते हैं और देखते हैं। अपर्याप्ता नहीं जानते और देखते हैं। उनमें जो उपयोग वाले - सावधानता वाले हैं, वे जानते हैं और देखते हैं। इसीलिए कितने ही जानते हैं और देखते हैं और कितने ही नहीं जानते और नहीं देखते। यही कहन में आया है। अनुत्तर विमान के देवों का ज्ञान

अनुत्तर विमान के देवों का ज्ञान—

अब अनुत्तर विमान में उत्पन्न हुए देव वहीं रहकर, यहाँ

रहे हुए केवली के साथ आलाप - संलाप करने के लिए समर्थ हैं। क्योंकि यहाँ के निवासी केवली वहाँ के निवासी अनुत्तर विमान के देव जो अर्थ और हेतु आदि प्रश्न पूछते है उनका उत्तर देते हैं। और यहाँ से दिये गये उत्तर को वहाँ के निवासी देव जानते हैं और देखते हैं। क्योंकि अनुत्तर विमान के देव उपशांत मोहवाले हैं। उदीर्ण मोहवाले या क्षीण मोहवाले नहीं।

केवली इन्द्रियों द्वारा न जानते हैं और न देखते हैं। क्योंकि केवली मित भी जानते हैं और अमित भी जानते हैं। क्योंकि वे दर्शन आवरण रहित है।

केवली को वीर्य प्रधान योग वायु जीवद्रव्य होने से उनके हाथ पैर आदि अंग चल होते हैं। और उससे चालु समय में जिस आकाश प्रदेशों में हाथ का अवगाह रहते हैं।

यही आकाश प्रदेशों में भविष्यत् क्षय के समय में हाथ पैर आदि अवगाही नहीं रहते हैं।

चौदह पूर्व को जाननेवाले श्रुत केवली एक घड़े में से हजार डों को, एक पट में से हजार पट को, एक चटाई में से हजार टाईयों को, एक रथ में से हजार रथ को, एक छत्र में से हजार छत्र को और एक दंड में से हजार दंड को करके बताने में समर्थ हैं। क्योंकि चौदहपूर्वी उत्करिका भेद से विद्यमान अनंतद्रव्य ग्रहण योग्य किये हैं ※ ६९

※ ६९ केवली भगवान चरम कर्म और चरम निर्जरा को जानते हैं।

P. P. Ac. Gunratansuriji M.S. Jin Gun Aaradhak Trust

शैलेशी के अन्त समय में जो अनुभव होते हैं वे चरम कर्म हैं और उसके लगभग समय में कर्म आत्मा से पृथक् हो जाते हैं, उनको चरम निर्जरा कहते हैं।

अनुत्तर विमानवासी देव उपशान्त मोहवाले होते हैं।

जिनको वेद मोहनीय कर्म उत्कट होता है वे उदीर्ण मोहवाले कहलाते हैं। जिनको मोहकर्म क्षीण हो गया हो वे क्षीण मोहवाले कहे जाते हैं और जिनको मैथुन की सद्भावना बिल्कुल नहीं है, वे उपशान्तमोहवाले कहलाते हैं, ये देव उपशान्त मोहवाले होते हैं किन्तु उनको उपशम-श्रेणी नहीं होती, अतः सर्वथा मोहकर्म की उपशांतता नहीं है।

क्षयकश्रेणीवाले ही क्षीण मोहवाले होते हैं देव वैसे नहीं होते हैं।

केवली भगवान की इन्द्रियां और मन यद्यपि सत्ता में हैं तो भी केवलज्ञान के सद्भाव में अकिंचित्कर जैसी होती हैं, अतः केवल ज्ञानी अपने ज्ञान से सब जानते हैं। भेद पांच प्रकार के होते हैं :—

१. खंडभेद, २ प्रतर भेद, ३ चूर्णिका भेद, ४ अनुतटिका भेद, ५ उत्करिका भेद।

१. खंड भेद यानी, लोह खंड, तांवा, सीसा, चांदी और सुवर्ण के टुकड़ों के खंड खंड भेद से खंडभेद हैं।

२. प्रतर भेद :—बांस, नल, केले का धड़ तथा मेघों का प्रतरे प्रतरे भेद हैं, वे प्रतर भेद कहे जाते हैं।

३. चूर्णिका भेद —यानी तेल, मूंग, उडद, मिर्च, श्रृंगबेर के चूर्णों के भेद, उनको चूर्णिका भेद कहते हैं।

४. अनुतटिका भेद :—(कूप) कुआ, बावड़ी, तालाब, पहाड़ी, नदी की पंक्ति में जो भेद होता है, वह अनुतटिका भेद कहा जाता है।

५. उत्करिका भेद :—अनाज के शिंगों का भेद, वह उत्कटि का भेद है।

P. P. Ac. Gunratansuriji M.S. Jin Gun Aaradhak Trust

कर्म, वेदना और कुलकर

इस उद्देशक में कर्म और वेदना तथा कुलकरों की संख्या का विषय है। सारांश यह है कि :—

कई लोग ऐसा कहते हैं कि–सर्व प्राण, भूत, जीव, सत्व–इन्होंने जैसा कर्म बंधन किया है, उसीके अनुसार वेदना का अनुभव करते ह। भगवान महावीर स्वामी इस कथन को सही नहीं मानते हैं। वे कहते हैं कि कई, प्राण, भूत, जीव और सत्व एवंभूत अपने कर्मों के अनुसार वेदना का अनुभव करते हैं और कई प्राण, भूत, जीव, सत्व अनेवंभूत जैसे कर्मबन्धन है, उससे पृथक् वेदना का अनुभव करते हैं।

इसीप्रकार नैरयिक भी एवंभूत और अनेवंभूत वेदना का अनुभव करते हैं ※ ७०

※ ७० चौदहपूर्वी ज्ञानियों की 'महानुभावता' श्रेष्ठतम ही है। फिर भी वे 'अकेले संयम से मोक्ष को प्राप्त नहीं कर सकते हैं। अतः जो केवल ज्ञान को प्राप्त करेंगे वे मोक्ष में जाएंगे।

एवंभूत आयुष्य कर्म जिसप्रकार से बांधा है, उसीके अनुसार भोगा जाता है, वे एवंभूत आयुष्य कहे जाते हैं, और चिरकालपर्यन्त अनुभव करने योग्य बांधा हुआ आयुष्य थोडे समय में भोगा जाता है, वह अनेवंभूत आयुष्य कहलाता है। उसे अपमृत्यु के समय में जानना, क्योंकि कर्मों की स्थितिघात और रसघात शास्त्र को मान्य है।

महायुद्ध में एक साथ हजारों आदमी मरते हैं, अन्यथा सब जीव एक साथ कैसे मर सकते हैं?

P. P. Ac. Gunratansuriji M.S. Jin Gun Aaradhak Trust

जंबूद्वीप के इस भारतवर्ष में अवसर्पिणी काल में सात कुलकर हुए हैं।

समयवायांग सूत्र में इन कुलकर संबंधी और तीर्थंकरों की माताएं आदि संबंधी वर्णन है।

कुलकर के नाम ये हैं :- १ विमलवाहन, २ चक्षुमान, ३ यशोमान, ४ अभिचंद्र, ५ प्रसेनजित्, ६ मरुदेव, ७ नाभि ※ ७१

※ ७१ सात कुलकरों की स्त्रियों के नाम अनुक्रम से इसके अनुसार है :--

चंद्रयशा, चन्द्रकान्ता, सुरूपा, प्रतिरूपा, चक्षुकांता, श्रीकांता और मरुदेवी।

जम्बूद्वीप के भारत में इस अवसर्पिणी में २४ तीर्थंकर हुए, उनके नाम :-ऋषभ, अजित, संभवनाथ, अभिनन्दन, सुमति, पद्मप्रभ, सुपार्श्व, चन्द्रप्रभ, सुविधिनाथ (पुष्पदंत), शीतल, श्रेयांस, वासुपूज्य, विमल; अनंत, धर्मनाथ, शांतिनाथ, कुन्थुनाथ, अरनाथ, मल्लि, मुनिसुव्रत, नमिनाथ, नेमिनाथ, पार्श्वनाथ और वर्धमान (महावीर स्वामी).

तीर्थंकरों की माताओं के नाम :-मरुदेवी, विजया, सेना, सिद्धार्था, मंगला, सुसीमा, पृथ्वी, लक्ष्मणा, रामा, नंदा, विष्णु, जया, श्यामा, सुयशा सुव्रता, अचिरा, श्री, देवी, प्रभावती, पद्मा, वप्रा, शिवा, वामा, त्रिशलादेवी.

उनके पिताओं के नाम :-नाभिराज, जितशत्रु, जितारी, संवर, मेघ, घर, प्रतिष्ठा, महसेन, सुग्रीव, दृढरथ, विष्णु, वसुपूज्य, कृतवर्मा, सिंहसेन,

P. P. Ac. Gunratansuriji M.S. Jin Gun Aaradhak Trust

भानु, विश्वसेन, सूर, सुदर्शन, कुंभ, सुमित्र, विजय, समुद्रविजय, अश्वसेन, सिद्धार्थराजा ।

इनकी प्रथम शिष्याएं:—ब्राह्मी, फल्गु, श्यामा, अजीता, काश्ययी, रति, सोमा, सुमना, वारुणी, सुलसा, धारणी, धरणी, धरणिधरा, प्रथमशिवा, शुची, ऋजुडा, रक्षी, बंधुवती पुष्पवती, अमिला, अधिका, यक्षिणी, पुष्पचूला और चन्दन बाला.

इसके प्रथम शिष्य-ऋषभसेन, सिंहसेन, चारु वज्रनाभ, चमर, सुव्रत, विदर्भ, दत्त, वराह, आनन्द गोस्तुभ, सुधर्म, मंदर, यश, अरिष्ठ, चक्राभ स्वयंभू, कुंभ, इन्द्र, कुंभ, शुभ, वरदत्त, दत्त, इन्द्रभूति (गोतमस्वामी).

पेड़ का नाम जिसके नीचे बैठने पर केवल ज्ञान :—हुआ है उसको चैत्यवृक्ष कहते हैं, वड, सादड, शाल, प्रियंक प्रियंगु, छत्रोघ, शिरीष, नागवृक्ष, माली, पीपल, तिंदुग, पाटल, जंबुडो, अश्वत्थ, दधिपर्ण, नंदीवृक्ष, तिलक, आम्र, अशोक, चंपक, बकुल, वेतस, घातकी, और शालवृक्ष ।

जम्बूद्वीप में भारत क्षेत्र में आगामी चौबीसी के नाम :—महापद्म, शुरदेव, सुपार्श्व, स्वयंप्रभ, सर्वानुभूति, देवश्रुत, उदय, पेढाल, पोट्टिल, शतकीर्ति, मुनिसुव्रत, सर्वभाववित्, अमम, निष्कषाय, निष्पुलाक, निर्मम, चित्रगुप्त, समाधि, संवर, अनिवृति, विजय, विमल, देवोपपात, अनंतविजय ।

गत चौबीसी के पूर्व भवीय नाम श्रेणिक, सुपार्श्व, उदय, पोट्टिल अनगार, दृढायु, कार्तिक, शंख, नंद, सुनंद, शतक, देवकी, सत्यकी, वासुदेव बलदेव, रोहिणी, सुलसा, रेवती, शताली, भयाली, द्वैपायन, नारद, अखंड, दारुमड, बुद्ध और स्वाति ।

जम्बू द्वीप में हुए बारह चक्रवर्तियों के नाम :—भरत, सगर, मघवा, सनत्कुमार, शान्ति, कुन्थु, अर, सुभूम, महापद्म, हरिषेण, जयनरपति, ब्रह्मदत्त ।

P. P. Ac. Gunratansuriji M.S.   Jin Gun Aaradhak Trust

उनकी माताओं के नाम सुमंगला, यशोमति, भद्रा, सहदेवी, अचिरा, श्रीदेवी, तारा, ज्वाला, मेरा, वप्रा,, चुल्लणी।

उनकी बारह स्त्री रत्नों के नाम–सुभद्रा, भद्रा, सुनंदा, जया, विजया, कृष्णाश्री, शूरश्री, पद्मश्री, वसुधरा, देवी, लक्ष्मीवती, कुरुमती।

बलदेवों के नाम–अचल, विजय, भद्र, सुप्रभ, सुदर्शन, आनंद, नंदन, पद्म (रामचंद्रजी) तथा राम।

वसुदेवों के नाम–त्रिपृष्ठ, द्विपृष्ठ, स्वयंभू, पुरुषोत्तम, पुरुषसिंह, पुरुषपुंडरिक, दत्त, नारायण (लक्ष्मण) और कृष्ण।

वासुदेवों की माताएं—मृगावती, उमा, पृथ्वी, सीता, अम्मया, लक्ष्मीवती, शेषवती केकयी और देवकी।

वासुदेव के पिता–प्रजापति, ब्रह्म, सोम, रुद्र, शिव, महाशिव, अग्निशिख दशरथ, वसुदेव।

प्रतिवासुदेवों के नाम–अश्वग्रीव, तारक, मेरक, मधुकैटभ, निशुंभ बलि, प्रभराज, रावण और जरासंध।

इस चौबीसी में प्रथम ऋषभदेव को दीक्षा ग्रहण करने के पश्चात् एक वर्ष में भिक्षा मिली थी। अन्य सर्व तीर्थङ्कर देवों को दीक्षा के दूसरे दिन ही भिक्षा मिलीथी।

महावीर स्वामी ने दीक्षा ली तब अकेले ही थे। जब पार्श्वनाथ और मल्लिनाथ तीन सौ पुरुषों के साथ, वासुपूज्य भगवान छः सौ पूरुषों के साथ, ऋषभदेव भगवानने चार हजार पुरुषों के साथ और शेष सब तीर्थंकर परत्माओं ने एक एक हजार पुरुषों के साथ दीक्षा ली है।

P. P. Ac. Gunratansuriji M.S. Jin Gun Aaradhak Trust

(कौन से) चक्रवर्ती कब हुए ?

१ भरत चक्रवर्ती	:	ऋषभदेव के समय में हुए और मोक्ष गये ।
२ सगर	:	अजितनाथ के समय में हुए और मोक्ष गये ।
३ मघवा	:	धर्मनाथ भगवान के निवार्ण के बाद हुए और तीसरे स्वर्ग में गये ।
४ सनत्कुमार	:	शान्तिनाथ भगवान के पहले हुए हैं और तीसरे स्वर्ग में गये हैं ।
५ शांतिनाथ ६ कुन्थुनाथ ७ अरनाथ	:	ये तीनों तीर्थंकर इसी भव में प्रथम चक्रवर्ती और बाद में तीर्थंकर हुए हैं ।
८ सुभूम	:	१८ और १९ वें भगवान के बीच में हुए और नरक गये हैं ।
९ महापद्म	:	मुनि सुव्रत स्वामी के शासन में हुए और मोक्ष गये हैं ।
१० हरिषेण	:	नमिनाथ के शासन में हुए और मोक्ष गये हैं ।
११ जयनामा	:	२१ और २२ वे भगवान के बीच में हुए और मोक्ष गये हैं ।
१२ ब्रह्मदत्त	:	२२ और २३ वें भगवान के बीच में हुए और नरक गये हैं ।

अब वासुदेव, प्रतिवासुदेव कब हुए हैं ?

१ त्रिपृष्ठ वासुदेव	:	श्रेयांसनाथ भगवान के समय में हुए और नरक में गये हैं ।
२ द्विपृष्ठ वासुदेव	:	वासुपूज्य स्वामी के शासन में हुए और नरक गये ।
३ स्वयंभू	:	विमलनाथ प्रभु के समय में हुए और नरक गये

P. P. Ac. Gunratansuriji M.S. Jin Gun Aaradhak Trust

४ पुरुषोत्तम	:	अनंतनाथ प्रभु के समय में हुए और नरक गये ।
५ पुरुषसिंह	:	धर्मनाथ प्रभु के समय में हुए और नरक गये ।
६ पुरुषपुंडरिक	:	१८ वें और १९ वें भगवान के बीच हुए और नरक गये ।
७ दत्त	:	१८ और १९ वें भगवान के बीच में हुए और नरक गये हैं ।
८ लक्ष्मण	:	२० और २१ भगवान के बीच में हुए और नरक में गये ।
९ कृष्ण	:	नेमिनाथ भगवान् के शासन में हुए हैं और नरक में गये ।

नव प्रतिवासुदेव वासुदेव के समकालीन होते हैं तथा पूर्व भव में परस्पर कट्टर दुश्मन होते हैं और वे भी मरकर नरक में जाते हैं ।

नव बलदेव वासुदेव के भाई होने से उनका समय भी यही है ।

इसके अनुसार त्रिषष्टिशलाका पुरुषों के पिता ५१, माता ६१ और जीव संख्या ५९ की होती है । वह इसप्रकार है :-

वासुदेव और बलदेव के पिता एक होने से तथा शांतिनाथ-कुन्थुनाथ और अरनाथ ये तीन चक्रवर्ती और तीर्थङ्कर होनेसे ९+३ = १२ इसप्रकार ६३-१२=५१ पिता रहे।

शान्तिनाथ, कुन्थुनाथ और अरनाथ भगवान चक्रवर्ती और तीर्थकर होनेसे तीन और महावीर स्वामी की देवानन्दा तथा त्रिशला माता दो होने से ६३-३ = ६०+१ = ६१ माताएं हो गई ।

इसप्रकार शांतिनाथ कुन्थुनाथ और अरनाथ ३ चक्रवर्ती, तीर्थङ्कर होनेसे ३ और त्रिपृष्ठ वासुदेव का तथा महावीर स्वामी का जीव एक होने से

P. P. Ac. Gunratansuriji M.S. Jin Gun Aaradhak Trust

इसप्रकार चार जीव हुए । इसप्रकार ६३–४ = ५९ जीव हुए ।

तीर्थंकरों के यक्ष, (शासन देव) अनुक्रम से गोमुख, महायक्ष, त्रिमुख, यक्षेश, तुंबुरु, कुसुमयक्ष, मातंग, विजय, अजित, ब्रह्मयक्ष, मनुजेश्वर, कुमार यक्ष, षणमुखयक्ष, पाताल यक्ष, किन्नरयक्ष, गरुड, गंधर्व, यक्षेन्द्र, कुबेर वरुण, भृकुटि, गोमेध, पार्श्वयक्ष और मातंगयक्ष है ।

उनकी यक्षिणियें (शासन देवियें) अनुक्रम से :— चक्रेश्वरी, अजिता, दुरितारि, कालिका, महाकालि, अच्युता, शान्ता, ज्वाला, सुतारका, अशोका, श्रीवत्सा, चंडा (प्रवर), विजया, अंकुशा, प्रज्ञप्ति निर्वाणी, अच्युता, धरणी, वैरुट्या, दत्ता, गांधारी, अंबिका, पद्मावती' सिद्धायिका ।

अब चौवीस तीर्थंकरयों की राशि, तारा, नक्षत्र, नाड़ी, लांछन, गण योनि और वर्ग के संबंध में विचार करते हैं ।

ये नीचे के कोष्ठक में वर्णित है ।

तीर्थंकर	राशि	तारा	नाडी	नक्षत्र	लांछन	गण	योनि	वर्ग
१. ऋषभदेव	घन	३	३	उ. षाढा	वृषभ	मनुष्य	नकुल	गरुड
२. अजितनाथ	वृषभ	४	३	रोहिणी	हाथी	,,	सर्प	,,
३. संभव	मिथुन	५	२	मृगशीर्ष	घोडा	देव	,,	घेटा
४. अभिनंदन	मिथुन	७	१	पुनर्वसु	वानर	,,	बिल्ली	गरुड़
५. सुमति	सिंह	१	३	मघा	क्रौंच	राक्षस	चूहा	घेटा
६. पद्मप्रभु	कन्या	५	२	चित्रा	कमल	,,	व्याघ्र	चूहा
७. सुपार्श्व	तुला	७	३	विशाखा	स्वस्तिक	,,	,,	घेटा
८. चंद्रप्रभ	वश्चिक	८	२	अनराधा	चन्द्र	देव	हिरण	सिंह

P. P. Ac. Gunratansuriji M.S. Jin Gun Aaradhak Trust

९. सुविधि	धन	१	१	मूल	भत्स्य	राक्षस	श्वान	घंटा
१०. शीतल	,,	२	२	पू. षाठा	श्वत्स	मनुष्य	वानर	,,
११. श्रेयांस	मकर	४	३	श्रवण	गेंडा	देव	वानर	,,
१२. वासुपूज्य	कुंभ	६	१	शततारा	पाडा	राक्षस	अश्व	हिरण
१३. विमल	मीन	८	२	उ.भाद्रपदा	वराह	मनुष्य	गाय	,,
१४. अनंत	,,	९	३	रेवती	वाज	देव	हाथी	गरुड़
१५. धर्मनाथ	कर्क	८	२	पुष्प	वज	,,	वकरा	सर्प
१६. शांतिनाथ	मेष	२	२	भरणी	हिरण	मनुष्य	हाथी	घंटा
१७. कुंथुनाथ	वृषभ	३	३	कृतिका	वकरा	राक्षस	वकरा	बिल्ला
१८. अरनाथ	मीन	९	३	रेवती	नंधावर्त	देव	हाथी	गरुढ़
१९. मल्लिनाथ	मेष	१	१	अश्विनी	कलश	,,	घोड़ा	चूहा
२०. मुनिसुव्रत	मकर	४	३	श्रवण	काचवा	,,	वंदर	,,
२१. नमिनाथ	मेष	१	१	अश्विनो	कमल	,,	घोड़ा	सांप
२२. नेमिनाथ	कन्या	५	२	चित्रा	शंख	राक्षस	व्याध्र	,,
२३. पार्श्वनाथ	तुला	७	३	विशाखा	सर्प	,,	,,	चूहा
२४. महावीर	कन्या	३	१	ऊफाल्गुनी	सिंह	मनुष्य	गाय	,,

जैन शासनकी महतत्ता इसलिए ही प्रशंसनीय है कि उसने मानवीय प्रश्नों का निर्णय मानवीय दृष्टि से ही किया है। तीर्थंकरों की अनुपस्थिती में स्थापना निपेक्ष से स्थापित तीर्थंकर भगवंतों की पाषाण, धातु, चन्दन, हीरा, सुवर्ण, आदि की मूर्तियाँ भी तीर्थंकर भगवंतो का दर्शन वन्दन जितना ही आनंद देती है। इसलिए जैन शासन का प्रत्येक सदस्य तीर्थंकरों की तस्वीर मूर्ति वगैरह खुदके यहाँ या मंदिर में रखकर उसके दर्शन, स्पर्शन और वन्दना से स्वजाति को धन्य वनाता है।

अपूर्व तथा सात्विक भक्ति रसके माध्यम से आत्माको आनन्द देनेवाले वीतराग परमात्मा की मूर्तिकी स्थापना में भी जैनचार्यों ने सामाजिक

P. P. Ac. Gunratansuriji M.S. Jin Gun Aaradhak Trust

दृष्टिका ही उपयोग किया है, अतः मूर्ति, व्यक्ति–कुटुंब–गाँव–समाज और देश के लिए भी हितकारी बने उस आशय से मूर्ति बनवानेवाला गृहस्थ, संघ और गाँव की राशि, नाड़ी, वर्ग, योनि, गण आदि के साथ वें भगवंत अनु-कूल है या नहीं ? उसे देखने के लिए जरूरी आग्रह रखा है। उसको संक्षेप में परन्तु बहुत महत्त्व की वातें जान लेनी चाहिए। मनुष्य मात्र का यह स्वभाव है कि जब दूसरे के साथ संबंध जोड़ता है तब उसके साथ की लेन-देन का ख्याल अवश्य रखता है, चाहे वह वीतराग की मूर्ति हो, मुनीम हो, पत्नी हो, मित्र हो, या व्यापार हो सबके साथ अपना भाग्य किस तरह और कितनी मात्रा में मेल खायेगा ? इसीलिए ज्योतिष का सहारा लेना पड़ता हैं। अब वे सभी वातें जैन ज्योतिष के अनुसार हम विचार लिखते है।

(१) योनि :–अलग–अलग नक्षत्रों की अलग–अलग योनि होती हैं। उसमें परस्पर वैर वाली योनि नहीं होनी चाहिए जैसेकि एक का नक्षत्र हाथी योनि का हो और दूसरे का सिंह योनि का हो तो परस्पर विरोध योनि होनेसे वे नक्षत्रों के मालिकों को भी आपस में वैर–विरोध न रहें ऐसा नहीं हो सकता।

हाथी–सिंह, घोड़ा–पाड़ा, बंदर–घेटा, कुत्ता–हिरण, साँप–नेवला, गाय–वाघ, बिल्ली–चूहा, परस्पर जाति वैर वाले होनेसे आपस में जैसे मिलाप नहीं होता वैसे वे नक्षत्रोंवाले जीव को भी परस्पर मेल नहीं होता। मूर्ति भरानेवाले गृहस्थ का नक्षत्र चूहा योनिका और वीतराग भगवान का नक्षत्र बिल्ली योनि का हो तो समझ लेना कि मूर्ति भरानेवाले भाग्यशाली को मूर्ति से कुछ भी लेनदेन नहीं रहनेवाली है।

नक्षत्रों की योनी

भरणी और रेवति नक्षत्र की योनि हाथी है।
घनिष्ठा पूर्वाभाद्रपद की योनि सिंह है।

P. P. Ac. Gunratansuriji M.S. Jin Gun Aaradhak Trust

अश्विनी शतभिषाकी योनि घोड़ा है ।
हस्त और स्वाति की योनि पाड़ा है ।
पूर्वाषाढा श्रवण की योनि बंदर है ।
कृतिका और पुष्पकी योनि घेटा है ।
आद्रा मूलकी योनि कुत्ता है ।
अनुराधा ज्येष्ठ की योनि हिरण है ।
रोहिणी मृगशिर की योनि साँप है ।
उत्तराषाढा अभिजित की योनि नेवला है ।
उ. फाल्गुनी, उ. भाद्रपदा की योनि बैल है ।
चित्रा विशाखा की योनि बाघ है ।
पुनर्वसु, आश्लेषा की योनि बिल्ली है ।
मघा पू. फाल्गुनी की योनि चूहा है ।

(२) गण, नक्षत्र तीन गण में समापित है, देवगण, अश्विनी, पुनर्वसु, पुष्य, हस्त, स्वाति मृगशिर, अनुराधा, श्रवण, रेवती ।

मनुष्यगण तीन पूर्वा, तीन उत्तरा, रोहिणी, भरणी, आर्द्रा ।

राक्षस गण कृतिका, विशाखा, चित्रा, धनिष्ठा, शतभिषा, ज्येष्ठा, मूल, अश्लेषा, और मघा नक्षत्र ।

दोनों व्यक्ति यानी मूर्ति भरानेवाला और भगवान् यदि एक ही गण के हो तो श्रेष्ठ है ।

एक का देवगण और दूसरे का मनुष्यगण हो तो साधारण अच्छा है । परन्तु एक का देवगण और दूसरे का राक्षसगण हो तो क्लेशकारी होता है । एक का मानवगण और दूसरे का राक्षसगण हो तो मृत्युकारी होता है ।

P. P. Ac. Gunratansuriji M.S. Jin Gun Aaradhak Trust

जैसे कि नेमिनाथ भगवान का राक्षसगण है और मूर्ति भराने वाले देव-गण अथवा मनुष्यगण के हो तो वह मूर्ति उस भाग्यशाली को हानिकारक सिद्ध होगी।

(३) राशि :—परस्पर राशि का मेल भी होना चाहिए। दोनों की राशि में मित्रता हो तो राशि मेलापक सुन्दर रहेगा अन्यथा हानि। अशुभ दूसरा बारहवां, नवपंचक, षडाष्टक, अच्छे के लिए नहीं है।

शत्रुषडाष्टक इसके अनुसार है :—

वृष–धन, कर्क–कुंभ, कन्या–मेष, वृश्चिक–मिथुन, मकर–सिंह, मीन–तुला.

अशुभ दूसरा बारहवाँ। वृश्चिक--तुला, मकर--धन, मीन--कुंभ, वृष–मेष जब कर्क--मिथुन अशुभ है।

मध्यम नवपंचम :—कुंभ--मिथुन, मीन--कर्क, कर्क--वृश्चिक, कन्या–मकर।

(४) नाडिवेध :—नाड़ी के तीन प्रकार हैं।

आद्यनाड़ी अ, आ, पुन, उ. फा. ह, ज्येष्ठा श पू. भा मध्यनाड़ी भ मृ पुष्य पू--फा चि अनु पू–षा ध उ–भा अन्त्यनाड़ी कृ, रो, अश्लेषा, म, स्वाति वि उ--षा रेवती।

नाड़ीवेध यानी आद्यनाड़ी के नक्षत्रों में पति–पत्नी (वर वधू) तथा मूर्ति भरानेवाला और जिनबिंब नहीं होना चाहिए। उसीप्रकार मध्यनाड़ी में और अन्त्यनाड़ी में भी वेध का त्याग करना।

जैसेकि भरणी नक्षत्र जन्मा मूर्ति भरानेवाला हो और पुष्य नक्षत्र में जन्मे हुए, धर्मनाथ भगवान हो तो दोनों की एक ही नाड़ी होने से। नाड़ीवेध

P. P. Ac. Gunratansuriji M.S. Jin Gun Aaradhak Trust

नाम का दोष लागू होता है। वर-वधू को भी नाड़ीवेध टालना।

(५) वर्ग :—वर्ग का तात्पर्य वर्णमाला का वर्ण-वर्गों के साथ है। उसके आठ वर्ग होने हैं। १. अ वर्ग, (अ से औ तक) २. क वर्ग, ३. च वर्ग, ४. ट वर्ग, ५. त वर्ग, ६. प वर्ग, ७. य वर्ग, (य, व, र, ल) ८. श वर्ग (श, ष, स, ह.) है।

इसमें से किसी भी वर्ग के पाँचवें वर्ग के साथ शत्रुता होती है। जैसेकि अमथालाल को ताराचंद, थानमल, दानमल, धनराज और नरोतम के साथ शत्रुभाव होता है। क्योंकि अमथालाल १ वर्ग है और वहाँ से त वर्ग पाँचवाँ है उसके लिए ही व्याज्य है।

(६) लभ्य-देय :—यानी लेणा-देणी (हानि लाभ) आदात प्रदान कौन किसका लेणदार है और देनदार है। उसे जानने की इच्छा सभी में होती है।

वर-वधू, सेठ-मुनीम, भागीदार, और मूर्ति स्थापित करने वाला—जिन बिंब के साथ लाभ में रहेगा या हानि में? इसे मालूम करने के लिए जैसे अमथालाल जानना चाहता हैं कि शांतिलाल के साथ मेरा लेन देन किसी प्रकार रहेगा? इसके संबंध में जो जानना चाहता है उसका वर्ग अंक सामने वाले के वर्ग अंक के सामने रखना तथा आठ की संख्या से भाग देना शेष को आधा करना। जो आता है वह अगला वर्गवाला पिछले वर्गवाले का ऋणी बनता है। उसके बाद जिसके साथ संबंध जोड़ा जाता है वह वर्ग संख्या के पहले रखना और बाद में खुद को रखना फिरसे आठ भाग देना, शेष का आधा करना। इसमें संबंधित आदमी ऋणी बनेगा। जैसे अमथलाल शान्तिलाल की वर्ग संख्या १८—८ शेष २ रहे, उसका आधा १ विश्वा रहा। यानी अमथालाल शान्तिलाल का १ विश्वा ऋणी है। दूसरी रीति से शान्तिलाल को वर्ग के पहले रखते हुए ८१-८ शेष १ रहा। उसका आधा किया तो १/२ (०॥)

P. P. Ac. Gunratansuriji M.S. Jin Gun Aaradhak Trust

विश्वा रहा। एक में से आधे को बाद देते हुए (निकालते हुए) अमथालाल शान्तिलाल का आधा १/२ विश्वा ही ऋणी है। अर्थात् अमथालाल का शान्तिलाल के साथ ऋणत्व (कर्जदारी) का संबंध है। जबकि शान्तिलाल अमथालाल के ०॥ (१/२) विश्वा लेणदार है। इसीप्रकार अमथालाल शान्तिनाथ भगवान का भी ऋणी होने से यह भगवान अमथालाल के लिए लाभदायक नहीं है। यदि शेठ अमथालाल अपनी दुकान का नाम 'शान्ति स्टोर्स' मकान का नाम 'शांतिभवन' रखे तो भी इस सेठ को हानि ही उठानी पड़ेगी। सुवर्ण यानी सोने के व्यापार में भी शेठ को लाभ हो वैसा नहीं।

जब यही अमथालाल शेठ को महावीर स्वामी के जिनबिंब के साथ मोती के व्यापार के साथ और अपनी दुकान का नाम 'महावीर स्टोर्स' हो तो लाभदायक है।

अब उपर्युक्त योनि, गण, राशि और नाड़ी वेध इन चारों को अपने जन्म नक्षत्र से देखनी चाहिए। वर्ग मेल तथा लेन देन अपने प्रसिद्ध नाम से ही देखने का आग्रह रखना। जन्म नक्षत्र की जानकारी न हो तो सब बातें चालु नाम से देखना। तीर्थंकर भगवान की नयी मूर्ति बनाकर अंजन शलाका तथा प्रतिष्ठा करने में उपर्युक्त छः बातों को विचार जरूर करना चाहिए। व्यक्ति के नाम से मूर्ति भरानी होय तो उसके नाम के साथ हो छः बातों का विचार करना यदि वह मूर्ति संघ की तरफ से भराने की हो तो गांव के नाम से दिखलाना।

अब छः बातों में योनि, गण, राशि, और वर्ग में अपवाद भी है। उसको भी ध्यान में रखना चाहिए।

(१) योनि वैर में अपवाद :—मूर्ति भरानेवाला और भगवान के साथ आपस में योनि वैर होते हुए भी भरानेवाले के नक्षत्र और योनि से

P. P. Ac. Gunratansuriji M.S. Jin Gun Aaradhak Trust

सामनेवाले के नक्षत्र और योनि कमजोर हो तो किसी भी प्रकार की आपत्ति नहीं है। उदाहरण स्वरूप केवलचन्द्र का जन्म नक्षत्र 'पुनर्वसु' है, उसकी योनि बिल्ली है। और सुमतिनाथ भगवान की योनि चूहा है। अब इन दोनों में जाति वैर है फिर भी भगवान की योनि कमजोर होने से यानी केवलचंद की योनि भगवान की अपेक्षा सशक्त है, इसलिए यह योनि वैर हानिकारक नहीं है।

सर्वत्र देव की योनि से धनिक (मूर्ति भराने वाले) की योनि बलवान होनी चाहिए। तब इस दोष को अवकाश नहीं है। अथवा देव और धनिक में योनि वैर हो और देव की योनि बलवान हो तो भी यदि दोनों के आपस में वैर न हो तो उस परिस्थिति में इस दोष को अवकाश नहीं है। क्योंकि योनि वैर तथा जाति वैर होने से ही त्याज्य है, अन्यथा नहीं।

(२) गण मेंवैर अपवाद:- इस में भी धनिक का गण बलवान हो तो आपत्ति नहीं। मूर्ति भराने वाला राक्षस गण हो और जिनबिंब का देव गण हो तो भी यह गण वैर बाधक नहीं होता।

(३) राशि वैर में अपवाद :- परस्पर राशियों का स्वामी यदि मित्र बन जाता हो तो राशि कूट दूषित नहीं है। किन्तु ग्राह्य है। वह हमको देखना है।

प्रीतिषडष्टक :-मेष-वृश्चिक, मिथुन—मकर, सिंह-मीन, तुला-वृष, धनु-कर्क, कुंभ-कन्या।

श्रेष्ठ दूसरा बारहवाँ :-मेष-मीन, मिथुन-वृष, सिंह-कर्क, तुला-कन्या, धनु-वृश्चिक, कुंभ-मकर।

शुभ नवपंचम :-मेष-सिंह, वृष-कन्या, मिथुन-तुला, सिंह-धनु, तुला-कुंभ, वृश्चिक-मीन, धनु-मेष, मकर—वृष।

P. P. Ac. Gunratansuriji M.S. Jin Gun Aaradhak Trust

शुभ तृतीयैकादश :—मेष–कुंभ, वृष–मीन, मिथुन–मेष, कर्क–वृष, सिंह–मिथुन, कन्या–कर्क, तुला–सिंह, वृश्चिक–कन्या, धन–तुला, मकर—वृश्चिक, कुंभ–धन, मीन–मकर।

श्रेष्ठतर दशम चतुर्थ :—वृष–कुंभ, कर्क—मेष, वृश्चिक--सिंह, मकर--तुला, कन्या—मिथुन, मीन—धनः।

श्रेष्ठ दशम चतुर्थ :—मेष—मकर, मिथुन—मीन, सिंह—वृष, तुला—कर्क, धन--कन्या, कुंभ--वृश्चिम, उपरोक्त के अनुसार राशियोंके स्वामी को परस्पर मित्रता तथा एकता होने के कारण ही ग्राह्य है।

(४) वर्ग वैर में अपवाद :—यद्यपि परस्पर पंचम वर्ग त्याज्य होने पर भी यदि धनिक अर्थात मूर्ति भरानेवाला वर्ग बलवान हो और देवोंका वर्ग निर्बल हो तो वर्ग बैर भी अपत्ति जनक नहीं है।

जैसेकि गोमतीपुर का 'ग' क वर्ग में होनेसे बिल्ली वर्ग है। पार्श्वनाथ 'प' वर्ग में होहै से चूहा है। क वर्ग से प वर्ग पाँचवाँ होने पर भी यहाँ धनिक का वर्ग जो बिल्ली है वह चूहा से भी बलवान होने से ग्राह्य बनेगा। वर्गों के मालिक इस तरह है :—

अ वर्ग का मालिक	गरूड़
क वर्ग का ,,	बिल्ली
च वर्ग का ,,	सिंह
ट वर्ग का ,,	श्वान (कुत्ता)
त वर्ग का ,,	सर्प
प वर्ग का ,,	चूहा
य वर्ग का ,,	हरिण
श वर्ग का ,,	गेंड़ा

P. P. Ac. Gunratansuriji M.S. Jin Gun Aaradhak Trust

उपरोक्त के अनुसार चारों अपवाद ध्यान में रखकर परस्पर सुमेलकी जमावट करनी।

शुभ दिवस, नक्षत्र, तारा, मुहूर्त, लग्न नवमांश में चढ़ते उत्साह से वीतराग प्रभुकी प्रतिष्ठा करनी चाहिए।

उस समय प्रतिष्ठा करनेवाला आचार्य उपाध्याय एवं मुनिराज को चन्द्रवल होना अत्यंत आवश्यक है। तथा मूर्ति स्थापन करनेवाले गृहस्थ को गोचर में सूर्य तथा चन्द्र की शुद्धि, तारावल और गुरु की शुद्धि बहुत आवश्यक है। चाहे जितने अच्छे मुहूर्त और योग हो तो भी अगर गोचर पद्धति के अनुकूल नहीं होगें तो प्रतिष्ठापक को हानि हुए बिना नहीं रहेगी।

इसीलिए चाहे जितने अच्छे कार्यो के मुहूर्त निकालने के पहले गोचर शुद्धिका ध्यान अवश्यही रखना चाहिए।

गोचर में गुरु अशुद्ध हो तो १२ महिने राशि बदलने के बाद ही शुभ कार्य करने, उस समय चन्द्रवल कनिष्ट होगा, तो चाहे जैसा राजयोग, रवियोग, अमृत-सिद्धियोग भी फलप्रद होगा नहीं। उसी तरह सूर्य की अशुद्धि भी बाधक बने बिना रहेगी नहीं। इसीलिए सभी अच्छी तरह दिखाकर बाद में प्रतिष्ठा करनी चाहिए। इस तरह जिनेश्वर देव की प्रतिष्ठा सबके लिए कल्याणदायक होती है। अब कौनसी राशिवाले गृहस्थ को कौन से भगवान शुभ, अतिशुभ, मध्यम और अशुभ रहेंगे। वह कोष्ठक द्वारा समझे :-

P. P. Ac. Gunratansuriji M.S. Jin Gun Aaradhak Trust

प्रतिष्ठापक और प्रभुकी राशि के कोष्ठक

स्थापक राशि	मे	वृ	मि	क	सिं	क	तु	वृ	ध	म	कुं	मी
एकराशि	१६	२	३	१५	५	६	७	८	१	११	१२	१३
शुभ	१९	१७	४			२२	२३		९	२०		१४
	२१					२४			१०			१८
द्विद्वाशिक	१३	३	२	५	१५	७	६	१	८	१२	११	१६
मध्यम	१४	४	१६			२३	२२	९			२०	१९
२+१२	१८						२४	१०				२१
द्विद्वाशिक	२	१६	१५	३	६	५	८	७	११	१	१३	१२
अनुभ	१७	१९		४	२२			२३	२०	९	१४	
२+१२		२१			२४					१०	१८	
३+११ शुभ	३	१३	५	२	३	८	१	६	७	८	१	२
	४	१४	१६	६	४	१५	५	११	२	१३	१०	११
	१२	१५	१९	१७	७		९	२०	२३	१६	१७	१७
		१८	२१	२२	२३		१०	२२		१८	१९	२०
				२४				२४			२१	
सामी प्रीत	११	५	६	७	२	१	११	५	६	७	२	१
अतिशुभ	१५	१२	१३	१६	८	३	१५	१२	१३	१६	८	३
४—१०	२०		१४	१९	१७	४	२०		१४	१९	१७	४
			१८	२३		९			१८	२१		९
			२२	२१		१०			२२	२३		१०
			२४						२४			

P. P. Ac. Gunratansuriji M.S. Jin Gun Aaradhak Trust

स्थापक राशि	मे	वृ	मि	क	सिं	क	तु	वृ	ध	म	कुं	मी
नव पंचम	१	६	७	८	१	२	३	१५	५	२	७	८
मध्यम	५	११	२३		९	१७	४		१६	१७	२३	
	९	२०			१०		१२		१९			
९+५	१०	२२			१६				२१			
		२४			१९							
					२१							
नव पंचम			१२	१३		११		१३		६	३	१५
अशुभ				१४		२०		१४	२२	४		
				१८				१८	२४			
प्रीतिषडषक	८	७	११	१	१३	१२	२	१६	१५	३	६	५
मध्यम		२३	२०	९	१४		१७	१९		४	२२	
६+२				१०	१८			२१			२४	
मृत्युषडषक	६	१	८	१२	११	१६	१३	३	२	५	१५	७
अशुभ	२२	९			२०	१९	१४	४	१७			२३
६+८	२४	१०				२१	१८					
सम शुभ	७	८	१	११	१२	१३	१६	२	३	१५	५	६
७+७	२३		९	२०		१४	१९	१७				२२
			१०			१८	२१					२४

॥ पांचवा उद्देशा समाप्त ॥

P. P. Ac. Gunratansuriji M.S. Jin Gun Aaradhak Trust

अल्प तथा दीघायुष्य का कारण

इस प्रकरण में जीवों का दीर्घ तथा अल्प आयुष्य, क्रिया विचार, अग्निकाय, धनुष्यवाले पुरुष की क्रिया, नैरयिक, आधा कर्मादि आहार, आचार्य--उपाध्याय के भवग्रहण, मृषावादी का कर्म आदि के संबंध में विचार करना है।

सार इसप्रकार है --

जीव तीन कारणों से अल्प जीवित रहने के कारण रूप कर्म बांधता है। प्राणों की हत्या कर, असत्य बोल कर और तथारूप श्रमण--ब्राह्मण को अप्रासुक और अनेषणीय खान--पान आदि देकर। इसके विपरित प्राणों की हत्या नहीं करके, असत्य नही बोलकर और तथारूप श्रमण या ब्राह्मण को प्रासुक और एषणीय खान-पानादि पदार्थ देकर लंबे समय तक जीवित रहने के कारण भूत कर्म बांधते हैं। इसमें भी उपरोक्त तीन अशुभ क्रियाओं के साथ जो तथारूप --ब्राह्मण की भर्त्सना, निंदा, बेइज्जती, अपमान आदि किया जाय तो अशुभ प्रकार से दीर्घ काल तक जीवित रहने के कारण भूत कर्म बांधता है। प्राणों की हत्या नहीं करके, असत्य नहीं बोलकर तथारूप श्रमण--ब्राह्मण को मनोज्ञ,

P. P. Ac. Gunratansuriji M.S. Jin Gun Aaradhak Trust

प्रीतिकारक, अशन पान आदि दिया जाय तो शुभ प्रकार से दीर्घ आयुष्य भुगतने का कर्म (जीव) बांधता है। ❊ ७२

❊ ७२. जन्म लेकर मनुष्य दुंखी है। तथा दुखों की राशि भी हजारों प्रकार की है। जबकि सुख और उसके साधन बिजली की चमक की भांति क्षणभंगुर है।

सुख के साधन प्राप्त होते हुए भी अमुक मनुष्य दुखी क्यों है ?

जिस प्राणी ने लक्षाधिपति के घर में जन्म लिया है। खाने के लिए हलुआ, बादाम, पिश्ता और केशर युक्त दूध मिलता है, फिर भी दो वर्ष, पांचवर्ष या पच्चीय वर्ष का होकर क्यों मर गया ? जब वह गर्भ में था, तब जिसकी माता ने दूध, मलाई और मालपुए खायें है। फिर भी गर्भस्थ जीव गर्भ में हो क्यों मर गया ? माता की एक संतान सब प्रकार से होशियार है। जबकि दूसरी संतान बहरी, हकलाती और बुद्धु कैसे हो गई ? माता पिता का पौष्टिक भोजन था तथा कुटुंबी (फेमिली) डाक्टर द्वारा अत्यन्त प्रयत्न पूर्वक सेवा प्राप्त हुई फिर भी जन्म लेने वाला बालक लूला, लंगडा तथा काले रंग का क्यों हो गया ? तथा पढाई में निरक्षर भटाचार्य क्यों रहा ?

जबकि दूसरा बालक सब प्रकार से होशियार किस प्रकार से बन गया ? एक समान आकृति और जुड़े हुए रूप से जन्म लिए हुए दो बालकों में चारित्र, पराक्रम, विज्ञान, बैराग्य, आरोग्य और संपत्ति में आकाश पाताल जितना फर्क किसलिए है ? माता पिता और पढ़ने के साधन एक समान अच्छे होते हुए भी एक संतान दुराचारी निकलती है जबकि दूसरी संतान सदाचारी, जब कि एक भीरू और दूसरा बहादुर, एक बैरागी और दूसरा बदमाश (दुर्जन) किस कारण हो जाता है ?

प्रताप, उद्यम और साहस एक समान होते हुए भी एक तो सफलता

P. P. Ac. Gunratansuriji M.S. Jin Gun Aaradhak Trust

के सोपान पर अग्रसार होता है जब कि दूसरा पिता की अर्जित संपत्ति का भी नाशकर देता है। संस्कृत-प्राकृत जैसी दैवी भाषा विज्ञ होता हुआ भी दुराचारी कैसे बन गया ? और अंग्रेजी भाषा विज्ञ भी सदाचारी कैसे बना ?

कान, आँख, नाक, मस्तिष्क, हृदय और शरीर का स्पेशलिस्ट डाक्टर (फिजीशियन) भी बहरा हकलता हुआ, बेडौल, पागल, बुरे हृदय तथा अशोभनीय शरीर का किस कारण बन जाता है ? दांत के डाक्टर के भी दांत अकाल में गिर जाते हैं, आँखों का डाक्टर भी अंधा पाया जाता है। वे निष्णात डॉक्टर अपने दांत और आंखों की सुरक्षा करने में क्यों असमर्थ रहे ?

प्रत्यक्ष रूप से दृष्टिगोचर होती हुई संसार की इस विचित्रता का हल किस प्रकार करना ? और जबतक इस प्रश्न का निर्णय नहीं हो जाता है तबतक सम्यग ज्ञान में भी अधुरापन रहेगा।

ईश्वर तो महादयालु है, जीव मात्र का परम मित्र है, और स्वतः निराकार यानी शरीर बिनाका है। वह ईश्वर किसलिए इस गोरख धंधे का हल करने के प्रयत्न में बदनाम हो ? जीवों को सब प्रकार से दुःखी देखकर एक बालक की तरह उस भगवान को आनन्द अनुभव होता है तो परमात्मा की महानुभावता कहाँ और कैसे रही ? दयालु मनुष्य तो सर्वत्र सुख शांति और समाधि का सर्जन करनेवाला होता है। किन्तु संसार वैसा नहीं दिखलाई नहीं देता। क्योंकि जीव मात्र को सुख थोड़ा है और दुःख अनंत है। फिर परमात्मा की दया और दयालुता कहाँ रही ? "मृत्यु को प्राप्त जीव ईश्वर के दरबार में हाजिर होता है, वहाँ धर्मराज उस जीव का लेखा जोखा देखता है। तत्पश्चात् न्याय करके वह जीवात्मा के सुखदुःख का निर्णय करता है और योग्य स्थानों में पुनः जन्म देता है।" इस सिद्धान्त से तो ईश्वर की सत्ता से भी बढ़कर कर्म सत्ता बलवत्तर मालूम होती है। अर्थात् ज़ीवात्मा ने जैसे कर्म किये हैं उसीके

P. P. Ac. Gunratansuriji M.S. Jin Gun Aaradhak Trust

अनुरूप ही फल भुगतना पड़ता है । अतएव कर्मसत्ता सर्वोपरि है । अन्यथा रावण सीता का अपहरण करके ले जाता है । इसकी सूचना भी भगवान जैसे भगवान रामचंद्र को नहीं मालूम होती है ।

संसार का निर्माण करनेवाले भगवान ने तो 'सोने का हरिण' नहीं बनाया । तो यह सुवर्णमृग कहाँ से पैदा हो गया ? भगवान भी भूलकर सुवर्णमृग को प्राप्त करने के लिए उसके पीछे दौड़े । तो यह नाटक कैसे बना ? रावण के साथ युद्ध करके लाखों करोडों मनुष्य मृत्यु के घाट उतरे ? इस युद्ध में मृत मनुष्यों की विधवा पत्नियों और पुत्र के वियोग में अर्तनाद करती हुई माताओं को संपूर्ण जीवन रोते हुए बिताना पड़ा, इसप्रकार की बाल्यचेष्टा भगवान ने किसलिए की ?

पांडवों तथा कौरवों के युद्ध में अभिमन्यु का वध कराने से नवीन उदय होती हुई कलि के समान 'उत्तरा' को विधवा बनाने का नाटक भगवान ने किस लिए किया ?

उपरोक्त तथा अन्य इसप्रकार की सर्व घटनाओं को ध्यान में रखकर तत्पश्चात् तुलसीदासजीने रामायण में लक्ष्मणजी के मुख से यह सत्य ही कहलाया है :–

" विश्व प्रधान कर्म करी राखा,
जो जस करहि वो तस फल चाखा । "

कर्मणो हि प्रधानत्वं किं कुर्वन्ति शुभा ग्रहाः ।
वसिष्ठदत्त लग्नोऽपि रामः प्रव्रजितो वने ।।

तथा भव भवान्तर के योगी भर्तृहरिने 'तस्मै नमः कर्मणे' ऐसा कहा है ।

उपरोक्त घटनाओं का अनुभव करके यह सिद्ध होता है कि जीव मात्र

P. P. Ac. Gunratansuriji M.S. Jin Gun Aaradhak Trust

को सुख दुःख देनेवाले स्वयं द्वारा किये गये कर्म को छोड़कर अन्य कोई नहीं है। माया चक्र में विवश होकर यह मूढ़ात्मा पुनः पुनः कर्म करता रहता है, और पुनः पुनः उन्हें भुगतता है।

भगवती सूत्र में इसप्रकार का प्रश्न है।

जीव ऐसे कौन से से कर्म करता हैं, जिससे आयुष्य की मर्यादा अल्प बन जाती है। यानी वह अल्प उम्र में ही मृत्यु का मेहमान बनता है।

अनन्त ज्ञान के स्वामी भगवान ने निम्नानुसार उत्तर दिया है :–

(१) जीव हिंसा करने से

(२) असत्य बोलने से

(३) श्रमण को अप्रासुक तथा अनेषणीय आहार पानी देने से।

जीवहिंसा :–हिंस धातु से अन्य जीव को मारने के अर्थ में हिंसा, हिंस्र और हिंसक शब्द बनता है। यानी स्वयं को छोड़कर अन्य जीव को मारना, वह हिंसा, मारने के लिए पुरुषार्थ करना वह हिंस्र कर्म, और मारनेवाला हिंसक कहलाता है।

इसका विशाल अर्थ निम्नानुसार है :—

१. द्वेष वश अन्य के प्राणों का वध करनेवाला हिंसक।

२. द्वेष वश अन्यों की वृत्तियों को तोड़ने वाला हिसक है।

३. द्वेष वश तथा राग वश स्वस्त्री के सिवाय अन्यस्त्री का सेवन करना, तथा उसके सतीत्व को भ्रष्ट करने वाला हिंसक है।

४. भोगासक्त होकर क्रूरतापूर्वक मैथुन कर्म का रागी हिंसक है, महाहिंसक है।

५. मैथुन कर्मासक्त होने से गर्भगत जीवों का ख्याल किये विना मैथुन करने का भाव रखना, यह भयंकर हिंसा है।

P. P. Ac. Gunratansuriji M.S. Jin Gun Aaradhak Trust

६. दूसरों की रोटी, पुत्री और व्यापार छीन लेना, वह भी हिंसा है।

७. दूसरों के मर्म प्रकट करना, गलत साक्षी देना, और दूसरों की चोरी करना, वह भी हिंसा है।

८. दोषपूर्ण व्यापार करना, तथा १५ कर्मादान रूप व्यापार करना, वह हिंसा है।

९. स्वार्थवश अन्य जीवों को पीड़ा पहुँचाना, वह भी हिंसा है।

१०. आन्तरिक जीवन में काषायिक भाव रखना, वह भी हिंसा है।

कषाय तथा प्रमादवश हम जिस जीव की हिंसा करते हैं, हमारे निमित्त मृत तथा दुखी हुआ जीव, शील खंडित स्त्री तथा पशु हमको श्राप दिये बिना नहीं रहते हैं। क्योंकि मृत जीव वध करने वाले का शत्रु हो जाता है। गाली देनेवाला मनुष्य गाली सुनने वाले का शत्रु हो जाता है। चींटी, कीडा, खटमल, यूका (जूं) आदि क्षुद्र जीवों को मारने वाला भी मृत जीवों का शत्रु बन जाता है। इसके अनुसार दूसरे जीवों का शत्रु बनना यही महादुख है।

शत्रु भाव का फल प्राय: करके श्राप में परिणत होता है।

धर्मशाला तथा पानी की प्याऊ बनाने के पूर्व ऐसे खयालों का विवेक पूर्व विचार कर लेना चाहिए कि वहाँ किसी का शील व्रत तो खंडित नहीं होगा? कबूतर, मोर तथा चिड़िया आदि पक्षी बिल्ली और कुत्ते के आक्रमण से बिना मौत मरेंगे तो नहीं? शील खंडित स्त्री को जब धर्म का भान होता है तब जिस स्थान पर शील खंडित हुआ है वह स्थान, उसका मालिक, तथा शील खंडित करने वाला पुरुष ये तीनों उसके दुश्मन हो जाते हैं। क्योंकि उस समय उसके मुख से सहसा ये उद्गार निकलते हैं कि 'भाड में जाय वह धर्म स्थान, जहाँ मेरा शील व्रत लूटा गया।' सत्यानाश हो उस मनुष्य का जिस कारण से मेरी यह दुर्दशा हुई, परमात्मा ने उसको गुंगा

P. P. Ac. Gunratnasuriji M.S. Jin Gun Aaradhak Trust

बनाया होता तो अच्छा था, जिससे मुझे जेल का दुःख अनुभव न करना पड़ता।

उपरोक्त श्रापपूर्ण शब्दों की असर जब हमारे जीवन में हमपर लागू होगी तब पूर्व भव के हिंसक जीवन में संचित (संग्रहीत) श्राप दुःखों का पहाड़ बनकर हमारे सामने आयेगा तब हमको हैरान होने का अनुभव होगा। अनेक श्रापों से आक्रांत मनुष्य ही हमारे लिए उदाहरण रूप प्रत्यक्ष है। इसलिए भगवान महावीर स्वामी ने कहा है, हिंसक जीवन शाप है, और अहिंसक जीवन आशीर्वाद है।

(१) हिंसक मनुष्य अगले भव में अल्पायुष्य का स्वामी बनेगा, क्योंकि शापग्रस्त मानव सुखों को नहीं भोग सकता।

(२) असत्य भाषी भी अल्पायुषी होता है। क्योंकि झूठ और हिंसा का घनिष्ठ संबंध है। हिंसक मनुष्य रोज झूठ बोलने वाला होता है और झूठा मनुष्य हिंसक ही होता है।

हिंसक मनुष्य की भावलेश्याएं जैसी खराब होती हैं वैसी झूठ बोलने वाले की भी लेश्याएं खराब ही होती हैं। और वैसा होने पर कृष्ण, नील और कपोत लेश्या, जिसका जैसा रंग स्वभाव वैसा ही अध्यवसाय इस आत्मा में हुए बिना नहीं रहता है। अतः समकत्व को प्राप्त करने में भी समर्थ नहीं होता है। सम्यक्त्व का पद्म, तेज और शुक्ल लेश्या के साथ संबंध है। और झूठे व्यवहार का मालिक इन लेश्याओं के सामने नहीं टिक सकता।

मायावी मनुष्य भी हिंसक इसलिए है कि माया प्रपंच का असत्य के साथ सीधा संबंध है, अतः अनुभवियों ने निम्नानुसार कहा है :-

"समकितनुं मूल जाणियेरे, सत्य वचन साक्षात्,
सांचा मां समकित वसे रे, माया मां मिथ्यात्वरे प्राणी"

P. P. Ac. Gunratansuriji M.S. Jin Gun Aaradhak Trust

अर्थात् सम्यक्त्व की प्राप्ति में मूल कारण सत्य वचन ही है। आचारांग सूत्र में भगवान ने फरमाया है कि "सच्चं खलु भयवं, सत्य ही परमात्मा है। क्योंकि जीवन के सत्याचरण में भगवान का वास है। सत्य भाषा ही अहिंसक भाषा है। अतः सत्य को छोड़कर दूसरे भगवान की कल्पना करना कोरी कल्पना ही है। जीवन की वृत्ति तथा प्रवृत्ति में असत्यता का (मृषावाद का) त्याग करने के अतिरिक्त मनुष्य अरिहन्त नहीं बन सकता।

अरिहंत पद का बाधक जातिमद, कुलमद, ज्ञानमद, संप्रदायवाद क्रियावाद और वितंडावाद आदि मुख्य हैं। क्योंकि इसमें असत्यता का अंश आये बिना नहीं रहता है। इस मद का और वाद का मालिक चाहे उतना तपस्वी और त्यागी हो सकता है किन्तु आत्म शुद्धि का लक्ष्य सिद्ध नहीं कर सकता है।

आचार्य श्री हेमचन्द्राचार्यजी इस बात का समर्थन इस प्रकार करते हैं कि "ज्ञान चारित्रयोर्मूलं सत्यमेव वदन्ति ये।" यानी ज्ञान और चारित्र का मूल सत्यवचन ही है। भगवान भाष्यकार के वचन का अनुवाद करके कहते हैं तो ज्ञान के साथ सम्यग्दर्शन का भी ग्रहण समझ लेना है। सम्यग्दर्शन बिना सम्यग्ज्ञान और चारित्र नहीं है। इसलिए तीन रत्नों की प्राप्ति का मूल सत्य वचन ही है।

"ज्ञान क्रियाभ्यां मोक्षः" ज्ञान में दर्शन भी लेना और चारित्र (क्रिया) यांनी सत्य धर्म भी लेना।

चारित्र की आराधना के बिना सत्य जीवन अधूरा है। सर्वथा अधूरा है। क्योंकि अहिंसा धर्म की आराधना के लिए ही दूसरे व्रतों को पाल (वाड़) तरीके अनिवार्य रूप से मानते हैं। इसमें भी सत्य व्रत जो खंडित हो जाय तो दूसरे व्रत कैसे स्थिर रहेंगे ?

P. P. Ac. Gunratnasuriji M.S. Jin Gun Aaradhak Trust

"एक तरफ संसार भर का पाप और दूसरी तरफ असत्य भाषण का पाप यदि इन दोनों की समानता करनी हो तो असत्य का पाप सबसे अधिक और प्रतिकार विना का पाप है।"

इन सब बातों का ध्यान रखकर दिव्य ज्ञान के स्वामी भगवान महावीर स्वामी ने कहा है कि असत्य बोलनेवाला अल्पायुषी होता है।

जीवन में आत्म धर्म की प्राप्ति जो हो गई हो तो संसार के किसी पदार्थ के लिए उस भाग्यशाली को झूठ नहीं बोलना चाहिए।

आत्मधर्मी जीव आडम्बर रहित ही होता है। क्योंकि आडम्बर सहित जीवन में असत्य, प्रपंच, माया मृषावाद, परपरिवाद, अभ्याख्यान रति–अरति, अन्त में परिग्रह की मात्रा प्रकारान्तर में भी बढ़ती जाती है। और जैसे जैसे परिग्रह बढ़ता है वैसे वैसे शब्द, रूप, रस, गंध और स्पर्श के भोगों का रागपूर्वक सेवन होता है, और प्रच्छन्न रूप से भी शब्दादि के प्रति भोग लालसा का भाव जिसे मैथुन कहते हैं, "सद्दा रूवा रसा गंधा, फासाणं पवियारणा मेहुउणस्स"... असत्य भाषी, असत्याचरणी, असत्य व्यापारी, और व्यवहारी मनुष्य अपने व्यक्तित्व का दुश्मन होता है और वैसा होने पर स्वयं के जीवन में वैर–विष, क्लेश–कलह के माध्यम से वह भाग्यशाली अनेक जीवों का शत्रु बनेगा, और आगामी भव में अल्पायुषी ही होगा।

(३) अल्पायुषी होने में तीसरा कारण भगवान ने यह फरमाया है कि :–जो कोई पंच महाव्रतधारी मुनिराज को 'अप्रासुक और अनेषणीय आहार पानी आदि पदार्थ देते हैं वे मी अगले भव में अल्पायुषी होते हैं। या होंग

गुण और गुणी का संबंध अनादि से है। स्वार्थवश, लोभवश, मायावश और प्रमादवश, अथवा देवगति के सुखों की प्राप्ति के लिए सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक् चारित्रादि गुणों की अवहेलना करता है और उसके

P. P. Ac. Gunratansuriji M.S. Jin Gun Aaradhak Trust

द्वारा गुणी पुरुषों की अवहेलना में भागीदार बनता है अथवा तीन गुणों को धारण करनेवाले गुणवानों का तिरस्कार करके तीन रत्नों की आशातना करता है।

स्वार्थवश बनी आत्मा सम्यग्दर्शनादि गुणों के विकास के प्रति उपेक्षा करने से उन गुणों के धारक के प्रति मोहान्ध बन जाता है और मोहान्ध बना हुआ मनुष्य भक्ति में अचूक नहीं रह सकता। एक ही आचार्य और उनके साधु साध्वियों के लिए रसोड़ा (पाकशाला) खोल देना और दूसरे संघाड़े के साधुओं की मानसिक अवहेलना कर उन कर्म को कर्म निर्जरा के साथ संबंधित करना, यह बड़ी से बड़ी उत्सूत्र प्ररूपणा है। किन्तु मोहान्ध मनुष्य सम्यग्ज्ञान से हजारों कोश दूर रहता है, अतः उसकी परवा नहीं करता।

लोभवश हुई आत्मा मुनिराजों की भक्ति में अपने द्रव्यादि के लाभ की इच्छुक होती है। उससे लोभान्ध बनी आत्मा उन उन मुनिराजों के सम्यग्दर्शन आदि को भी हानि हो वैसी भक्ति करने के लिए तैयार रहेंगी

मायावश बनी आत्मा मुनिराज तथा आचार्य भगवान का सान्निध्य और सामीप्य इसलिए चाहती है कि जिससे आचार्य भगवान की कृपा से "मैं ट्रस्टी बन जाऊं थोड़े पैसे खर्च करके भी बड़ा यश प्राप्त करलूं, समाज की अनेक संस्थाओं में मेरा स्थान निश्चित और स्थिर हो जाय।" जिससे मेरे व्यवहार में कोई आपत्ति नहीं उठाई जावे इसके अनुसार मायान्ध को सम्यग्दर्शनादि गुणों के विकास के संबंध में किसी प्रकार का लगाव नहीं रहता है। तथा स्वर्गादि सुखों के लिए की जाती हुई भक्ति में विवेक नहीं होता है। विधि विधान संपन्न होते हुए भी आत्मा गुणों की प्राप्ति में उपेक्षित रहने से स्वर्ग के अतिरिक्त दूसरा कोई भी प्राप्त नहीं कर सकता। इसके अनुसार तीन गुणों की वफादारी के बिना मानव को गुणों के स्वामी भी आन्तरिक जीवन के विकास में सहायीभूत नहीं हो सकते। इस-

P. P. Ac. Gunratansuriji M.S. Jin Gun Aaradhak Trust

प्रकार तीनों गुणों को मलिन करता और करवाता हुआ भक्त अपने अंगत स्वार्थ में लीन होकर त्याग करने योग्य पदार्थों का त्याग नहीं करता है और स्वीकार करने योग्य तत्त्वों से हजारो कोश दूर रहते हैं पंच महाव्रत धारी के महाव्रतों में दोष का आरोप करनेवाले श्रीमंत, युवा, स्त्री, स्वार्थी आदि चाहे सो हो वे अशुभ कर्मों का ही उपार्जन करेंगे। और आगामी भव में अल्पायुष का भागी बनेंगे, अथवा दीर्घायुष्य में भी दीनता, दरिद्रता, क्लेश और वैरमय वातावरण को भोगेगा।

अप्रासुक यानी देय पदार्थ सचेतन हो अथवा लेनेवाले की चेतना को बाधा पहूंचाने वाला हो, ऐसा भोजन, पान और वस्त्र आदि पदार्थ अप्रासुक है। और अनेषणीय यानी अकल्पनीय है। जो साधुता को संयम को, वीतरागता को, तथा मैत्री भाव को नहीं कल्पे अर्थात् जिससे स्वाध्याय प्रेमी साधु स्वाध्यांय से स्खलित हो जाय, वैराग्यवान आत्मा में मोह की चेष्टा उत्पन्न हो जाय। त्यागी के आन्तरिक और बाह्य त्याग में बाधा पहुँचे और मैत्री भाव से दूर होकर साधक की आत्मा को क्लेश पहुँचे ऐसे पदार्थ तथा वातावरण भी अनेषणीय है।

साधुओं के द्रव्य और भाव रूपी प्राण को खतरा पहुँचावे, ऐसी भक्ति अनेषणीय है।

कड़वी तुम्बी का प्रतिदान करने वाली बाई का उदाहरण हमारे सामने है।

अल्पायुष्यता यानी ?

आंख की पलकमारे उतने समय में मरनेवाले जीव की अल्पायुष्यता यहाँ मान्य नहीं है। किन्तु अमुक की अपेक्षा से यह मनुष्य कम जीवित रहा। जैसे पूर्ण युवावस्था में मरनेवाले को देखकर हम कहते हैं कि "इस आदमीने पहले भव में हिसाएं की होंगी ? या दूसरा कोई भी अशुभ कार्य

P. P. Ac. Gunratnasuriji M.S. Jin Gun Aaradhak Trust

किया होगा ? अथवा व्रतधारी मुनियों को काम में नहीं आवे ऐसी वस्तु का दान किया होगा? जिस कारण से यह भोगी मनुष्य अल्प आयुष भोग कर मर गया ?

इस सूत्र के अन्य टीकाकार तो इसप्रकार कहते हैं :-मुनिराजों के गुणों के प्रति पक्षपाती होकर छःकाय का आरंभ समारंभ करता है, वह भी आगामी भव में अल्पायुष्य को प्राप्त करेगा। यहाँ पर पक्षपात का अर्थ यह है कि इस भाग्यशाली को 'मुनि' पद के प्रति राग नहीं है, किन्तु अमुक आचार्य और उनके शिष्यों के प्रति ही राग है, उनकी भक्ति के लिए रसोड़ा खोलना, उनके लिए अमुक वस्तुएं विशेष तौर से बनानी और देनी यह आरंभ ही है। पक्षपाती का अधः पतन निश्चित होता है। आकाश में उड़नेवाले पक्षी की पांख (पक्ष) का पात होने से वह उड़ नहीं सकता, इसीप्रकार मोक्ष का प्रेमी अढाई द्वीप में रहनेवाले, आचार्य भगवान, उपाध्याय भगवान और मुनिराजों के प्रति किसी हद को मात्रा तक भक्ति होनी चाहिए थी किन्तु मोह कर्म में अन्धे बने हुए ऐसा नहीं कर सकते। अतः एक के प्रति राग और दूसरेके प्रति हाड़ोहाड़ वैर तथा द्वेष होता है। इस कारण से वैसा साधक अशुभ कर्मों का उपार्जक होता है।

इस चालु सूत्र से सर्वथा विरुद्ध सूत्र इसप्रकार है।

प्रश्नः– हे भगवान, श्रमणोपासक श्रावक मुनिराजों को अप्रासुक अनेषणीय दान देवें तो उसका क्या होता है ?

उत्तरः–हे गौतम, उस गृहस्थ को बहुत निर्जरा होती है, और पाप कर्म थोडा बंधता है। दीखती हुई रीति से दोनों सूत्रों में विरोधाभास है। किन्तु यहाँपर तात्पर्य समझने का है कि 'जो मुनि सर्वथा संथारावश होता है, दूसरी रीति से निर्वाह न होता हो तो, उसप्रकार के आत्तुर मुनि को ध्यान में रखकर ही यह बात है, किन्तु तन्दुरुस्त और थोडे बहुत भी

P. P. Ac. Gunratansuriji M.S. Jin Gun Aaradhak Trust

चल फिर सकते हैं उस मुनि की अपेक्षा से यह बात नहीं है। प्रश्न की समाप्ति में, मुनिराजों को अपेक्षा में रखकर तैयार किये हुए आहार को लेकर गृहस्थ को प्राणातिपात और मृषावाद ये दोनों पाप लगते हैं। सबसे पहले आरंभ किया यानी जीव हिंसा हुई, तपश्चात् साधु महाराज गोचरी के लिए आते हैं और गृहस्थ से पूछते हैं कि " यह किस के लिए बनाया है ? " तब पक्षांध गृहस्थ कहता है कि यह तो हमारे लिए बनाया है। इसलिए आपको काम में आता है। आप ले लीजिये। ऐसा कहकर वहोराने के संबंध में झूठ भी बोलता है और आगामी भव के लिए अशुभ कर्म बांधता है।

जब शुभ भावना से गुणग्राहक बनकर जो भाग्यशाली साधक अहिंसा धर्म, सत्य-धर्म का ख्याल रखकर मुनिराजों को निर्दोष तथा कल्पनीय आहार, पानी देते हैं वे आगामी भव के लिए दीर्घायुष्य कर्म बांधकर देवगति के सुखों को भोगेंगे।

इस विचित्र संसार में दीर्घायुष्य भोगनेवाले जीव भी अनेक रीति से दुःखी दिखलाई देते हैं, उसका क्या कारण ? उत्तर में भगवान फरमाते हैं कि तथाविध मुनिराजों को हीलनादि पूर्वक दान देने का यह फल है।–

(१) हीलन यानी गोचरी के लिए आये हुए मुनिराजों की जाति, कुल, गुण, अवगुण प्रकट करके ' आप हलकी जाति के हैं, आप तो ऐसा धंधा करते हैं, ' आपका कुल उत्तम नहीं है, इसप्रकार दान देता जाता है और मुनिराज की हीलना करता जाता है।

२. निंदन यानी मुनिराजों की मन से निंदा करना यानी " आप तो ऐसे हैं और वैसे हैं " क्या करें महावीर स्वामी का वेष धारण किया है, इस लिए आपको गोचरी देनी पडती है, नहीं तो आप गोचरी वहोराने के योग्य नहीं है।

P. P. Ac. Gunratansuriji M.S. Jin Gun Aaradhak Trust

३. खिसन–यानी चबूतरे पर बैठकर या दूसरे किसी स्थान पर बैठकर या खड़े होकर जनता के समक्ष साधु महाराजों की निंदा करना, यह खिसन है।

मनुष्य प्रायःकर अज्ञानी होते हैं, पौषध लेकर बैठने के पश्चात् माला जपते जपते भी दूसरे पौषध वालों के समक्ष दूसरे साधु महाराजाओं की तथा दूसरे संघाड़ाओं की तथा दूसरे गच्छ के मुनिराजाओं की अवहेलना करते रहते हैं। और स्वयं के पौषध को कलंकित करते हैं। २४ घंटों का पौषध और २ घड़ी की सामायिक करनेवाले अज्ञानियों का पौषध और सामयिक ३२ दोषों से दूषित हो जाते हैं। जो गृहस्थ के लिए भयंकर पाप है।

४. गर्हण यानी मुनिराजों के सामने ही उनकी निंदा करना, गर्हणा है।

खुद की जाति को ही जैन धर्म की रसिक माननेवाले कितने ही श्रीमंतों के नाम आपने सुने हैं ? वे कहते हैं इन अमुक आचार्य जैसे तो मेरे ५६ इंच के कोट की जेब में कितने ही पड़े हैं ? ऐसे आचार्य होते होंगे ? उपाध्याय अपने घर के रहे ? हमको तो हमारी वाड़ी के, पाड़े के, उपाश्रय के मुनिराज ही पसंद हैं। दूसरों की सेवा में पौषध, प्रतिक्रमण, और करेमिभंते उश्चरने में हमारे सम्यक्त्व को भांगा लगता है। धन्यवाद है इन बेचारे भाग्यशालियों को जो अपने आपको सम्यक्त्वी मानकर दूसरों को मिथ्यात्वी मान बैठे हैं। ऐसे जीव वस्तुतः भयंकर से भयंकर पापकर्मों को बांधकर आगामी भव को बिगाड़ देते हैं!

उपर्युक्त कारणों को दृष्टि कोण में रखकर भगवती सूत्र कहता है :–

"मानव, ओ मानव ! तू व्यक्ति विशेष से रागी बनने की अपेक्षा अरिहंत पद का, सिद्ध पद का, आचार्य पदका, उपाध्याय पद का और साधु

P. P. Ac. Gunratansuriji M.S. Jin Gun Aaradhak Trust

कोई मनुष्य किराणा बेचनेवाले गृहस्थ का किराणा चोरी से ले जाय, तब उस किराणे की गवेषणा करने वाले को आरंभिकी पारिगृहिकी, मायाप्रत्ययिकी और अप्रत्याख्यानि की क्रिया लगती है, किन्तु मिथ्यादर्शन प्रत्ययिकी क्रिया शायद लगती है और न भी लगती है। गवेषण करते हुए यह चुराया हुआ किराणा वापस प्राप्त हो जाय, तत्पश्चात् वे सब क्रियाएं प्रतनु हो जाती हैं।

एक गृहस्थने किराणा खरीदा और उसके बदले मूल्य स्वरूप थोडी बहुत रक्कम डिपोजित स्वरूप (बहानु) चुका दी। किन्तु खरीदा हुआ किराणा वह नहीं ले जा सका। ऐसी अवस्था में उस बेचनेवाले गृहपति को उस किराणे से आरंभिकी से लेकर अप्रत्याख्यानि तक की क्रिया लगती है। मिथ्यादर्शन प्रत्ययिकी क्रिया शायद लगती है और न भी लगती है। खरीदने वाले को वे सब क्रियाएं प्रतनु हो जाती है। यदि उस किराणे को खरीद करनेवाला अपने यहाँ ले आया है तो बड़े प्रमाणवाली चार

पद का रागी बनना। जिससे तेरा कल्याण होगा और समाज का भी अभ्युदय होगा।

(५) अपमान यानी मुनिराज के प्रति विवेकपूर्ण नहीं वर्तना। इस ५ प्रकार से जीव, अज्ञान, माया तथा मोहवश होकर आगामी भव के लिए स्वयं ही स्वयं का दुश्मन बनता है। यद्यपि दान के प्रभाव से दीर्घायुष मिलेगा, तो भी गृहस्थाश्रम में अनेक दुख, आर्तध्यान, मारामारी, वाणी संघर्ष पूर्वक कष्ट पाता हुआ मम्मण सेठ के जैसे जीवन पूरा करेगा।

P. P. Ac. Gunratansuriji M.S. Jin Gun Aaradhak Trust

क्रियाएं लगती हैं उनमें भी मिथ्यादृष्टि हो तो मिथ्यादर्शन क्रिया लगती है यदि मिथ्यादृष्टि न हो तो वह क्रिया नहीं लगती है। ※ ७३

※ ७३. दोनों व्यक्तियों में से कौन कितनी क्रियाओं का मालिक होता है? उस संबंध में ये प्रश्नोत्तर हैं।

१. जिसके यहाँ से कोई भी माल चुराया गया है, वह

२. चोरी करनेवाला आदमी (मनुष्य)

छोटी–बडी, मूल्य–अमूल्य किसी भी वस्तु (पदार्थ) के प्रति उसके मालिक को प्रेम होता है। उसके प्रति राग होने से वह वस्तु चुराई न जाय, २४ घंटे तक उसका जीव उसी में लगा रहता है, यह स्वाभाविक है। किसी कारण से अमुक वस्तु खुद के हाथ से ही कहीं छोड़ दी जाती है या मश्करी (मजाक) तथा द्वेषवश होकर दूसरा कोई भी मनुष्य उस चीज को उठा ले जाता है तब उस वस्तु के मालिक के हृदय में इतना महान् आवेश उमड आता है। जिसके फलस्वरूप अन्य सब काम छोडकर उस खोई वस्तु को ढुढने में आकाश पाताल एक कर डालता है। आर्तध्यान पुष्कल रूप से बढ़ जाता है। बेचैन होकर ऐसे वैसे कूंदा फांदा करता है। उस समय उसकी जीवात्मा

१. आरंभिको क्रिया को लेकर जैसे तैसे गमनागमन करता है, इसलिए आरंभि की क्रिया लगती है।

२. परिग्राहिकी यानी खोई हुई वस्तु के परिग्रह के प्रति ममता होने से "अरे मेरी अमुक चीज कहाँ चली गई?" ऐसी लेश्या होने से यह क्रिया भी लगती है।

३. माया प्रत्ययिकी वस्तु मात्र से माया यानी सभी वस्तुएं होनी चाहिए, ऐसे इच्छुक को यह क्रिया लगती है।

P. P. Ac. Gunratansuriji M.S. Jin Gun Aaradhak Trust

४, अप्रत्याख्यानिकी, खोई हुई हुई वस्तु के प्रति किसी भी प्रकार का प्रत्याख्यान न होने से उसके मालिक को परिग्रह संज्ञा के कारण यह क्रिया लगती है।

५. मिथ्यादर्शन प्रत्ययिकी—जब सम्यक्त्व का स्पर्श नहीं हुआ है, तब यह क्रिया भी लागू होती है। अन्यथा नहीं। इसप्रकार एक वस्तु की चोरी हो जाने के पश्चात् वापस नहीं मिलती है तब तक इस जीवात्मा के लिए आर्तध्यान में रत होने से उपर्युक्त पांचें क्रीयाएं संभव हैं। उसी समय इसका पता लग जाय कि अमुक व्यक्ति ने चोरी की है तो उसे रौद्र ध्यान में परिवर्तित होते देरी नहीं लगती। इससे जिसको वस्तु खोई गई है उसके मालिक के लिए संकट के साथ मौत भी आमंत्रित हो सकती है और दुर्गति का कारण बन सकती है। ढूंढते हुए जब खोई हुई वस्तु वापस प्राप्त हो जाती है तब उसका जी यथास्थान को प्राप्त हो जाता है। आर्तध्यान कम होने लगता है, खुद की भूल से यदि वस्तु खो गई हो तो अफसोस तथा पश्चाताप होने पर बांधे हुए कर्म पुनः कम होने लगते हैं।

अब हम चोर के संबंध में थोडा विचार करते हैं :—

(१) वस्तु के मालिक की मस्करी (मजाक) करने की भावना से भी चोरी की जाती है।

(२) द्वेषवृत्ति में आकर किसी व्यक्ति की वस्तु चुराई जाती है।

(३) वस्तु लेने की भावना न भी हो किन्तु पूर्वभव की आदत को लेकर दूसरे की वस्तुओं को एक स्थान से दूसरे स्थान पर रखने की भावना से भी वस्तु का हेरफेर किया जाता है।

(४) वस्तु के मालिक के प्रति द्वेष के कुछ अंश की भावना होने से पहले तो वस्तु को किसी दूसरे स्थान पर छुपादी जाती है, तब उस खोई हुई वस्तु को ढूढ़ कर उसका मालिक खूब ही हैरान हो जाता है, तब

P. P. Ac. Gunratansuriji M.S. Jin Gun Aaradhak Trust

छुपानेवाला भाग्यशाली उस चीज को पुनः यथास्थान रख देता है, ताकि उसका मालिक ही जनता द्वारा चोर समझा जाय, इस भावना से वस्तु का हेरफेर होता है।

(५) चोरी करने की भावना से चोरी की जाती है। उपर्युक्त ५ कारणों को लेकर विरमण बिना के अदत्तादान के लिए ही पूर्वभव के कुसंस्कार, कुचेष्टा, तथा कुटेव के वश होकर मनुष्य दूसरे की वस्तु के लिए ही नीयत बिगाडता है।

ऐसी आदतवाले भाग्यशाली को यह समझ लेना चाहिए कि ऐसा करने से सामनेवाले मनुष्य की हानि हो या न हो किन्तु हमारी आत्मा को भयंकर हानि हुए बिना नहीं रहती है। हमारी कुटेवों के कारण सामनेवाले का जीव भयंकर कर्मों को उपार्जन करता है, और दुर्गति का मालिक बनता है, इसकारण हमको मोक्ष की प्राप्ति किस प्रकार हो सकती है, और मोक्ष की आराधना किस प्रकार सफल होगी? जबकि खोई वस्तु के मालिक को, अन्त समय में हार्टफैल होने के टाईम में भी यह ख्याल आवेगा कि अमुक भाग्यशाली ने मेरी वस्तु ली है तो मरनेवाले के साथ चोर भी कर्मों के बंधन से बंधाये बिना नहीं रहते। परिणामस्वरूप भवभव के लिए इस जीवात्मा के साथ बंधा हुआ वैर चोरी करनेवाले मनुष्य को मारे बगैर, रुलाये बगैर, भूखे मारे बगैर, इदंसे ज्यादा क्लेश कराये बगैर और अंत में मारे बिना या वध कराये बिना शांत नहीं रहता है। तब मजाक करनेवाले मनुष्य को—जिस केसाथ मजाक की गई है जब वह मनुष्य बिना मौत मरता है—तब मजाक करनेवाले को यह भान होता है कि ' इस पाप से मैं कब छूटूंगा, " लक्ष्मण के मौत का कारण बननेवाले देवों को कितना महान् पश्चाताप हुआ?

अपने स्वार्थ की पूर्ति के कारण दूसरे को हैरान करने की भावना भी मनुष्य को हिंसक बना देती है। इन सब बातों का ख्याल रखने के

P. P. Ac. Gunratansuriji M.S. Jin Gun Aaradhak Trust

क्रिया—

तुरंत जलाया हुआ अग्निकाय, महाकर्मवाला महाक्रियावाला, महाआश्रववाला और महावेदनावाला होता है। परंतु वह धीरे

लिए ही भगवान महावीर स्वामी ने फरमाया है कि चोरी करना महापाप है और चोरी करवाना भी महापाप है। चोर की प्रशंसा करना महापाप है। शुद्ध चीजों में अशुद्ध को (दोषयुक्त को) मिलाना कनिष्ठ पाप है। इन पापों को छोड़े बिना मनुष्य अहिंसक नहीं बन सकता है।

हमारे निमित्त कोई भी जीवात्मा कर्म बंधन नहीं करने पावे, इसीलिए भगवान महास्वामी द्वारा उपदिष्ट १२ व्रतों को लेना, पालना और कछुए की तरह मन तथा वचन को कंट्रोल में रखकर आत्म साधन करना, यही पवित्र मार्ग है। मानव जीवन की सफलता है और भवोभव में जैन धर्म की उपलब्धि का मूल कारण है। किराणे के लिए तथा उपचार से वस्तुमात्र के क्रेता और विक्रेता के लिए प्रश्नोत्तर स्पष्ट है। फिर भी हम जान सकते हैं कि क्रय विक्रयवाली वस्तुपर जिस भाग्यशाली को विशेष रूप से ममता होती है। उसको पांच अथवा चार क्रियाएं नियत रूप से लगती हैं। संसार की माया में ओत प्रोत होकर क्रियाओं का मालिक कर्मबंधन किये बिना नहीं रहता है। सम्यक्त्व प्राप्त होने पर भी यदि क्रियाओं का त्याग नहीं होता है, अर्थात् हमारे द्वारा की जाती हुई क्रियाओं में प्रतिक्रमण, प्रायश्चित, पश्चात्ताप नहीं होता है तो वह जीवात्मा कर्म बंधन के तरफ ही पिछा जाता है और परिणाम स्वरूप कर्मों के भार से भारी बनकर संसार का परिभ्रमण करता है। इस बात को ध्यान में रखकर येनकेन प्रकारेण परिग्रह की माया छोड़कर और व्रतों को स्वीकार कर जीवन को सफल बनाना यही श्रेष्ठ मार्ग है।

P. P. Ac. Gunratansuriji M.S. Jin Gun Aaradhak Trust

धीरे क्षीण होता हुआ बुझता हुआ अन्तिम क्षण अंगाररूप, मुर्मुररूप भस्मरूप हो जाता है। तत्पश्चात् वह अग्नि अल्प कर्मवाली और अल्प वेदनावाली बन जाती है ※ ७४

※ ७४ अप्रतिपाती ज्ञान के स्वामी भगवान महावीर स्वामीने कहा है कि 'अग्निकाय' भी जीवात्मा है। इसका शरीर ज्वालाएं ही हैं। ये शरीर के अणु अणु में प्रवेश करके स्थित उष्ण योनिक अग्निकाय के जीव हैं। जो वायुकाय को भक्षण करते हैं। अग्निभक्षक है और वायु भक्ष्य है। जो भक्षक होता है वह जीव ही होता है।

रात्रि में खद्योत अपने शरीर के बूते के अनुसार प्रकाश देते हैं। यह प्रकाश जीवशक्ति का प्रत्यक्ष फल है। अंगारे में स्थित प्रकाश भी जीवसंयोगी होता है। वैसे ही सूर्य का प्रकाश भी जीवसंयोगी होता है। मनुष्य को बुखार आता है, इसलिए वह भी जीवसंयोगी है।

इसप्रकार अग्निकाय को प्रकट करनेवाले छः काय जीवों का हिंसक बनता है। इसलिए प्रतिक्रमण सूत्र में भी बोला जाता है।

'छक्काय समारंभे पयणे अ पयावणे अ जे दोसा।
अतट्ठा य परट्ठा उभयट्ठा चेव तं निंदे ॥'

अर्थात् अपने लिए, परायें के लिए और दोनों के लिए पचन पाचन में हुई छ काय विराधना की निंदा मैं करता हूँ।

अब हमने भगवती सूत्र में गौतम स्वामी द्वारा पूछे गये प्रश्नों का आशय समझना है, वह इसप्रकार है :—

" क्या प्रज्वलित किया हुआ अग्निकाय स्वयं महाकर्मवाला है ?"

P. P. Ac. Gunratansuriji M.S. Jin Gun Aaradhak Trust

महाक्रियावाला है ? महाआश्रव को करने वाला है ? महावेदना वाला है ? ठंडी पड़ती हुई अग्नि जबतक राख रूप में परिणत हो जाती है। अल्प कर्म, अल्प क्रिया, अल्प आश्रव और अल्प वेदनावाला होता है ?

अग्निकाय जीव में दाह शक्ति होने के कारण दूसरे जीवों को जलाने वगैरे तथा दूसरे जीवों को समाप्त किये बिना नहीं रह सकता। यद्यपि अग्नि जलानेवाला उसमें लकड़ी या कोयला डालता है, उसको स्वयं को अपने आशय के अनुसार कर्म बंधन होता ही है, परन्तु अग्निकाय स्वयं भी दूसरे को जलानेवाली होने से महाक्रियावान है। दूसरे के प्राण को समाप्त करनेवाली होने से महा आश्रववाली है। दूसरे जीवों का हनन करनेवाली होने से महाभयंकर ज्ञानावरणीयादि कर्मों को बांधनेवाली होती है। स्थावर योनि में भी भयंकर कर्मो को करनेवाला अग्निकाय आगामी भव के लिए महाभयंकर वेदना को भोगनेवाला होता है। इसप्रकार कर्म बांधने की परंपरा और प्रक्रिया प्रत्येक योनि में, प्रत्येक स्थान में, जीवात्माओं के लिए निर्णीत है। अपने द्वारा बुझाती हुई अग्नि में दाहक शक्ति कम होती जाती है, और जब राख रूप में परिणत होने के पश्चात् जब जलाने की शक्ति उसमें नहीं रहती है, इसकारण से अग्निकाय कर्म बंधन नहीं होता है।

भाव अग्नि

यह तो द्रव्य अग्नि की बात हुई किन्तु उपचार से भाव अग्नि (क्रोध, रोष, असहिष्णुता, ईर्षा), तो उससे भी भयंकर है। द्रव्य अग्नि तो अपनी मर्यादा पर्यन्त जीवों को ही समाप्त करती है। जबकि कषाय अग्नि तो संपूर्ण संसार को 'वैरविष की आग में स्वाहा कर देती है। जिस कारण से संसार की अर्थात् जीव मात्र की शान्ति-समाधि और समता भी आन्दोलित हो जाती है। क्रोध की ज्वाला जब प्रकट होती है तब उसके साथ में रहनेवालों की बुद्धि कुंठित और उदासीन बन जाती है जिससे

P. P. Ac. Gunratnasuriji M.S. Jin Gun Aaradhak Trust

वे किंकर्तव्य मूढ़ बन जाते हैं। तत्पश्चात् उत्तेजित हुई क्रोध रूपी अग्नि दूसरे को, तीसरे को और एक दिन जाति, समाज, धर्म और संप्रदाय में प्रवेश करके सबकी सद्बुद्धि को दुर्बुद्धि में परिवर्तित कर देती है।

"भांग, अफीम और गांजे का नशा तो मनुष्य को २-४ घंटे में ही अल्प या अधिक हानि कराकर समाप्त होता है जबकि क्रोध का नशा तो क्रोधी मनुष्य के सभी सत्कर्म, सत्पुण्य, तपश्चर्या, दान, दया और प्रेम भाव का समूल नाश कराके ही समाप्त होता है।" एक दिन आया हुआ बुखार (ताप) छः महीने की शक्ति तोड़ देता है जबकि द्वेष पूर्ण क्रोध तो करोंड़ो भव की तपश्चर्या को भस्मसात् कर देती हैं।

"धर्म के कारण समाज दो भागों में विभाजित नहीं हो जाता है किन्तु क्रोध के कारण २ भाग हो जाते हैं। दूसरे को मिथ्यात्वी या नास्तिक कहनेवालेका मन सांप्रदायिक मोह में होता है किन्तु जैन धर्म में नहीं होता है। दूसरे के क्रिया कांड़ों में अशुद्धता को जाहिर करनेवाले के हृदय में असहिष्णुता होती है किन्तु समता धर्म नहीं होता है, और जगत के जीवों के साथ प्रेम भाव त्याग करनेवाले के जीवन में धर्मान्धता होती है किन्तु धार्मिकता नहीं होती। तभी समाज दो भागों में विभाजित होता है। तत्पश्चात् मलेरिया के कीटाणु के समान क्रोध की वृद्धि होती रहती है क्योंकि :—

वैर से वैर बढ़ता है।
क्रोध से क्रोध भड़कता है।
विरोध से .विरोध का ही उत्पादन होता है।
धर्मान्धता के सन्मुख धर्मान्धता ही प्रकट होती है।
एक भूल हो जानेपर उसकी वृद्धि होती है।

तत्पश्चात एक ही कषायी मनुष्य के पाप में दो, चार, पांच, पच्चीस,

P. P. Ac. Gunratansuriji M.S. Jin Gun Aaradhak Trust

पांच क्रियाओं की फरसना

कोई पुरुष धनुष्य को ग्रहण करता है, तत्पश्चात् वाण को और दोनों को लेकर एक स्थान पर बैठ जाता है। वह इसप्रकार के आसन करके बैठता है जबकि वाण फेंकने की स्थिति में हो। वाण को फेंकता है, वह फेंका हुआ वाण अपने सामने आये हुए प्राणियों का, भूतों का, जीवों का और सत्वों का वध (हनन) कर देता है। जिसपर निशाना बैठा, उसके शरीर को संकुचित कर

गए, हजार और लाख मनुष्य परस्पर वैर की गांठ में संगठित हो जाते हैं। द्रव्य अग्नि तो उपकारक भी बन सकती है जबकि भाव अग्नि की ज्वाला में तो रति मात्र भी उपकार वृत्ति नहीं होती है। इसी कारण भगवान ने कहा है कि :—

मानव ! ओ मानव !
संसार के स्टेज पर आने के पहले
तेरे हृदय को गम का प्याला पिलाकर उसे ठंडा बना देना।
तेरे मस्तिष्क को समता के लेप द्वारा शीतल बना देना।
तेरी वाणि को हितकारिणी और मीठी बनाना।
तेरी प्रवृत्तियों को जीवों के कल्याण के लिए बनाना।

आत्मिक जीवन के लिए उपर्युक्त प्राथमिक ट्रेनिंग लेने के बाद ही दूसरों को उपदेश देना तो उनमें से संसार को अमृत मिलेगा और स्वर्ग की अप्सराएं भी तेरा गुण-गान करेगी।

बस, यही मानवता है। इसके अतिरिक्त मानवता की कल्पना वंध्या स्त्री को पुत्र प्राप्ति तथा शशक (खरगोश) के सींग लगाने जैसी सिद्ध होगी।

P. P. Ac. Gunratansuriji M.S. Jin Gun Aaradhak Trust

देता है, श्लिष्ट कर देता है, परस्पर संहत्त कर देता है, थोडा स्पर्श करता है और चारों तरफ से पीड़ा करता है, एक स्थान से दूसरे स्थान पर गिराकर उसे जीवन से च्युत कर देता है। तब वह पुरुष कायिकी से लेकर प्राणातिपातिकी तक, इसप्रकार पांच क्रियाओं का मालिक बनता है। जिन जिन अंगों से धनुष्य बना है, वे भी पांच क्रियाओं के मालिक बनते हैं। धनुष्य की पीठ वनस्पति का, डोरी पशु के आँत का, तथा बाण आदि लोहे धातु का बनता है, जबतक ये अजीव नहीं होते तबतक उसमे जीवात्मा रहती है, अतः मरे हुए जीव के कलेवर का धनुष्य आदि बनता है।

जब बाण फेंका जाता है तब पांच क्रियाएं लगती है। परंतु कार्य सम्पन्न कर जब बाण नीचे आता है तब चार क्रियाएँ लगती है। उसीप्रकार जिन जीवों के शरीर से जो वस्तु बनी है उनको भी अर्थात् धनुष्य की पीठ, डोरी, एहारू को, चार क्रिया, बाण, शरपम, फल को पांच क्रिया लगती है, तथा नीचे आता हुआ बाण रस्ते में यदि जन जीवों को मारता है तो भी पांच क्रिया लगती है। ※ ७५

※ ७५ तैयार किये हुए धनुष पर बाण रखकर शिकारी बन में जाता है। और सनसनाहट करता हुआ बाण आकाश की तरफ फेंक देता है वह बाण प्राणियों को, भूतो को, जीवों को और सत्वों को :-

अभिहणइ-अपने सामने आए हुए जीवों का हनन करता है।

वत्तेइ-अपने लक्ष्यभूत जीवों के शरीर को संकुचित कर देता है।

लेसेइ--जीवों को श्लिष्ट करता है।

P. P. Ac. Gunratansuriji M.S. Jin Gun Aaradhak Trust

संघाएइ—उनको परस्पर गात्रों द्वारा संहत करता है।
संघट्टइ—थोड़ा स्पर्श करता है।
परितावेइ—उनको चारों ओर से पीड़ित करता है।
किलामेइ—उन जीवों को मारणान्तिक समुद्घात पहुँचा देता है।
ठाणाओठाणं संकामेइ—एक स्थान से दूसरे स्थान पर ले जाता है।
जीविआओ ववरोवेइ :—जीवन से सर्वथा मुक्त कर देता है।

इस प्रकार फेंके हुए बाणवाले शिकारी को :—

"काइआए अहिगरणिआए, पाउसिआए, पारितावणिआए, पाणाइवायकिरिआए."

अर्थात् कायसंबंधि, अधिकरण संबंधी द्वेष संबंधी, परिताप संबंधी, और प्राणाति पात करने से पांच क्रियाएं लगती हैं।

जिसके जीवन में किसी प्रकार का संयम भाव नहीं है उन जीवों को ही पांच क्रियाएं लगती हैं।

"संयमी जीवन में प्रवेश करने के बाद भी स्वाध्याय बल बिना चाहे जैसा साधक हो वह अपनी शुद्ध लेश्याओं को स्थिर नहीं रख सकता। तब अशुद्ध लेश्याओं के द्वार खुले होने से उस साधक का शरीर संयमित नहीं रहता है। इससे रोष में आकर संपूर्ण जीवराशि को अभयदान देनेवाला रजोहरण, डंडासन आदि उपकरण ही 'अधिकरण' यानी दूसरों को मारने के लिए उपयोग में आते देरी नहीं लगती है। यह कायिकी क्रिया तथा अधिकरण की क्रिया हुई। द्वेष भाव होनेसे प्राद्वेषिकी क्रिया भी हुई। दूसरों को सताने (दबाने की भावना) की वृत्ति होने से पारितापनिकी क्रिया हुई। द्रव्य तथा भाव प्राणों का उपघात होने से पारितापनिकी क्रिया हुई। इसप्रकार गुरुकुलवास बिना का साधकभी पांच क्रियाओं का मालिक होनेपर अत्यन्त अशुभ असातावेदनीय कर्मों को प्रतिक्षण उपार्जन करता है।"

P. P. Ac. Gunratansuriji M.S. Jin Gun Aaradhak Trust

अव इस प्रश्नोत्तर के मार्मिक रहस्य की जानकारी कर लेनी चाहिए :—

प्राण हत्या करने के लिए तैयार हुआ द्वेषी मनुष्य तो क्रियावाला होता ही है। परन्तु भूतकाल में जीवों के शेष रहे हुए पुद्गलों से धनुष, डोरी और बाण बने हुए हैं। यद्यपि इस समय ये पदार्थ अजीव हैं पुद्गल हैं किन्तु किसी प्रसंग में ये ही अजीव पुद्गल किसी भी जीव के शरीर थे। तब उन जीवोंने अपना वर्तमान शरीर छोड़कर भवान्तर में शुभ काम किए हो तो भी उनके शेष रहे हुए पुद्गलों से यदि जीव हिंसा होती हो तो वह हत्याजनक क्रिया किसको लगेगी ? अजीव तो क्रिया बिना का ही होता है, इसलिए वे क्रिया उन पुद्गल के बने हुए धनुष बाण को लगती है ऐसा नहीं हैं फिरभी इन धनुष बाण से दूसरों के प्राण हर लिए जाते हैं। ऐसी स्थिति में भगवान महावीर स्वामी ने फरमाया है कि वे पुद्गल जिन जीवों के भूतपूर्व शरीर स्वरूप रहे हैं। उस समय जीवों में पाप का त्याग रूप विरति का परिणाम अत्यल्प भी न होने के कारण उनके शेष रहे हुए पुद्गल भी जो जीव हत्या करता है उसका पाप उन जीवात्माओं को भी लगेगा। ८४ लाख जीव योनी का कोई भी जीवात्मा जब अपना वर्तमान शरीर छोड़ देता है ; तब शेष रहे हुए शरीर और पुद्गल दूसरों को जो कोई पीड़ा करेंगे उनका पाप उन पुद्गलों के मालिक को लगता है। यह बात अतीन्द्रिय ज्ञानी भगवान महावीर स्वामी की है. उन्होंने कहा है कि जिस लकड़ी से या बांस से धनुष बना है, उस बांस के जीव को भी पांच क्रियाएं लगती है।

जिस जानवर के शरीर पुद्गल से चमड़े की डोरी बनी है, उस जानवर को पांच क्रिया लगती है। खान में से निकले हुए लोखंड से जो बाण बना है उस लोहखंड के जीवों को भी पांच क्रियाएं लगती हैं। शंका करनेवाला कहता है कि जीवों के शेष रहे पुद्गलों से हुई परपीड़ा को लेकर जो पांच क्रियाएं लगती है। तो (१) सिद्ध भगवंतों के शरीर के पुद्गल

P. P. Ac. Gunratansuriji M.S. Jin Gun Aaradhak Trust

संसार में जो शेष बचे हैं उनके द्वारा हुई परपीड़ा को लेकर सिद्ध भगवान को भी क्रियाएं लगनी चाहिए ? शंका के समाधान में इसप्रकार से कहा जाता है कि सिद्धशिला प्राप्त करने के पूर्व ही अपनी आत्मा के अतिरिक्त दूसरी सब वस्तुओं को भूल जाते हैं । आशय यह है कि निर्वाण के समय, अपने जीवन काल में अथवा गत भवों में जो कुछ हुआ हो, उसे ज्ञानपूर्वक त्याग देते हैं । अर्थात उन उन पौद्गलिक भावों को और उनकी वासना को संपूर्ण रीति से छोड़ देते हैं । इसके अनुसार पुद्गलों के साथ का संबंध सर्वथा छूट जानेसे उनको वे क्रियाएं नहीं लगती हैं । दूसरी शंका यह है कि जीवों के शेष रहे हुए पुद्गलो से बने हुए शस्त्रों द्वारा होनेवाली जीवहत्या का पाप जैसे उन उन जीवों को लगता है, तो फिर लकड़ी से बने हुए पात्रा तरपणी, उनसे बने हुए रजोहरण, चरवला, कामली आदि धार्मिक उपकरणों का उपयोग मुनिराज करते हैं । मुनिराजों की संयम साधना में वे उपकरण सहायक होते हैं तो फिर इन पदार्थों के मूल भूत जीवों को पुण्यबंधन भी होता होगा ?

इसका उत्तर टीकाकार इसप्रकार देते हैं कि उनको पुण्यबंधन नहीं [illegible]ता है । क्योंकि अपना शरीर छोड़ने के पूर्व उन उन जीवों ने ऐसा संकल्प [illegible]हीं कियाथा कि मेरे शेष रहे हुए पुद्गल साधु मुनि महाराजाओं के संयम के लिए उपकारक बने वे जीव मिथ्यात्वी होने के कारण उनको पुण्य बंधन करने की संज्ञा नहीं है । लेश्या नहीं है, इसलिए पात्र, तरपणी आदि पुद्गलों के मूल जीवों को पुण्य बांधने का संकल्प नही होनेसे पुण्य का बंधन नही होता है ।

इसका सरलार्थ यह है कि अनादिकाल से यह जीवात्मा १८ प्रकार के पापों को करता आया है, और पुनः पापों का द्वार खोलता है और जान-बूझकर रुचि पूर्वक करता है । कराता है, और दूसरों को भी पाप का रास्ता बताता हैं । इसलिए, हिंसक वृत्ति होने के कारण उसके शेष रहे

P. P. Ac. Gunratansuriji M.S. Jin Gun Aaradhak Trust

कई लोग ऐसा कहते हैं कि जैसे आराओं से घिरी हुई चक्र की नाभि होती है, इसीप्रकार चार सौ से लेकर पांच सौ योजन तक मनुष्य लोक मनुष्यों से खचाखच भरा हुआ है। यह

पुद्गल दूसरों को दुख देने के लिए ही उपयुक्त होने से पाप का बंधन अनिवार्य है।

अनेकवार कषायों के कारण आवेश में आकर तथा बेभान होकर आत्मा, मैं तो मरुंगा किन्तु मरने के बाद भी तुझे नहीं छोडूंगा। मेरी हड्डी भी तेरा बैर लिय बिना नहीं रहेगी। अरे अन्त में बबूल का कांटा बनकर तुझसे बैर लूंगा।"

इसप्रकार कलुषित भावना का मालिक जीव जबतक दूसरे का दुश्मन बना रहता है तबतक मरने के बाद भी उसके शेष रहे हुए पुद्गल दूसरे को नुकशान पहुँचाते रहते हैं और पुनः पुनः पाप बंधन से बंधाते रहते हैं। ऐसी परिस्थिति में जिन भाग्यशालियों को सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान, और सम्यक् चारित्र की प्राप्ति हो गई है। वे इस भव के, परभव के और भवोभव के पापों को, पाप व्यापारों को तथा स्वयं के पुद्गल भी किसी प्रकार की जीव विराधना न कर सके, उसके लिए संपूर्ण जीवराशि के साथ हुए संबंधो को समाप्त कर देते हैं। मिच्छामि दुक्कडं, दे देते है। और खुदकी आत्मा को सब पदार्थों से पृथक् कर देता है। तभी मृत्यु के समय उन भाग्यशालियों की समाधि स्थिर रहे, उसके लिए "भवभव में मुझे जैन धर्म प्राप्त हो, मैं सब जीवों को खमाता हूँ। मन, वचन और काया से हुए पाप, अपराध, वैर, क्लेशों को मैं खमाता हूँ और सब जीव मुझे क्षमा करें। तथा अमुक परिपक्व अवस्था हो जानेपर भव भव के पुद्गलों की माया समाप्त कर देता है। और भव आलोयणा तथा पुद्गल वोसिराकर सब पापों का प्रायश्चित करता है।

ठीक नहीं है । इसप्रकार चार सौ से पांच सौ योजन तक निरय-लोक नैरयिकों से खचाखच भरा हुआ है ।

नैरयिक एक रूप से भी विकुर्वणाकर सकता है और बहुत प्रकार से भी विकुर्वणाकर सकता है । तत्संबंधी जीवाभिगम सूत्र में विस्तार से वर्णन है ※ ७६

※ ७६. नरकगति में रहे हुए नारक जीवों की विकुर्वणा के लिए ये प्रश्नोत्तर हैं । जैसे मनुष्यगति में हैं वैसे वहाँ कोई भी सुतार (कारपेन्टर), लोहार, चमार, शस्त्र आदि पुदगल नहीं होते हैं । किन्तु पारस्परिक अत्यंत वैर विष रूपी पापों को लेकर नारक जीवों को चरमसीमा का पापोदय होने से वे जीवअपने वैर कारण से वैक्रिय लब्धि की विकुर्वणा करते हैं । अर्थात् सन्मुख आये हुए नारक जीवों को देखकर गत भव में जिस प्रकार वैर विरोध किया हुआ होता है वही लेश्या उसमें उत्पन्न होती है, और उसको मारने के लिए मानसिक कल्पना के माध्यम से उस उस प्रकार के अपने शरीर से संबंधित, संख्येय प्रमाण में शस्त्रों की विकुर्वणा इसप्रकार करते है :

मुद्गर (शस्त्रविशेष) मुषंढि (शस्त्रविशेष) करपत्र (करवत) असि (तलवार) शक्ति (लोहे का बना शस्त्र) हल, गदा, मुशल, चक्र, नाराच (बाण) कुन्त (भाला) तोमर, शूल, भिंड़माल (शस्त्र विशेष) इत्यादि शस्त्रों से दूसरे नारक जीवों के शरीर को भेदता है, काटता है, टुकड़े टुकड़े कर देता है, चीर देता है, और परस्पर इसप्रकार वैर का बदला लेता हुआ नारक जीव अत्यन्त पीड़ा को भुगतता है वे वेदनाएं निम्नानुसार हैं :—

उज्जवला :— जिस वेदना में सुख का लेश मात्र न हो वैसे दुःखों से पूर्ण वेदना ।

P. P. Ac. Gunratansuriji M.S. Jin Gun Aaradhak Trust

विपुला :-नारक जीव के संपूर्ण शरीर में व्यापी हुई वह पीड़ा

प्रगाढ़ा :-जिसमें नारक जीवों के मर्म प्रदेशों को बहुत ही पीड़ा होती है। जैसे लक्ष्य करके तीक्ष्ण पत्थर जिसके कपाल पर मारते हैं तब वह पत्थर कपालखंडको तोड़ देता है उसीप्रकार एक नारक दूसरे नारक को मारता है जिससे उसके आत्म प्रदेशों को भयंकर वेदना होती है। अथवा पित्त प्रकोपवाले मनुष्य को अत्यन्त कड़वी दवाई का पान कराते हुए जैसे अप्रीति होती है वैसे यह वेदना भी नारक जीवों को अप्रीतिकर होती है।

परुषा :-मन को किसी प्रकार अच्छी न लगे वैसी वेदना.

निष्ठुरा :-जिसका प्रतिकार सर्वथा अशक्य होता है।

चण्डा :-मारने से या मारखाने से परस्पर अत्यन्त रौद्र अध्यवसाय होता है।

तीव्रा :-अत्यन्त वेदना होती है।

दुःखा :-अत्यन्त दुख पूर्वक वेदना भोगनी पड़ती है।

दुर्गा :-हर हालत में दुर्लंध्य होती है।

उपरोक्तानुसार वेदनाएं पांचवीं नरक तक ही होती हैं। जब छठ्ठी और सातवीं नरक भूमि में, बहुत बड़े प्रमाणवाले छाण के कीड़े के समान, वज्र जैसे मुखवाले, लाल कुन्थवा जैसे शरीर बनाकर परस्पर यानी एक घोड़ा जैसे दूसरे घोड़ेपर चढ़ता है वैसे नारक जीव उसके समान शरीर को बनाकर एक दूसरे के शरीर में प्रवेश करके परस्पर छेद डालते हैं और भयंकर वेदना भुगतते हैं।

मनुष्य अवतार प्राप्त करके जो भाग्यशाली सम्यग्ज्ञान तथा सम्यग् दर्शन प्राप्त करने लायक नहीं होते हैं, वें मिथ्याज्ञान, अज्ञान, विपरीत ज्ञान और संशय ज्ञान के मालिक बनकर पापस्थानक में आसक्त होते है, और बहुत से पाप, मिथ्यावचन, चौर्यकर्म, मैथुन कर्म और परिग्रह की भावना से

P. P. Ac. Gunratansuriji M.S. Jin Gun Aaradhak Trust

आधा कर्मादि

'आधाकर्म अनवद्य-निष्पाप है।'

ऐसा जो समझता है, तथा आधा कर्म स्थान विषयक अलोचन--प्रतिक्रमण बगैर किये काल करता है तो उसको आराधना नहीं और आलोचन प्रतिक्रमण करके काल करे तो उसको अराधना है।

इसीप्रकार—

कीतकृत--साधु के लिए मूल्य देकर लाया हुआ भोजन।

स्थापित--साधु के लिए रखा हुआ भोजन।

रचित--साधु के लिए लड्डू आदि तथा उनके लिए तैयार किया हुआ चूरा आदि।

कांतारभक्त--जंगल में साधु के निर्वाह के लिए तैयार किया हुआ भोजन।

दुर्भिक्ष भक्त--दुष्काल के समय साधु के निर्वाह के लिए तैयार किया हुआ।

आरंभ समारंभ में मस्त बनकर अनेक जीवों के साथ घोरातिघोर वैर विरोध बढ़ाते हैं, उसके परिणाम स्वरूप नरकगति में जन्म धारण करते हैं वहाँ उनको उपरोक्तानुसार वेदना भुगतनी पड़ती है।

चार दिन की चांदनी की तरह इस संसार में सबसे पहले सम्यग्ज्ञान प्राप्त करने के लिए प्रयत्न करना चाहिए। जिससे संसार के बहुत से पाप तथा पाप भावनाओं से वंचित रहने की योग्यता प्राप्त हो जावे और संसार सुखमय हो जावे। (देखें जीवाभिगम पन्ना नं. ११७).

P. P. Ac. Gunratansuriji M.S. Jin Gun Aaradhak Trust

वार्दलिक भक्त--दुर्दिन, वर्षा आती हो तब साधु के लिए तैयार किया हुआ।

इसीप्रकार ग्लान के लिए तैयार किया हुआ आहार, शय्यातर पिंड, राज पिंड--इन सब प्रकार के आहारों के संबंध में जानकारी रखना।

'आधाकर्म निष्पाप है' इसप्रकार अनेकों के बीच में बोलकर खुद आधाकर्म खाता है, तब उस बोलनेवाले, खानेवाले, देनेवाले, बतलानेवाले सबको उपरोक्तानुसार ही विराधना समझनी चाहिये ※ ७७

※ ७७. मोक्ष प्राप्ति के लिए मुनिवेष स्वीकार करने के बाद भी मुनियों की परिस्थिति मानसिक या शारीरिक दृष्टि कोण से एक समान नहीं रहती है। भूख सहन करना अत्यन्त कठिन है। उस समय बाल मुनि, ग्लान मुनि, भूख से पीडित मुनि, भूख को नहीं सहन करनेवाले, पढ़नेवाले तथा पढ़ानेवाले तथा वृद्ध मुनि को परिस्थिति वश आधाकर्म आदि आहार करने की जरुरत पड़ती है।

जो निरवद्य नहीं है फिरभी यदि स्थानक विषय आलोचन और गुरु समक्ष प्रतिक्रमण कर लेता है तो भगवतीसूत्र उसे आराधना कहता है। किन्तु जान बूझकर धृष्टता, गृहस्थ के प्रति माया, इन्द्रिय लोलुपता आदि कारणों को लेकर आधाकर्मादि आहार करते है, और करने के बाद भी यदि मानसिक जीवन में उसके लिए आलोचना नहीं है, प्रतिक्रमण नहीं है तो उस मुनि को विराधना होती है।

सारांश इतना ही है कि जिस मुनि के पास आलोचना, प्रायश्चित पश्चाताप और प्रतिक्रमण जैसे भावशस्त्रों की विद्यमानता है, वह मुनि आराधक है।

P. P. Ac. Gunratansuriji M.S. Jin Gun Aaradhak Trust

आचार्य या उपाध्याय अपने विषय में शिष्यों को खेद रहित होकर स्वीकार करते हैं, उनमें से कितने तो उसी भव में सिद्ध हो जाते हैं. कितने ही दो भव कर के सिद्ध होते हैं अथवा तीसरे भव में तो अवश्य सिद्ध होते है।

जो दूसरों को अपशब्द (असत्य वचन) बोलकर, असद्भूत बोलकर, महान् महान् दोषों को प्रकाशित कर दूषित वचन कहते हैं वे उसीप्रकार के कर्म बांधते हैं। अर्थात् मनुष्य आदि योनि में उत्पन्न होते हैं जहाँ आभ्याख्यान फल--कर्म को भुगतना ही शेष है। ※ ७८

※ ७८. गृहस्थाश्रम के साथ संबंध रखनेवाले, माता, पिता, भाई, भोजाई (भाभी) तथा पुत्र परिवार का उत्कृष्ट वैराग्यपूर्वक त्याग करके दीक्षित हुए मुनिराजों की आत्मा में सत्तामें रहेहुए कर्मों का उदयकाल चाहे जब आ सकता है, और अल्प काल के लिए भी मुनिराजों के मन में अधैर्य, खेद, गृहस्थाश्रम की स्मृति, मुक्त भोगों की याद, तथा कषाय आदि औदयिक भाव उपस्थित होते ही चित्त की चलायमान अवस्था की संभावना अवश्यंभाविनी है। उस समय अस्थिर हुए मुनिराजों को तथा साध्वीजी महाराजाओं को सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान तथा चारित्र में स्थिर रखने के लिए संघ व्यवस्था में आचार्य भगवान तथा उपाध्याय भगवान विद्यमान होते हैं।

मुनिधर्म की अत्यन्त सुचारु रूप से आराधना करने के पश्चात वे पुण्यवान अपनी योग्यता के माध्यम से उपाध्याय पद प्राप्त करते हैं।

वहाँ उन पुण्यवानों की चारित्र स्थिरता सब तरह से बढ़ती जाती है। काम, क्रोध, बैर, विरोध तथा पक्षपात की भावना से सर्वथा परे होते हैं। दयालु

P. P. Ac. Gunratansuriji M.S. Jin Gun Aaradhak Trust

भाव होने के कारण संघीय बंधन के अनुसार उनका मुख्य कार्य एकही होता है, और वह यह है :– शिथिल, अस्थिर, आलसी मुनिराजों को अपने पुत्र की तरह समझकर उनको धर्म में स्थिर रखें। आश्वासन देकर ज्ञान ध्यान के प्रति जागृत करे तथा "जैन धर्म तथा जैनत्व के आचार विचार के प्रति उदाहरण देकर तथा जिस मुनि की जैसी शिथिलता होती है उसके अनुसार उनको आगमीय पाठों से संसार की असारता बताकर वापस भान में लाकर स्थैर्य प्राप्त कराने के लिए ही यह पद है।" उन उपाध्याम मुनिराजों में से जो पुण्यशाली जीव आचार्य पद को चमकाने के लिए समर्थ होते है। जिसके आत्मीय गुणों का विकास चरम सीमा पर पहुँचा हुआ होने से पूरे चतुर्विध संघ के वे मालिक बनते हैं। संघ के योग क्षेम के प्रति पूरे पूरे वफादार (भक्त) होते हैं। धर्म, संप्रदाय तथा क्रियाकांडों के नाम पर संघ में कुसंप न बढ़े, वैसे ख्यालात वाले होने से वे संघ के पूज्य बन जाते हैं।

आचार्य पद अत्यन्त उत्तरदायित्वपूर्ण होने से और भावदया ऊपर ही निर्भर होने से "इस पद से विभूषित किसको करना?" इसका निर्णय निर्युक्तिकार श्री भद्रबाहु स्वामीजी इस प्रकार देते हैं :—

आचार्य पद की योग्यता

१. आर्य देशोत्पन्न–आर्य देश में उत्पन्न हुआ जीवात्मा ही सुखपूर्वक ज्ञान प्राप्त कर सकता है।

२. विशिष्ट कुलोत्पन्न–अपने पिता की कुल परंपरा, सदाचार पर स्थित होनी चाहिए।

३. विशिष्ट जाति–माता के कुल की परंपरा संपूर्ण निर्दोष होनी चाहिए, तभी विनय गुण की प्राप्ति सुलभ होती है।

४. रूपवान्–सुन्दर रूप तथा शरीर का सुडौलपण होना जरूरी है जिससे उनके वचन शीघ्रता से ग्राह्य होते हैं।

P. P. Ac. Gunratansuriji M.S. Jin Gun Aaradhak Trust

५. **संहननधृतियुक्त**–जिससे व्याख्यान, तप आदि सदनुष्ठानों में थकावट महसूस न हो।

६. **अनाशंसी**–श्रोताओं से किसी भी पदार्थ की आकांक्षा नहीं रखे।

७. **अविकथन**–अपनी प्रशंसा के हवाई किले जहाँ बांधे जा रहे हैं वहाँ मौन रहें।

८. **अमायी**–शिष्य तथा संघ के साथ शठता का व्यवहार नहीं रखें।

९. **स्थिरपरिपाटी**–यानी आगमीय तत्त्व को भूलनेवाला न हो।

१०. **गृहीत वाक्य**–जिनके वचन अप्रतिहत हो।

११. **जितपरिषत्**–परवादियों से क्षुब्ध न हो।

१२. **जितनिद्र**–स्वयं अप्रमादी हो और व्याख्यान देने में प्रेम रखता हो तभी खुद के शिष्यों को अप्रमत्त बना सकता है।

१३. **मध्यस्थ**–वाद, विवाद और वितंडावाद से दूर रहकर संवादक बनने का भाव रखता हो।

१४. **देशभावज्ञ**– देश, काल को देखकर समजकर अप्रतिबद्ध विहार करने वाला हो और धर्मोपदेश भी देश काल के अनुकूल देने-वाला हो।

१५. **आसन्न लब्ध प्रतिभ**–सिद्धान्त, अवयव, तर्क, वाद जल्प, वितंडावाद, हेत्वा भास, छल, जाति और निग्रहस्थानों को जानकर सामने वाले वादी को निरुत्तर करने वाला हो।

१६. **नानाविधदेश भाषा विधिज्ञ**–जिससे अलग अलग देश के शिष्यों को और संघों को उन उन की भाषा द्वारा समझा सकता है।

P. P. Ac. Gunratansuriji M.S. Jin Gun Aaradhak Trust

१७. **पंचविधाचार युक्त**–स्वयं पंचविध आचार को पालनेवाला होने से उनके वचन शिष्यों के लिए श्रद्धेय हो जाते हैं।

१८. **सूत्रार्थोभयज्ञ**–सूत्रों में सम्यक्तया बताये हुए उत्सर्गमार्ग तथा अपवाद मार्ग को जानने वाला हो, समय समय पर शिष्यों को उदाहरण, नयवाद, तथा हेतु को समझाने वाला हो, संघ को नियंत्रण करने में निपुण हो, और जिसप्रकार संघ में संपसंगठन प्राप्त हो और वृद्धि हो, वैसेही भावों का प्रतिपादन करनेवाला हो।

१९. **ग्राहणाकुशल**–शिष्यों को विविध पद्धतियों से ज्ञान प्राप्त करानें के लिए समर्थ हो।

२०. **स्वपर समयवित्**–परमत का सुखपूर्वक खंडन करके स्वमत को स्थापित करनेवाला हो।

२१. **गंभीर**–स्वयं अक्रोधी हो।

२२. **दीप्तिमान**–दूसरों पर जिन का प्रभाव पड़े।

२३. **शिव**–संघ में उत्पन्न हुए 'मारी' इत्यादि रोग तथा क्लेश और कलह आदि भाव रोगों का नाश कराने में जो क्षमता रखता हो।

२४. **सौम्य**–शांत दृष्टिवाला हो तथा सब जीवों के दिल में उनके प्रति प्रीति उत्पन्न करानेवाला हो।

उपर्युक्तानुसार गुणों को धारण करनेवाले आचार्य भगवान अखिल संघ (साधु साध्वी श्रावक श्राविका) की सराहनीय नीति से संभाल रखता है, संघ के योगक्षेम में कोई कमी न आवे, इस बात को ध्यान में रखकर ही अपने शिष्यों को संभालते हैं।

गौतम स्वामी द्वारा पूछे गये प्रश्नों के उत्तर में भगवान महा-

P. P. Ac. Gunratansuriji M.S. Jin Gun Aaradhak Trust

वीर स्वामी फरमाते हैं कि ऐसे आचार्य भगवान तथा उपाध्याय भगवान ही इस भव में या दूसरे भव में मोक्ष में जाते हैं, यदि पहले के दो भवों में उनको मोक्ष की प्राप्ति न हो तो तीसरे भव में तो निश्चयात्मक रूप से होती हैं। यें तत्त्व भगवती सूत्र के हैं।

मृषावाद के प्रकार

मृषावाद बोलनेवालों के संबंधी प्रश्न के जबाव में भगवान ने फरमाया है कि मृषावाद द्वारा बांधें हुए कर्मों को लेकर जीव जहाँ जाते है, यानी जिस भव में जाते है वहाँ कर्मों को वेदते है।

मृषावाद का स्वरूप इसप्रकार है

१ **अलीक**–भूतनिन्हवरूप–यानी दूसरों के गुणों के सद्भाव को भी छुपाकर दूषित करते हैं। जैसे–सामनेवाला जीव ब्रह्मचर्य पालता है। फिर भी उसको निन्दित करने हेतु इसप्रकार कहना कि 'यह भाई ब्रह्मचर्य को नहीं पालता है, तपश्चर्या नहीं करता है, क्रिया कांड नहीं करता है इसप्रकार बोलना यह अलीक असत्य भाषण है।

२ **असद्भूत**–यानी 'जो चोर नहीं है, उसको चोर कहना, चौर्य कर्म का अभूत यानी विद्यमानता नहीं, तो भी यहै चोर है, ऐसा उद्भावन करना, वह असद्भूत अलीक है।

ये दोनों प्रकार के मिथ्यावचन बोलनेवाले के मन में हिंसकता, ईर्ष्यालुता, असहिष्णुता तथी वैर विरोध आदि वैकारिक भाव होते हैं।

यदि बोलनेवाला अहिंसक हो, जैसे साधक के सामने से हरिण जाता है, और तत्पश्चात् आनेवाला शिकारी उस साधक को पूछता है कि 'इधर से जाते हुए हरिण को देखं है? किस तरफ गये है? इस प्रकार पूछने पर भी महाव्रती साधक जवाब देते हैं कि "मैंने

हरिणों को नहीं देखा है," इस भाषण में यद्यपि असत्यता है, किन्तु परिणाम में दया पूर्वक अहिंसक भाव होने से, यह भाषा असत्य भाषा नहीं है।

जब अचोर को चोर कहना, ब्रह्मचारी को तपस्वी को, आस्तिक को, गुणी को, अब्रह्मचारी अधिक खानेवाला नास्तिक और मिथ्यात्वी कहना,

इसप्रकार के भाषण में अभिप्राय की दुष्टता, मन की मलिनता अवश्यमेव रही हुई होने से भगवती सूत्र इस भाषा को मृषावादी भाषा कहता है।

(३) **अभ्याख्यान**-दूसरों के सन्मुख किसी के दोषों को प्रकाशित करना। जैसे-इस संघाड़े में क्रियाकांड नहीं, तपश्चर्या नहीं, ज्ञान नहीं, इन आचार्यों में आचार्यत्व नहीं, भगवती सूत्र इस भाषण को अभ्याख्यान असत्य वचन कहता है। अथवा सद्भाव प्रतिषेध, यानी सन्मुख स्थित व्यक्ति में ब्रह्मचर्य, क्रियाकांड, ज्ञान और वैराग्य है, फिर भी उसके साथ हुए वैर विरोध अथवा संप्रदाय या सघाड़ावाद के कारण उसके सर्व गुणों का अपलाप करना, वह सद्भूत निह्नव है। अथवा अभूतोद्भावन यानी कलियुग की हवा और भौतिकवाद का प्रचार सब जीवों के प्रति एक समान होते हुए भी दूसरे संप्रदायों में या संघाड़ों में सब तत्त्वों का अपलाप करके खुद के संप्रदाय या संघाड़े के साधु-साध्वी में जैन शासन, जैन तत्त्व रहा हुआ है। ऐसी कल्पना का प्रचार करना, वह भी अभूतोदभावन अलीक वचन है। वैसे आत्मा नहीं, परलोक नहीं, वह सद्भूत निह्नव है। और आत्मा, चैतन्य स्वरूप, परिणामी, कर्ता, साक्षाद्भोक्ता, स्वदेह परिणाम, प्रति शरीर भिन्न और पौद्गलिक अदृष्ट आदि विशेषणों से युक्तिपुरस्सर होते हुए भी उसका विपरीत बुद्धि से अपलाप करना, वह भी सद्भूत निह्नव नाम का मिथ्यावचन है। और आत्मा जड़, कूटस्थ, नित्य, अकर्ता, अभोक्ता, व्यापक और एक ही आत्मा है। इसप्रकार कहना वह अभूतोद्भावन नाम का अलीक वचन है।

P. P. Ac. Gunratansuriji M.S. Jin Gun Aaradhak Trust

आत्मा के सद्भूत विशेषण

अब आत्मा के सद्भूत विशेषणों की संक्षेप में सयुक्तिक जानकारी प्राप्त करते हैं।

१. चैतन्य स्वरूप–अर्थात अनादि कालीन आत्मा चैतन्य स्वरूपी है। यानी स्वरूपी आत्मा और स्वरूप चैतन्य गुण है। वे दोनों भिन्न भी है और अभिन्न भी। क्योंकि पदार्थ मात्र का स्वरूप (गुण) अपने स्वरूपी गुणी को छोड़कर नहीं रह सकता, इसलिए अभिन्न है। और स्वरूपी द्रव्य होता है जब स्वरूप गुण होता है, इसलिए भिन्न है।

आत्मा का यह चैतन्य स्वरूप समवाय संबंध से नहीं किन्तु स्वतः है। जो आत्मा को जड़ मानते हैं वहाँ चैतन्य समवाय संबंध से आने के बाद उनमें ज्ञान का प्रकाश होता है।

इसका अर्थ यह हुआ कि उनके वहाँ अनंत शक्ति का मालिक आत्मा जड़ है। इसके अनुसार उनकी मान्यता इसलिए सच्ची नहीं है कि घटपट की तरह चैतन्य धर्म रहित पदार्थ मात्र जड़ होने के कारण अपने द्वारा अल्पांश भी हलन चलन नहीं कर सकते हैं। हमारी आत्मा वैसी नहीं है। क्योंकि यह आत्मा खुद की अनंत शक्तियों के माध्यम से शरीर, इन्द्रिय तथा मन का संचालन करने में समर्थ है। आत्मा के उपयोग बिना की इन्द्रियें तथा मन सर्वथा अकिंचित्कर है। इसलिए आत्मा चैतन्यस्वरूप वाली है वैसे ही दर्शनमय है और प्रतिक्षण उपयोगवाली है।

२. परिणामी–का अर्थ इसके अनुसार है। आत्मा अनादिकाल से कर्मों के संबंध से संबंधित है। और प्रतिसमय नये नये कर्मों को बांधता रहता है। उससे किये हुए और कराये हुए कर्मों को भोगने के लिए ही आत्मा "परिणाम धर्मी" है, यानी एक अवस्था को छोड़कर दूसरी अवस्था स्वीकार करना, उसे परिणाम कहते हैं।

जो आत्मा को कूटस्थ नित्य (किसी समय जिसमें किसी प्रकार का परिवर्तन न हो वह कूटस्थ नित्य कहा जाता है) मानते हैं, और क्षणिक धर्मी मानते हैं, उनके वहाँ आत्मा में प्रत्यक्ष दिखलाई देता हुआ सुख दुःख का अनुभव कराता हुआ परिणाम कैसे घट सकता है? ऐसी स्थिति में किये हुए कर्मों का भोग आत्मा किस रीति से करेगा? और अभी सुखी आत्मा पांच क्षण के पश्चात् किस प्रकार दुखी बनेगी?

आत्मा को एकान्त नित्य और कूटस्थनित्य मानते हुए सुख दुख, संयोग वियोग के प्रत्यक्ष अनुभव किये जाते हुए द्वन्द्व नहीं बन सकते और एकान्त क्षणिक मानते हुए भी सुख दुख का अनुभव नहीं हो सकता, इसीलिए आत्मा द्रव्य की अपेक्षा से नित्य है और पर्याय (शरीर) की अपेक्षा से अनित्य है।

इसप्रकार पदार्थ मात्र में द्रव्य और पर्याय का साहचर्य विद्वन्मान्य है। क्योंकि पर्याय विना का द्रव्य और द्रव्य विना का पर्याय किसी भी समय नहीं हो सकता। घट पदार्थ में मिट्टी द्रव्य है और घट पर्याय है। कंठी चूड़ी (बंगड़ी) में सुवर्ण द्रव्य है आकार विशेष पर्याय है।

'घड़ा फूटा' यानी मिट्टी द्रव्य कायम रहकर उनका घट पर्याय नष्ट हो जाता है। और उसके टुकड़े (ठीकरे) स्वरूप उत्पाद रहता है।

उपर्युक्तानुसार जीव द्रव्य कायम रहता है किन्तु किये गये कर्मों को भोगने के लिए एक शरीर का नाश होता है और दूसरे शरीर का उत्पादन होता है, जब तक आत्मा के प्रदेशों पर कर्मराज की सत्ता है तबतक नये नये शरीर धारण किये विना छुटकारा नहीं है। "भोगायतनं शरीरम्" इन कारणों को लेकर आत्मा परिणाम धर्मी है।

(३) कर्त्ता, मिथ्यात्व, अविरति, प्रमाद और कषायादि के योग से मन, वचन, और काया से आत्मा में किये जाते हुए कर्मों का कर्तृत्व धर्म भी

P. P. Ac. Gunratnasuriji M.S. Jin Gun Aaradhak Trust

है।" और जो कर्त्ता होता है वह कर्मों का भोक्ता भी होता है।

जो आत्मा अपने किये हुए पुण्य और पाप के फल भुगत सकती है तो उसे कर्तृत्व धर्मयुक्त मानने में आपत्ति कहाँ आ सकती है ? कर्मों को प्रकृति कहते हैं और सुख दुख के अनुभव पुरुष करता है, ये सब हास्यास्पद वार्ते सुज्ञ मनुष्य के मस्तिष्क में किसप्रकार उतरेगी ? इसलिए जो कोयला खाता है उसका मुंह काला होता है ? इस न्याय के अनुसार पुरुष ही कर्म करनेवाला हैं और वही भोगने वाला है।

(४) साक्षाद् भोक्ता–यानी अपने (स्वयं के) द्वारा किये गये पुण्य तथा पाप के कर्मों को पुरुष साक्षात् भोगनेवाला है।

"जो करेगा वह भोगेगा" "जो जसकर ही वह तस फल चाखा" इत्यादि महापुरुषों की उक्तियाँ इसीलिए चरितार्थ होती है कि पुरुष कर्मों का कर्ता और भोक्ता भी है।

प्रकृति स्वतः जड़ होने के कारण चैतन्यमय आत्म के प्रयत्न के विना कोई भी कार्य नहीं कर सकती है। इसलिए आत्मा में कर्तृत्व की तरह भोक्तृत्व भी है।

(५) स्वदेह परिणाम :–आत्मा क्या सर्वव्यापक है ? अंगूठा जितना है ? जैन शासन जवाब देता है कि आत्मा शरीर व्यापी है। आत्मा के गुण शरीर में दिखाई देते है, इसलिए शरीर व्यापी है।

जो पदार्थ जहाँ पर रहा हुआ होता है उतने ही प्रदेश में उनके गुणों की विद्यमानता होती है। घड़ा मेरे वहाँ होंवे और उसका लाल, काला रंग दूसरे स्थान पर रहे, ऐसा संभव नहीं है। उसीप्रकार आत्मा के ज्ञानादि गुण और सुख दुःखादि पर्याय शरीर प्रमाण में ही दिखाई देता है। आत्मा जो सर्वव्यापक हो तो उसके गुण और पर्याय भी सर्वत्र दीखने चाहिए।

P. P. Ac. Gunratansuriji M.S. Jin Gun Aaradhak Trust

किन्तु शरीर से अतिरिक्त आत्मा का गुण किसीने नहीं देखा। दीखने में नहीं आए हैं। इसलिए आत्मा सर्वव्यापक नहीं है।

आत्मा अनन्त शक्ति का मालिक होने से अपने प्रदेशों का संकोच और विस्तार कर सकता है तभी हाथी के शरीर में तथा चींटी के शरीर में अबाध रूप से रह सकता है।

यदि शरीर से अन्यत्र सर्वव्यापी आत्मा मानते हैं तो गंदे स्थानों में और दूसरों के दुख संवेदन में हमारी आत्मा के प्रदेशों का भ्रमण होते हुए हमारा मस्तिष्क हमेशा दुर्गन्ध और दुःखों का अनुभव करनेवाला रहेगा। किन्तु किसी समय भी दूसरों के दुःखों का संवेदन हमको नहीं होता है और हमारी आत्मा का प्रदेश गंधे स्थान पर नहीं जाता है।

अंगूठा या चावल के दाने की जितनी मात्रा में मानते हुए शरीर के किसी स्थान में हुई वेदना को आत्मा किस प्रकार अनुभव करेगी?

शरीर के किसी भाग में हुई वेदना का अनुभव आत्मा को होता है, इसलिए आत्मा अंगूठे के अनुसार नहीं है। किन्तु शरीर के पूर्ण प्रदेश के साथ आत्मा के असंख्य प्रदेश ओत प्रोत होकर रहे हुए हैं।

(६) प्रतिशरीर भिन्न का अर्थ इसके अनुसार है कि अखिल ब्रह्माण्ड में आत्मा एक नहीं हो सकती। किन्तु जितने चेतनायुक्त शरीर दिखाई देते हैं, सबमें आत्मा भी भिन्न भिन्न है।

अखिल संसार में एक ही आत्मा की मान्यता किस प्रकार संभव हो सकती है? यदि एक ही आत्मा मानते हैं तो सबके शरीर सुख, दुख, ज्ञान, इच्छा, राग, द्वेष और मोहमाया भी एक समान होनी चाहिए किन्तु ऐसा अनुभव तो कहीं नहीं होता है। इसलिए प्रत्येक शरीर में आत्मा को भिन्न भिन्न मानने से संसार का व्यवहार जो प्रत्यक्ष दिखाई देता है। उसका सत्य स्वरूप अनुभव में आयगा।

P. P. Ac. Gunratansuriji M.S. Jin Gun Aaradhak Trust

(७) पौद्‌गलिक अदृष्ट–यद्यपि आत्मा अजर, अमरा अछेद्य, अभेद्य है फिर भी कर्मो के आवरण से घिरी हुई होने के कारण ही अभी की परिस्थिति में अजरत्व, अमरत्व, अछेद्यत्व और अभेद्यत्व, विशेषण आत्मा पर लागू नहीं हो सकते हैं। क्योंकि—पौद्‌गलिक अदृष्ट (कर्म, माया, प्रकृति वासना) रूपी मिट्टी के भार से आत्मा रूपी तूंबा ढका हुआ है अतः। "पुनरपि जननं पुनरपि मरणं पुनरपि जननी जठरे शयनम्।" इस न्याय से आत्मा को शरीर धारण करना पड़ता है। मरण होता है। रीबना (दुःख के मारे आर्तनाद करना पड़ता है। प्रतिक्षण छेदाना होता है, तथा भेदाना भी होता है। और नये नये शरीर में अनन्त वेदनाओं को भोगने के लिए भवभवान्तर में चक्कर लगाना पड़ता है, जहाँ भूख प्यास, गर्मी, ठंडी, रोग, शोक आदि आधि व्याधि और उपाधियाँ भोगनी पड़ती हैं। यह सब पौद्‌गलिक अदृष्ट का प्रभाव है।

उपर्युक्त के अनुसार आत्मा के यथार्थ स्वरुप की जानकारी हो जानी चाहिए और इसके अनुसार बोलना, वही सत्य वचन है। और इसके विपरीत कहना अलीक वचन है। ऐसी अलीक भाषी आत्मा कर्मों का बंधन करके आगामी भव में अव्यक्त भाषा, गूंगापन, जड़ बुद्धि, शरीर दोष युक्त वाणी हीन, जुगुप्सित भाषा बोलनेवाला और दुर्गन्ध मुख को प्राप्त करनेवाला होगा।

॥ छठवा उद्देशा समाप्त ॥

P. P. Ac. Gunratansuriji M.S. Jin Gun Aaradhak Trust

परमाणु पुद्गल

इस उद्दशक में परमाणु पुद्गल संबंधी बहुत विस्तार से वर्णन है और उसके उपरांत नैरयिक और एकेन्द्रिय के परिग्रह का खुलासा है। परमाणु पुद्गल का वर्णन बहुत विस्तारवाला है। यहाँ तो संक्षेप में सार लिया जाता है। सार यह है:-

परमाणु पुद्गल कदाच कंपे या नभी कंपे, वैसे परिणमे या न परिणमे।

दो प्रदेश का स्कंध कदाचित् कंपे कदाचित् न कंपे, कदाचित् परिणमे, कदाचित् न परिणमे, कदाचित् एक भाग कंपे कदाचित् एक भाग न कंपे।

तीन प्रदेशवाला स्कंध कदाचित् कंपे कदाचित् न कंपे कदाचित् एक भाग कंपे, एक भाग न कंपे, कदाचित् एक भाग कंपे, बहुदेश न कंपे, कदाचित् बहु भाग कंपे, एक भाग न कंपे।

चार प्रदेशवाला स्कंध-कदाचित् कंपे, कदाचित् न कंपे, कदाचित् एक भाग कंपे, एक भाग न कंपे, एक भाग कंपे, बहु भाग न कंपे, बहुभाग कंपे, एक भाग न कंपे, अनेक भाग कंपे, अनेक भाग न कंपे।

P. P. Ac. Gunratansuriji M.S. Jin Gun Aaradhak Trust

इसीप्रकार पांच प्रदेशवाले स्कंध से लेकर यावत् अनंत प्रदेशवाले स्कंध तक हरेक स्कंध के लिए समझना है।

परमाणु-पुद्गल तलवार या अस्त्रों का आश्रय ले, किन्तु वे न तो छेदे जाते हैं और न भेदे जाते हैं। इसप्रकार असंख्य प्रदेशवाले स्कंध तक जानना। किन्तु अनंत प्रदेशवाला स्कंध हो तो कोई छेदा-भेदा जाता है और कोई एक छेदा-भेदा नहीं जाता है।

इसप्रकार परमाणु-पुद्गल से लेकर अनंत प्रदेश वाले स्कंध तक प्रत्येक पुद्गल के लिए 'अग्निकाय के मध्य में प्रवेश करे तो ?' 'पुष्कर संवर्त नाम के बडे मेघ के मध्य में प्रवेश करे ?' या 'गंगा महा नदी के प्रवाह में हो तो ? उदकावर्त या उदकबिंदु के प्रति प्रवेश करे तो ? इसप्रकार के प्रश्न किये जा सकते हैं ? जहाँ जैसा परिणाम होता है, वहाँ वैसा, यानी छेद-भेद के बदले जले। भिगा ? जाता है। नष्ट हो ? आदि कहे जा सकते हैं।

परमाणु पुद्गल अनर्ध (अर्ध रहित) अमध्य और अप्रदेश है। दो प्रदेश वाला स्कंध सार्ध है। सप्रदेश और मध्यरहित है। तीन प्रदेशवाला स्कंध अनर्ध है। समध्य है और सप्रदेश है।

संक्षेप में सम संख्यावाला, सम संख्यावाले स्कंध के लिए दो प्रदेशवाले स्कंध की तरह सार्धादि विभाग जानना और विषम स्कंध सम संख्या वाले स्कंधो के लिए तीन प्रदेश वाली स्कंध की तरह जानना।

P. P. Ac. Gunratansuriji M.S. Jin Gun Aaradhak Trust

इससे आगे बढ़कर संख्येय प्रदेश वाला स्कंध कदाचित् सार्ध हो, अमध्य हो और सप्रदेश हो, कदाचित् अनर्ध हो, समध्य हो और सप्रदेश भी हो।

इसीप्रकार असंख्येय प्रदेश वाले और अनंत प्रदेश वाले स्कंध के लिए भी जान लेना चाहिये।

परमाणु पुद्‌गल के परस्पर के स्पर्श संबंधी ९ विकल्प कहे हैं:-

१ एक देश से एक देश को नहीं स्पर्श करना।

२ एक देश से अनेक देशों को नहीं स्पर्श करना।

३ एक देश से सर्व देशों को स्पर्श न करना

४ अनेक देशों से एक को स्पर्श नहीं करना।

५ अनेक देशों से अनेक देशों को नहीं स्पर्श करना।

६ अनेक देशों से सबको स्पर्श नहीं करना।

७ सर्व से एक देश को नहीं स्पर्श करना।

८ सर्व से अनेक देशों को नहीं स्पर्श करना।

९ सबसे सर्व को स्पर्श करना।

इसमें से परमाणु पुद्‌गल को स्पर्श करते हुए परमाणु पुद्‌गल सर्व से सर्व को स्पर्श करता है। (नवमां भेद)

इन तीन प्रदेशवाले स्कंध की तरह चार पांच और यावत अनंत प्रदेश वाले स्कंध के साथ परमाणु पुद्‌गल को स्पर्श होते हैं। भ. सू. ३१

P. P. Ac. Gunratansuriji M.S. Jin Gun Aaradhak Trust

अब परमाणु पुद्गल को स्पर्श करते हुए दो प्रदेश वाला स्कंध तीसरे और ९ में को बिकल्प से स्पर्शता है।

दो प्रदेश वाले स्कंध को स्पर्श करते हुए दो प्रदेश वाला स्कंध, १ ला, ३ रा, ७ वाँ और ९ में को विकल्प से स्पर्शता है।

तीन प्रदेश वाले स्कंध को स्पर्श करते हुए दो प्रदेश वाला स्कंध पहले तीन (१--२--३) और अन्तिम तीन (७--८--९) विकल्प से स्पर्शते हैं और बीच में के तीन विकल्प से प्रतिषेध करना।

जैसे दो प्रदेश वाले स्कंध को ३ प्रदेशवाले स्कंध की स्पर्शता कराई, इसी प्रकार चार प्रदेशवाला, पांच प्रदेशवाला, यावत् अनंत प्रदेशवाला स्कंध की स्पर्शता कराना।

अब परमाणु पुद्गल को स्पर्श करते हुए तीन प्रदेशवाला स्कंध तीसरे, छठे, और नवमे विकल्प से स्पर्शते हैं। दो प्रदेशवाले स्कंध को स्पर्श करते हुए तीन प्रदेशवाला स्कंध १–३–४–६–७ और ९ को विकल्प से स्पर्शता है।

तीन प्रदेशवाले स्कंध को स्पर्श करते हुए तीन प्रदेशवाला स्कंध सर्व स्थानों से स्पर्शता है इसलिए नवमें में विकल्प से स्पर्शता है।

जैसे तीन प्रदेशवाले स्कंध ने तीन प्रदेशवाले स्कंध का स्पर्श कराया, तीन प्रदेशवाले स्कंध ने चार, पांच यावत् अनंत प्रदेशवाले

P. P. Ac. Gunratansuriji M.S. Jin Gun Aaradhak Trust

स्कंध के साथ संयोजन करना, और जैसे तीन प्रदेश वाले स्कंध के लिए कहा है, वैसे यावत् अनंत प्रदेशवाले स्कंध तक कहना।

परमाणु पुद्गल कम से कम एक समय तक रहता है, और अधिक से अधिक असंख्य काल तक रहता है। इसीप्रकार यावत् अनंत प्रदेशवाले स्कंध के लिए जानना।

एक आकाश प्रदेश में स्थित पुद्गल जहाँ होता है उसी स्थान पर या दूसरे स्थान पर जघन्य से एक समय तक और अधिक से अधिक आवलिका के असंख्येय भाग तक सकंप रहता है। इसप्रकार आकाश के असंख्ये प्रदेश में स्थित पुद्गल के लिए जानकार होना। (समझना)

एक आकाश प्रदेश में अवगाढ पुद्गल जघन्य से एक समय और अधिक से अधिक असंख्येय काल तक निष्कंप रहता है। इसप्रकार असंख्य प्रदेशावगाढ पुद्गल के लिए भी जानना।

पुद्गल एक गुणा काला, जघन्य से एक समय तक और अधिक से अधिक असंख्य काल तक रहता है। इसप्रकार अनंत गुण काल तक पुद्गल के लिए जानना।

इसप्रकार वर्ण, गंध, रस और स्पर्श तक अनंत गुण रुक्ष पुद्गल के लिए जानना। और इसप्रकार सूक्ष्म परिणत पुद्गल के लिए और बाद परिणत पुद्गल के लिए भी जानना।

शब्द परिणत पुद्गल कम से कम एक समय तक और अधिक से अधिक आवलिका के असंख्य भाग तक रहता है।

P. P. Ac. Gunratansuriji M.S. Jin Gun Aaradhak Trust

अशब्द परिणत पुद्गल, जैसे एक गुण काले पुद्गल का कहा है। वैसे जानना।

परमाणुरूप पुद्गल परमाणुपन छोड़कर दुबारा परमाणुपन प्राप्त करते कम से कम एक समय और अधिक से अधिक असंख्य काल लगता है। इस अंतर में वह परमाणु छोड़कर स्कंधादि-रूप में परिणमता है। और वह वापस परमाणु प्राप्त करता है तो ऐसा करने में इतना ही समय लगता है।

दो प्रदेश वाले स्कंध को जघन्य से एक समय और उत्कृष्ट से अनंतकाल का अंतर है। इसप्रकार अनंत प्रादेशिक स्कंध तक जानना।

एक प्रदेश में स्थित सकंप पुद्गल को, अपने गिरते कंपन को छोड़कर, दुबारा कंपन करते हुए जघन्य से एक समय और उत्कृष्ट से असंख्य काल तक का अंतर हो, इसप्रकार असंख्य प्रदेश स्थित स्कंध के लिए भी जान लेना।

एक निष्कंप पुद्गल अपनी निष्कंपता छोड़ देता है और फिर दुबारा उसे निष्कंपता प्राप्त करते जघन्य से एक समय और उत्कृष्ट से आवलिका का असंख्य भाग इतना समय लगता है।

इसप्रकार असंख्य प्रदेश स्थित स्कंध के लिए भी जान लेना चाहिए।

वर्ण, गंध, रस, स्पर्श, सूक्ष्म परिणत और बादर परिणतों के लिए उसका जो स्थितिकाल बताया है, वही अंतर काल है।

P. P. Ac. Gunratansuriji M.S. Jin Gun Aaradhak Trust

शब्द परिणत पुद्गल को जघन्य से एक समय और उत्कृष्ट से असंख्यकाल का अंतर होता है। पुनः शब्द रूप में परिणमने में इतना समय लगता है।

अशब्द परिणति पुद्गल को जघन्य से एक समय और उत्कृष्ट से आवलिका को असंख्येय भाग अंतर होता है। अशब्द परिणत स्वभाव को छोड़ने के पश्चात् वापस उसी स्वभाव में आते हुए, इतना समय लगता है।

द्रव्य स्थानायु, क्षेत्रस्थानायु, अवगाहनास्थानायु और भावस्थानायु, इन सब में सब से थोड़ा क्षेत्रस्थानायु है। उनकी अपेक्षा असंख्यगुण द्रव्यस्थानायु है। और उनकी अपेक्षा भावस्थानायु असंख्यगुण है।

क्षेत्र, अवगाहना, द्रव्य और भावस्थानायु के अल्प बहुत्व में क्षेत्र स्थानायु सर्व से अल्प है, और बाकी के स्थान असंख्येय गुण है ※

जीवों का आरंभ परिग्रह

नैरयिक आरंभ वाले हैं और परिग्रह वाले हैं। क्योंकि नैरयिक पृथ्वी काय से लेकर त्रसकायतक समारंभ करते हैं

※ भगवती सूत्र का यह चालु प्रश्नोत्तर अत्यन्त स्पष्ट रीति से 'आर्हत् दर्शन दीपिका' के पत्र ६९३ से ७०१ तक में चर्चित है। उनको वहाँ देख लीजिये (देखिये)

P. P. Ac. Gunratansuriji M.S. Jin Gun Aaradhak Trust

उन्होंने शरीर परिगृहीत किया है। कर्म ग्रहण किया है और सचित, अचित तथा मिश्र द्रव्य भी ग्रहण किये हुए हैं। इसलिए वे परिग्रहवाले भी हैं।

इसीप्रकार असुर कुमार आरंभवाले और परिग्रहवाले है। क्योंकि वे भी पृथ्वीकाय से लेकर त्रसकायतक का वध करते हैं। उन्होंने शरीर, कर्म, भव आदि को ग्रहण किया हुआ है। आसन, शयन और उपकरण ग्रहण किया हुआ है। उसीप्रकार सचित, अचित और मिश्र द्रव्य भी ग्रहण किये हुए हैं। इसलिए वे सपरिग्रह है।

इसी प्रकार स्तनित कुमार के लिए भी जान लेना, और नैरयिक के लिए जो कहा है। उसीप्रकार एकेन्द्रिय के लिए जान लेना। इसीप्रकार दो इन्द्रिय, तीन इंद्रिय, चार इंद्रिय और तिर्यंच पंचेन्द्रिय जीवों के लिए भी जानलेना। और जैसे तिर्यंच योनि के जीवों के लिए कहा है, उसीप्रकार मनुष्यों के लिए भी जान लेना।'

वाणमंतर, ज्योतिषि और वैमाणिकों को भवनवासी देवों के जैसे जानलेना। ※ ७९.

※ ७९. नारकदेव भी क्या पाप बांध सकते है?

मानव अवतार प्राप्त किये मनुष्य के पास तलवार, भाला, बंदूक, छुरी, कलम, जीभ? लकड़ी, व्यापार, लेनदेन, कोर्ट, कचहरी, आदि परिग्रह और स्त्री की माया होने के कारण दुर्बुद्धिवश पाप करता है। हम सब

P. P. Ac. Gunratansuriji M.S. Jin Gun Aaradhak Trust

उसे जानते हैं। किन्तु नरक गति के नारक, देवगति के देव, पशुओं पक्षियों तथा एकेन्द्रियादिजीव नये पाप कर सकते हैं ? वे क्यों पाप करते होंगे ? यह बात जानने के लिए यह प्रश्नोत्तर है।

संसार का प्राणिमात्र शरीर धारी है। और जबतक शरीर है तब तक परिग्रह है। अथवा शरीर ही सबसे बड़ा परिग्रह है। क्योंकि इस शरीर से ही संसार का परिग्रह बढ़ता है। और जहाँ परिग्रह है, वहाँ आरंभ है। और जहाँ आरंभ समारंभ है वहाँ नये पाप बंधाये बिना नहीं रहते है। शरीर मात्र का मूर्च्छारूप परिग्रह केवलज्ञान की प्राप्ति के लिए यदि बाधक है ? तो फिर शरीर की ममता के वश होकर बाह्य परिग्रह को बढ़ानेवाले व्यक्ति को केवलज्ञान किस प्रकार प्राप्त हो सकता है ? क्योंकि बाह्य परिग्रह प्रायः करके आभ्यन्तर परिग्रह का मूल कारण है। और इस आभ्यन्तर परिग्रह का त्याग ही वस्तुतः त्याग हैं। उसके बिना आन्तर जीव की शुद्धि सर्वथा अशक्य है।

बाह्य परिग्रह का सर्वथा त्याग करने के बाद यदि पुण्यवान् का आन्तरमन संप्रदाय तथा संघाड़ावाद के नशे में चूर हो और सर्वथा नग्न अवस्था स्वीकार करने के बाद भी आन्तर जीवन में क्लेश, वैर, हठाग्रह, और अपने दल के प्रति असीम ममता, और अन्य मुनियों की, आचार्यों की निंदा की प्रवृत्ति चालू हो तो ऐसी स्थिति में आभ्यन्तर परिग्रही भयंकर कर्मों को बांधे बिना नहीं रह सकता। वैसे ही बाह्य त्याग की चरमसीमा भी उस साधक को साध्य की प्राप्ति नहीं करा सकता है। क्योंकि साध्य की प्राप्ति को अमूर्च्छात्मक बाह्य परिग्रह की बाधा नहीं होती है किंतु आभ्यन्तरपरिग्रह का अल्पांश भी साध्यसिद्धि में विघ्न करता है। संयम की शुद्धि के लिए स्वीकार किया जाता हुआ बाह्य परिग्रह भी आभ्यन्तर परिग्रह के त्याग की लक्ष्य भूमि को सामने रखकर यदि स्वीकार करेंगे तभी वह परिग्रह 'धर्मोपकरण' रूप में साधक को सहायक बनेगा। अन्यथा अधिकरण रूप में बनते देर नहीं लगेगी।

P. P. Ac. Gunratansuriji M.S. Jin Gun Aaradhak Trust

नरकगति के जीव क्या आरंभ वाले हैं ? परिग्रहवाले हैं ? गौतमस्वामी द्वारा जब यह प्रश्न पूछा गया, तब दिव्य ज्ञानी और जो जीव मात्र के द्वारा छोड़े गये पुद्गल परिणामों की क्रिया विक्रिया को जाननेवाले, किस पुद्गल का किस प्रकार का नाश होने वाला है अथवा हो रहा है, उसे प्रत्यक्ष करनेवाले ऐसे भगवान महावीर स्वामी ने इसप्रकार कहा है; हे गौतम, नारक जीव परिग्रह और आरंभ वाले हैं। उन के शरीर हैं, कर्म हैं, तथा सचित्त, अचित और मिश्र द्रव्यों का परिग्रह है । इसलिए त्रसकाय जीवों का आरंभ करनेवाले होने से नये कर्मों को भी बांधते हैं ।

जिस गति में से नरक में जाने की योग्यता वाले जीव नरक भूमि में जाते हैं । उनका अध्यवसाय बहुत ही खराब वैरयुक्त, पापिष्ठ, तथा क्लिष्ट होने के कारण नरक में जाने के बाद भी उन अध्यवसायों के परिणाम में नारक जीव हमेशा वैर करनेवाले और वैर को बढ़ानेवाले और वैर का बदला लेने की भावना रखने वाले होने से आरंभ के मालिक बन जाते हैं। वैर, क्रोध, मान–माया–लोभ आदि आन्तर परिग्रह के कारण सामने वाले दूसरे नारक जीव को देखते ही वैरादि की लेश्याओं से वह नारक जीव ओत प्रोत हो जाता है । और अपनी वैक्रिम लब्धि से अनेक प्रकार के हिंसक शस्त्रों का परिग्रह उपार्जन करके परस्पर मारकाट करते हैं । और भयंकर वेदनाओं कों भोगते हैं। जो दुबारा कर्म बंधन का कारण बन जाता है। दूसरी बात यह है कि मनुष्य अवतार को छोड़कर नरक भूमि में जानेके पहले ही उस मानव के नरक के संस्कारों की लेश्या उदय में आजाने से उनके संपूर्ण आत्मिक प्रदेश (आठ रुचक प्रदेश बिना) भी क्रोध और वैरमय बन जानेसे थोड़ी बहुत भी प्राप्त की हुई ज्ञानसंज्ञा भी दब जाती है और भयंकर वैर कर्म के सन्निपात में किसी जीव के साथ क्षमापना, मिच्छामि दुक्कड़, भव आंलोयणा, पुद्गलों का परित्याग, और उससे जो हो गई है तथा होनेवाली हिंसा का त्याग किये बिना ही वे जीव नरक में जाते हैं। उससे उनके मरने के बाद भी शेष बचा हुआ धन, शस्त्र, वस्त्र आदि

P. P. Ac. Gunratansuriji M.S. Jin Gun Aaradhak Trust

पांच हेतु

१	२
१ हेतु को जानते हैं।	१ हेतु से जानता है।
२ हेतु को देखते हैं।	२ हेतु से देखता है।
३ हेतु के प्रति सम्यक्तया श्रद्धा रखते हैं।	३ हेतु से अच्छी रीति से श्रद्धा है।
४ हेतु को अच्छी तरह प्राप्त करते हैं।	४ हेतु से अच्छी रीति से प्राप्त करते हैं।
५ हेतुवाले छद्मस्थ की मृत्यु होती है।	५ हेतु से छद्मस्थ मरण करते हैं।

सामग्री भी दूसरे जीवों को क्लेश करनेवाली होनेसे उन सबका पाप उस वस्तु के मूल मालिक को भी लगता है।

इसी कारण से लोकोत्तर जैन शासन वारंवार फरमाते हैं कि 'आप अपनी जीवन-यात्रा को अनासक्त, सम्यक्त्व और समता भाव से पूर्ण करोगे और पुनः पुनः मिच्छामि दुक्कडं देने की भावना को जागृत रखोगे। जिससे इस भव की कोई भी वस्तु हमारे मरने के बाद हमारे को तथा दूसरों को बाधक नहीं बन सकती।

असुरकुमार तथा स्तनितकुमार देव परिग्रही होने के कारण पृथ्वी काय तथा त्रस जीवों का वध करते हैं। क्योंकि उनको भी शरीर परिगृहीत है। उससे उनके देव और देवियों का परिग्रह है देवगति में आने के पहले मनुष्य, मनुष्य स्त्रियें, तिर्यंचों तिर्यंच स्त्रियें, आसन, शयन, मिट्टी के बर्तन, कांसी के बर्तन, कढ़ाई, कुड़छी आदि को ग्रहण किया है। इसलिए परिग्रह

P. P. Ac. Gunratansuriji M.S. Jin Gun Aaradhak Trust

३	४
१ हेतु को नहीं जाने।	१ हेतु से नहीं जाने।
२ हेतु को नहीं देखे।	२ हेतु से नहीं देखे।
३ हेतु को अच्छी रीति से नहीं श्रद्धे।	३ हेतु से अच्छी रीति से नहीं श्रद्धे।
४ हेतु को अच्छी रीति से नहीं प्राप्त करे।	४ हेतु से अच्छी रीति से नहीं प्राप्त करे।
५ हेतुवाला अज्ञान मरण न करे।	५ हेतु से अज्ञान मरण करे।

और आरंभवाला है। एकेन्द्रिय जीव भी कर्मवाले होनेसे परिग्रही और आरंभी है। इस प्रकार दो इन्द्रिय, तीन इन्द्रिय और चार इन्द्रिय जीवों के लिए भी समझ लेना।

तिर्यंच, पंचेन्द्रिय चीव भी कर्मों को ग्रहण किये होने से पर्वत, शिखर, शैल, शिखरवाले पहाड, जल, स्थल, गुफा, पानी का झरना, निर्झरणा, जल के स्थान, कुआ, तालाब, नदी, वावडी, नाली (मोरी) आदि असंख्य स्थानों को परिगृहीत किये हैं। इसलिए परिग्रही है और आरंभी है। मनुष्यों, वाणमंतरों, ज्योतिषियों और वैमानिकों के लिए ऐसा ही जानलेना। इस-प्रकार प्रतिसमय जीवात्मा कर्म बांधता है।

सार इतना ही है कि यह पच्चकखाण प्रतिक्रमण, आलोचना, गर्हणा और पाप भीरूता बिना के जीव को किस समय, कैसे संस्कार, स्वप्न और लेश्याएं उदय में आवेगे, उनके संबंध में कुछ कहा नहीं जा सकता। ऐसा होनेपर जीवन में क्रोध, मान, माया और लोभ का प्रवेश होता है तब जीवात्मा की दशा कर्मों का बंधन करने योग्य होते देर नहीं लगती।

P. P. Ac. Gunratansuriji M.S. Jin Gun Aaradhak Trust

५	६
१ अहेतु को जाने।	१ अहेतु से जाने।
२ अहेतु को देखे।	२ अहेतु से देखे।
३ अहेतु को अच्छी रीति से प्राप्त करे।	३ अहेतु से अच्छी रीति से श्रद्धे।
४ अहेतुवाला केवली मरण करे	४ अहेतु से अच्छी रीति से प्राप्त करे।
	५ अहेतु से केवली मरण करे।

७	८
१ अहेतु को नहीं जाने।	१ अहेतु से नहीं जाने।
२ अहेतु को नहीं देखे।	२ अहेतु से नहीं देखे।
३ अहेतु को अच्छी रीति से श्रद्धे।	३ अहेतु से अच्छी रीति से नहीं श्रद्धे।
४ अहेतु को अच्छी तरह से प्राप्त करे।	४ अहेतु से अच्छी रीति से नहीं प्राप्त करे।
५ अहेतुवाला छद्मस्थ मरण करे।	५ अहेतु से छद्मस्थ मरण करे। ※ ८०.

※ ८०. बहु श्रुतगम्य इस हेतु आदि के ८ सूत्र टीकाकार के भाव अनुसार ही ऊपर ऊपर से जानने का प्रयास करें।

जीवों के चार प्रकार हैं :-

१ सम्यग्दृष्टि २ मिथ्यादृष्टि ३ केवलज्ञानी ४ अवधिज्ञानी

सम्यग्दृष्टि आत्मा सम्यग्ज्ञानी होते हुए भी छद्मस्थ है। इसलिए हेतुः (हिनोति-गमयति जिज्ञासितधर्मविशिष्टान् अर्थान् इति हेतुः) यानी कि जिज्ञासित धर्म के विशिष्ट अर्थ को सूचित करे, उसे हेतु-साधन लिंग कहते हैं। जो "निश्चितान्यथानुपपत्येक लक्षणो हेतुः" यानी हेतु का लक्षण यह है कि साध्यबिना जिसकी उत्पत्ति नहीं हो सके। इस हेतु के उपयोग से जीवात्मा अभिन्न होने से पुरुष भी हेतु कहा जाता है।

क्रिया की पृथक्ता को लेकर हेतु पांच प्रकार के हैं। जीव में सम्यग्दृष्टिपन होने से हेतु भी सम्यग्दृष्टि जानना। साध्य को सत्य स्वरूप से सिद्ध करनेवाला और साध्य के सद्भाव में साथ रहनेवाले हेतु को जानते हैं, सामान्य रूप से हेतु को देखते हैं, हेतु को अच्छी रीति से श्रद्धा में लाते है। साध्य की सिद्धि में उपयोग में लेने (वापरने) से हेतु को अच्छी तरह से प्राप्त करते हैं, और मरण के कारण रूप अध्यवसाय आदि मरने के हेतु के साथ संबंध होने से मरण भी हेतु कहा जाता है। इसलिए उस हेतु को यानी हेतुवाला छद्मस्थ मरण करता है (मृत्यु को प्राप्त होता है)। यहाँ पर केवलीमरण लेने का नहीं, क्योंकि वह अहेतुक होता है। और सज्ञान होने से अज्ञान मरण भी नहीं प्राप्त करता है।

दूसरे प्रकार से भी अनुमान को उत्पन्न करनेवाले हेतु से अनुमेय वस्तु को सम्यग्दृष्टि होने से अच्छी तरह जानते हैं, देखते है, श्रद्धा करते है, अच्छी तरह से प्राप्त करते हैं। और अकेवली होने से अध्यवसाय रूप हेतु से छद्मस्थ मरण करता है। मृत्यु को प्राप्त होता है।

इन दोनों सूत्रों में जीवात्मा सम्यग्दृष्टि होने से साध्य को सिद्ध करने के लिए साधन (हेतु) भी सम्यक् प्रकार से स्वीकारेंगे जैसे :-"उपयोगवत्वं जीवस्य लक्षणम्" यानी जीव रूप साध्य का उपयोग लक्षण ही ठीक है। सर्वांगीण शुद्ध है, इसलिए सत्य है। क्योंकि "जीवति प्राणान् धारयतीतिजीवः" और "ज्ञानाधिकरणं आत्मा" अर्थात जीव वह है जो दश द्रव्य प्राणों को धारण

P. P. Ac. Gunratnasuriji M.S. Jin Gun Aaradhak Trust

करता है। और जीवात्मा ज्ञान स्वरूप ही होती है। उस कारण से जीव का सच्चा लक्षण उपयोग ही हो सकता है।

अब २ सूत्र तीसरे और चौथे नंबर के मिथ्यादृष्टि के लिए है।

हेतु का व्यवहारी होने से जीव भी हेतु कहा जाता है। जीव मिथ्यादृष्टि होने के कारण हेतु को असम्यक् प्रकार जानते हैं। देखते हैं, श्रद्धा करते है, प्राप्त करते हैं। असम्यग्ज्ञानी होने से अध्यवसायादि हेतु सहित अज्ञान मरण करता है (मृत्यु को प्राप्त होता है) दूसरे तरीके से हेतु यानी निशान के द्वारा सम्यग्प्रकार से नहीं जाना जाता है। नहीं देखता है, नहीं श्रद्धता है, नहीं प्राप्त करता हैं, और अज्ञान मरण को प्राप्त होता है। इन दोनों सूत्रों में मिथ्यादृष्टिपन का विष होने से मिथ्याज्ञान को लेकर हेतु भी बराबर नहीं जान सकते। जैसेकि 'परणामी शब्द: चाक्षुषत्वात् 'अचेतनास्तरवः विज्ञानेन्द्रियाऽऽ युनिरोध लक्षण मरण रहितत्वात्' इत्यादिक हेतु अज्ञानपूर्ण होने से साध्य का सत्य स्वरुप किसप्रकार जान सकेंगे?

अब पांचवें और छट्ठे नंबर के दो सूत्र केवल ज्ञानी के लिए है। उसे सब प्रत्यक्ष होता है। इसलिए उसप्रकार के प्रत्यक्ष ज्ञान रखते हुए केवलज्ञानियों को कोई भी देखने या जानने के लिए किसी भी जाति के हेतु या निशान की जरुरत नहीं रहती है। उससे वे हेतु की जरुर बिना के कहे जाते हैं। अहेतु कहे जाते हैं। यानी प्रत्यक्ष ज्ञानी के लिए हेतु का व्यवहार न होने से केवल ज्ञानी अहेतु कहे जाते हैं। सर्व ज्ञान को लेकर अनुमान की जरुरत न होने से धूमादिक पदार्थों को अहेतु समझता है। अग्नि को जानने के लिए वे हेतु भाव को नहीं जानते हैं। क्योंकि सर्वज्ञ में अनुमान करने का भाव नहीं रहता है। उससे धूमादिक पदार्थ उनको अनुमान नहीं करा सकते हैं। इसलिए ही धूमादिक हेतु की अपेक्षा बिना के सर्वज्ञ अहेतु कहे जाते हैं। अहेतु को देखते हैं, प्राप्त करते हैं, तथा अनुपक्रमी होने से यानी किसी निमित्त से भी नहीं मरने हैं वैसा होने से अहेतुक केवली मृत्यु को प्राप्त होते हैं।

जबकि अन्तिम दो सूत्र अवधि वगैरे ज्ञानवाले के लिए है। जो संपूर्ण ज्ञानी न होने से धूमादिक पदार्थ में अनुमान का प्रादुर्भाव ही ऐसा एकान्त न होने से उनको सर्वथा अहेतु भाव से नहीं जानते हैं फिरभी कथंचित् जानते हैं।

अध्यवसाय वगैरे उपक्रम कारण न होने से केवली मरण नहीं किन्तु छद्मस्थ मृत्यु को प्राप्त होते हैं। अवधिज्ञान होने से इस मरण को अज्ञान मरण नहीं कहते हैं।

॥ सातवा उद्देशा समाप्त ॥

P. P. Ac. Gunratansuriji M.S. Jin Gun Aaradhak Trust

शतक पांचवां उद्देशा–८

पुद्गल

भगवान महावीर स्वामी के शिष्य नारदपुत्र नाम के अनगार और दूसरे शिष्य निर्ग्रन्थी पुत्र इन दोनों की पुद्गल संबंधी चर्चा है सार यह है :–

जहाँ नारदपुत्र अनगार है, वहाँ निर्ग्रंथ पुत्र अनगार आता है। प्रारंभ में निर्ग्रंथ पुत्र अनगार नारदपुत्र अनगार से पूछता है। और इन दोनों की चर्चा होती है।

नारदपुत्र अनगार अपने मत के अनुसार सब पुद्गलों को सअर्ध, समध्य और सप्रदेश बताता है। तब निर्ग्रंथ पुत्र अनगार पूछता है कि किस द्रव्यादेश से सब पुद्गल सअर्ध, समध्य और सप्रदेश हैं? और अनर्थ, अमध्य और अप्रदेश नहीं हैं? वैसे क्षेत्रा-देश से भी इसी प्रकार है। और उसीके अनुसार कालादेश से और भावा देश से भी है।

नारदपुत्र अनगार कहता है–हाँ, इसी प्रकार है। इस चर्चा में निर्ग्रंथपुत्र अनगार नारदपुत्र अनगार को निरुत्तर बना देता है। तत्पश्चात् नारदपुत्र अनगार निर्ग्रंथीपुत्र नारद के पास जानने की इच्छा प्रकट करता है। यानी निर्ग्रंथीपुत्र अनगार इसप्रकार स्पष्टतापूर्वक समझाता है।

P. P. Ac. Gunratansuriji M.S. Jin Gun Aaradhak Trust

द्रव्यादेश से भी सर्व पुद्गल सप्रदेश भी है। और अप्रदेश भी है। वे अनंत हैं। क्षेत्रादेश से भी इसीप्रकार है। कालादेश और भावादेश से भी इसी प्रकार है।

जो पुद्गल द्रव्य से अप्रदेश है नियमानुसार वे क्षेत्र से अप्रदेश होते हैं। काल से कदाचित् सप्रदेश और कदाचित् अप्रदेश होते हैं। और भाव से भी कदाचित् सप्रदेश होते हैं और कदाचित् अप्रदेश होते हैं।

जो क्षेत्र से अप्रदेश होते हैं, वे द्रव्य से कदाचित सप्रदेश होते हैं। और कदाचित् अप्रदेश होते हैं। काल से तथा भाव से भजना। यह जान लेना। जैसे क्षेत्र से कहा गया है वैसे काल से और भाव से कहना।

जो पुद्गल द्रव्य से सप्रदेश हो, वे क्षेत्र से कदाचित् सप्रदेश होते हैं। और कदाचित् अप्रदेश होते हैं। इसप्रकार काल से और भाव से भी जानलेना।

जो पुद्गल क्षेत्र से सप्रदेश होते हैं, वे द्रव्य से निश्चयात्मक सप्रदेश होते हैं। और काल से तथा भाव से भजनायुक्त हो, जैसे द्रव्य से कहा है वैसे काल से और भाव से भी जानना।

भावादेश से अप्रदेश पुद्गल सबसे थोडे हैं। उनकी अपेक्षा कालादेश से अप्रदेश असंख्यगुण हैं। उनकी अपेक्षा द्रव्यादेश से सप्रदेश विशेषाधिक है। उनकी अपेक्षा कालादेश से सप्रदेश विशेषाधिक है। और उनकी अपेक्षा भावादेश से सप्रदेश विशेषाधिक है।

P. P. Ac. Gunratansuriji M.S. Jin Gun Aaradhak Trust

जीवों की क्षयवृद्धि और अवस्थितता

अब भी गौतमस्वामी महावीर भगवान् को पूछते हैं। तथा महावीर स्वामी उत्तर देते हैं।

जीव न बढते हैं और न घटते हैं किन्तु अवस्थित रहते हैं। नैरयिक बढ़ते हैं, घटते हैं और अवस्थित भी रहते हैं। जैसा नैरयिकों के लिए कहा है, वैसा वैमानिक तक के देवों के संबंध में जानना।

सिद्ध बढ़ते हैं, किन्तु घटते नहीं हैं, अवस्थित रहते हैं।

नैरयिक जघन्य से एक समय तक और उत्कृष्ट से चौवीस मुहूर्त तक अवस्थित रहता है। इसप्रकार सात पृथ्वी में भी रत्नप्रभा में ४८ मुहूर्त, शर्करा प्रभा में १४ रात्रि दिवस, वालुका प्रभा में एक मास, पंक प्रभा में २ मास, धूम प्रभा में चार मास, तमः प्रभा में ८ मास और तमस्तम प्रभा में बारह मास अवस्थान काल है।

जैसे नैरयिकों के लिए कहा है, वैसे असुरकुमार भी बढ़ते हैं, घटते हैं और जघन्य में एक समय तक और उत्कृष्ट में ४८ मुहूर्त तक अवस्थित रहते हैं। इसप्रकार १० प्रकार के भी भयनपति कहना चाहिए।

एकेन्द्रिय बढते हैं, घटते हैं और अवस्थित भी रहते हैं। इसका यह अवस्थित काल जघन्य रूप से एक समय और उत्कृष्ट रूप से आवलिका का असंख्य भाग समजना।

भ. सू. ३२

P. P. Ac. Gunratansuriji M.S. Jin Gun Aaradhak Trust

दो इन्द्रिय बढ़ते हैं, घटते हैं और उनका अवस्थान जघन्य रूप से एक समय और उत्कृष्ट रूप से २ अंतर्मुहूर्त तक जानना। इसप्रकार चार इन्द्रिय के संबंध में जानकारी रखना।

अवस्थान काल में भेद होते हैं जैसे :–

सम्मूर्च्छिम पंचेन्द्रिय तिर्यंच योनिकों का अवस्थान काल दो अन्तर्मुहूर्त, गर्भज पंचेंद्रिय तिर्यंच योनिकों को चोवीस मुहूर्त, सम्मूर्च्छिम मनुष्यों को अडतालीस मुहूर्त, गर्भज मनुष्यों को चोवीस मुहूर्त।

वानव्यन्तर, ज्योतिषिक, सौधर्म और ईशान देव लोक में ४८ मुहूर्त, सनत्कुमार देव लोक में अठारह रात्रि दिवस और ४० मुहूर्त, माहेन्द्र देव लोक में चोबीस रात्रि दिवस और २० मुहूर्त। ह्मलोक में ४५ रात्रि दिवस, लांतक देवलोक में नव्वे रात्रि दिवस, महाशुक्र देवलोक में १०८ रात्रि दिवस, सहसार देवलोक में दो सौ रात्रि दिवस। आनत और प्राणत देवलोक में संख्येय मास तक। आरण और अच्युत देवलोक में संख्येय वर्षों।

ग्रैवेयक देवों को, विजय, वैजयंत, जयंत और अपराजित देवों को, असंख्य हजार वर्षों तक का अवस्थान काल है। सवार्थसिद्धि में पल्पोपम के संख्येय भाग तक और ये जघंन्य में एक समय तक और उत्कृष्ट में आवलिका के असंख्य भाग तक बढते हैं और घटते है।

सिद्ध जघन्य में एक समय और उत्कृष्ट में आठ समय तक

P. P. Ac. Gunratansuriji M.S. Jin Gun Aaradhak Trust

बढते हैं और जघन्य में एक समय और उत्कृष्ट में छः मास तक सिद्ध अवस्थित रहते हैं।

जीव निरुपचय और निरपचय हैं। किन्तु सोपचय नहीं। सापचय नहीं, सोपचय-सापचय नहीं।

एकेंद्रिय जीव तीसरे पद में हैं। यानी सोपचय और सापचय है।

सिद्ध निरुपचय हैं और निरपचय हैं। जीव सर्व काल तक निरुपचय और निरपचय हैं।

नैरयिक जघन्य में एक समय तक और उत्कृष्ट में आवलिका के असंक्य भाग तक सोपचय है। इसी रीतिसे नैरयिक उतने ही कालतक सापचय भी है। इतने ही काल तक सोपचय आर सापचय भी है और नैरयिक जघन्य में एक समय तक और उत्कृष्ट में बारह मुहूर्त तक निरुपचय और निरपचय है।

सब एकेंद्रिय जीव सर्व काल तक सोपचय और सापचय है।

शेष सब जीव सोपचय भी है आर सापचय है। निरुपचय है और निरपचय भी है।

जघन्य में एक समय और उत्कृष्ट में आवलिका का असंख्य भाग है। अवस्थितों में व्युत्क्रांति काल कहना।

सिद्ध जघन्य में एक समय और उत्कृष्ट में आठ समय तक सोपचय है।

P. P. Ac. Gunratansuriji M.S. Jin Gun Aaradhak Trust

सिद्ध जघन्य में एक समय और उत्कृष्ट में छ: मास तक निरुपचय और निरपचय है। ※ ८१

※ ८१. यह संसार अनंत है। तथा अनंत पर्यायों से युक्त चेतन–जड़ादि अनंत पदार्थों से परिपूर्ण है। सर्वज्ञ तीर्थंकर परमात्मा के अतिरिक्त कोई भी अन्य व्यक्ति इस संसार का माप नहीं कर सकता।

मतिज्ञान और श्रुतज्ञान की मर्यादा में अवस्थित मनुष्य अपूर्ण ज्ञानी हैं, अतः वह अनंत संसार के अनंत पदार्थों को देखने और जानने में असमर्थ है। क्योंकि ये दोनों ज्ञान इन्द्रियाधीन होने से मर्यादित ही है।

(१) मतिज्ञानी की इन्द्रियों में विषय ज्ञान की शक्ति का न्यूनाधिकपन होने से सब पदार्थ और पर्यायों को तारतम्य भाव से देखेंगे। संसार के द्रव्योंकी ऐसी विचित्रता है कि मतिज्ञानी अनेक द्रव्यों का स्पर्श भी नहीं कर सकता। इसीप्रकार हमारा स्वभाव भी मर्यादित है। जिससे संसार की अनेक वस्तुओं को जानने की उत्कंठा भी नहीं होती है। इसमें इस ज्ञान की दुर्बलता स्पष्ट दिखाई देती है जिससे दृश्यमान पदर्थों की भी पूरी जानकारी नहीं मिल सकती है। तो फिर अदृश्यमान पदार्थों को जानने की तो बात ही कहाँ रही ?

(२) अनेक पदार्थ ऐसे हैं जो आगमगम्य ही हैं। और वर्तमान में आगमवाद में गुरुगम भी नहीं। अतः आगमगम्य पदार्थ हमेशां के लिए आगमगम्य (श्रद्धा गम्य) ही होते हैं।

(३) ज्ञेयतत्त्व की गहनता के कारण भी हमारा मतिज्ञान उनकी गहराई तक प्रवेश नहीं प्राप्त कर सकता।

(४) ज्ञानावरणीय कर्म का उदय काल भी तीव्र है। जिससे अनेक पदार्थ हमारी समझ में नहीं आते हैं। क्योंकि मतिज्ञान के क्षयोपशम की अपेक्षा मतिज्ञानावरणीय कर्म अनंतगुण विशेष है।

P. P. Ac. Gunratansuriji M.S. Jin Gun Aaradhak Trust

(५) हेतु और उदाहरण के अभाव में भी पदार्थ स्पष्ट रूप से नहीं जाने जाते हैं।

(६) श्रुतज्ञानी भी अनंत पदार्थ तथा प्रत्येक पदार्थ के अनंत पर्यायों को नहीं जान सकता क्योंकि केवल ज्ञानी जितने पदार्थों को जानते हैं। उतने का उपदेश भी नहीं दे सकते, और जितने तत्त्व उपदिष्ट हैं, उनमें से अनन्त में भाग में ही शास्त्रों में गूंथाये हुए हैं। इससे श्रुतज्ञान भी सर्व पदार्थों को स्पर्श नही कर सकता।

सम्यग्दर्शन के अभाव में मति–अज्ञानी, श्रुत अज्ञानी और विभंगज्ञानी भी पदार्थों को विपरीत और संशयशील होकर देखेंगे। इसलिए मिथ्याज्ञान प्रमाणित नहीं होता है। उनके देखे हुए, जाने हुए और प्ररूपित हुए तत्त्व यथार्थ न होने के कारण प्रमाणभूत नहीं बन सकते।

इन्द्रियों के आश्रय से उत्पन्न होनेवाले ज्ञान में अपूर्णता इसलिए है कि बाह्य इन्द्रियों की विषय ग्रहण करने की शक्ति जैसे मर्यादित है उसीप्रकार भावेन्द्रियों को भी विशिष्ट प्रकार की क्षायिकी लब्धि नहीं मिली होने से अनंत संसार को जान सकने में समर्थ नहीं है।

क्षयोपशमिक ज्ञान चार प्रकार का है।

१ मतिज्ञान, २ श्रुतज्ञान, ३ अवधिज्ञान, ४ मनः पर्यव ज्ञान। इसमें से पहले के दो ज्ञान को पौद्गलिक इन्द्रियों और मन की आवश्यकता अनिवार्य है। जब अन्तिम २ ज्ञान यद्यपि आत्मिक होते हैं फिर भी ज्ञानावरणीय कर्मों का समूह समूल नष्ट न होने से ये दोनों ज्ञान छाद्मस्थिक कहे जाते हैं। इसलिए ही अवधिज्ञानी और मनः पर्यव ज्ञानी भी पूर्णज्ञानी नहीं है। क्योंकि अवधिज्ञानी भाव से अनंत पर्याय जानते हैं। फिर भी प्रत्येक द्रव्य के अनंत पर्यायो के नहीं जान सकते हैं। यह ज्ञान गृहस्थ को भी हो सकता है। परंतु वह गृहस्थ शुद्ध मन से सम्यग्दर्शन, ज्ञान, चारित्र तथा

P. P. Ac. Gunratansuriji M.S. Jin Gun Aaradhak Trust

तप का आराधक होता है तो उनको प्राप्त हुआ यह ज्ञान भी स्वच्छ तथा विशाल होने से अधिक लंबे भूत काल को देख सकते हैं।

मनः पर्यव ज्ञानी भी मन रूप से परिणत हुए रूपी पदार्थों का ज्ञान प्राप्त कर सकता है। किन्तु अध्यवसाय रूप भाव मनको तो मनः पर्यरज्ञानी भी नहीं जान सकता है।

यद्यपि इस ज्ञानी की तुलना में अखिल विश्व का दूसरा कोई भी योगी आ नहीं सकता। फिर चाहे वे नग्न रहे, धुनी तपे, शुष्क पत्राहार करे, जंगल की भयंकर 'खड्' गुफा में रहे, मासोपवासी बने, उल्टे शिर लटकते रहे, इच्छानुसार जटा तथा नख बढ़ाले, सिद्धियाँ प्राप्त करे, इच्छानुसार चमत्कार बतावे, देवताओं का आसन भी विचलित हो जाय, या देवियों को वशीभूत कर डाले। ऐसी कठोर तपश्चर्या करे जिससे रक्त और मांस सूख जावे अथवा सर्वथा मौन रहे, हजार, लाख और करोड़ों की संख्या में श्लोक कंठस्थ करले, तथा असंख्य अनेक श्लोकों की रचना करे, तो भी मनः पर्यवज्ञानी की बराबरी नहीं कर सकता। क्योंकि इस ज्ञान के साथ अप्रमत्त-भाव और संयम शुद्धि की नितान्त आवश्यकता है।

उपर्युक्तानुसार इन चार ज्ञान के मालिक चाहे ११ वां गुणठाणा प्राप्त करले किन्तु तीर्थंकर देव के क्षायिक ज्ञान के साथ तुलना करने में समर्थ नहीं हो सकते। क्योंकि बाह्य और अंतरंग संख्य, असंख्य और अनंत अतिशयों से परिपूर्ण भगवान महावीर स्वामी केवल ज्ञान के मालिक है। जो १ अनंतविज्ञान, २ अतीत दोष, ३ अबाध्य सिद्धान्त, ४ अमर्त्य पूज्य आदि अद्वितीय विशेषणों से युक्त है। और केवलज्ञानी तीर्थंकर को छोड़कर ये चार विशेषणों से युक्त अन्य कोई नहीं होता है।

अनंतविज्ञान–यानी अप्रतिपाती जो किसी काल में भी अपनी सत्ता से नहीं टले।' 'वि' यानी विशिष्ट–संसार भर के संपूर्ण द्रव्य और उसके अनंत

P. P. Ac. Gunratansuriji M.S. Jin Gun Aaradhak Trust

पर्यायों को साक्षात् करनेवाले केवल ज्ञानी को अनंत विज्ञान कहने में आता है।

अतीत दोष-सत्ता में से सर्वथा टल गये हैं, राग, द्वेष मोह आदि दोष जिनके, वें अतीत दोष कहे जाते हैं।

अवाध्य सिद्धान्त-स्याद्वाद मुद्रा से मुद्रित जिसके सिद्धान्त को कोई भी वादी, प्रतिवादी, वितंडावादी, वाधा प्राप्त नहीं कर सकता। अमर्त्यपूज्य-सामान्य विशिष्ट ज्ञान रहित मानव जिन देवों-इन्द्रों को पूजते है, उन इन्द्रादि देवताओं के लिए भी जो पूज्य है, वें तीर्थंकरपरमात्मा है।

अनंत विज्ञान के साथ अतीत दोष विशेषण इसलिए सार्थक है। कि 'अनंत विज्ञान' यानी केवलज्ञान' जिन महापुरुषों को होता है उनका 'मोक्ष' सर्वथा अव्यावाध है। "यद्यपि जो अपने मत का तिरस्कार तथा वाधा देखकर फिर से जन्म धारण करते है वें दोषातीत नहीं हो सकते। क्योंकि वापस जन्म लेने का अर्थ ही यह है कि अपने स्थापित किये हुए मत पर राग और अपने मत का तिरस्कार करनेवाले को दंड देना, वही द्वेष है। इन दोनों मोहराजा के पुत्र के समान राग और द्वेष जिसके जीवन में होता है वहाँ संसार का कोई भी दूषण शेष नहीं रहता है। इसलिए दोषों की सद्भावना में ही अवतार लेना होता है। केवली भगवान के सब दोष समूल नाश होने से उनको जन्म लेना है ही नहीं। कदाचित् कोई कहे कि 'अतीत-दोष' विशेषण चाहे न हो क्योंकि जो अतीत दोष होता है, वह अनंत विज्ञान भी होता है। अतः अनंतविज्ञान विशेषण की आवश्यकता नहीं है। इसके उत्तर में यह जानकारी देनी है कि किसी वादीने अपने इष्ट भगवान में दोषाभाव मान लिया है फिर भी अनंत ज्ञान की आवश्यकता नहीं मानी है। जैसे "भगवान केवल इष्ट तत्व को जाने यह जरूरी है। किन्तु संसार के सब पदार्थों का ज्ञान किस काम का?" कीड़े कितने? नरक के जीव किस प्रकार रहते हैं? इत्यादि अनावश्यक पदार्थों के ज्ञान की आवश्यकता किस काम की?

P. P. Ac. Gunratansuriji M.S. Jin Gun Aaradhak Trust

इसप्रकार माननेवाले व्यक्तियों को समझाते हुए जैनाचार्यों ने फरमाया है, 'सर्वज्ञ' वही हो सकता है, जो संसार के अनंत पदार्थ और एक एक पदार्थ के अनंत पर्यायों को जानने में समर्थ हैं।

यदि भगवान को संसार के का पदार्थ ज्ञान ही न हो तो उनका 'भगवंतत्व' किस काम का ?

पदार्थ मात्र में अनंत पर्याय अस्तित्व और नास्तित्व के संबंध की अपेक्षा विद्यमान होने के कारण द्रव्य मात्र अनंत धर्मात्मक ही होता है। ऐसी स्थिति में जो भगवान् पदार्थ के एक पर्याय को भी सम्यक् प्रकार से नहीं जान सकते हैं तो सब पर्यायों को किस प्रकार जान सकते हैं ?

ऐसी स्थिति में 'अनंत विज्ञान' विशेषण को सार्थक नहीं करनेवाले व्यक्ति सब पर्यायों के न जानने के कारण सर्वज्ञ नहीं बन सकते।

द्रव्य में स्थित अनंत पर्याय :-

अब संक्षेप में हम उन अनंत धर्मों के संबंध में विचार करते हैं जिनका हमको ख्याल आता है। अनंत यानी जिनका अंत नहीं, गणना नहीं, उन अनंत द्रव्य और सहभावी तथा क्रमभावी पर्याय-स्वरूप को धर्म कहते हैं।

धर्म और धर्मी, गुण और गुणी, तथा स्वरूप और स्वरूपी तादात्म्य संबंध से सहभावी ही है। इसमें धर्म, गुण तथा स्वरूपको ही पर्याय कहते हैं। और धर्मी गुणी तथा स्वरूपी द्रव्य है।

सूर्य से किरण और द्रव्य रूप किरणों से प्रकाश गुण जैसे किसी काल में और किसी के प्रयत्न विशेष से भी अलग नहीं हो सकता। उसीप्रकार द्रव्य और उनके पर्याय अलग नहीं हो सकते।

पदार्थ मात्र में स्थित अनंत धर्मों की विद्यमानता अस्तित्वरूप (होने के

रूप में) और नास्तित्व रूप में (न होने के रूप में) तर्क संगत और आगम संगत है। आखिल संसार में आकाश के कुसुम, गधे के सींग और वन्ध्या के पुत्र की विद्यमानता है ही नहीं। अतः उनके अनंत धर्मों की विचारणा भी नहीं हो सकती। परन्तु घटपट जीव शरीर आदि द्रव्यों की विद्यमानता प्रत्यक्ष है। इसलिए उसके अनंत धर्म भी विद्यमान है। क्योंकि द्रव्य विना पर्याय और पर्याय विना का द्रव्य किसीने कभी नहीं देखा है, दिखाई नहीं देता है और भविष्य में भी दिखलाई नहीं देगा।

यहाँ सिद्धान्त के समर्थन में सुवर्ण के घड़े का ही उदाहरण लेते हैं जो अपने द्रव्य, क्षेत्र, काल और भाव की अपेक्षा अस्तित्व धर्म से और दूसरे के द्रव्य, क्षेत्र, काल और भाव की अपेक्षा नास्तित्व धर्म से संबंधित है।

सत्त्व, ज्ञेयत्व, और प्रमेयत्वादि धर्मों की अपेक्षा इस घड़े के संबंध में विचार करते हुए सत्व आदि उस घड़े के स्वपर्याय ही है। क्योंकि पदार्थ मात्र में सत्वादि धर्म होने से इन धर्मों की अपेक्षा प्रत्येक वस्तु परस्पर समान है, सजातीय है, तथा विजातीय पर्यायों के लिए उसमें अवकाश नहीं है।

घड़ा पुद्गल के परमाणुओं से बना हुआ है। इसलिए पौद्गलिक द्रव्य रूप सत् है। परन्तु धर्मास्तिकाय, अधर्मास्तिकाय, आकाशास्तिकाय, जीवास्तिकाय और काल द्रव्य रूप से तो वह असत् है, यहाँ पौद्गलिकत्व घड़े का स्वपर्याय है और दूसरे द्रव्यों के अनंत पर्याय परपर्याय है।

पृथ्वी का बना हुआ होने से पार्थिव रूप सत् है और जलादिक से न बना हुआ होने से उस रूप में असत् है। यहाँ पर पार्थिव रूप में घड़े का स्वपर्याय एक ही है। जबकि जलादि के परपर्यायों की संख्या अनंत है। पार्थिव में भी धातुरुप सत् है। जबकि असंख्य माटी वगैरे द्रव्यों की अपेक्षा से असत् है। धातु में भी सुवर्ण रूप सत् है, जबकि तांवा पीत्तल आदि धातुओं से नहीं बना हुआ होने से उस रूप में असत् है। अमुक गांव के अमुक बाजार के मोतीराम सोनी द्वारा बना हुआ होने से वह रूप सत् है।

P. P. Ac. Gunratnasuriji M.S. Jin Gun Aaradhak Trust

और दूसरे नरोत्तम आदि सोनार के हाथ से घड़े हुए (बने हुए) नहीं होने से उस रूप में असत् है। बड़े पेटवाला, ओछी छोटी गरदन वाला होने से वह रूप सत् किन्तु छोटा पेट, बड़ीगर्दन आदि असंख्य आकार विशेष से असत् है। गोलाकार सत् है, किन्तु दूसरे आकार से असत् है। इसप्रकार इस सोने के घडे में स्वपर्यायों का अस्तित्व है। जबकि परपर्यायों का नास्तित्व भी स्वतः सिद्ध है। क्षेत्र की अपेक्षा जम्बूद्वीप, भरत क्षेत्र, बंबई, कुंभारवाड़ के क्षेत्र को लेकर सत् है। जबकि दूसरे असख्य क्षेत्र, असंख्य गाँव, आदि की अपेक्षा से असत् है। अमुक उपाश्रय के क्षेत्र को लेकर सत् है। जबकि दूसरे अनंत क्षेत्रादि को लेकर असत् है। अमुक आकाश प्रदेश को लेकर सत् है, जबकि दूसरे आकाश प्रदेश को लेकर असत् है। काल की दृष्टि से अमुक वर्ष का, हेमन्तऋतु का, पौष महिने का, शुक्ल पक्ष में, अष्टमी के दिन में दोपहर को तीन बजे बनाया हुआ होने की अपेक्षा सत् है। जबकि दूसरे वर्ष दूसरी ऋतु, दूसरे महिने के अनंत काल की अपेक्षा असत् है।

भाव की अपेक्षा से, अमुक रंग की अपेक्षा को लेकर सत् है जब कि दूसरे रंग की अपेक्षा से और रंगों की तारतम्यता के अनुसार असत् है। शब्द की अपेक्षा से-भिन्न भिन्न देशों में घट शब्द के अर्थ की जानकारी के लिए अलग २ शब्दों का व्यवहार होता है। जैसे, घड़ा, माटलु, वेडियो, मटको, पोट (*POT*) आदि शब्दों की अपेक्षा से सत् है किन्तु दूसरे अनंत द्रव्यों के वाचक शब्दों की अपेक्षा से असत् है।

संख्या की दृष्टि से घड़े की पंक्ति में यह घड़ा पांचवां होने की अपेक्षा से सत् है। जब कि पहले और पीछे के अनंत घड़ों की अपेक्षा से असत् है।

संयोग–वियोग की अपेक्षा से अनंत काल से इस घड़े के अनंत पर्यायों के साथ संयोग तथा वियोग हुआ, तो उसदृष्टि से सत् है और दूसरे पदार्थों के साथ संयोग वियोग हुआ नहीं है, उस अपेक्षा से असत् है।

P. P. Ac. Gunratansuriji M.S. Jin Gun Aaradhak Trust

परिमाण की अपेक्षा से अब यह घड़ा जिस प्रमाण में है, उस माप की अपेक्षा से सत् है। और दूसरे छोटे बड़े माप की दृष्टि से असत् है।

इसके अनुसार एक ही पदार्थ में अनंत धर्मों की विद्यमानता तर्क संगत है। "धन विना का गरीब मनुष्य जैसे धनवान नहीं कहलाता है, उसीप्रकार घड़े के जो पर्याय नही है उसको घड़े के साथ नास्तित्व संबंध भी किस लिए जोड़ देवे ?" इसके उत्तर में इतनी ही जानकारी देनी है कि धन और गरीब दोनों पदार्थ संसार में विद्यमान है, केवल इस समय दोनों का अस्तित्व संबंध भले ही न हो किन्तु नास्तित्व संबंध तो है ही इस कारण साधारण भाषा का व्यवहार होता है। कि 'यह मनुष्य धन विना का है, और संसार भर का कोई मनुष्य इसका अर्थ बराबर समझ जाता है कि इस मनुष्य के पास अभी धन नहीं है। उसीप्रकार घड़े में इस समय जो पर्याय हैं, वे अस्तित्व संबंध के आभारी हैं। और जो पर्याय अभी नहीं हैं वे नास्तित्व संबंध के आभारी है' इसप्रकार प्रत्यक्ष अनुभव करते हुए इस अस्तित्व और नास्तित्व के संबंध में वितंडावाद की आवश्यकता नहीं है।

इसलिए प्रत्यक्ष से या आगम से दिखाई देते हुए अनन्त धर्मों से परिपूर्ण पदार्थ मात्र को देखने के लिए अनंतविज्ञान (केवलज्ञान) की आवश्यकता अनिवार्य है।

इसप्रकार भगवान महावीर स्वामी के तीर्थकरत्व को सिद्ध करने के लिए अनंत विज्ञान तथा अतीत दोष की सार्थकता देखने के बाद "अबाध्य सिद्धान्त" विशेषण की यथार्थता की भी जानकारी प्राप्त कर लेते हैं।

घाती कर्मो का समूल नाश होने के बाद जो सर्वथा निर्दोष होता है उसका सिद्धान्त ही अबाध्य होता है। अरिहंत तीर्थंकर भगवान जो सर्वथा निर्दोष हैं। तथा सयोगी-सशरीर होने के कारण ही समवसरण में विराजमान होकर, देव-असुर, मानव और उसके अधिपतियों की पर्षदा में व्याख्यान देते हैं।

P. P. Ac. Gunratansuriji M.S. Jin Gun Aaradhak Trust

सिद्धान्तो की रचना पौरुषेय ही होती है। किसी काल में भी अपौरुषेय वचन संभव नहीं हो सकते हैं। क्योंकि शरीर धारियों के ही मुख, कंठ, ओष्ठ और दांत आदि अवयव होते हैं। जो शब्दों की उत्पत्ति का मूल कारण है। उसके बिना शब्दों का स्पष्ट उच्चारण सर्वथा असंभव है।

वह शरीर धारी भी केवल ज्ञानी होता है। तीर्थंकर होता है। उसके ही वचन प्रमाण होते हैं। अबाध्य होते हैं। क्योंकि तीर्थंकरों के जीवन में शारीरिक, वाचिक, और आत्मिक दोषों का सर्वथा अभाव ही होता है। और जो केवल ज्ञान को प्राप्त करने में समर्थ नहीं है, उनके जीवन में ही शारीरिक दोष, काम, क्रोध के वाचिक संस्कार और आत्मिक दोषों की भरमार अवश्यमेव होने के कारण ही उनके वचन परस्पर अप्रमाणित होते हैं। जैसे कि :—

छान्दोग्य उपनिषद में **"न हिंस्यात् सर्वभूतानि"** इस प्रकार स्वीकार कनने के पश्चात् भी ऐसा कहा है, "अश्वमेध नाम के यज्ञ के मध्य में ५९७ पशुओं का वध करना चाहिए" और **"ऐतरेय उपनिषद"** में अग्निषोम यज्ञ के समय में पशुओं का वध करना चाहिए। और तैत्तरीय संहिता में "१७ प्रजापति संबंधी पशुओं को मारने चाहिए। इत्यादि ग्रन्थों से ऐसा विदित होता है कि ऐसे ग्रन्थों के रचयिता सर्वज्ञ नहीं माने जा सकते। अन्यथा परस्पर विरोधी बातें उपनिषद में किसलिए लिखी जावें?

"नानृतं ब्रूयात्" झूठ नहीं बोलना, इसप्रकार का प्रतिपादन करने के पश्चात् भी आपस्तंभ सूत्र में **"ब्राह्मणार्थेऽनृतं ब्रूयात्"** ब्राह्मण के लिए झूठ बोलने में पाप नहीं लगता है। वसिष्ठ धर्म सूत्र में तो इसप्रकार कहा है कि "हास्य में, स्त्री सहवास में, विवाह प्रसंग में, प्राण नाश के समय में, और धन अपहरण समय में कोई भी मनुष्य झूठ बोले तो भी पाप नहीं लगता है। **"पर द्रव्याणि लोष्टवत्"** दूसरे का धन मिट्टी के ढेले के समान है। इसप्रकार कहने के पश्चात् भी यदि ब्राह्मण

P. P. Ac. Gunratansuriji M.S. Jin Gun Aaradhak Trust

किसी का भी धन हठाग्रह में आकर छलना पूर्वक भी चुराले तो उस ब्राह्मण को पाप नहीं लगता है।

इस प्रकार देवी भागवत में **'अपुत्रस्य गतिर्नास्ति'** अर्थात् पुत्र विना के मनुष्य की सद्गति नहीं होती है। इसप्रकार कहने के बाद भी **'आपस्तंभ सूत्र'** में 'अनेक कुमार ब्रह्मचर्य धर्म की उपासना से पुत्र विना ही स्वर्ग में गये हैं। उपर्युक्त वचनों से ही मालूम होता है कि उनके वचन उनके ही सूत्रों से परस्पर बाधित है। इसलिए ही सर्वज्ञ भगवान महावीर स्वामी का अबाध्य सिद्धान्त विशेषण सार्थक है।

अमर्त्य पूज्य से इतना जाना जा सकता है कि सामान्य और विशेष आदमियों को जो लौकिक देव मान्य है वैसे देव-इन्द्र-असुर नागकुमार, लोकपाल, ब्रह्म देवलोक भी तीर्थंकर देव के जन्म समय में, दीक्षा समय में, केवल ज्ञान समय में और निर्वाण समय में **"कोडिसय संथुअं"**......इत्यादि वचन से खड़े पैर करोड़-करोड़ देवता, सदैव हाजर ही रहते हैं। जीव में इसप्रकार चार विशेषणों से युक्त तीर्थंकर देवों का ज्ञान संसार के पदार्थ मात्र को यथार्थ रूप से जानते हैं, और प्ररुपित करते हैं। तभी तो संसार में जीव राशि परिमित हैं अपरिमित हैं? जीव कम होते हैं? बढ़ते हैं। सिद्ध हुए जीवों की संख्या बढ़ती है? अथवा घटती है? नारक जीव बढ़ते हैं? कम होते हैं? वृद्धि और कमी होने का उत्कृष्ठ और जघन्य समय कितना? इत्यादिक सबके लिए सर्वथा अभूतपूर्व प्रश्न और उत्तर जैन शासन के आगमसूत्र सिवाय कहीं भी मिल सके वैसा नही है। क्योंकि इसप्रकार के प्रश्नों के उत्तर अनंत ज्ञान के ही आधीन हैं। जिज्ञासु बनकर चार ज्ञान के मालिक गौतम स्वामीने प्रश्न पूछा है और चराचर संसार के प्रत्यक्ष करनेवाले भगवान महावीर स्वामी ने जवाब दिया है।**"इदं न प्रष्ठकं, न ज्ञातव्यं, न व्याकरणीयम्"** इत्यादि प्रसंग केवली भगवान के पास नहीं हो सकते हैं।

जो वादी संसार को तथा जीवों को परिमित मानते हैं – जैसेकि

वैदिक मत में जम्बूद्वीप प्लक्षद्वीप, शाल्मलिद्वीप, कुशद्वीप, क्रौंचद्वीप, शाकद्वीप तथा पुष्करद्वीप और लवण, इक्षु, सुरा, घृत, दधि, दुग्ध और जल इसप्रकार सातद्वीप और सात समुद्र ही मानकर बैठे हैं तथा बौद्ध, जम्बूद्वीप, पूर्व विदेह अवर गोदानीय और उत्तर कुरु नाम के चार द्वीप तथा सीता नाम की सात नदियाँ मानकर बैठे हैं। किन्तु तीन लोक तथा तीन काल के जीव और पुद्गलों की गति आगति को प्रत्यक्ष करनेवाले केवली भगवान भाषित जैन शासन की मान्यता के अनुसार असंख्यातद्वीप और समुद्रों से परिपूर्ण यह संसार बिना जीवों का नहीं हो सकता। और मुक्त जीव भी संसार में दुबारा नहीं आवेंगे। अन्न तत्त्वं दग्ध होने के बाद जैसे अंकुरोत्पति की संभावना नहीं है। उसीप्रकार कर्म बीज सर्वथा दग्ध होने के पश्चात् संसार भ्रमण के लिए पुनः जन्म लेने की संभावना नहीं हो सकती।

"**सति मूले तद्विपाको जात्यायुर्भोगाः**" व्यास भाष्य में इस पातंजल योगसूत्र का यह अर्थ लगाया है, जब तक अविद्या, अस्मिता, राग, द्वेष और अभिनिवेश (हठाग्रह–कदाग्रह) नाम की पांच क्लेशों की सत्ता आत्मा में विद्यमान होती है, तब तक कर्मों की शक्ति फलप्रद होती है, किन्तु क्लेशों का उच्छेद होने के बाद कर्म फल नहीं दे सकते हैं। वारंवार जन्म लेना, आयुष्य भोगना, और शारीरिकादि भोग, कृत कर्म और क्रियमाण कर्मों का फल है, इसलिए जिसके कर्म क्लेश समूल नाश हो जाते हैं, उनका न तो जन्म होता है और न मरण होता है। सारांश यह है कि कर्मों का समूल नाश होने के पश्चात् मुक्त हुए जीव संसार में पुनः नहीं आ सकते।"

ये सर्व जीव मुक्त होने के बाद संसार जीव रहित हो जायगा। यह शंका रखने की जरुरत नहीं है। क्योंकि पृथ्वीकाय, जलकाय, अग्निकाय, वायुकाय, वनस्पतिकाय, दो इन्द्रिय, त्रि इन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय और पंचेन्द्रिय जो षट्काय के नाम से परिचित है। उन जीवों से परिपूर्ण यह संसार है।

जिसमें त्रसकाय यानी द्विइन्द्रिय, त्रिइन्द्रिय, चतुरिन्द्रिय, तथा पंचेन्द्रिय में नारक, देव, जरायुज, अंडज पोतज मनुष्य तथा तिर्यंच जीवों की संख्या चराचर संसार में सब से थोड़ी है।

इनसे तेजस्काय (अग्नि के जीव) असंख्य गुण अधिक हैं। अग्निकाय से पृथ्वी कायिक जीव विशेष अधिक है। इससे भी जल काय के जीव विशेष अधिक है, और वायुकायिक जीव जलकाय जीवों की अपेक्षा विशेष अधिक है। और वायुकायीव की अपेक्षा वनस्पतिकाय के जीव अनंतगुण अधिक हैं।

निगोद काय-

वनस्पतिकाय के जीव व्यावहारिक और अव्यावहारिक भेद से दो प्रकार के हैं। अव्यवहारिक वनस्पतिकाय निगोद कहे जाते हैं। जो अखिल ब्रह्माण्ड में व्याप्त है। निगोद के जीव जब पृथ्वीकायादि अवस्था को प्राप्त करते हैं तब व्यवहारिक संज्ञा से संबंधित होते हैं। और कर्मवशतः कदाचित् वापस निगोद में आवे तो यह व्यवहार राशि का ही माना जायगा। क्यों कि एक आद्य दफे व्यवहार में आ गये हैं। और अनादिकाल से लेकर अभी तक जो जीव निगोद अवस्था को छोड़ने के लिए भाग्यशाली नहीं हुए हैं, वे अव्यावहारिक रूप से संबोधित होते हैं।

निगोद अवस्था में रहे हुए जीव कहाँ रहते होंगे? जवाब देते हुए भगवान ने फरमाया हैं कि संसार भर में असंख्य गोलक हैं, एक एक गोलक में असंख्य निगोद स्थान है। और एक एक निगोद स्थान में अनंतानंत निगोद जीव रहे हुए हैं।

अब हम मान सकते हैं कि अनंतानंत निगोद जीवों को अभीतक भी व्यवहार राशि में आने का चान्स भी नहीं मिला है। इस कारण से ही मनुष्य अवतार दुर्लभतम है।

अनंतानंत जीव एक निगोद स्थान में रहते हैं, ये स्थान भी असंख्य

P. P. Ac. Gunratansuriji M.S. Jin Gun Aaradhak Trust

है जो एक गोलक में रहते हैं, ऐसे गोलक भी असंख्य हैं। जिन निगोद जीवों की अपनी भवितव्यता परिपक्व हो जाती है, तब अव्यवहार राशि में से बाहर आते हैं। और व्यवहार राशि तरीके प्रसिद्धि को प्राप्त होते हैं।

आँखों से प्रत्यक्ष दिखाई देती हुई प्रत्येक वनस्पति जो संसार भर में दिखाई देती है। जिसके मूल में, शाखा में, धड़ में, विभिन्न डालियों में एक-एक पत्ते में, पुष्प में, फल में और फल के एक-एक बीज में पृथक् पृथक् जीव रहे हुए हैं। अर्थात् पेड़ के मूल का जीव अलग, बड़ी शाखा का अलग, छोटी शाखा का अलग, इसप्रकार एक-एक पत्ते में एक-एक जीव रहा हुआ है। आज के वैज्ञानिक भी इस बात से सम्मत हैं।

जिस गांव में हम रहते हैं उसकी भूगोल में भी कितनी वनस्पतियां हैं। हम सब पेड़ आदि को नहीं गिन सकते हैं। एक ही नीम में, आम में, आमली में वड़ या पीपल में कितने पत्ते हैं, उनको कौन गिन सकता है? फिर संसार भर की वनस्पति किस प्रकार गिनी जा सकती है? जब पेड़ों की संख्या गिनी नहीं जा सकती, तो उसके पत्तों को तो ३३ करोड़ देवी देवता एकत्रित होकर भी नहीं गिन सकते। इसलिए वनस्पति में केवली भगवान ने अनंतानंत जीव बताये हैं। वनस्पति का दूसरा भेद साधारण वनस्पति रूप में जैन शासन में प्रसिद्ध है। जहाँ एक ही शरीर में अनंत जीवों का वास है।

असंख्य बड़े-बड़े समुद्र, नदियाँ, महानदियाँ, तालाब, हृद, खाड़ी, और नालाओं में रहे हुए अगाध पाणी के जीवों की संख्या कौन गिन सकता है। जब आज के वैज्ञानिक भी पानी की एक बूंद में ३६८५० जीवों की संख्या देख सकते हैं, तो एक पानी के कलश में कितनी बूंदें होती हैं? इसकी गणना में हम कभी भूल कर सकते हैं, तो संसार भर के समुद्रों के पानी को कौन नाप सकता है? इसलिए पानीकाय में उत्पन्न होनेवाले जीव भी अनंतानंत है।

P. P. Ac. Gunratansuriji M.S. Jin Gun Aaradhak Trust

इसीप्रकार पृथ्वीकाय, अग्निकाय और वायुकाय के लिए भी समझ लेना चाहिए। हम जिस घर में रहते हैं उस घर के भूमिभाग में रहनेवाले दो इन्द्रिय और तीन इंन्द्रिय जीवों की गणना करने के लिए हम सब असमर्थ हैं तो अखिल संसार के कीड़े मकोड़े, खटमल और जूं तथा अलसिए, भौंरे एवं मक्खियां आदि जीवों की गणना करने में हम किस प्रकार समर्थ बन सकते हैं, जो सब की अपेक्षा बहुत ही थोड़ें जीव हैं। अतः इसप्रकार अत्यन्त संक्षिप्त विवेचन से हम सत्य स्वरूप समझ सकते हैं कि अनंतानंत जीवों से परिपूर्ण यह संसार किसी भी समय खाली नहीं हो सकता। इस बात का समर्थन करते हुए वार्तिककार भी कहते हैं कि "चाहे जितने जीव चाहे जब मोक्ष में भले ही चले जाय, तो भी ब्रह्माण्ड में स्थित जीवों की संख्या अनन्तानंत होने से किसी भी समय रिक्त नहीं हो सकता।" 'जो वस्तु परिमित होती है, उसका अंत कभी हो सकता है।' किन्तु अपरिमित अनंत वस्तु का अंत नहीं हो सकता है।" जितने जीव व्यवहार राशि से मोक्ष में जाते हैं उतनी ही संख्या के जीव अनादि निगोद स्थान से बाहर आते हैं।" इस संसार से अनादि काल से जितने जीव मोक्ष में गये हैं और अब भी जा रहे हैं, और अन्तकाल तक जाएंगे। इन सब मुक्त जीवों की संख्या निगोद जीवों की संख्या से भी अनंत भाग में कम है। इस कारण से ही जैन मत में मुक्त जीवों को दुबारा संसार में आने की आवश्यकता नहीं। और संसार अनंत-काल तक अनंतानंत जीवों से परिपूर्ण रहेगा।

जघन्य से एक समय के अन्तर में और उत्कृष्ट से ६ माह के अन्तर में कोई न कोई जीव मोक्षगामी होता है। उसीप्रकार एक समय में जघन्य से एक जीव और उत्कृष्ट से १०८ की संख्या में जीव मोक्ष में जाते हैं। इसीप्रकार मोक्षमार्ग सदैव चालु है फिर भी सिद्ध के जीव निगोद जीवों की अपेक्षा से अनंत भाग में कम है। "नि—नियतां गां—भूमि—क्षेत्रं—निवासं अनंतानंत जीवानां ददाति इति निगोदः।

भ. सू. ३३

P. P. Ac. Gunratnasuriji M.S. Jin Gun Aaradhak Trust

निगोद के जीवों का आहार और श्वासोश्वास एक साथ ही होता है, जन्म और मरण भी साथ ही होता है। तथा अति कठोर–अस्पष्ट वेदना को भोगनेवाले हैं।

शतक–५ वाँ, उद्देशक–८ संपूर्ण

P. P. Ac. Gunratansuriji M.S. Jin Gun Aaradhak Trust

उद्योत और अंधकार

इस प्रकरण में-राजगृह क्या है ? दिन में उद्योत और रात में अंधकार क्यों है ? किन जीवों को समय की जानकारी होती है ? श्री पार्श्वनाथ के शिष्यों के प्रश्न, इत्यादि विषय है। सार निम्नानुसार है :-

राजगृह, पृथ्वी, जल और वनस्पति तक कहा जाता है, राजगृह कूट और शैल कहा जाता है, राजगृह यह सचित, अचित और मिश्रित द्रव्य भी कहा जाता है।

श्री गौतम स्वामी के प्रश्न और भगवान के उत्तर प्रायः करके राजगृह नगरी में हुए हैं। राजगृह का नाम लेकर पूछे गये प्रश्नों के ये उत्तर हैं। इसप्रकार का कथन अपेक्षित है। क्योंकि पृथ्वी यह जीव हैं और अजीव हैं। इसलिए यह राजगृह नगर कहा जाता है। सचित, अजित और मिश्र द्रव्य भी जीव हैं, अजीव हैं, इसलिए राजगृह नगर कहा जाता है, अर्थात् पृथ्वी आदि समुदाय राजगृह नगर है। क्योंकि पृथ्वी आदि के समुदाय विना राजगृह शब्द की प्रवृत्ति नहीं होती है। राजगृहनगर जीवाजीव स्वभाव वाला है, यह प्रतीत है।

दिन में उद्योत-प्रकाश और रात्रि में अंधकार होने का कारण

P. P. Ac. Gunratansuriji M.S. Jin Gun Aaradhak Trust

यह है कि दिन में अच्छे पुद्गलों का शुभ परिणाम होता है। रात में अशुभ पुद्गलों का अशुभ पुद्गल परिणाम होता है।

नैरयिकों को प्रकाश नहीं किन्तु अंधकार होता है। क्योंकि नैरयिकों के अशुभ पुद्गलों का अशुभ पुद्गल परिणाम होता है।

असुर कुमारों को प्रकाश होता है, क्योंकि उनके शुभ पुद्गलों का शुभ पुद्गल परिणाम होता है। इसप्रकार स्तनित कुमार तक समझ लेना।

नैरयिकों की तरह पृथ्वीकाय से लेकर तीन इन्द्रिय जीव तक अंधकार जानना।

इसका कारण यह है कि पृथ्वी कायादि से तीन इन्द्रिय तक के जीवात्माओं को आँख इन्द्रिय न होने के कारण दिखने योग्य वस्तु नहीं दिखलाई देती है। इसलिए उसकी तरफ शुभ पुद्गलों का कार्य नहीं होने से अंधकार कहा जाता है।

चतुरिन्द्रिय जीवों का शुभ अशुभ पुद्गल के शुभ अशुभ पुद्गल परिणाम होता है। इसलिए उनको प्रकाश भी है और अंधकार भी है।

असुर कुमारों की तरह वानव्यंतर, ज्योतिषिक और वैमानक के लिए जान लेना।

समयादि का ज्ञान तथा रात्रि दिवस अनंत या नियत परिणाम

नैरयिक, समय, आवलिका, उत्सर्पिणी, अवसर्पिणी को नहीं

जानते हैं। क्योंकि समयादि का मान तो यहाँ मनुष्यलोक में है।

इसीप्रकार पंचेन्द्रिय तिर्यंच योनिकों के लिए समझना। समयादि का मान और प्रमाण मनुष्य लोक में होने से मनुष्यों को इसका ज्ञान है।

जैसे नैरयिकों के लिए कहा है, वैसे वानव्यंतर, ज्योतिषिक और वैमानिकों के लिए जान लेना चाहिए।

एक समय की बात है, जब भगवान पार्श्वनाथ के स्थविर भगवान महावीर स्वामी से मिलते हैं। दोनों न बहुत दूर न बहुत नजदीक बैठकर इसप्रकार विचार करते हैं:—

असंख्य लोक में अनंत रात्रि दिवस उत्पन्न हुए हैं? उत्पन्न होते हैं? उत्पन्न होंगे? नष्ट हुए हैं? नष्ट होते हैं? नष्ट होंगे? या नियत परिमाण वाले रात्रि दिवस उत्पन्न और नष्ट हुए, होते हैं और होंगे?

इसप्रकार प्रश्न पूछते हैं और जवाब में भगवान कहते हैं कि—

अनंत रात्रि दिवस उत्पन्न और नष्ट हुए, होते हैं और होंगे

इसका कारण बताते हुए भगवान ने कहा है कि पुरुषादानीय पार्श्वनाथ अर्हंतन लोक को शाश्वत कहा है, तथा अनादि कहा है।

यहाँ लोक का स्वरूप इसप्रकार बताया है :-

अनंत, परिमित, अलोक से परिवृत, नीचे विस्तीर्ण, बीच में

संकीर्ण, ऊपर विशाल, नीचे पल्यंक के आकार तथा बीच में उत्तम वज्र के आकारवाला, और ऊपर ऊंचा, खडे मृदंग के आकार के जैसा लोक कहा गया है, उसीप्रकार के लोक में अनंत जीव पैदा होकर नाश होते हैं। वह लोक जीवों द्वारा जाना जाता है। निश्चित होता है। जिस प्रमाण से जाने जाते हैं, उसे लोक कहते हैं।

पार्श्वनाथ भगवान के स्थविर महावीर स्वामी के अनुयायी बन गये। उससे उन्होंने प्रतिक्रमण सहित पांच महाव्रतों को स्वीकार किये।

देवलोक चार प्रकार के कहे जाते हैं :-

१ भवनपति, २ वानव्यंतर, ३ ज्योतिष और ४ वैमानिक।

उनमें भवनवासी १० प्रकार के कहे हैं।

वानव्यंतर ८ प्रकार के कहे हैं।

ज्योतिषिक ५ प्रकार के कहे हैं।

वैमानिक २ प्रकार के कहे हैं।

।। नवाँ उद्देशा समाप्त ।।

P. P. Ac. Gunratansuriji M.S. Jin Gun Aaradhak Trust

उद्देशा–१०

दश्मे उद्देशे में किसी का वर्णन या प्रश्नोत्तर नहीं है। केवल पहले उद्देशक में जैसे सूर्य का वर्णन किया है, वैसे इस उद्देशक में चन्द्र का वर्णन जानकारी के लिए किया गया है और वह चंपानगरी के वर्णन में है।

इसप्रकार भगवान की देशना सुनकर पर्षदा में वैठे हुए प्रसन्न हुए और अपने अपने स्थान पर जाने के लिए खड़े हो गये तथा भगवान को नमस्कार कर निम्नानुसार 'नमुत्थुणं' सूत्र के पदानुसार भगवंत की स्तुति की और पर्षदा अपने अपने घर गई तथा भगवान भी अन्यत्र विहार कर गये।

भगवान महावीर स्वामी की विशेषणात्मक स्तुति

१) श्रमण–मानसिक खेद के बिना जो उत्कृष्ट प्रकार से सात्विक तप करते हैं, पदार्थ के यथार्थ स्वरूप को पहचानते है तथा संपूर्ण जीवराशि के प्रति समता भाव को धारण करते हैं, उसे श्रमण कहते हैं।

सच्ची तपश्चर्या वह है जो लोकैषणा, भोगैषणा और वित्तैषणा का संपूर्ण त्याग करके आत्मा की अनंत शक्तियों के प्रादुर्भाव के लिए की जाती है। "आत्मानं रागादि शत्रून् च तापयतीति तपः" तपश्चर्या वह है जिससे तामसिक, राजसिक, और छद्मस्थादि दोषों का समूल नाश होता है। तपश्चर्या वह है जो कर्मो की संपूर्ण निर्जरा (क्षय) कराकर परमात्मपद को प्राप्त कराती है। ऐसी आत्मलक्षीभूत तपश्चर्या करने वाले श्रमण हैं।

(२) महावीर–आत्मीय शत्रुभूत कर्मो का तपश्चर्या द्वारा क्षय करने

P. P. Ac. Gunratansuriji M.S. Jin Gun Aaradhak Trust

वाले हैं। जो अग्नि में तपे हुए सुवर्ण की तरह अत्यन्त शुद्ध हैं। ऐसे तप और वीर्य से युक्त जो हैं वे वीर हैं। वीर्य अर्थात् आत्मा का सबल पुरुषार्थ, अक्षय शक्ति, अदम्य धैर्य और कर्मराज के सशक्त सैन्य के साथ युद्ध करने की अपूर्व व्यूह रचना है, वह वीर्य है। भगवान महावीर स्वामी की आत्मीय वीर्य शक्ति अपूर्व और अद्वितीय थी, जिसके द्वारा मोहराजाकों और उनके सैनिकों को एक एक करके पराजित करते गये। "महांश्चासोवीरश्चेति महावीरः" रणाङ्गण में तलवार, तीर, धनुष आदि शस्त्रों द्वारा हजारों लाखों मनुष्यों का दमन करना सरल है, किन्तु खुद की आत्मा का दमन करनेवाला ही सच्चा वीर है महावीर है। लौकिक और अलौकिक रूप महा-पुरुष दो प्रकार के होते हैं, जिसमें से लौकिक पुरुष दमन नीति के वश होकर संसार के विजेता बन जाता है। जब अलौकिक तीर्थंकर परमात्मा 'शमन नीति' के आधारपर सब जीवों को वशकर अपना तथा दूसरों की आत्मकल्याण करवाते है।

३) आदिकर-(आइगराणं) आदिकर उसे कहते हैं जो अपने तीर्थ की अपेक्षा से श्रुतधर्म को प्रकट करते हैं। इसका अर्थ यह हुआ कि सम्यग् श्रुतज्ञान अनादिकाल से एक ही है। आदिनाथ भगवान ने जो बातें कही हैं, वही बातें महावीर स्वामी ने भी कही हैं। उस अपेक्षा से आदिकर विशेषण सार्थक है। महावीर स्वामी ने जैन धर्म को स्थापित किया है, इसलिए जैन धर्म के आदि प्रवर्तक महावीर स्वामी हैं, यहाँ पर ऐसा अर्थ नहीं करना है। और यह अर्थ जैन धर्म को मान्य भी नहीं है। क्योंकि 'धर्म' अनादि निधन होने से किसी काल में भी उसकी आदि नहीं। जब से मानव समाज है, वहाँ से जैन धर्म है और जब से हिंसा कर्म है, वहाँ से जैन धर्म का प्राण सम अहिंसा धर्म भी है अहिंसा और हिंसा से रहित मानव किसी समय में भी नहीं रहा, इसलिए इस स्थान पर अपने अपने शासन की अपेक्षा से द्वादशांगी की रचना करने के कारण ही तीर्थंकर आदिकर कहलाते हैं। इसलिए यह विशेषण अपेक्षा से जैसे युगादि भगवान ऋषभदेव

P. P. Ac. Gunratansuriji M.S. Jin Gun Aaradhak Trust

को लाभ होता है वैसे अन्तिम महावीर स्वामी को भी यथार्थ रूप से लागू होता हैं।

४) तीर्थंकर–तित्थयराणां जिसकी आज्ञा को शिरोधार्य करके प्राणी मात्र संसार–सागर से तर जाता है, उसे तीर्थ अथवा प्रवचन कहते हैं। इन दोनों अर्थों की विद्यमानता संघ में होती हैं, इसलिए जो संघ की स्थापना करते हैं वें तीर्थंकर हैं।

साधु साध्वी, श्रावक और श्राविका रूप संघ के चार पाये (पैर) हैं। साधु और साध्वी के गुण एक से होते हैं। और श्रावक तथा श्राविका के गुण एक से होते है। 'साध्नोति स्वपरहित कार्याणीति साधुः इस व्याख्या को लक्ष्य में रखकर जैन साधु को सबसे पहले अपना लक्ष्य सिद्ध करना है। संयम लेने के बाद साधु तथा साध्वी को निम्नानुसार २७ प्रकार के संयम पालना आवश्यक है :—

संयम के २७ भेद

१ जीव हिंसा का सर्वथा त्याग	१४ जिह्वेन्द्रिय की लोलुपताका सर्वथा त्याग
२ असत्य का सर्वथा त्याग	१५ घ्राणेन्द्रिय के भोग का त्याग
३ चोरी का सर्वथा त्याग	१६ आंख–इन्द्रिय के भोग से दूर
४ मैथुन कर्म का सर्वथा त्याग	१७ कान–इन्द्रिय के भोग से दूर
५ परिग्रह मात्र का त्याग	१८ लोभ दशा का निग्रह
६ रात्रि भोजन तथा रात्रि पानी पीने का सर्वथा त्याग	१९ चित्त की निर्मलता
७ पृथ्वीकाय के जीवों की रक्षा	२० वस्त्रादिक की प्रति लेखना
८ जलकाय के जीवों की रक्षा कुआ, बावड़ी, तालाब तथा	२१ अष्ट प्रवचन माता का पालन
	२२ क्षमा को धारण करना

P. P. Ac. Gunratansuriji M.S. Jin Gun Aaradhak Trust

वर्षा के पानी को स्पर्श भी नहीं करना	२३ अकुशल मन का त्याग
९ अग्निकाय के जीवों की रक्षा	२४ अकुशल वचन का त्याग
१० वायुकाय के जीवों की रक्षा	२५ अकुशल शरीर का त्याग
११ वनस्पति के स्पर्श का भी त्याग	२६ परिषह – उपसर्गादिको सहन करनेवाला
१२ त्रसकाय के जीवों की रक्षा	२७ मरणांत उपसर्ग को भी सहन करनेवाला
१३ स्पर्शेन्द्रिय के भोगों से दूर	

साधु उसे कहते हैं जो उपरोक्त सत्ताईस गुणों को धारण करते हैं। ये गुण सर्व व्यापक होने के कारण पंन्यास, उपाध्याय और आचार्य तथा भगवान को भी पालन करने होते हैं, इसलिए साधु-पद श्रेष्ठ है।

जब श्रावक और श्राविका (गृहस्थ) ओं को भी अरिहंत देव, पंच-महाव्रतधारी गुरु और जैन धर्म की आराधना करने के साथ मार्गानुसारी के ३५ गुणों को, श्रावक धर्म के २१ गुणों को, तथा १२ व्रत पालन करने पड़ते हैं, १५ कर्मदान जैसे हिंसक व्यापर छोड़ना होता है तथा चतुर्विध संघ की सेवा अनिवार्य रूप से करनी होती हैं।

इसप्रकार के चतुर्विध संघ (तीर्थ) की रचना करनेवाला तीर्थंकर परमात्मा के सिवा दूसरा कोई भी नहीं हो सकता है।

५) स्वयंवुद्ध (सयंसंवुद्दाणं) इस भव की अपेक्षा ही तीर्थंकर स्वयंवुद्ध होते हैं। दूसरों के उपदेश की आवश्यकता उनको रहती नहीं है। अथवा विपरीत, संशय और अनध्यवसायरूप अज्ञान से दूर होने के कारण हेय, ज्ञेय और उपादेय तत्त्व को जो स्वतः सम्यक् रूप से जानते हैं वे स्वयंवुद्ध भगवान महावीर स्वामी हैं।

६) पुरुषोत्तम (पुरिसुत्तमाणं) अर्थात् जन्मसहज चार मूलातिशय, कर्मो का क्षय होने पर ११ अतिशय और देवकृत १९ अतिशय, इस प्रकार ३४

P. P. Ac. Gunratansuriji M.S. Jin Gun Aaradhak Trust

अतिशय सहित संसारभर के सब प्राकृत पुरुषों में जो उत्तम हैं, अद्वितीय हैं, उसे पुरुषोत्तम कहते हैं।

७) पुरुषसिंह (पुरुषसिंहाणं) अर्थात् सिंह के जैसे पराक्रमी कर्मराज रूपी हाथी को (विदीर्ण) चीरने में सिंह के सदृश समर्थ हैं। यद्यपि भगवान तीर्थंकर बाल्यकाल से ही शूरवीर होते हैं। इसलिए सभी उपसर्गों को सहन कर सकते हैं, और कर्म राजा को पराजिक करके केवल ज्ञान के स्वामी बनते है।

८) पुरुषवर पुंडरीक (पुरिसवर पुंडरीयाणं) जैसे सर्वश्रेष्ठ श्वेत सहस्त्र पत्तों से युक्त कमल होता है वैसे ही भगवान संपूर्ण अशुभ द्रव्य और भाव-रूपीमैल से रहित होने के कारण शुद्ध है, अथवा स्वयं की आज्ञा में रहनेवाले जीवों का संपूर्ण संताप दूर करनेवाले होने के कारण सब भव्य जीवों के लिए कमल समान है, कीचड़ में से कमल उत्पन्न होता है, फिर भी कमल में जैसे कीचड़ की मलिनता नहीं होती हैं, वैसे भगवान भी संसार के भोग रूपी कीचड़ में उत्पन्न हुए हैं फिर भी संसार का एक भी दोष उनमें नहीं होता है।

९) पुरुषवर गन्ध हस्ती (पुरिसपर गंधहत्थीणं) सब हाथियों में गन्ध हस्ती सर्व श्रेष्ठ इसलिये माना जाता है कि सामान्य हाथी उसको देखते ही भग जाता है। इसप्रकार भगवान के चरण-कमल जहाँ पड़े वहाँ एक भी उपद्रव तथा मिथ्यावादी-परवादी भी नहीं रहता है। इसलिए भगवान गन्ध हस्ती के सामान है।

१०) लोकनाथ (लोगनाहाणं) अर्थात् दृष्टिवादोपदेशिकी संज्ञावाले भव्य पुरुषों के भगवान नाथ होते हैं, क्योंकि भगवान के चरणों में आया हुआ मानव सम्यग्दर्शन को प्राप्त करता है और सम्यग्दर्शनी की आत्मा स्वयं के सम्यग्ज्ञान तथा चरित्र को शुद्ध करता है। यद्यपि एक समय की दीर्घकालि

P. P. Ac. Gunratansuriji M.S.   Jin Gun Aaradhak Trust

की संज्ञा को मालिक अर्जुनमाली, दृढ़प्रहारी, चंडकौशिक सर्प, तथा व्यंतरी आदि दूसरे भी असंख्य पापों को करनेवाले और उसी में मग्न-हुए पतित भी भगवान के चरण शरण को प्राप्तकर अपना हित करने में सफल हुए हैं।

११) लोकप्रदीप (लोगपइवं) अर्थात् तिर्यंच, मानव और देवों के अन्तर्हृदय के अज्ञान रूपी अंधकार को नाश कर के उनको ज्ञान का प्रकाश देनेवाले हैं।

१२) लोकप्रद्योतकर (लोगपज्जोअकरं) सम्पूर्ण लोक के त्रिकालवर्ती भावों को अपने केवलज्ञान से प्रकाशित करनेवाले होने से लोकालोक को उद्योत करनेवाले हैं।

१३) अभयद (अभय दयाणं) किसी को भी भय देनेवाले नहीं, तथा प्राणघातक उपसर्गों के करनेवाले चंड कौशिक सर्प, संगमदेव, कान में कीले ठोकनेवाला ग्वाला जैसे प्राणियों के प्रति भी दया भाव का चिंतन करके उनको भी अभयदान देनेवाले हैं, अथवा संपूर्ण जीवों के भय को दूर करनेवाले हैं। वे भयस्थान निम्नानुसार सात प्रकार के हैं :– १) इहलोक भय–अर्थात् एक मनुष्य को दूसरे मनुष्य का भय होना, उसे इहलोक भय कहते हैं देवदुर्लभ मनुष्य जन्म को पाकर मनुष्य यदि सत्संगप्रेमी और विवेकवान बने तो उससे किसी को भी भय नहीं रहता है। वैसे ही वह खुद किसी से भी डरता नहीं है। परन्तु मनुष्य जब आसुरी वृत्ति का मालिक बन कर ईर्ष्यान्ध, कामान्ध, क्रोधान्ध और लोभान्ध बन जाता है तब वह दूसरे से द्रोह किये बिना नहीं रहता है। तब "द्रोग्धव्ये परतोभयम्" इस न्याय से वह हमेशा भयग्रस्त बना रहता है।

२) परलोक भय–जानवर वगैरह अन्य जाति की तरफ से जो भय लगता है, उसे परलोक भय कहते हैं। जैसे "यह कुत्ता मुझे काट खायगा

तो......?" सर्प मुझे डंस जायगा तो.. ... ? इसप्रकार का भय इस जीवात्मा को बनाही रहता है।

३) आदान भय-धन, माल, मिल्कियत (संपत्ति) आदि को चोर लूट लेंगे तो...... मेरा क्या होगा, इसप्रकार का भय।

४) अकस्मात भय-अर्थात् 'घर में आग लग जायगी तो...... ? धरती कंप होगा तो...... ? सागर के किनारे पर रहता हूं तो कभी सागर में तूफान उठ गया तो... .. ? इस प्रकार भय के कारण मनुष्य का हृदय कांपता रहता है... ..।

५) आजीविका भय-पैसा कमाने का भय, व्यापार का भय, नौकरी का भय, तथा रोग पीड़ा, बीमारी का भय ये आजीविका भय है।

६) मरण भय, मृत्यु का भय होने से मोत से बचने के लिए छट पटाता रहता है, ज्योतिषियों को जन्म पत्रिका बताते हुए चक्कर काटना, पंडितों (सामुद्रिक रेखा जाननेवालों) को अपना हाथ दिखाते फिरना, और मृत्यु से रक्षा के लिए भिन्न भिन्न तरीके अपनाते रहना, यह मरण भय है।

७) अपयश भय—लोग मेरी निंदा करेंगे तो ! इतना करता हूँ, फिर भी लोग मेरी तारीफ नहीं करते हैं। इसप्रकार के अपयश भय से रातदिन चिन्तित रहता है।

उपरोक्त ७ (सात) प्रकार के भय को दूर करनेवाले भगवान महावीर स्वामी हैं। अर्थात् भगवान महावीर स्वामी के चरणों में आये हुए मनुष्यों का भय सब प्रकार से दूर हो जाता है और वह सर्वथा अभय अवस्था को प्राप्त करता है।

(१४) चक्षुदायक (चक्खुदयाणं) असीम भावदया के मालिक भगवान महावीर स्वामी सबको श्रुतज्ञानरूपी दिव्य चक्षु देनेवाले हैं। क्योंकि

चर्म चक्षु तो सब कोई के होता है, परन्तु इन चक्षुओं से किसी का भला नहीं होता है, इसलिए "वे ही मनुष्य चक्षुवाले हैं, जिन्होंने त्याग करने योग्य और स्वीकार करने योग्य भावों को देख लिया हैं और जान लिया हैं।

जैसे वीरान जंगल में भूले भटके मनुष्यों को जानकार आदमी 'गाइड' रास्ता बता.कर उपकार करता है वैसे भगवान भी संसार रूपी अरण्य में पीडित और राग–द्वेष रूपी चोरों से लुटाए हुए तथा कुवासना–मिथ्यावासना रूपी अज्ञान से इधर उधर भटकते जीवों को श्रुत ज्ञान रूपी चक्षु देकर अनंत सुख के स्थान रुप निर्वाण मार्ग को दिखाकर सबका अनुपम उपकार करनेवाले हैं।

(१५) मार्गद (मग्गदयाणं) जीव मात्र को सम्यग् ज्ञान–दर्शन और चारित्र रुपी तीन रत्न देकर परमपद (मोक्ष के रास्तेपर चढ़ानेवाले हैं।

(१६) शरणद (शरणदयाणं) सबको धर्म का रास्ता बताकर अनेक उपद्रवों से पीड़ित जीवों को खुद की शरण में लेकर उपद्रव रहित करनेवाले हैं।

(१७) धर्म देशक (धम्मदेसयाणं) श्रुत चारित्र रुपी धर्म के उपदेशक हैं।

(१८) धर्मदायक (धम्मदेसयाणं) संसार में हीरे–मोती–सुवर्ण–चांदी और सत्तास्थान तो देनेवाले अनेक हैं किन्तु श्रुत चारित्र रुपी धर्म बताने-वाले तीर्थंकर देव ही हैं। चारित्र का अर्थ इसप्रकार है, "जहाँ नये पापों का द्वार सर्वथा बंद हो जाता है और पुराने पाप प्रतिक्षण धुल (क्षीण) जाते हैं।"

पृथ्वी–पानी–अग्नि–वायु और वनस्पति में जीव हैं, इसलिए साधु उसका उपयोग करही नही सकते। साधुको स्नान नहीं करना है, पुष्पमालाओं का परिधान साधुता को कलंकित करनेवाले है। अपने हाथों से

रसोई बनाकर भोजन करने में प्रत्यक्ष रूप से अग्नि के जीवों की तथा जिह्वा इन्द्रिय की लोलुपता है। पंखा हाथ में लेकर हवा खाना, यह गृहस्थों को शोभा देता है। खेती वाड़ी प्रत्यक्ष हिंसक कार्य है, इत्यादि पापकार्यों का सेवन साधुओं को शोभा नहीं देता। इसलिए कहा है कि "गृहस्थानां यद्भूषणं तद् साधूनां दूषणम्" उपरोक्त के अनुसार संपूर्ण पापकार्यों का सबसे पहले त्याग करवाकर अत्युत्कृष्ट संयम धर्म को बतानेवाले भगवान महावीर स्वामी है।

(१९) धर्म सारथि (धम्मसारहीणं) चारित्रधर्म रूपी रथ के प्रवर्तक होने से भगवान को सारथि की उपमा दी गई है, जिसप्रकार सारथि रथ की, उसमें बैठनेवाले की तथा घोड़ों की रक्षा करता है उसीप्रकार भगवान भी धर्म के सारथि होने से संयमधारी को स्थिर करके संयम धर्म में लगानेवाले हैं।

(२०) धर्म चक्रवर्ती (धम्मवर चाउरंत चक्कवट्टीणं) जिसप्रकार संपूर्ण पृथ्वी के राजाओं में चक्रवर्ती राजा प्रधान है। उसीप्रकार धर्म देशकों में तीर्थंकर देव अतिशय सम्पन्न होने से श्रेष्ठ धर्म देशक है। "चाहे जैसे और चाहे जिसके तत्वज्ञान को जानने मात्र से मोक्ष नहीं किन्तु भाव शत्रुओं को जीतने से ही मोक्ष है।" महावीर स्वामी के संयम का साधक दिन प्रतिदिन शुद्ध लेश्यावाले, इसलिए होते जाते हैं कि उसे सब जीवों के साथ मैत्रीभाव का व्यवस्थित रूप से विकास और शिक्षा प्राप्त हो गई है।

(२१) **अप्रतिहत श्रेष्ठज्ञानदर्शन धारी (अपदिहय नाण दंसण धराणं)** ज्ञान दो प्रकार के हैं। एक क्षायोपशमिक और दूसरा क्षायिक। पहले में कर्मावरण हैं तथा उसकी असर है। और शायद वह असर बढ़ती ही जाती हो तो ज्ञानी होने के बाद भी संसार के माया–परिग्रह–क्रोध और काम की बढ़ती हुई भावना से उसका ज्ञान केवल बाह्याडंबर रूप में ही रहेगा। जब दूसरे क्षायिय ज्ञान में संपूर्ण कर्म मैल धुले हुए होने के कारण

P. P. Ac. Gunratansuriji M.S. Jin Gun Aaradhak Trust

एक भी बुरी असर रहने नहीं पाती है। भगवान महावीर स्वामी सर्व श्रेष्ठ क्षायिक ज्ञान तथा दर्शन को रखनेवाले हैं।

(२२) **विगत छद्मस्थ भाव (विअट्टछ उभाणं)** भगवान वे हैं जिनसे छद्मशठत्व-दुर्जनत्व कर्मों के आवरण दूर चले गये हैं। जहाँ तक जीव में शाठ्य अर्थात् कर्मों का आवरण होता है तब तक उनका जन्म-मरण का चक्रम बन्द नहीं होता है। तभी उसको पुनः पुनः अवतार (जन्म) धारण करना पड़ता है। परन्तु राग द्वेष वगैरह का सर्वथा नाश करने से छद्मस्थभाव नहीं रहता है।

(२३) **जिन (जिणं)** वें कहलाते हैं जिन्हों ने रागद्वेपादि अंतरंग शत्रुओं को अपने जीवन में से बाहर निकाल दिये हैं। बाह्य शत्रुओं को जीतना बहुत सरल है किन्तु, भाव शत्रुओं को जीतना यही सच्ची तपश्चर्या है। जो अत्यन्त कठिन मार्ग है, आत्मा के प्रवल पुरुषार्थ विना यह मार्ग अरिहंत भगवान के विना किसी को भी प्राप्त नहीं है।

(२४) **ज्ञायक** रागद्वेष का स्वरूप, उनकी अनंत शक्ति और उनको जीतने के लिए सम्यग्ज्ञान जिन्होंने प्राप्त किया है, और उसीके अनुसार ही दूसरे जीवों को भी राग द्वेषादि को जीतने के लिए उपदेश देते हैं, उन्हें भगवान कहते हैं।

(२५) **बुद्ध (बुहाणं)** जीव-अजीव-पुण्य-पाप-आश्रव-संवर, बंध निर्जरा और मोक्ष रूप नव तत्त्वों को जिन्होंने यथार्थ रूप से जानलिया है, वे भगवान हैं। पहले नवतत्त्वों को सम्यक् प्रकार से जानना और जाने हुए तत्त्वों को सम्यक् दर्शन से श्रद्धा रखना और चारित्र अर्थात् जानकारी प्राप्त किये और श्रद्धा प्राप्त किये तत्त्वों को जीवन में उतारना यही मानव कर्तव्य है। और अरिहंत के मार्ग पर चलने का सरल उपाय है।

(२६) **बोधक (वोह्याणं)** स्वयं जानकारी प्राप्त किये गये जीवादितत्त्वों

P. P. Ac. Gunratansuriji M.S. Jin Gun Aaradhak Trust

को उसी प्रकार दूसरों को उपदेश देनेवाले भावदया के मालिक, पतित पावन भगवान महावीर हैं।

(२७) **मुक्त (मुत्तं)** बाह्य और आभ्यन्तर ग्रन्थि को जिन्होंने तोड डाला है, वह मुक्त कहलाता है। गृहस्थाश्रम-पुत्र परिवार मातापिता-धन-धान्य-सुवर्ण, रजत आदि वाह्य परिग्रह है। और मिथ्यात्व, वेदत्रय, हास्य-रति-अरति-भय-शोक-जुगुप्सा, क्रोध-मान-माया और लोभ, इसप्रकार आभ्यन्तर परिग्रह है, इन दोनों ग्रन्थियों को तोड़कर कर्म के पिंजरे में से सर्वथा मुक्त होते हैं, वे भगवान हैं।

(२८) **मोचक (मोअगाणं)** कर्म पिंजरे में से सदुपदेश-हितोपदेश देकर दूसरे जीवों को भी मुक्त करानेवाले अरिहंत भगवान हैं। परंतु राग द्वेष परिग्रह तथा पुनः पुनः अवतार धारण करनेवाले जो स्वय कर्म के बंधन से बंधाये हुए हैं, वे दूसरों को किसी समय में भी मुक्त नहीं करा सकते अतः वीतराग देव ही कर्ममुक्त होने से दूसरों को भी मुक्त करने में समर्थ है।

(२९) **सर्वज्ञ-सर्वदर्शी सव्वण्णूणं सव्वदरिसणं** त्रिकालवर्ती पर्यायात्मक पदार्थ मात्र को विशेष रूप से जानते हैं उन्हें सर्वज्ञ कहते हैं और सामान्य प्रकार से जानते हैं उन्हें सर्वदर्शी कहते हैं। अर्थात् छद्मस्थ पहले देखते हैं और वाद में जानते हैं। जब तीर्थंकर देव पहले जानते हैं और फिर देखते हैं।

कर्मों के जाल को तोड़कर सिद्ध शिला पर विराजमान अरिहंत परमात्मा अनंतज्ञानी हैं अर्थात् सर्वज्ञ हैं। इससे जो मुक्तावस्था में ज्ञान की मात्रा नहीं स्वीकार करते हैं, उनका खंड़न होता है। क्योंकि ज्ञान आत्मा का गुण होकर गुणी से अलग नहीं होता है, वैसे ही गुणी किसी काल में भी गुण विना किसी स्थान पर अर्थात् निगोद, नरक, तिर्यंच, मनुष्य, देव-देवेन्द्र, चक्रवर्ती और सिद्धशिला में भी नहीं रहता है।

P. P. Ac. Gunratansuriji M.S. Jin Gun Aaradhak Trust

(३०) **शिव (सिवं)**–संपूर्ण रूपसे द्रव्य और भाव–बाधाओं से रहित होने के कारण अरिहंतदेव मंगलभूत होते हैं।

(३१) **अचल (अयलं)**–सिद्ध शिला प्राप्त करने के पश्चात् सादि–अनंत रूप से वे सर्वथा अचल होते हैं। कर्मों का संपूर्ण नाश होने से उनकी स्वाभाविक और प्रायोगिक गति भी नहीं होती है।

(३२) **अरुज (अरुअं)**–जिनेश्वर देव को द्रव्य और भाव रोग नहीं होते हैं क्योंकि इन दोनों रोगों का कारण शरीर और मन होता है। परमात्मा परमेश्वर को शरीर प्राप्त करनेका कारण नामकर्म सर्वथा क्षीण हो गया है और शरीर बिना मन भी नहीं होता है। ऐसी स्थिति में "कारणाऽभावे कार्यमपि नास्ति" जन्म समय के, जरा समय के, शारीरिक रोगों को तो हम जान लेते हैं उनको द्रव्यरोग कहते हैं। जब काम, क्रोध, मद, माया, लोभ ईर्ष्या–वैर आदि से उत्पन्न होनेवाले विकार और चेष्टाएं भावरोग से संबोधित होते हैं। ये दोनों रोग भगवान को नहीं होते हैं।

कमंडल पास में रखने का आशय यह है कि उनका शरीर अशुद्ध है। स्वयं के शिर पर रहे बड़े देव का भजन करने के आशय से ही जपमाला रक्खी जाती है।

धनुषबाण गदा–तीर–धनुष–तलवार वगैरह शस्त्र रखने का आशय तो यह है कि खुद के शत्रुओं को मारना। स्त्री को अपने पास रखना काम अवस्था को सूचित करता है। रूंडमाला खप्पर आदि धारण करना हत्या के सूचक हैं। गाय–बैल–अश्व–सिंह–मोर–हंस आदि पशुपक्षी–गण की सवारी अहिंसातत्व की पूर्णता को सूचित नहीं करती है। इसलिए द्रव्य और भाव रोग जिसके नाश हो गये हैं, वे ही भगवान पूज्य हैं और स्तुत्य है।

(३३) **अक्षय (अक्खयं)**–परिपूर्ण अथवा कृतकृत्य होने से भगवान अक्षय हैं।

(३४) **अनंत (अणंतं)**—द्रव्यमात्र में स्थित अनंत धर्मों के विषययुक्त ज्ञान होता है, उसे अनंत कहते हैं।

(३५) **अव्याबाध (अव्वाबाहं)**—दूसरे जीवों को किसी भी प्रकार से पीड़ा करनेवाले नहीं है।

(३६) **अपुनरावृत्ति (अपुणराविर्त्ती)**—कर्मबीज सर्वथा जल जाने के कारण जिसको दुबारा संसार में अवतार धारण करना नहीं है। तो फिर अरिहंत भगवान को पुनः पुनः जन्म धारण करने की बात संभव हो सके, वैसा नहीं है। ऐसे देवाधि देव भगवान सिद्धि गति के स्थान को प्राप्त हो गये हैं। क्षीण कर्मी जीवों का स्थान लोक के अग्रभाग पर होता है। और धर्मास्ति कायादि पदार्थों का अवसान वहीं है। इसलिए उस स्थान को छोड़कर आगे नहीं बढ़ सकते। वैसे ही कर्मबीज का नाश होने से दुबारा संसार में अवतार लेने के लिए कोई भी प्रयोजन नहीं है। भक्तों को आशीर्वाद और दुष्टों को दंड देने की वृत्ति (इच्छा) मोहकर्म के कारण होती है। जब देवाधिदेव परमात्मा का मोहकर्म जड़ मूल से उखड़ चुका है। उपर्युक्तरीत्या भगवंत महावीर स्वामी की स्तुति करती हुई जनता अपने घर गई.........

॥ शतक ५ उद्देशा १० पूर्ण ॥

P. P. Ac. Gunratansuriji M.S. Jin Gun Aaradhak Trust

(समाप्ति वचनम्)

दर्शन, आगम, काव्य व्याकरणादि-अमूल्य साहित्य को प्रकाशित करवाकर जैनेतर तथा पाश्चात्य विद्वानो के हृदय में जैनत्व के संस्कार स्थापक, स्याद्वादनयनयनद्वयधारक, अहिंसा-संयम तपोधर्म प्रचारक, मदमदनशमनकुशल, उपरियालादितीर्थोद्धारक, यशोविजय जैन गुरुकुल, पालीताना आदि अनेक संस्थाओं के स्थापक, शास्त्रविशारद, जैनाचार्य, स्व. १००८ श्रीविजय धर्मसूरीश्वरजी म. के. शिष्यरत्न, शासन दीपक, मुनिराज श्री. विद्याविजयजी म. ने अपने स्वाध्याय के हेतु भगवतीसूत्र पर जो संक्षेप से विवरण लिखा था उनके शिष्य, न्याय-व्याकरण काव्यतीर्थ पंन्यासजी श्री पूर्णानन्द विजयजी (कुमारश्रमण) ने स्वमति अनुसार उसपर विशद, स्पष्ट तथा सरल भाषा में विवेचन कर प्रकाशित करवाया है।

शुभं भूयात् सर्वेषां जीवानाम्

P. P. Ac. Gunratansuriji M.S. Jin Gun Aaradhak Trust

शुद्धि-पत्रक

अशुद्ध	शुद्ध	पत्र	पंक्ति
की	का	४	७
ज्ञानीन	ज्ञानीने	५	२
--दरि--	दीरि	१०	३
रित्य	रीत्य	११	१
मुद--	पुद्--	१३	७
दशे	देशे	,,	८
मुग	भुग	१५	४
पड़	पड़ें	१६	१३
जेरा	र्जरा	,,	१४
अभो--	आभो--	१९	२४
यादि	यादिका	२०	३
मरं	आरं	२०	५
श्रय	श्रव	२०	६
ये	०	,,	१३
--धिक	--यिक	,,	१६
म	में	,,	२१
चरि--	चारि--	१३	२
,,	,,	,,	,,
क्षण--	अण--	,,	११
वार	धार	,,	२१

P. P. Ac. Gunratansuriji M.S. Jin Gun Aaradhak Trust

अशुद्ध	शुद्ध	पत्र	पंक्ति
भदों	भेदों	२७	१३
—ताएं	नाएं	२९	८
में	का	३१	२
पड़ता	डालता	,,	३
ल्थिर	स्थिर	३२	५
रधि	वधि	३९	१०
मयि	मायि	४०	१५
,,	,,	४१	८
की	को	४४	९
—वरणी—	—वरणीय--	,,	११
नत्य	सत्य	,,	२४
कर्भ	कर्म	४८	८
सामा	समा	५०	५
कव	केव	,,	१९
बाध—	वाधा	,,	२३
तिर्थंच	तिर्यंच	५२	२१
किये	किये विना	५३	१
कम	कर्म	,,	४
साम	ताम	५६	२१
च्युक	च्युत	६०	१३
अप	उप	,,	१४
नोयु	नोपयु	६१	५
आर	और	,,	१७
क्रीय	क्रिय	,,	२०
आज्ञन	अज्ञान	६४	१७
काम—	काय	,,	१८

P. P. Ac. Gunratansuriji M.S.		Jin Gun Aaradhak Trust

अशुद्ध	शुद्ध	पत्र	पंक्ति
की स्थिति में	के संबंध में	६५	३
आर	और	,,	५
सुक्ष्म	सूक्ष्म	,,	१३
-भ्रषण	भ्रमण	,,	१५
की	को	६६	९
		७८	
निर्गन्ध	निर्ग्रन्थ	१०७	२
थावत्	यावत्	११४	१५
भगवती	भगवतीसूत्र	११८	११
जवाव	जवाव	,,	१६
निर्गंथ	निर्ग्रन्थ	१२०	७
पलाक	पलाशक	१२५	४
पोगम	पोपगमन	१३०	१
निर्गन्थ	निर्ग्रन्थ	१३१	६
,,	,,	,,	७
मुका	युका	१४३	४
वीभत्स	बीभत्स	१४५	१४
ज्ञानेद्रिय	ज्ञानेन्द्रिय	१४८	१४
ह	हैं	१५८	४
होगा	हो	१६३	११
सत्य-	सत्या-	१६५	१३
हिस्य			

P. P. Ac. Gunratansuriji M.S. Jin Gun Aaradhak Trust

अशुद्ध	शुद्ध	पत्र	पंक्ति
अति–	अती–	१७८	१४
स्यून	न्यून	१७९	११
करता है	करते हैं	१८०	६
,,	,,	,,	७
पुद्गा–	पुद्गला–	१८६	२२
ईश्कर	ईश्वर	१८७	८
चिन्द्रिय	पंचेन्द्रिय	१८९	१
को	की	,,	४
दृष्टी–	दृष्टि–	१९०	१५
पदे	पादे	१९०	१७
कम	कर्म	,,	२
मोच	गोच	१९९	१५
कुर्वण	कुर्वणा	२०२	१७
सहस्त्रार	सहस्रार	२०४	१३
को	की	२०६	१६
करता	करते	२०७	१२
की	को	२०८	१३
आतपाना	आतापना	२०९	४
भाग	भग	२११	७
शकेन्द्र	शक्रेन्द्र	२१२	२
–कार्थ	काधं	,,	९
,,	,,	,,	१०
जसा	जैसा	२१९	२०
–दीप	–द्वीप	२२०	१७
लकते	सकते	२२१	१६
–वाल	वाले	२२४	२२

P. P. Ac. Gunratansuriji M.S. Jin Gun Aaradhak Trust

अशुद्ध	शुद्ध	पत्र	पंक्ति
जातहै	जाता है	२२५	१३
सष्ट	सठ	२२६	३
मुज	मुझ	,,	७
जाने	जाते	,,	१८
देषि	द्वेषि	२२७	१३
योनी	यानि	२२८	२
–वत्ति	–वृत्ति	,,	१३
रू	रूप	,,	१८
द्येष	द्वेष	२२९	२
नथा	तथा	,,	१९
इमलिये	इसलिये	२३०	१४
शैलशी	शैलैशी	२३२	७
करवाना	अनुमोदना	२३५	१२
चाहिय	चाहिये	२३८	१३
ि जतना	उतना	२३९	५
को	का	,,	२३
–वरण	करण	२४०	१
मित	णित	२४०	१२
पह	पहले	२४१	८
लिग्रेले	लिये	,,	३
तित	तीत	,,	२१
सकना	सकता	२४३	१७
र्को का	कर्मो का	२४६	१३
जीव	जीव को	,,	१४
पूर्वाग	पूर्वांग	२४७	८
हांती	होती है	२५०	१०

P. P. Ac. Gunratansuriji M.S. Jin Gun Aaradhak Trust

अशुद्ध	शुद्ध	पत्र	पंक्ति
क्षयक	क्षपक	२५३	८
में	से ही	२५४	२७
अघम–	अधम	२६७	२८
वला–	वेला	२६८	१४
वितन्	वितन्यते	,,	,,
अगनार बहुधा अर्थात्	०	२६९	९
बना–गे	बना देंगे	२७१	२२–२३
क	के	२७२	३
–इन्द्रिए	इन्दिये	,,	२२
–संयय	–संयम	२७३	८
संजइन्द्रिय	संजइन्दिए	,,	२५
संपम	संयम	२७४	१३
है	रहा है	,,	१४
?	०	,,	२३
जाया	गया	२७५	२१
करते	करती	२७७	२
त्प	त्य	२७७	२१
सेवर्त	सेवार्त	,,	२५
आत्यन्त	अत्यन्त	२७९	२४
वर्प्ती	वर्ती	२८१	६
–कों	कों का	,,	१४
स्वर्श	स्पर्श	२८२	१५
भुगतने	भुगते	२९४	५
विषद	विशाद	३१५	६
छटकारा	छूटकारा	३२२	१४
अपते	अपने	३२५	२५

P. P. Ac. Gunratansuriji M.S. Jin Gun Aaradhak Trust

अशुद्ध	शुद्ध	पत्र	पंक्ति
गूण	गुण	३२७	१६
हेश	देश	३२८	१८
निदर्यी	निर्दयी	,,	२१
निर्ध्वस	निर्ध्वंस	,,	,,
दैव–	दैवी	३३०	४
बकसीश	बक्षीस	३३०	२३
पत्था:	पन्था:	३३१	९
अरा	आरा	३३२	३
समद्धि	समृद्धि	३३४	१६
ससार	संसार	३३५	२०
से	को	३३७	७
भोग–	भोगा–	,,	२३
योग्य	०	,,	,,
उसके	अतः	,,	२४
जन–	जैन	,,	२६
ग्रांथि	ग्रन्थि	३४०	११
दव–	देव–	३४१	१६
त्याग	त्यागी	३४३	९
स्तव	स्तक	,,	१५
सत्र	सूत्र	३४५	२
दिना	दिया	३४५	९
श्रुति–	श्रुत–	३४६	१२
,,	,,	,,	१३
भव	भाव	३४७	१६
कहना है	देखना	३४९	६
वैदूर्य	वैडूर्य	३५०	२२

P. P. Ac. Gunratansuriji M.S. Jin Gun Aaradhak Trust

अशुद्ध	शुद्ध	पत्र	पंक्ति
वैदूर्य	वैड़र्य	३५०	२३
के	की	३५१	५
संमावन	संभावना	,,	,,
लेश्मा	लेश्या	,,	११
शुलेश्या	शुक्ल लेश्या	,,	२२
शुक्र–	शुक्ल–	,,	२५
,,	,,	३५२	२
लेश्गाओं	लेश्याओं	,,	३
अयंत्त	अत्यन्त	,,	१३
कपोत	कापोत	,,	२०
धमे–	धर्म–	३५५	३
स्पंटी	स्पष्टी	,,	७
चि–	त्रि–	३५६	२१
जन	जिन		
छोबे	छोटे	३६३	१
पुरी	पुरो	३६४	१२
अपेक्षाए	अपेक्षासे	३६७	१०
तिर्गच	तिर्यंच	,,	१८
विष्ट्र	विष्टा	,,	१८
होते	होता	३६८	१२
भगवात	भगवान्	,,	१७
अद्धि–	अद्रि–	३६९	८
–गीच	–णीय	३७०	२२
निप्प–	निष्प	,,	२३
गृहणी	गृहिणी	,,	,,
पश्वाथ्	पश्चात्	३७१	१

P. P. Ac. Gunratansuriji M.S. Jin Gun Aaradhak Trust

अशुद्ध	शुद्ध	पत्र	पंक्ति
मला–	मुला–	,,	१४
प्रभु	प्रभु	३७३	६
सूद्र	सूत्र	३७४	२१
समव	समय	३७७	६
समय	,,	३७८	५
शेर रस	०	,,	२४
विदर्ण	विदीर्ण	३७०	९
दींग	डींग	,,	११
जीवात्सा	जीवात्मा	,,	२४
क	के	३८०	१
कृ–	कु–	,,	२०
वाद	बाद	३८१	१५
सक्त	सात	,,	,,
कछआ	कछआ	३८३	१
वगला	बगुला	,,	२
हर्शना–	दर्शना–	३८४	१९
आति	आती	३८५	३
–ख्वात	ख्यात–	३८५	२४
चरित्र	चारित्र	,,	,,
उताल	उतावल	३८६	२२
उसे	वह	३८७	३
यों	०	,,	१३
वसंत	पसंत	३८८	१
हृ–	हं–	,,	८
ठिक	ठिक	,,	९
प्रिति	प्रति	३८९	२

P. P. Ac. Gunratansuriji M.S. Jin Gun Aaradhak Trust

अशुद्ध	शुद्ध	पत्र	पंक्ति
–णिय	–णीय	३९०	४
हती	होंती	,,	१७
षीना	पीना	३९२	१
व्यवहार	व्यवहार	,,	१७
स्यार्थ	स्वार्थ	,,	१८
के	कि	३९३	१३
बनोगे	बनेंग	३९४	१९
उपवियों	उपाधियों	,,	२०
है	आये हैं	३९५	४
४९७	३९७	३९७	
थ	थे	,,	६
ीक्षित	दीक्षित	,,	१६
भूलोंको	भूलों का	३९८	१५
द्वार	द्वारा	,,	१७
महशूरा	महसूस	३९९	२२
उमडत	उमडता	४००	२४
विषभ	विषम	४०१	३
संघता–	संयता–	४०२	४
स्वामी	०	,,	१२
प्रप्ति	प्राप्ति	४०४	१७
पदर्थों	पदार्थों	४०४	१९
मत्	यत्	४०५	५
यत्	तत्	,,	,,
पर्यात्मक	पर्यायात्मक	४०७	६
पदार्थ	पदार्थ का	,,	१६
को	के	४०८	४

P. P. Ac. Gunratansuriji M.S. Jin Gun Aaradhak Trust

अशुद्ध	शुद्ध	पत्र	पंक्ति
पदार्थ	पदार्थ की	,,	१
होती	होता	,,	५
चक्ष	चक्षु	४०९	१७
पदाथ	पदार्थ	४१०	१२
और	और	४११	१
अत्मा	आत्मा	,,	११
की	के	,,	२१
वेशा-	वेश्या	४१३	५
-गमंग	-गम	४१४	६
और	और	४१५	१४
साव-	साव-	,,	१५
कर्भ	कर्म	४१७	१
क्षयक-	क्षपक-	,,	१०
अवि	अकि	,,	१२
ह	है	३१८	६
थेदना	वेदना	,,	१०
परत्माओं	परमात्माओं	३२१	२१
थी	श्री	४२४	८
पद्या	पद्म	,,	९
कोळक	कोष्ठक	,,	१३
अनराधा	अनुराधा	,,	२२
भत्स्य	मत्स्य	४२५	१
वज	वज्र	,,	७
नंधा-	नंदा	४२५	१०
गल्लि-		,,	११
होने	होते	४२९	३

अशुद्ध	शुद्ध	पत्र	पंक्ति
व्याज्य	त्याज्य	,,	९
ह्रोते	होने	४३२	१३
ग्राघ	ग्राह्य	,,	१४
दीघायुर्ध्य	दीर्घायुष्य	४३६	२
पच्चीय	पच्चीस	३३७	९
भटा–	भट्टा–	,,	१५
स्पेश–	स्पेश्या–	४३८	४
नहीं	०	,,	१९
से	०	४४०	५
सम–	सम्य–	४४२	१७
सत्ग	सत्य–	४४३	२३
सद्या	सद्दा	४४०	१३
बनी	होकर	४४५	४
,,	,,	,,	१५
सभ्ग	सम्य	,,	२०
स्वर्गदि	स्वर्गादि	,,	२१
को	के	,,	२४
का	के	४४६	६
भरवान	भगवान्	४४८	१५
फगमाते’	फरमाते’	,,	,
मुनिराजाओं	मुनिराजों	४४९	६
सामयिक	सामायिक	,,	९
की जाति	०	,,	१३
की	के	,,	,,
उश्चरने	उच्चरने	,,	८
कौई	कोइ	४५०	१

P. P. Ac. Gunratansuriji M.S. Jin Gun Aaradhak Trust

अशुद्ध	शुद्ध	पत्र	पंक्ति
–गृहिकी	ग्रहिकी	४५०	३
ग्राहिकी	,,	४५१	२०
हुई	०	४५२	१
जन	जिन	४५९	१५
पारितापनिकी	प्राणातिपालिकी	४६०	२२
–सग	–संग	४६१	६
मुक्त	भुक्त	४६८	१४
अगादि	अनादि	४७४	४
कहते	करती	४७६	४
–मरा	–मर	४७८	१
उद्–	उद्दे–	४७१	३
जोव	जीवन	४८७	१२
भयन–	भवन–	४९७	१८
आर	और	४९९	१२
खह्	खोह	५०२	५
का	०	५०४	४
पदार्थ	पदार्थ का	,,	,,
जे	जो	५२२	२१
–जिक	–जित	५२३	६
जाता	जाते	,,	१८
को	के	५२४	१
साल	सात	५२५	१८
अपदिहृथ	अपडिहृय	५२७	२०
चक्रम	चक्र	५२८	६
छ उभाणं	छउमाणं	,,	३

P. P. Ac. Gunratansuriji M.S. Jin Gun Aaradhak Trust

आधि-व्याधि तथा उपाधिरूप दावानल से दग्ध हुए संसार के प्राणियों के लिये मेघ से गिरते हुए नीर के समान भगवान महावीरस्वामी को हमारी वन्दना है।

संसार की माया को सेवन करनेवाले जीवात्माओं के लिये चारों तरफ उत्पन्न हुई मोहकर्मरूपी धूलिको नाश करने में पवन के जैसे देवाधिदेव को हम मन-वचन तथा काया से नमस्कार करते है।

जंगत की मायारूपी पृथ्वी के अन्तर्भाग को चीरनें के लिये हल के जैसे पतितपावन भगवान महावीर-स्वामी की हम वारंवार स्तुति करते है।

P. P. Ac. Gunratansuriji M.S. Jin Gun Aaradhak Trust

कल्पान्त काल के झंझावात से भी विचलित नहीं होनेवाले मेरू पर्वत के समान भगवान महावीरस्वामी को हमारी त्रिकाल वन्दना हो।

सर्वश्रेष्ठ ध्यानकी प्रक्रियारूपी ताप से कर्म विकाप-रूपी कीचड को जिन्होंने सूखा दिया है, वें भगवान महावीरस्वामी सब जीवोंको हर्ष देनेवाले होवें।

अपनी शरण में आये हुए जीवों के शुभ कार्य करने वाल होने से ब्रह्मा के समान, जन्म-मृत्यु के चक्र में से सबोंकी रक्षा करने में विष्णु के समान, पापियों के पापों को क्षय करने में शंकर के समान ऐसे हे प्रभो ! आप हमारे मोक्ष के मार्ग प्रदर्शक बनिये।

P. P. Ac. Gunratansuriji M.S. Jin Gun Aaradhak Trust

क्षत्रिय वंशोत्पन्न, त्रिशलारानी के पुत्र, सिद्धार्थ राजा के नन्दन, ज्ञातवंशीय, सुवर्णसमान कायावाले, ऋषभनाराच संघयण के धारक, समचतुरस्रसंस्थान से देदीप्यमान भगवान महावीरस्वामी को मैं श्वासोश्वास में हजारों बार स्मरण करता हूँ।

लोभियों को लोभरूपी राक्षस से छुडानेवाले, कामियों को कामदेवरूपी गुंडे से बचानेवाले, क्रोधियों को क्रोधरूपी चांडाल से रक्षण करनेवाले, मायारूपी सर्पिणी के विषसे नष्ट हुए मानवों को देशनारूपी अमृत पिलानेवाले हे पतितपावन, दलितोद्धारक भगवान महावीरस्वामी हमारा भी संसार का विष उतारनेवाले बनो।

आपके श्रीमुखसे प्रकाशित यह भगवतीसूत्र घर घर में आनन्द मंगल देनेवाला बने, यह मेरी आशा है।

पूर्णानंदविजय (कुमारश्रमण)

P. P. Ac. Gunratansuriji M.S. Jin Gun Aaradhak Trust